विद्वद्रत्न डॉ. रामचंद्र प्रल्हाद पारनेरकर, पीएच्. डी.

के

# आशीर्वाद

"राष्ट्रभाषा विचार-संग्रह" में राष्ट्रभाषासंबंधी समस्याओं, स्वरूप, परिभाषा, प्रचार एवं विचार आदि बातोंपर तथा राष्ट्रभाषाके सार्वभारतीय, सर्वसंग्राहक और समन्वयात्मक भावी स्वरूपपर हिन्दी और हिन्दीतर विद्वानोंके लेख संग्रहीत कर संपादित किए गए हैं। 'हिन्दी' भारतीय संविधानके द्वारा राष्ट्रभाषा घोषित की गई है। इसकी सार्वभौम मान्यताका मर्म उसके अतीव सरल होनेमें है। फिर भी हिन्दीतर भाषा-भाषियोंको इसे आत्मसात् करनेमें प्रयत्नकी पराकाष्ठा करनी पड़ती है, जिसका विस्मरण नहीं होना चाहिए। क्योंकि हिन्दी एक प्रान्तीय भाषा होनेसे अन्य भाषा भाषियोंको उसे सीखनाही पड़ता है।

डॉ. रा. प्र. पारनेरकर

इस संग्रहमें स्थान-स्थानपर विद्वानों एवं विचारकोंने राष्ट्रभाषाके लिए आवश्यक गुणोंका पथनिर्देश, संकेत एवं सूचनाएँ दी हैं, उनसे संपर्क स्थापित कर उसे चरितार्थ करनेके हेतु संपादकों के प्रति मैं अपने शुभाशिष प्रदान करता हूँ। हमारी हिन्दी यथार्थ रूपसे राष्ट्रभाषा बन जाय इसलिए मैं परमकृपालु ईश्वरसे हार्दिक प्रार्थना करता हूँ।

वन्दे मातरम्।

पूना, २९-५-१९६४ }

हिन्दी प्रचाराय स्वाहा।
हिन्दी प्रचाराय इदं न मम।

# समर्पण

इस ग्रंथके
प्रथम दो संस्करणोंके
सहयोगी सम्पादक
स्वर्गीय श्री. शंकर दामोदर उपाख्य अप्पासाहेब चितले
की पुनीत स्मृतिमें
सादर समर्पित
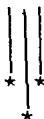
न. चि. जोगलेकर
भगवानदास तिवारी
शान्तिभाई जीवनपुत्रा
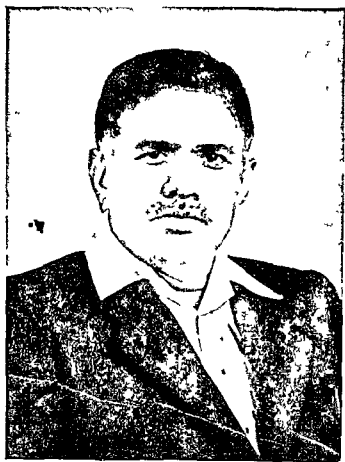
स्वर्गीय श्री शकर दामोदर उपाख्य अप्पासाहब चितले

| जन्म | निधन |
| --- | --- |
| १६ अक्तूबर, १९०६ | १३ मई, १९५९ |

# प्रास्ताविक

प्रत्येक राष्ट्रको अपनी आन्तरिक विशेषता के लिए कतिपय वैधानिक नियम आवश्यक होते हैं, जो उसके विभिन्न भागोंको एक सूत्रमे पिरोते हैं, और इन अनेक नियमोंमें एक अत्यावश्यक नियम एक राष्ट्रभाषाका होनाभी है। जो राष्ट्र जितने ही अधिक विशाल और बहुभाषी होते हैं उनके लिए उतनाही अधिक यह आवश्यक होता है कि उनकी एक राष्ट्रभाषा हो। किसी समय राष्ट्रके लिए एक धर्मता या एक संस्कृतिकी आवश्यकता समझी जाती थी, परंतु अब वह स्थिति नहीं है। क्योंकि धर्म और संस्कृति की बहुलताभी किसी राष्ट्रमे होकर वह एक राष्ट्र बना रह सकता है यदि विभिन्न धर्म और संस्कृतिके अवलबियोंको राष्ट्रके प्रति सचाई का भाव हो। परतु एक राष्ट्रभाषा के बिना हमारा कार्य नहीं चल सकता। इस प्रसग मे बहुतसे लोग स्विटझर्लंड का उदाहरण देते हैं। वहाँपर एकाधिक भाषाओंका प्रयोग होता है, परन्तु वह एक छोटा देश होनेके कारण और बहुभाषिता उसके लिए राष्ट्रीयभाव का माध्यम होनेसे उसकी स्थिति बडे देशोंसे भिन्न हो जाती है। उस छोटे देशमें एक-सूत्रता की समस्या नहीं उठती, परन्तु रूस, अमेरिका, भारत-जैसे देशोंमे, जो बहुत बडे देश हैं, एक कोनेसे दूसरे कोनेतक विभिन्न तत्वों और प्रदेशोंको एक सूत्रमें बांधने के लिए और विभिन्न नियमोंके लिए और योजनाओंको समग्र देशमें लागू करने के लिए तथा देशके प्रत्येक कोनेसे दूसरे कोनेतक प्रत्येक नागरिक को यातायात, निवास, उद्योग व्यापार और सेवा-कार्योंकी सुविधा और अधिकार के लिए राष्ट्रभाषाकी एकसूत्रता आवश्यक है। इसी लिए जब कभी धार्मिक एकत्व की अनुभूति जनता और उसके नेताओंको अनुभव हुई तब किसी एक भाषा को राष्ट्रभाषा के रूपमें स्वीकार और व्यवहृत किया। अंग्रेजोंके आनेसे पहले भी हमारे देशमें एक राष्ट्रभाषा काम करती थी। प्राचीन काल में वह संस्कृत थी और तत्पश्चात् वह हिन्दी रही। अत आजका सवैधानिक निर्णय कोई नया निर्णय नहीं है, वरन् पुराने व्यवहार का ही प्रतिपादन और समर्थन है।

आज जब हम देशके प्रत्येक कोने-से अपना सम्पर्क स्थापित करना चाहते हैं, क्योंकि उसकी सुविधाएँ और साधन उपलब्ध हैं, तब राष्ट्रभाषाके प्रचुर व्यवहारकी आवश्यकताका हमे तीव्र रूपसे अनुभव होता है। परन्तु दुर्भाग्य यह है कि ऐसा महत्त्व-पूर्ण विषय भी, जिसको तुरन्त कार्यान्वित करना चाहिए था, एक वाद-विवादके द्वारा ग्रस लिया गया और उसके व्यवहारकी प्रगति क्षीण हो गई। जो कार्य पाँच वर्षोंका था, वह पन्द्रह वर्षोंमे भी पूरा नहीं हो पाया। यह हमारी राष्ट्रीय भावना पर भी एक बडा लाछन है।

फिर भी बड़े समाज और बड़े देशोंकी स्मृति क्षणिक होती है, इसलिए इतिहासकी बातोंको बार-बार दुहराना भी आवश्यक होता है। अनेक तर्क-वितर्क जो बहुत पहले प्रस्तुत किये जा चुके हैं, उनका पुनर्वाचन बहुत-सी शंकाओंको दूर करता रहता है। इस उद्देश्यसे यह आवश्यक था कि राष्ट्रभाषाके विकासका इतिहास देते हुए उसकी विभिन्न समस्याओं और पक्षोंका विश्लेषण तथा उनका समाधान करते हुए हमारे सामने कोई ग्रंथ हो जो कि बार-बार समाधान किये जानेपर भी पुन पुन उठनेवाली शंकाओंका निवारण कर सके।

इस दृष्टिसे प्रस्तुत पुस्तक "राष्ट्रभाषा विचार-संग्रह" एक अत्यंत उपयोगी कृति है। इसके सम्पादकों—डॉ न वि जोगलेकर, डॉ भगवानदास तिवारी तथा श्री शान्तिभाई जोबनपुत्राने अत्यन्त परिश्रमसे पुरातन और अद्यतन उपयोगी सामग्रीको एकत्र किया है और उसे व्यवस्थित रूप देकर एक बहुत ही आवश्यक कार्यकी पूर्ति की है। मेरा अपना विचार है कि राष्ट्रीयताको सुदृढ बनाने के लिए राष्ट्रभाषाके सम्बन्धमे वास्तविक दृष्टि प्रदान करनेके लिए ऐसी पुस्तकोंको नवयुवकोंके पाठ्य क्रममे अनिवार्य रूपसे स्थान दिया जाना चाहिए और राष्ट्रभाषा प्रचार-परीक्षाओंमे तो इसका महत्त्व निश्चित रूपसे असंदिग्ध है। मेरा विश्वास है कि राष्ट्रीय एक सूत्रताको दृष्टिमे रख कर शिक्षा और प्रचार करनेका कार्य सम्पादन करनेवाली संस्थाएँ इस ग्रंथसे पूरा लाभ उठाएँगी।

पूना, ता ३१-५-६४

—डॉ. भगीरथ मिश्र,<br>
अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग<br>
पूना विश्व-विद्यालय, पूना-७

# भूमिका

'राष्ट्रभाषाविचार-संग्रह'का परिवर्द्धित और संशोधित चतुर्थ संस्करण तैयार करनेमे डॉ. न. चि. जोगलेकर, डॉ. भगवानदास तिवारी तथा श्री शान्तिभाई जोवनपुत्राने बड़ा परिश्रम किया है। राष्ट्रभाषा हिन्दीका अपना इतिहास है। तमाम राष्ट्रभाषा-प्रेमियो तथा विद्यार्थियोंके लिए यह आवश्यक है कि उसकी जानकारी प्राप्त करें। बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात तथा इतर हिन्दीतर भाषी प्रदेशोंके विद्वान मनोषियोंने भारत-राष्ट्रके लिए एक राष्ट्रभाषाकी आवश्यकता अनुभव की थी। इन विद्वानों और मनीषियोंमे बंगालके स्व. बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्यायसे लेकर सुभाषचन्द्र बोसतक, महाराष्ट्रके लोकमान्य तिलकसे लेकर यशवतराव चौहान तक और गुजरातके स्वामी दयानन्दसे लेकर गांधीजी तक नेता शामिल थे। इन सभी कर्णधारोंने इस आवश्यकताकी पूर्तिके लिए हिन्दीको योग्य समझा और उसके लिए जनताको प्रेरणा दी। गांधीजीने स्वराज्य प्राप्तिके १४ कार्य-क्रमोंके मध्यमें राष्ट्रभाषाके प्रश्नको रखा। हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयागद्वारा दक्षिण भारत तथा अन्य हिन्दीतर भाषी प्रदेशोंमे हिन्दी प्रचारके लिए संस्थाएँ बनाई गई और कार्य करनेके लिए सेवाभावी कार्यकर्ताओंको आव्हान किया गया। स्व. मालवीयजी, टण्डनजी, महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि कई हिन्दी भाषी मनीषियोंने हिन्दीके विकासमें अपनी शक्ति तथा सेवाएँ समर्पित कीं। परिणामस्वरूप, जब भारत स्वतंत्र हुआ और उसका राष्ट्रीय संविधान बना देवनागरी लिपिमे लिखी जानेवाली हिन्दीको केन्द्रकी राजभाषा स्वीकार किया गया और उसको उसके इस उचित स्थानपर प्रतिष्ठित करनेका भार केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारोंपर डाला गया। केन्द्रीय तथा राज्य-सरकारोंने अपने इस कर्तव्यको निभाने में कितनी शिथिलता दिखाई, हिन्दीको केन्द्रकी राजभाषा बनाने सम्बन्धी संविधानके आदेशका पालन करनेमे कैसी उदासीनता दिखाई, इसके इतिहासमे यहाँ हम जाना नहीं चाहते।

## राजभाषा और राष्ट्रभाषामें बड़ा भेद है

राजभाषा और राष्ट्रभाषामे बड़ा भेद है। हिन्दीको आम जनताका सदा बल मिला है और पीढ़ियोंसे वह भारतकी किसी न किसी रूपमे राष्ट्रभाषा बनी हुई चली आ रही है। साधुओं तथा यात्रियोंने भारतके कोने-कोनेमे उसे पहुँचाया था क्योंकि इसके द्वारा रोजके व्यवहारमे उन्हें सर्वत्र सुविधा मिलती थी। हिन्दीके इसी व्यापक रूपको देखकर बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात आदि प्रदेशोंके विद्वान नेताओंने उसे राष्ट्रभाषाका पद दिया। यह सही है कि भारतकी जितनी भी भाषाएँ हैं वे सब राष्ट्रीय भाषाएँ हैं परन्तु आन्तर-

प्रदेशीय व्यवहारके लिए अखिल भारतीय राष्ट्रीय स्तर पर जिसका व्यवहार किया जा सके, जिसके द्वारा प्रान्त तथा भाषाभेदोंको भुलाकर भारतका एक-राष्ट्र निर्माण करनेमें बल और प्रेरणा मिल सके और अखिल भारतीय स्तरपर होनेवाले राष्ट्र-निर्माणके कार्यों तथा अखिल भारतीय स्तरकी सेवाओंमें जिसके द्वारा सहायता और सुविधा प्राप्त हो, ऐसी एक राष्ट्रभाषाकी जो आवश्यकता भारत राष्ट्रके लिए आज है उसकी पूर्ति हिन्दी द्वारा ही आसानी से हो सकती है। इसीलिए उसे 'राष्ट्रभाषा'का गौरव प्रदान किया गया है। 'राष्ट्रभाषा'में भाषापर नहीं परन्तु 'राष्ट्र' शब्द पर ही अधिक जोर दिया गया है और यह बात राष्ट्रभाषाके इतिहाससे स्पष्ट हो जाती है।

### हिन्दी उर्दूका झगडा समाप्त

सद्‌भाग्यकी बात है कि हिन्दी-उर्दूका झगड़ा अब समाप्त हो गया है। उर्दूको हम हिन्दीसे भिन्न कोई अन्य भाषा नहीं मानते और आज यह प्रश्न भी नहीं रहा कि अँग्रेजी या अन्य भाषाओंके जो शब्द हिन्दीमें प्रचलित हैं, उन्हे निकालकर संस्कृतके नये शब्द लिए जाएँ। ऐसे जो भी शब्द प्रचलित हैं, उनका व्यवहार हिन्दीमें अब निस्संकोच किया जा रहा है, इतना ही नहीं, उर्दू तथा भारतीय भाषाओंके नये-नये शब्द, जो हिन्दीकी प्रकृतिके अनुकूल हैं और हिन्दीमें आसानीसे खप सकते हैं, उनका भी व्यवहार धड़ल्लेसे किया जा रहा है। आज राष्ट्रभाषा हिन्दीपर केवल हिन्दी भाषी प्रदेशोंका ही अधिकार नहीं रहा है, उस पर सब भारतीयोंका—सभी प्रदेशोंके निवासियोंका अधिकार हो गया है। उर्दू तो हिन्दीकी एक शैली मात्र है। कुछ साल पहले जो हिन्दी लिखी जाती थी, उसमें और आज जो हिन्दी प्रचलित है, उसमें जो भेद है, वह समझनेवालोंके लिए बहुत स्पष्ट है। उर्दू तथा अन्य भाषाओंके चालू शब्दोंका तथा मुहावरोंका अब बड़ी छूटके साथ उपयोग किया जा रहा है।

### राष्ट्रभाषाका आन्तर-प्रान्तीय और केन्द्रीय व्यवहार

किन्तु राष्ट्रभाषा हिन्दीको केन्द्रमें तथा राज्योंमें स्वीकार करानेमें, प्रान्तप्रदेशीय व्यवहार तथा अखिल भारतीय स्तरपर राष्ट्र-निर्माणके कामोंमें राष्ट्रभाषाके रूपमें उसका व्यवहार चालू करानेमें अभी भी बहुत संघर्ष करना पड रहा है। ऐसी स्थितिमें 'राष्ट्रभाषा विचार-संग्रह' प्रत्येक विद्यार्थी तथा परीक्षार्थीके लिए अध्ययनकी एक बहुत ही उपयोगी पुस्तक सिद्ध होगी और उससे उन्हें बहुत प्रेरणा मिलेगी। राष्ट्रभाषा प्रेमी तथा उसके सेवक स्व. श्री. चितलेजीको ऐसी पुस्तककी आवश्यकता प्रथम प्रतीत हुई। उन्होंने परिश्रमपूर्वक उसे तैयार किया। राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिकी परीक्षाओंमें उसको स्थान मिला और उसकी हजारों प्रतियाँ बिकीं। श्री चितलेजी द्वारा

सम्पादित यह पुस्तक कुछ पुरानी पड़ गयी थी। उसे फिरसे संशोधित तथा संवर्द्धित करनेकी आवश्यकता थी और यह काम डॉ. जोगलेकर, डॉ. भगवानदास तिवारी तथा श्री. शान्तिभाई जीवनपुत्रने प्रेमपूर्वक किया है। इस संवर्द्धित संस्करणमें हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग तथा राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धा तथा अन्य हिन्दी प्रचारसंस्थाओं एवं विभिन्न विश्व-विद्यालयोंकी राष्ट्रभाषा सम्बन्धी आवश्यकताओंको ध्यानमें रखकर विस्तृत जानकारी दी गई है और इस प्रकार तीन अध्याय और बढ़ाये गये हैं। श्री. शान्तिभाई जीवनपुत्रने हिन्दी-प्रचारकी संस्थाओंका परिचय बड़े परिश्रमसे तैयार किया है, इससे इसकी उपयोगिता और भी बढ़ गई है। मेरा विश्वास है इस संवर्द्धित संस्करणका अच्छा स्वागत होगा।

— मोहनलाल भट्ट
प्रधान-मन्त्री
राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति,
वर्धा.

वर्धा, हिन्दी-नगर
दिनांक : २७-७-१९६४

# अभिमत

"भारतकी विभिन्न समस्याओंमे राष्ट्रभाषाकी समस्या अपना एक विशेष स्थान और इतिहास रखती है। आज तो उसे राजनैतिक महत्त्व भी प्राप्त हो गया है। राष्ट्रभाषाके सम्बन्धमे देशके गणमान्य कर्णधारोंने समय समयपर अपने विचार प्रकट किए हैं, उससे सम्बन्धित विभिन्न प्रश्नोंपर प्रकाश डाला है, लगभग आधी सदीसे राष्ट्रभाषाका प्रचार व्यवस्थित ढगसे होता आ रहा है, इसीलिए राष्ट्रभाषा प्रचारका एक इतिहास बन चुका है।

राष्ट्रभाषा सम्बन्धी यह सम्पूर्ण सामग्री अब तक बिखरी हुई थी। "राष्ट्रभाषाविचार-सग्रह"के सपादकोंने वर्षों पहले इस दिशामे प्रयत्न करके सम्पूर्ण सामग्रीको एकत्रित कर पुस्तकाकार प्रकाशित किया था। पुस्तक इतनी उपयोगी सिद्ध हुई कि सब ओर उसका आदर हुआ। अब इसका परिवर्तित परिवर्द्धित चौथा सस्करण प्रकाशित हो रहा है। इस सस्करणमें आवश्यक और उपयोगी नवीन सामग्री जोड दी गई है। इस तरह यह ग्रन्थ राष्ट्रभाषा-विचारोंका एक कोष बन गया है। इसकी उपयोगिता स्वय सिद्ध है। सुसम्पादनके लिए सम्पादक गण साधुवादके अधिकारी हैं।"

वर्धा, हिन्दीनगर
दि २४ ७ ६४

— रामेश्वर दयाल दुबे
परीक्षा मन्त्री, राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति, वर्धा

* * *

डॉ न चि जोगलेकर, एम् ए, पीएच डी, डॉ भगवानदास तिवारी एम् ए, पीएच् डी तथा श्री शान्तिभाई जीवनपुत्रद्वारा सपादित "राष्ट्रभाषा विचार-सग्रह"का परिवर्तित चतुर्थ सस्करण मेरे सामने है। यह पुस्तक करीब साढे तीनसौ पृष्ठोके सग्राह्य तथा उपयोगी साहित्य से भरी हुई है। इसमे नीचे लिखे अनुसार अध्याय हैं हिन्दी ही राष्ट्रभाषा क्यो? हिन्दीका स्वरूप, राष्ट्रभाषाकी परिभाषा, राष्ट्रभाषाकी समस्याएँ, हिन्दीका भावी रूप, हिन्दीकी प्रचारक सस्थाएँ, राष्ट्रभाषा प्रचार आन्दोलनका इतिहास: इन अध्यायोंमे देशके विद्वानो, राजकीय नेताओ तथा हिन्दी प्रचारक सस्थाओके महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव, भलैव्य तथा विचार हैं।

पूरी पुस्तक राष्ट्रभाषा प्रचारसे प्रेम रखनेवाले राष्ट्रभाषा प्रेमियो तथा हिन्दीके हितचिंतकोके लिए हिन्दी तथा देवनागरी लिपिके बारेमे महत्त्वपूर्ण जानकारीसे भरी हुई है। पुस्तकका सपादन बडे अच्छे ढगसे किया गया है।

पुस्तक पढनेसे हिन्दी भारतकी एक समृद्ध तथा सग्रहणशील सक्षम राष्ट्रभाषा है, ऐसी प्रतीति हर पाठकको अवश्य होगी।

इसके लिए मैं हृदयसे सम्पादकोंका अभिनन्दन करते हुए शुभ कामना व्यक्त करता हूँ कि राष्ट्रभाषा हिन्दीके लिए निष्ठा रखनेवालोंके हाथमे यह पुस्तक अवश्य हो। इसके द्वारा सपादकोने हिन्दीके प्रचारके लिए उपयोगी काय किया है।

— जेठालाल जोशी
मन्त्री सचालक गुजरात प्रान्तीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, अहमदाबाद

अहमदाबाद
दि १-८-१९६४

# गुणग्रहण

"राष्ट्रभाषा विचार-संग्रह" का यह चतुर्थ संस्करण है। इसका संकलन और संपादन डॉ. जोगलेकर, डॉ. भगवानदास तिवारी, तथा श्री. शान्तिभाई जीवनपुत्राने किया है।

'राष्ट्रभाषा विचार-संग्रह' यह एक अनोखी किताब कही जा सकती है। 'लेखोंका संग्रह' होनेपर भी वह एक 'अपनापन' रखती है। 'प्रचार' शब्दका असली और गूढ अर्थ क्या होता है, इसका साधार विवेचन इस पुस्तकके छः अध्यायोंमें किया गया है।

लगभग चवालीस लेखकोंके लेख इस 'संग्रह' में समाविष्ट हैं। श्री अनन्त-शयनम् आयंगार जैसे राजकार्य-धुरंधर तथा प्रकाण्ड भाषाशास्त्री डॉ सुनीतिकुमार चटर्जी और डॉ. रघुवीर जैसे लेखकोंके लेख अपना सानी नहीं रखते।

गण्यमान्य विद्वान् व्यक्तियोंने जो प्रान्तीय भाषामें लेख लिखे हैं उनके अनुवाद भी बडे रोचक बने हैं।

'हिन्दी ही क्यों?' इस विषयके अनुसंधानमें सबसे अधिक यानें २१ लेख हैं। ठीक ही है!! राष्ट्रभाषाके रूपमें हिन्दीकी आवश्यकता सिद्ध होनेपर ही सारी बातें निर्भर हैं। साहित्य-सम्राट् न. चिं. केलकरजीका "अभिजात हिन्दी तो बहुधा संस्कृतमय हो रहेगी" यह वाक्य उल्लेखनीय है। प. ग. र. वैशंपायनजीने राष्ट्रभाषाका पद प्राप्त करनेकी सामर्थ्य रखनेवाली भाषामें जिन आठ गुणोंका संकेत किया है, वे बहुत ही मार्मिक हैं, किन्तु उनमें (१) जिसमें सामान्य भारतीय साहित्यके माध्यम होनेकी क्षमता मौजूद हो। (२) जो अपने प्रकृत-रूपमें परदेशीपनकी गंधसे दूर हो। (३) जो सुनने, समझने और बोलने-लिखनेमें सिर्फ सरलही न हो, बल्कि हमारी रागात्मक प्रियता भी प्राप्त करती हो—इन खास गुणोंका उल्लेख किये बिना नहीं रहा जाता।

साहित्य-सम्राट् मुन्शीजीका एक अनमोल वाक्य है। आप कहते हैं "यदि हिन्दी अपनी भावी शक्तिके लिये संस्कृतसे प्रेरणा प्राप्त करे तो वह भारतकी राष्ट्रभाषा, उसकी आत्माका माध्यम, सौन्दर्यका मन्दिर व सांस्कृतिक पैतृक संपत्तिकी वाणी सहजहीमें बन सकती है।" श्रीमान् रंगराव दिवाकरजीने हिन्दी-भाषियोंसे प्रान्तीय भाषाओंका अध्ययन करनेका अनुरोध किया है, उसमें 'राष्ट्र-भाषा' का मर्म भरा हुआ है। "केवल हिन्दी-प्रचारकी दृष्टिसे नहीं, परन्तु संसारके कल्याणकी दृष्टिसे भी हिन्दीको आन्तरराष्ट्रीय क्षेत्रमें स्थान मिलना आवश्यक है" इस प्रकारका उच्च आशावाद श्रीमान् दातारजीने प्रकट किया है। श्री करुणाकरजी मेनन संस्कृतको ही राष्ट्रभाषाका आधार मानते हुए

कहते हैं—" अपनी भावना प्रकट करनेको शब्द नहीं मिलता तो संस्कृत शब्दका उपयोग करनेमे ही सौन्दर्य है। श्रीमान् आयंगारजीने राष्ट्रीय एकताके लिये भारतकी सारी प्रान्तीय भाषाओंका लेखन देवनागरी लिपिमें करनेकी क्रान्तिकारी सूचना की है। डॉ. रघुवीर अजीब मिलावटकी हिन्दुस्तानीके प्रबल विरोधक हैं। आप लिखते हैं—" यदि हिन्दुस्तानीको काममें लाया जावेगा तो हजार बरसोंसे उत्तर तथा दक्षिण भारतीय भाषाके शब्दकोशोंमे जो घनिष्ठ संबंध प्रस्थापित हुआ है वह नष्ट हो जाएगा।" श्री. जीतेन्द्रचन्द्र चौधुरीजीका लेख तो एक अनोखी चीज़ है। उसमे आपका बहुभाषा-कोविदत्व ही मानो प्रकट होता है। अन्य प्रान्तीय राष्ट्रभाषा-प्रेमियोंको इस लेखमे नयी नयी बातोंका लाभ होगा। श्री. चौधुरीजीके स्वभावको मैं जानता हूँ। जोशमे आनेपर वे इन्द्र और चन्द्र दोनोको जीतकर अपना जीतेन्द्रचद्र नाम सार्थ करते हैं। भदन्त आनन्द कौसल्यायनजीके लेखका शीर्षक ही उनकी जोशीली, रसिक और तर्कशुद्ध विचार-प्रणालीको प्रकट करनेमे पर्याप्त है। उनके लेखका शीर्षक है—" हिन्दी-हिंदुस्थानी हिन्दू-मुस्लिम पॅक्टकी भाषा है; ऐक्य की नहीं।"

विनोबाजी राष्ट्र-सन्त हैं। आपका उपदेश हरेकके हृदयमे ताज़ा ही रहेगा। वे कहते हैं—" मेरा आग्रहपूर्वक कथन है कि आप अपनी सारी मानसिक शक्ति हिन्दी भाषाके अध्ययनमे लगावें। यही समझें कि वह अभी हमारे प्रथम धर्मोंमेसे एक धर्म है।" स्व. चितलेजी तो राष्ट्रभाषा हिन्दी-प्रचारके मिशनरी ही बने थे। राष्ट्रभाषाके जो 'दस गुण' श्री चितलेजीने बताये हैं, वे राष्ट्रभाषा हिन्दीके 'दशावतार' ही हैं।

*'हिन्दीका स्वरूप'* नामक दूसरे *अध्यायमे* प्रथित विधिज्ञ म. म. काणेजी, श्री मथूवालाजी और डॉ. हजारीप्रसाद जैसे विद्वानोंने भारतीय घटनाकी धारा ३५१ एक दर्दभरी वैध कहानी बन बैठी है!! डॉ भगीरथ मिश्रजीका 'राष्ट्र-भाषा हिन्दी' शीर्षकका लेख उनकी अभ्यास-शीलता और रसिकताका नमूना है। अपने लेखके अन्तमे मिश्रजी लिखते हैं—मुनि शरय सौरभकी कली।

कवि-कल्पना जिसमे पली। फूले-फले साहित्यकी यह वाटिका।......... और आशा रखते हैं " आधुनिक साम्यवाद और मानव-प्रेमकी सुरभि बिखेरने-वाली साहित्य-वाटिका सचमुच हमारे लिये कल्याणकारी हो सकती है।"

तीसरे अध्यायमे साहित्य सम्मेलन और वर्धा-समितिके प्रस्ताव उल्लेखनीय हैं। " राष्ट्रभाषाकी समस्याएँ " इस अध्यायमे राष्ट्रभाषा-प्रचारमे पैदा होनेवाली उलझनोंको सुलझानेकी भरसक कोशिश की गयी है जो राष्ट्रभाषा-प्रचार पर सोचनेवाले 'वितर्को' और राष्ट्रभाषा-प्रचारकोंके लिए उपादेय है। पृष्ठ १८८ पर डॉ जोगलेकरजी कहते हैं—" अंग्रेजीमे यदि ज्ञानकी राशि है तो उसे सीखा जा सकता है पर उसका अतिरिक्त मोह त्यागकरही यह किया जाय।

राष्ट्रभाषा गौरवकी वस्तु है। अहिन्दी भाषी (हिन्दीतरभाषी) उसे अनिवार्य रूपमें सीखें। परन्तु इसके साथ-साथ हिन्दी भाषियोंका यह कर्तव्य हो जाता है कि वे दक्षिणकी द्राविड परिवारकी कोई भाषा अनिवार्य रूपमें सीख लें। इससे राष्ट्रीय ऐक्यकी वृद्धि होगी तथा भावनात्मक ऐक्य बढ़ेगा।" हिन्दी विश्वभाषा बन सकती है—यह डॉ. जोगलेकरजीका आशावाद दृढ़ श्रद्धापर आधारित है। 'हिन्दीका भावी रूप' इस अध्यायके लेखोंके शीर्षकोंका सकलन ही इस अध्यायमें विवेचित विचारोंका 'सार' प्रकट करनेमें समर्थ है। प्रा. कृ. ग. दिवाकरजीने पृ. २०८ पर जो 'शंकाओंका समाधान' किया है, वह तर्कशुद्ध और व्यावहारिक है।

छठा अध्याय श्री. जोवनपुत्राजीकी श्रद्धापूर्ण मेहनतका फल है। श्री. जोवनपुत्राजीने भिन्न भिन्न संस्थाओंके बारेमें जो सारगर्भ लेखन किया है वह प्रशंसनीय है।

अन्ततः मैं इतना ही कहूँगा कि 'राष्ट्रभाषा विचार-संग्रह' में विचारशील व्यक्तिओंके तर्कशुद्ध विचार संग्रहीत हैं।

लेखोंमें किसीकी ओर उँगली उठानेका दृश्य नहीं है। आक्षेपोंका भी सभ्य भाषामें उत्तर दिया गया है। यह ग्रंथ स्पष्टरूपमें "विचार-संग्रह" होनेके कारण इसमें इकट्ठी की हुई जानकारी पर आँखका काजल चुरानेका आक्षेप कोई नहीं कर सकता। किसी भी लेखकने आग फाँकनेकी अल्पांशमें भी कोशिश नहीं की है।

ऐसे उपयोगी एवं सर्वांग सुन्दर ग्रन्थके संग्रह-कर्त्ताओंको हार्दिक धन्यवाद।

येवले
दि. ३०-७-६४

— पं. का. र. वैशंपायन,
काव्य-पुराणतीर्थ, साहित्य-रत्न

चतुर्थ-संस्करण के सन्दर्भ में

# निवेदन

'राष्ट्रभाषाविचार-संग्रह' का यह चतुर्थ परिष्कृत परिमार्जित और संशोधित संस्करण अपने पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत करते समय हमे बडी प्रसन्नता है। यह पुस्तक विशेष अध्ययन की वस्तु है और इसकी दिनोदिन बढती हुई माँग इसकी उपादेयताका प्रमाण देती है।

इसका प्रथम संस्करण १० मई, सन्–१९५४ को प्रकाशित हुआ, फिर १ अगस्त, १९५७ को दूसरा संस्करण छपा और तीसरा संस्करण १० मई, सन् १९६० को प्रकाशमे आया। इसी बीच, वैशाख सुदी पचमी, शके १८८१ तदनुसार बुधवार, ता १३ मई, १९५९ को इस ग्रन्थके प्रथम दो संस्करणोंके सहयोगी विद्वान सम्पादक : प्रा श दा. चितलेजीका असामयिक निधन हो गया। अत इस रचनामे चाहते हुए भी कोई महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नहीं हो सका। अर्थात् कुछ छुट-पुट संशोधनोंको छोडकर इसके प्रथम तीनो संस्करण, प्रथम-संस्करणके पुनर्मुद्रण मात्र रहे। अब इसकी रचनामे पर्याप्त परिवर्तन कर दिया गया है। अपने वर्तमान रूपमे यह रचना छः अध्यायोमे विभाजित की गई है :—(१) हिन्दी ही राष्ट्रभाषा क्यों ? (२) हिन्दी का स्वरूप, (३) राष्ट्रभाषा की परिभाषा, (४) राष्ट्रभाषा की समस्याएँ, (५) हिन्दीका भावी रूप तथा (६) हिन्दी प्रचारक संस्थाएँ और राष्ट्रभाषा-प्रचार आन्दोलन का इतिहास।

पिछले संस्करणोंके प्रथम, द्वितीय और तृतीय अध्यायोमे कुछ और नये लेख जोड दिये गये हैं और शेष तीनों अध्याय सर्वथा नवीन हैं।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग; राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धा तथा अन्य हिन्दी प्रचार-संस्थाओं एव विभिन्न विश्व-विद्यालयों की राष्ट्रभाषा सम्बन्धी आवश्यकताओंको सामने रखकर अन्तिम तीनों अध्याय विशेष-रूपसे संग्रहीत किये गये हैं। साथ ही हिन्दीमे प्रकाशित होनेवाली पत्र-पत्रिकाओंकी सदर्भ-सूची अन्तमे देकर, इस संग्रहको पूर्णरूप देनेका एव उसकी उपादेयता और अधिक

बढ़ानेका विनम्र प्रयास किया गया है। इस नूतन परिष्कारसे यह रचना अब अद्यतन हो गई है।

हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है और पूर्व घोषित कालावधिके अनुसार सन–१९६५ के बाद वह संघ-राज्यकी भाषा होगी। किन्तु पिछले दशकमें हमने देखा है कि कुछ राजनैतिक और भाषावादी कारणोंसे हिन्दीतर भाषा-भाषी लोग हिन्दीका विरोध कर रहे हैं और उनका आक्षेप है कि हिन्दी उनपर लादी जा रही है।[१] इस समस्याको लेकर राष्ट्रभाषा पर विचारोंके दोएक संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं, किन्तु उनमें अधिकतर हिन्दी-भाषियोंके ही विचार संग्रहीत किये गये हैं। हिन्दीके सम्बन्धमें हिन्दी-भाषी जो कुछ भी कहेंगे उसे हिन्दीतर भाषी 'पक्षपात' कह सकते हैं। अतः राष्ट्रभाषा हिन्दीके सम्बन्धमें हिन्दीतर भाषा-भाषियोंके विचार विशेष महत्त्व रखते हैं। इस ग्रन्थमें संग्रहीत विद्वान लेखोंसे पता चलेगा कि राष्ट्रभाषाके नाते हिन्दीका प्रबल समर्थन हिन्दीकी अपेक्षा हिन्दीतर भाषियोंने ही अधिक मात्रामें किया है।

स्व. आचार्य केशवचन्द्र सेन, स्व. बंकिमचन्द्र, डॉ. सुनीतिकुमार चतर्जी (बंग-भाषी); स्वामी दयानन्द, महात्मा गांधी, श्री. कन्हैयालाल मणिलाल मुन्शी (गुजराती-भाषी); वीर सावरकर, स्व. बाबा राघवदास, स्व. पं. ग. र. वैशंपायन, स्व न. चि. केलकर, स्व. शं. दा. चितले, माननीय न. वि. गाडगीळ, (मराठी-भाषी); श्री. रंगराव दिवाकर, श्री. एस्. निजलिंगप्पा (कन्नड-भाषी) श्री. चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, माननीय श्री. अनन्त शयनम् आयंगार (तमिल-भाषी); श्री. मो सत्यनारायण, प्रो रामर्मूति रेणु (तेलुगु-भाषी) आदि हिंदीतर भाषियोंने राष्ट्रभाषा हिन्दीका केवल समर्थन ही नहीं किया, बल्कि उसके प्रचार और प्रसारमें प्राण-पणसे सहयोग भी दिया है। इन विद्वानोंके विचार इस ग्रंथमें संग्रहीत हैं और वे इस तथ्यके समर्थक हैं कि हिन्दीतर भाषा-भाषियोंने स्वेच्छासे हिन्दीको राष्ट्रभाषा माना है और हिन्दी उनपर लादी नहीं गयी है।

इन लेखोंमें हिन्दी ही राष्ट्रभाषा क्यों होनी चाहिए? राष्ट्रभाषाका स्वरूप कैसा हो? प्रादेशिक भाषाएँ और हिन्दीका पारस्परिक सम्बन्ध कैसा हो? हिन्दीतर भाषा-भाषीको हिन्दीका कितना ज्ञान आवश्यक है? और उसी तरह हिन्दी भाषा-भाषियोंको भी हिन्दीतर भाषाओंका ज्ञान कितना और कैसा होना चाहिए? आदि प्रश्नोंपर चर्चा की गई है। इसी तरह संविधानमें हिन्दीके विकासके सम्बन्धमें ३५१-वीं धारामें जो सूचनाएँ दी गयी हैं, उनका वास्तविक अर्थ क्या है? हिन्दीके दो रूप हैं या नहीं? इस तर्क पर भी श्री. कन्हैयालाल

---

१. आधुनिक भारतीय भाषाओं में अँग्रेजी का स्थान और राष्ट्र भाषा की समस्या -डॉ० भगवानदास तिवारी; पृ० १७०.

माणिकलाल मुंशी[१], भाषा शास्त्रज्ञ डॉ सुनीतिकुमार चतर्जी, स्व किशोरीलाल मश्रूवाला आदिके महत्त्वपूर्ण विचार इसमें संग्रहीत हैं। हम अपेक्षा रखते हैं कि ये विचार अवश्य ही पाठकोंको शांत एवं संतोष देंगे। साथही हमारा विनम्र मत है कि कोई भी भारतीय—चाहे वह हिन्दी भाषी हो या हिन्दीतर भाषा भाषी—यदि हिन्दीमें लिखेगा या बोलेगा तो उसका अर्थ सर्वत्र एकही होना चाहिए। ऐसा करते समय प्रादेशिक भाषा का प्रभाव हिन्दीपर होना चाहिए और होगा, इसमें सन्देह नहीं है। ऐसे प्रभावका हिन्दी साहित्य सम्मेलनने अपने एक प्रस्तावमें स्वागतभी किया है। बंगला, मराठी और गुजरातीसे भी हिन्दी प्रभावित हुई है और समयानुसार दक्षिणकी भाषाओंका भी उसपर प्रभाव पडेगा, किन्तु इससे कोई नयी भाषा पैदा नहीं होगी। एक ही भाषा भाषी जब जब अपनी भाषामें लिखते हैं तब भी व्यक्तिगत शैली कुछ भिन्न सी लगती है किन्तु उनकी भाषा भिन्न नहीं होती[२], कहीं—कहीं मातृभाषाके प्रभावके कारण हिन्दीतर भाषियोंकी हिन्दी लेखन शैलीमें थोडा अन्तर होना स्वाभाविक है किन्तु हम उसे मौलिक भेद नहीं कह सकते[३]।

इसके अतिरिक्त इस संग्रहमें हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धा आदि संस्थाओंके भाषा नीति विषयक प्रस्ताव, संविधानका राजभाषा संबंधी अंश, उसकी ३५१—वीं धारा, उसके अर्थके सम्बन्धमें भिन्न मत, राजभाषा सम्बन्धी संसदीय समितिकी सिफारिशोंपर राष्ट्रपतिका निर्णय आदि महत्त्वपूर्ण सामग्री दी गयी है। हिन्दी और सभी भारतीय भाषाओंमें दर्शन, साहित्य आदि शास्त्रोंमें प्राय एकसे शब्द हैं। अत नवीन वैज्ञानिक-पारिभाषिक शब्दावली भी एक ही हो—इस तरहके यत्न होने चाहिए। यही भारतीय विद्वानोंकी सम्मिलित राय है।[४]

इलाहाबादकी भारतीय हिन्दी परिषदकी टिप्पणीमें हिन्दीकी आत्मा, उसे बिगाडे बिना भाषाका विकास करनेकी रीति, दूसरी भाषाके अनावश्यक शब्द लेनेसे होनेवाली हानि आदिके सम्बन्धमें मार्ग-दर्शन है।[५]

---

१ राष्ट्रभाषा हिन्दीके सम्बन्धका स्वीकृत प्रस्ताव, आपहीने भारतीय-संविधान-परिषदमें रखा था।

२ संविधानकी हिन्दी प्रादेशिक हिन्दी ही है।

—डॉ सुनीतिकुमार चतर्जी।

३ प्रान्तीय हिन्दी और राष्ट्रीय हिन्दीमें मौलिक भेद नहीं होगा।

—श्री मो सत्यनारायण।

४ देखिये भारतीय भाषा विकास परिषद, पुणे का प्रस्ताव।

५ देखिये हिन्दीके दो रूप नहीं है। (लेख क्र २९, पृ १००)

पिछले आठ-दस वर्षोंमें राष्ट्रभाषाके समर्थन के साथ-साथ उसका विरोध भी चल रहा है, जिससे राष्ट्रभाषाकी प्रगतिमें गत्यावरोध तो हुआ ही है, साथही हिन्दी और हिन्दीतर भाषा-भाषियोंमें पारस्परिक मतभेद बढ़ रहे हैं और राष्ट्रकी भावनात्मक एकताको भारी खतरा पैदा हो गया है। यह एक ज्वलन्त समस्या है। इसके सम्बन्धमें आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी, डॉ. वी. के. आर्. वी. राव, डॉ. रामलाल सिंह, डॉ. कमलाकान्त पाठक, डॉ. रामचन्द्र प्रल्हाद पारनेरकर, स्व. आचार्य ललिता प्रसादजी सुकुल, डॉ. भगवानदास तिवारी और डॉ. न. चि. जोगलेकर आदिके लेख चतुर्थ अध्यायमें संकलित कर दिये गये हैं।

पंचम अध्यायमें हिन्दीका भावीरूप विशद करनेवाले स्व. पं. जवाहरलाल नेहरू, उपराष्ट्रपति डॉ. जाकिर हुसैन, प्रा. कृ. गं. दिवाकर, डॉ. भगीरथ मिश्र डॉ. न. चि. जोगलेकर, डॉ. राजनारायण मौर्य आदिके लेख विशेष-रूपसे संग्रहीत किये गये हैं तथा षष्ठम अध्यायमें श्री. शान्तिभाई जोबनपुत्रा-द्वारा लिखित 'हिन्दी-प्रचारक संस्थाओंका परिचय' तथा लेख डॉ. न. चि. जोगलेकर और डॉ. भगवानदास तिवारी का लिखा —'राष्ट्रभाषा-प्रचार आन्दोलनका इतिहास' श्री. पं. मु. डांगरेजीका 'राष्ट्रभाषा पर-विचार' शीर्षक लेख एवं अंग्रेजी—विधेयकके सम्बन्धका श्री. द. कृ. बट्टीकरजीका लेख विशेष रूपसे जोड़ दिये गये हैं। आशा है, राष्ट्रभाषाकी समस्याओंसे परिचित होनेमें, इन लेखोंसे पाठकोंको सहायता एवं मार्ग-दर्शन प्राप्त होगा। अंतमें हिन्दीमें प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओंकी सूची भी दी गई है।

अनेक वाद-विवादोंमें रुचि लेते हुए भी, यदि हमारे पाठक-गण इस ग्रंथसे राष्ट्रभाषाकी प्रतिष्ठाके लिये किंचित प्रोत्साहन तथा मार्ग-दर्शन पाएँगे, तो हम अपने प्रयासको सार्थक समझेंगे।

इस ग्रंथको राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धा तथा हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग ने अपनी परीक्षाओंके पाठ्य-क्रममें स्थान दे कर हमें उपकृत किया है। उनके हम हृदयसे आभारी हैं।

जिन विद्वानोंकी रचनाओंसे इस ग्रंथकी प्राण प्रतिष्ठा हुई है, उनके भी हम चिर ऋणी हैं।

इस संस्करणका संपादन करते समय हमें पुनः एक बार हमारे विगंगत विद्वान सहयोगी सम्पादक स्व. प्रा. शं. दा. उपाख्य अप्पासाहब चितलेजीका स्मरण हुए बिना नहीं रहता। वस्तुतः इस पुस्तकके प्रणयन—सूत्रका स्व प्रा. शं. दा. चितलेजीके सुयोग्य मार्ग-दर्शन और योजना-बद्ध प्रेरणासे ही सम्बन्ध है, इसे हम कदापि नहीं भूल सकते। उनके प्रति हम सदैव ऋणी रहेंगे।

प्रस्तुत संस्करणके लिए जिन महानुभावोंने अपने आशीर्वचन, प्रास्ताविक दो-शब्द तथा अभिमत भेजकर एवं भूमिका लिखकर हमें उपकृत किया है, उनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करना हम अपना परम कर्तव्य मानते हैं।

हमारा परम सौभाग्य है कि प्रस्तुत चतुर्थ-संस्करणका औपचारिक-प्रकाशन विद्वद्रत्न प. पू. श्री डॉ. रा प्र. पारनेरकरमहाराजके शुभ-हाथों, पारनेर (जि. अहमदनगर) में स्थित श्री. गुरुदेव दत्तकी स्थापनाके वार्षिकोत्सवके अवसरपर वैशाख वद्य ११ शके १८८६, ता ६ जून, १९६४ को सम्पन्न हुआ।

प्रस्तुत पुस्तकके लेख क्र ९ से ४५ (पृ. १८३) तककी छपाई हो चुकनेके बाद, लिपि सम्बन्धी सर्व सामान्य नीतिको अपनाने की दृष्टिसे, पृ. १८३ से आगेके पृष्ठोंका मुद्रण सर्वमान्य लखनऊ-लिपिमें किया गया है। उसी प्रकार इस संस्करणकी छपाई क्राऊनके बदले डेमी आकारमें की गई है।

पुस्तकका पृष्ठ-संख्या दुगुनीसे अधिक हो जानेके कारण, पुस्तकका मूल्य बढाना पडा। जिसके लिए हम पाठकोंके क्षमा-प्रार्थी हैं।

आशा है, सहृदय पाठक हमारे इस अल्प प्रयासको अपनाएँगे तथा पुस्तकके सम्बन्धमें अपने उपयुक्त सुझाव भेजकर हमें उत्साहित करेंगे।

पूना,<br>'स्वाधीनता-दिवस'<br>१५ अगस्त १९६४.

विनीत :<br>सम्पादक त्रय

# अनुक्रमणिका

## प्रथम अध्याय

### हिन्दी ही राष्ट्रभाषा क्यों ?


१ : हिन्दी और देवनागरीका समर्थन ३

— महाराष्ट्र साहित्य परिषद, पुणे

[ भारत एक राष्ट्र है। एक राष्ट्रभाषा चाहिये। अंग्रेजी राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती। देशी भाषा चाहिये। ऐसी देशी भाषा हिन्दीही है। पारिभाषिक शब्दोंकी समानता। राष्ट्रलिपि एकही चाहिये। नागरी लिपिकी महत्ता। राष्ट्रभाषा और प्रादेशिक भाषाओंकी सीमा। ]

२ : संस्कृतके कारणही मराठी और हिन्दीका नाता ६

—स्व न चिं केलकर

[ अग्रसर भाषा। बहनोंका नाता। संस्कृतके कारण ही। पारिभाषिक शब्द समान रहेंगे। नागरी लिपिही राष्ट्रलिपि। भाषा-शुद्धिकी मर्यादा। भाषा शुद्धिमें तारतम्य। ] ९

३ : हिन्दीही क्यों ? ९

—स्व प ग र वैशंपायन

[ भारतकी एकता। मध्यदेशकी भाषाकी महत्ता। हिन्दीमें अपनीही संस्कृतिका दर्शन हम पाते हैं। राष्ट्रभाषाका पद किस भाषाको प्राप्त हो ?

४ : हिन्दीकी अग्रपूजा १२

—स्व प ग र वैशंपायन

[ हिन्दीका स्थान प्रथम। अन्य भारतीय भाषाओंको राष्ट्रभाषाका पद क्यों नहीं मिलता ? हिन्दीकी विकासकी मर्यादाएँ। ]

५ : हिन्दीका संस्कृतीकरण स्वाभाविक है १५

—श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी

[ स्वभावसिद्ध राष्ट्रभाषा। मध्यदेशकी भाषाकी महत्ता। साराशरूपमें कहा जा सकता है कि -। संस्कृतका सान्निध्य। संस्कृतका महत्त्व। साम्प्रदायिकता नहीं। मुसलमान प्रान्तीय भाषा जानते हैं। खिचड़ी भाषा। हिन्दी ही हमारी राष्ट्रभाषा। आज्ञामात्रसे भाषाएँ नहीं बना करतीं। ]

६ : हिन्दी सीखनेमें विलम्ब क्यों ? १९
—श्री. रंगराव रामचंद्र दिवाकर.

[ राष्ट्र-प्रेमीको राष्ट्रभाषा-प्रेमी होनाही चाहिये । हिन्दी परकीय नहीं है, क्योंकि यह संस्कृतजन्य और संस्कृतपुष्ट है । भाषा और साहित्यका सम्बन्ध पुनरुत्थानके लिये राष्ट्रभाषा आवश्यक । हिन्दीके विकासमें भारतीय भाषाओंका उपयोग । प्रचारक प्रान्तीय भाषाओंको भी सीखें । राष्ट्रके अन्तःकरण का द्वार खुलता है । ]

७ : हिन्दीही हमारी राष्ट्रभाषा २२
—श्री एस्. निजलिंगप्पा.

[ देवनागरीही राष्ट्रलिपि । रूढ़ अरबी शब्द रहे; किन्तु स्वाभाविक स्रोत संस्कृतकाही रहे । दो लिपियाँ अमान्य । प्रान्तीय भाषाएँ हिन्दीको बहुत कुछ दे सकती हैं । ]

८ : सारे राष्ट्रके लिये एक भाषाका होना आत्मसम्मानकी बात है । २४
—स्व. बलवंत नागेश दातार.

[ हिन्दीही ऐसी भाषा है । दक्षिणके भाइयोंको डरनेकी आवश्यकता नहीं । ऐतिहासिक कारणोंसे हिन्दी राष्ट्रभाषा बनी । आन्तर-प्रान्तीय व्यवहारकी भाषा । अपनी भाषाका अभिमान · चीनका उदाहरण । आन्तरराष्ट्रीय क्षेत्रमें हिन्दीको स्थान मिलना चाहिये । ]

९ : राष्ट्रभाषाका अध्ययन अनिवार्य २८
—डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी

( हिन्दी भाषा-भाषीभी अन्य प्रान्तीय भाषा सीखें )
[आजका प्रश्न । उर्दू आम-फ़हम भाषा नहीं है । संकटसे उत्तर-भारतकी मुक्ति । अभीतक संस्कृतिवाहिनी भाषा नहीं बनी है । एक विषयके नाते 'अंग्रेजी' पढ़ना अनिवार्य है । संविधानके हिन्दी अनुवादकी भाषा संस्कृतानुसारिणी । राष्ट्रभाषाका अध्ययन अनिवार्य । ]

१० : हिन्दी भाषा बन चुकी है । केवल पारिभाषिक शब्द चाहिये । ३२
—श्री. क्षेत्रेश चट्टोपाध्याय.

[ हर्ष-वर्धनका समय । बंगला-मराठीसे हिन्दी प्रभावित हुई है । प्रान्तीय भाषाओंको हिन्दी निकटकी । विधानमें 'हिन्दुस्तानी' नाम निरर्थक है । संस्कृतसे चिढ क्यों ? केवल पारिभाषिक शब्द चाहिए । वर्तमान रूपको लेकर चलें । भाषानुसारी प्रान्त-रचना हो । शिक्षाका माध्यम मातृभाषा । राजदूतोंके कार्य हिन्दीमें हों । ]

११ : भारतकी संघ-भाषा ३७
—श्री. लक्ष्मीनारायण साहू

[ संन्यासियोंकी भाषा । मठाधिपतियोंके द्वारा हिन्दीका स्वीकार । तीर्थोंकी भाषा । संस्कृताश्रयी भाषा भारतकी प्रकृतिके अनुकूल । थोड़े विदेशी शब्द

आत्मसात् कर सकते हैं । उर्दू 'भारतीय प्रवृत्तिके विरुद्ध' । शब्द आते-जाते रहेंगे । सास्कृतिक भाषाकी आवश्यकता । हिन्दीही हमारी राष्ट्रभाषा । ]

१२ : उडिया और हिन्दीमें समानता ४०

—श्री भैरवलाल नन्दवाना

[ उडियाकी लिपि । कुछ उदाहरण । सस्कृतीकरण स्वाभाविक । हिन्दीका प्रभाव । ]

१३ सस्कृतही राष्ट्रभाषाका आधार ४२

—श्री करुणाकर मेनन

[ हमारी समस्या । मलयाल्म पर सस्कृतका प्रभाव । राष्ट्रभाषाका आधार सस्कृतही । मलबार मुस्लिम भी फारसी लिपिको अस्वीकार करेंगे । अनुवाद की आवश्यकता । ]

१४ अंग्रेजीका स्थान हिन्दीही ले सकती है ४४

—श्री अनन्त शयनम् आयगार

[ भारतीय भाषाओंका हृदय एक है । उर्दू जनताकी भाषा न बनी । अंग्रेजीका प्रभाव । अंग्रेजी छोडो । हिन्दीही हमारी राष्ट्रभाषा । सस्कृतके कारण भाषा क्लिष्ट नहीं होगी । पाकिस्तान के बाद । यह आडम्बर छोड दें । हिन्दीसे प्रान्तीय भाषाओंकाही लाभ । देवनागरीका प्रयोग । ]

१५ · हिन्दीही दक्षिणकी भाषाओंकी निकटकी भाषा ४९

—स्व डॉ रघुवीर

[ हिन्दी अन्तर्मुख उर्दू बहिर्मुख । हिन्दुस्तानीका रूप । बोली और भाषामें अन्तर । हिन्दुस्तानी अनुपयुक्त । सस्कृत शब्दावली-समान । ]

१६ असमीया भाषा, साहित्य और हिन्दी ५१

—श्री जीतेन्द्रचन्द्र चौधरी

[ भारतवर्षमें आसामका स्थान । अ सम अर्थात् अतुलनीय । बहुभाषियोंका निवास-स्थान । जनताकी भाषा नहीं दबी । असमीयाका विकास काल । असमीयाका पडित मान्य रूप । ब्राह्मीसेही लिपिका विकास । शब्दावली तत्सम और तद्भव । असमीयाके लिये देवनागरी । असमीयापर सस्कृतका प्रभाव । सर्वत्र हिन्दीका एकही रूप । हिन्दीके अध्ययनसे असमीयाका लाभ ।]

१७ . हिन्दी + उर्दू = हिन्दुस्तानी ५९

—स्व महात्मा गाधी

१८ हिन्दी-हिन्दुस्तानी हिन्दू-मुस्लिम ऐक्यकी भाषा है ऐक्यकी नहीं ६४

—भदन्त आनन्द कौसल्यायन

[ हिन्दुस्तानीके भिन्न भिन्न नमूने । 'नाममें क्या रखा है ?']

१९ : हिन्दीसे उर्दूको खतरा नहीं है ६६
—डॉ सैयद महमूद

२० : हिन्दी प्रान्तीयतासे ऊपर है ६७
—आचार्य विनोबा भावे

[ आश्रम-भाषा हिन्दी हो । हिन्दी प्रान्तीयतासे ऊपर है । उनमे मल्यालमपन ढूँढने परभी आप नही पाएँगे । मातृभाषावत् राष्ट्रभाषाका ज्ञान आवश्यक । ]

स्फुट विचार ७०
—स्वामी दयानन्द, डॉ राजेन्द्रप्रसाद,
—स्वातन्त्र्यवीर वि दा सावरकर ।

२१ : हिन्दीही हमारी राष्ट्रभाषा है । ७०
—स्व श दा चितले

[राष्ट्रभाषा कौनसी ? उर्दू राष्ट्रभाषा नही तथा अग्रेजी ता विदेशी भाषा है । राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपिका निर्णय हिन्दी और देवनागरीके पक्षमे । राष्ट्रभाषाका प्रश्न भावनात्मक एकताका प्रश्न है । राष्ट्रभाषा हिन्दी सीखनेके कतिपय उद्देश्य । एक लक्ष्य । प्रत्येक राष्ट्रभाषाम ये दस गुण पाये जाते है । विदेशी नेताओंकी भाषा अग्रेजी राष्ट्रभाषा नही है । स्वयसिद्ध राष्ट्रभाषा हिन्दी है । ]

## द्वितीय अध्याय

## हिन्दी का स्वरूप

२२ · उत्तर-भारतकी हिन्दी और राष्ट्रभाषा हिन्दी एकही है । ७७
—श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी

[ हिन्दीकी परिभाषा । धारा ३५१ का अर्थ । बाजारू हिन्दी नहीं चाहिये । शासक भाषा नही बना सकते । कैंयूटकी तरह अव्यवहार्य । हिन्दीका विकास और सस्कृतीकरण । पारिभाषिक शब्द । सस्कृतका प्रभाव रहेगा । ]

२३ राष्ट्रीय हिन्दी और प्रान्तीय हिन्दीमें भेद नहीं है बुद्धिभेद पैदा न करो । ८०
—श्री मोहनलाल भट्ट

[ जबरदस्त भेद दिखाया जाता है । हिन्दीकी भिन्न भिन्न शैलियाँ । क्रमिक विकाससेही हिन्दीका भावी रूप निखरेगा । सम्मेलनका विधान स्वीकार्य है । लिपिका प्रश्न फिरसे न उठाइये । महत्त्वाकाक्षाके साथ सयम । ]

२४ : हिन्दीके तथा-कथित दो रूपोंके बीचकी रेखा कौन खींचेगा ? ८५
—श्री. घनश्यामसिंह गुप्त तथा स्व. किशोरीलाल मश्रूवाला
[एकही शब्दका अर्थ सभी भारतीय भाषाओंमें एक होना चाहिये। संविधान का हिन्दी अनुवाद : ३५१ वी धारा के अनुसार। ३५१ वी धारामें उल्लिखित का हिन्दुस्तानी राष्ट्रभाषा नहीं है। हिन्दी शब्दके अर्थमें बारीकियाँ करनेकी आवश्यकता नहीं। पारिभाषिक शब्दावलीके संबंधमें सावधानी। दोनो रूपोंकी विभाजक रेखा कौन खींचेगा ? ]

२५ : हिन्दी-हिन्दुस्तानीका झगड़ा खतम हुआ : शैलीविशेषका आग्रह अनुचित ८८
—श्री. न. वि. गाडगील
[हिन्दी साहित्य-सम्मेलनका-कार्य। पाकिस्तानके बाद हिन्दुस्तानीका प्रचार विफल। संघराज्यकी भाषा और प्रत्येक राज्यकी भाषा। प्रान्तीय भाषाओंकी प्रगति हिन्दी नहीं रोक देगी। प्रादेशिक शासनमें हिन्दीकी आवश्यकता नही है। हिन्दीके भावी विकासके लिये संस्कृत हमारी रिज़र्व्ह-बँक है। शैली-विशेषका आग्रह अनुचित। ] = //

२६ : प्रान्तीय हिन्दी और राष्ट्रभाषा हिन्दी भिन्न नहीं है। ९३
—प्रा. वाराणसी राममूर्ति रेणू
[हिन्दीके दो रूप कभी नहीं हो सकते। मराठी-गुजरातीसे हिन्दीका सम्पर्क पहलेसे है। दक्षिणकी भाषाओंके अध्ययनकी उत्तर-भारतके विद्यापीठोंमें सुविधा। ]

२७ : प्रान्तीय हिन्दी और राष्ट्रीय हिन्दीमें मौलिक भेद नहीं होगा। ९५
—श्री. मो. सत्यनारायण
[ राष्ट्रभाषाका क्षेत्र। राष्ट्रभाषा सुसम्पन्न चाहिये। प्रादेशिक और राष्ट्रीय रूपमें मौलिक भेद नहीं होगा। राजनीतिमें भाषाका महत्त्व। ]

२८ : हिन्दीकी आत्माके प्रतिकूल परिवर्तन उसमें न किये जायें। ९८
भारतीय भाषा विकास परिषद, पुणें
[ पारिभाषिक शब्दोंका निर्माण। प्रादेशिक भाषाका क्षेत्र। हिन्दीकी आत्माके प्रतिकूल परिवर्तन न किये जायें। प्रादेशिक-भाषाका क्षेत्र। ]

२९ : हिन्दीके दो रूप नहीं हैं। संविधानके निर्देशका स्पष्टीकरण १००
—भारतीय हिन्दी परिषद, इलाहाबादका बुलेटिन क्र. १
[ हिन्दीकी 'आत्मा'का अर्थ। ]

३० : साहित्यिक और राष्ट्रभाषा हिन्दी एकही है। १०२
—भारतीय हिन्दी परिषद, इलाहाबादका बुलेटिन क्र. २.
[ हिन्दी भाषाके विकासमें भारतीय भाषाओंका योगदान। हिन्दी साहित्यके विकासमें भारतीय भाषाओंका योगदान। ]

३१ : हिन्दीका आजका रूपही राष्ट्रव्यापक है : १०३
—अखिल-भारतीय-हिन्दी सम्मेलन वर्धा-अधिवेशनका प्रस्ताव

३२ : राष्ट्रभाषा हिन्दी १०५
—डॉ. भगीरथ मिश्र

[ अखिल भारतीय दृष्टिकोण । दक्षिण भारतमें हिन्दीके प्रयोग । आधुनिक युग और हिन्दी । राष्ट्रभाषाका स्वरूप । विदेशोंमें हिन्दीका प्रचार-प्रसार । राष्ट्रभाषा और हिन्दी-प्रचार-सस्थाओंकी वर्तमान स्थिति तथा तत्सम्बन्धी सुझाव । स्वार्थ और अर्थलाभका प्रयोजन । हिन्दी परीक्षाओंकी व्यवस्थाका स्वरूप । अनुवाद-परम्परासे भारतीय दृष्टिकोणका विकास । शिक्षाके माध्यमका प्रश्न । हिन्दीका काव्य-वैभव । आधुनिक साहित्यकारका दायित्व । ]

## तृतीय अध्याय

## राष्ट्रभाषाकी परिभाषा

३३ : हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-द्वारा : राष्ट्रभाषा हिन्दीकी परिभाषा ११७
—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

[ हिन्दीकी परिभाषा । राष्ट्रभाषाका स्वरूप । 'हिन्दी'से आजकी उर्दू पृथक् भाषा । प्रादेशिक भाषाओंके शब्दोंका स्वागत । राष्ट्रभाषाकी लिपि केवल नागरीही । भारतीय सविधान परिषदको धन्यवाद । ]

३४ : राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धाके द्वारा भाषा-नीतिके सम्बन्धमें स्वीकृत प्रस्ताव १२१
—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

[ सविधान सभाको धन्यवाद । राष्ट्रीय हिन्दी और प्रान्तीय हिन्दी एक है । किसी भाषाके उपयुक्त शब्दोंका वहिष्कार नही है । ३५१ वी धाराके अनुसारही समिति प्रचार करती है । ]

३५ : संघभाषा हिन्दी १२५
—भारतीय सविधानमें राजभाषासम्बन्धी महत्वकी धाराएँ

३६ : राजभाषा-सम्बन्धी संसदीय समितिकी सिफारिशोंपर राष्ट्रपतिका निर्णय १२७

३७ : संविधानकी हिन्दी १२९
१. 'बम्बई समिति'की धारणा (पोतदार-समितिकी रिपोर्टका अश) २ सविधानकी 'हिन्दी' प्रादेशिक हिन्दीही है ।(डॉ. सुनीतिकुमार चतर्जीका स्पष्टीकरण)

[ बाजारू हिन्दी क्या है ? जब व्याकरण भिन्न नही तो भाषा भिन्न कैसे ? मेरी बेसिक हिन्दीकी कल्पना इस प्रकारकी है । विधानकी हिन्दी प्रादेशिक

हिन्दीही है। राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका कार्य राष्ट्रीय कार्य है। मन 'आधुनिक' बनाया जाय। हिन्दी भाषी और एक भारतीय-भाषा पढें। ३ भारत सरकारकी नीति (हिन्दीके विशिष्ट रूपका आग्रह नहीं) ]

३८ : राजभाषा-आयोग : 'सघराज्योंकी भाषा हिन्दीही' १३६

—स्व वा ग खेर

[ १ सविधानकी पुष्टि। २ भारतीय भाषाओंके लिये देवनागरी। ३ सर्वोच्च न्यायालयके लिये केवल हिन्दी। ४ माध्यमिक स्कूलोंमे हिन्दीकी शिक्षा। ५ उच्च शिक्षाका माध्यम हिन्दी। ६ नयी शब्दावली सरल हो। ७ अकोंके रूप। ८ राष्ट्रभाषा अकादमी। ९ अ-सहमति-सूचक विचार अ-यथार्थ एव अप्रामाणिक। ]

## चतुर्थ अध्याय

## राष्ट्रभाषा की समस्याएँ

३९ · हिन्दीका महत्त्व और उसकी आवश्यकताएँ १४१

—आचार्य नन्ददुलारे वाजपयी

[ (१) सभी विश्वविद्यालयोमे कुछ पाठ्य-क्रम समान तथा कुछ विशेषज्ञताकी भूमिपर चलाये जायें। (२) सारा शोध-कार्य अद्यतन साहित्यिक ज्ञान और विचार-पद्धतिके अनुरूप होना चाहिए। (३) भाषाका प्रश्न। (४) हिन्दी भाषामे मिश्रित होनेवाले शब्दा, मुहावरों तथा अन्य प्रयोगोके सग्रह-त्यागका विधान। (५) पारिभाषिक शब्दावली और माध्यम (६) शिक्षाके माध्यमके लिये समन्वयकी भूमि। (७) हिन्दीका केन्द्रीय मत्रालय तथा हिन्दीकी स्वतत्र एकेडेमी हो। ]

४० : हिन्दीके प्रचारक ध्यान दें। १४४

—डॉ वि क रा व राव

[ (१) हिन्दीको दो स्थान। (२) हिन्दी पढानेवाले अध्यापक एक या दो अन्य भाषाओका ज्ञान अर्जित करे। ]

४१ · राष्ट्रभाषा हिन्दीका मूल्याकन और उसकी समस्याएँ १४६

—डॉ रामलाल सिंह

[ राष्ट्रभाषाकी कसौटियाँ। राष्ट्रभाषाकी परख। हिन्दीमे प्रौढ़ कोटिकी पाचन शक्ति है। सबको राष्ट्रीय एकतामे आबद्ध करनेवाली हिन्दी है। राष्ट्रभाषा हिन्दीकी अभिव्यक्ति-क्षमता बढानेके उपाय। ]

४२ · राष्ट्रभाषाकी समस्या १५१

—डॉ कमलाकान्त पाठक

[ २ हिन्दी (अ) समृद्धि। (आ) शक्ति। (इ) सरलता। ३ लिपि। ४ राष्ट्रभाषा। समाधान। ]

४३ . राष्ट्रभाषाकी समस्यापर पूर्णवादी दृष्टिकोणसे कुछ विचार १६२

—डॉ रामचन्द्र प्रल्हाद पारनेरकर

[ राष्ट्रभाषाकी समस्या। राष्ट्रभाषाकी सक्षमता। केवल प्रचार निरर्थक है। प्राचीन कालमें संस्कृतने भावनात्मक एकताका कार्य सम्पन्न किया। प्रचारके बदले विचारकी आवश्यकता। क्या हिन्दी प्रचारकोंका यह उत्तर दायित्व नहीं है? राष्ट्रभाषाके लिये राष्ट्रीय भावना और त्याग आवश्यक। समन्वित प्रयासकी अनिवार्यता। हिन्दी भाषी द्रविड कुलकी भाषाएँ सीखें।]

४४ हमारी उच्च शिक्षा और उसका माध्यम १६७

—स्व आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल

[ प्रान्तीयता और भाषावाद। प्रान्तीय सरकारोंकी रीति-नीति। प्रान्तीय भाषाओंके अतिमोहका दुष्परिणाम। सांस्कृतिक ऐक्यका आधार। उच्च शिक्षाके माध्यमके रूपमें अनेक भाषाओंका प्रयोग बाधक होगा। ]

सम्बन्धपर आधारित है । राष्ट्रभाषाके प्रचारक और उसके पुराने तथा नये साधनोंपर एक विहगम दृष्टि डाल लेना भी उपादेय होगा । देशकी आजादीके प्रयत्नोंमें राष्ट्रभाषाका सहयोग । आजकी समस्या कुछ निराले ढँगकी है । ससारकी व्यावहारिक भाषाओंमे हिन्दीका महत्त्व न्यूनतम नही है । उसका महत्त्व जागतिक हो चला है । राष्ट्रभाषा हिन्दी विश्व-भाषा बन सकती है । ]

४७ : भारतीय हिन्दी परिषद-द्वारा वर्तनीकी एकरूपताके लिए प्रस्तावित नियमोंका प्रारूप १८९

—भारतीय हिन्दी परिषद, इलाहाबाद

[ उद्देश्य । नियमोंका आधार। नियमावली : १. विमुक्त शब्द, सयुक्त शब्द या हाईफनका प्रयोग । २ या, ये अथवा आ, एँ, ई अन्त्य ध्वनियोंके रखनेकी समस्या । ३. हिन्दीमें प्रयुक्त सस्कृत शब्दोका प्रयोग । ४ विदेशी ध्वनियोंकी समस्या । ५ अनुस्वार और चन्द्रबिन्दु । ]

## पंचम अध्याय

## हिन्दीका भावी रूप

४८ : हिन्दी क्षेत्रीय भाषाओंमें एकात्मता निर्माण करनेवाली भाषा है। १९७

स्व. प जवाहरलाल नेहरु

[ अग्रेजीको अपदस्थ करनेवाली हिन्दी नही वरन् राज्यभाषाएँ हैं । हिन्दी एक ठोसकडी है, जो सबको एकात्मतामे गूथेगी । भाषाकी समस्या एक कठिन समस्या है । ]

४९ : राष्ट्रभाषाका लक्ष्य १९९

[ हिन्दी · एकता-सूत्र । मातृभाषा रूपी पुष्पोको पिरोकर सुन्दर हार बनानाही हिन्दीका लक्ष्य है । —डॉ० जाकिर हुसैन

हिन्दी अनेक प्रदेशोंकी भाषा है। हिन्दीका विरोध क्यो ?

—डॉ० विश्वनाथ प्रसाद

मातृभाषा आत्मज्ञानके प्रसार का साधन है । ]

—आचार्य विनोबा भावे

हिन्दी-दिवसपर एक सन्देश—भारतीय जीवनका परम लक्ष्य एकत्व। हिन्दी प्रचार-विकाससे हमारा अभिप्राय भारत-भारतीकी एकता है ।

—श्री. प. मु. डागरे]

४२ : राष्ट्रभाषाकी समस्या १५१

—डॉ. कमलाकान्त पाठक

[ २ : हिन्दी : (अ) समृद्धि । (आ) शक्ति । (इ) सरलता । ३ : लिपि । ४ : राष्ट्रभाषा । समाधान । ]

४३ : राष्ट्रभाषाकी समस्यापर पूर्णवादी दृष्टिकोणसे कुछ विचार १६२

—डॉ. रामचन्द्र प्रल्हाद पारनेरकर

[ राष्ट्रभाषाकी समस्या । राष्ट्रभाषाकी सक्षमता । केवल प्रचार निरर्थक है । प्राचीन कालमें संस्कृतने भावनात्मक एकताका कार्य सम्पन्न किया । प्रचारके बदले विचारकी आवश्यकता । क्या हिन्दी प्रचारकोंका यह उत्तरदायित्व नहीं है ? राष्ट्रभाषाके लिये राष्ट्रीय-भावना और त्याग आवश्यक । समन्वित प्रयासकी अनिवार्यता । हिन्दी-भाषी द्रविड-कुलकी भाषाएँ सीखें । ]

४४ : हमारी उच्च शिक्षा और उसका माध्यम १६७

—स्व आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल

[ प्रान्तीयता और भाषावाद । प्रान्तीय सरकारोंकी रीति-नीति । प्रान्तीय भाषाओंके अतिमोहका दुष्परिणाम । सांस्कृतिक ऐक्यका आधार । उच्च शिक्षाके माध्यमके रूपमें अनेक भाषाओंका प्रयोग बाधक होगा । ]

४५ : आधुनिक भारतीय भाषाओंमें अंग्रेजीका स्थान और राष्ट्रभाषाकी समस्या १७०

—डॉ. भगवानदास तिवारी

[ संविधानकी मान्यता । क्या १९६५ के बाद हिन्दी प्रमुख और अंग्रेजी गौण राजभाषा होगी ? प्रकाशित भारतीय साहित्य : सन् १९६१–६२ । अंग्रेजीका अधिकारी वर्चस्व । सन् १९६१ के भारतीय साहित्यका विषयगत वर्गीकरण । राजभाषा और राष्ट्रभाषाकी तुलनात्मक स्थिति । अनुवाद और साहित्यिक समृद्धि । साक्षरता, प्रकाशन और आयातके ग्रंथोंका मूल्य । अंग्रेजीके वर्चस्वके कारण : (अ) भाषावार प्रान्त-रचना । (आ) अंग्रेजीका शासकीय और व्यावहारिक व्यापक प्रयोग । (इ) संविधान भी अंग्रेजीके पक्षमें । (ई) राष्ट्रभाषापर प्रादेशिकताका आरोप । (उ) शासक वर्गकी कूटनीति । (ऊ) हिन्दी भाषा-भाषियोंकी संकीर्णता और निष्क्रियता । हिन्दी राष्ट्रभाषा कैसे होगी ? उच्च शिक्षाका माध्यम हिन्दी हो । राष्ट्रभाषाकी शिक्षाकी देशव्यापी योजना । हिन्दी-शब्दावलीका स्वरूप । ]

४६ : राष्ट्रभाषा हिन्दी : उसका प्रचार एवम् साधन १८३

—डॉ. न. चिं. जोगलेकर

[ विचारोंका माध्यम भाषा है । राष्ट्रभाषा भावनात्मक एकताका सबसे प्रबल लक्षण है । राष्ट्रभाषाकी पुनीतता भावनात्मक एकतापर निर्भर है । भावनात्मक एकताका सम्बन्ध प्रान्तीय भाषाएँ और राष्ट्रभाषाके पारस्परिक

सम्बन्धपर आधारित है । राष्ट्रभाषाके प्रचारक और उनके पुराने तथा नये साधनोंपर एक विहंगम दृष्टि डाल लेना भी उपादेय होगा । देशकी आज़ादीके प्रयत्नोंमें राष्ट्रभाषाका सहयोग । आजकी समस्या कुछ निराले ढंगकी है । संसारकी व्यावहारिक भाषाओंमें हिन्दीका महत्त्व न्यूनतम नहीं है । उसका महत्त्व जागतिक हो चला है । राष्ट्रभाषा हिन्दी विश्व-भाषा बन सकती है । ]

४७ : भारतीय हिन्दी परिषद्-द्वारा वर्तनीकी एकरूपताके लिए प्रस्तावित नियमोंका प्रारूप १८९

—भारतीय हिन्दी परिषद्, इलाहाबाद

[ उद्देश्य । नियमोंका आधार । नियमावली : १ वियुक्त शब्द, संयुक्त शब्द या हाइफनका प्रयोग । २ या, ये अथवा आ, ए, ई अन्त्य ध्वनियोंके रखनेकी समस्या । ३. हिन्दीमें प्रयुक्त संस्कृत शब्दोंका प्रयोग । ४ विदेशी ध्वनियोंकी समस्या । ५ अनुस्वार और चन्द्रबिन्दु । ]

## पंचम अध्याय

## हिन्दीका भावी रूप

४८ : हिन्दी क्षेत्रीय भाषाओंमें एकात्मता निर्माण करनेवाली भाषा है। १९७

स्व. प. जवाहरलाल नेहरू

[ अंग्रेज़ीको अपदस्थ करनेवाली हिन्दी नहीं वरन् राज्यभाषाएँ हैं । हिन्दी एक डोगरडी है, जो सबको एकात्मतामें गूँथेगी । भाषाकी समस्या एक कठिन समस्या है । ]

४९ : राष्ट्रभाषाका लक्ष्य १९९

[ हिन्दी . एकता-सूत्र । मातृभाषा रूपी पुष्पोंको पिरोकर सुन्दर हार बनानाही हिन्दीका लक्ष्य है । —डॉ० ज़ाकिर हुसैन

हिन्दी अनेक प्रदेशोंकी भाषा है । हिन्दीका विरोध क्यों ?

—डॉ० विश्वनाथ प्रसाद

मातृभाषा आत्मज्ञानके प्रसार का साधन है । ]

—आचार्य विनोबा भावे

हिन्दी-दिवसपर एक सन्देश—भारतीय जीवनका परम स्वर एकत्व । हिन्दी प्रचार-प्रसारसे हमारा अभिप्राय भारत-भारतीकी एकता है ।

—श्री. प. मु. डांगरे]

५० भारतीय राजभाषा समस्या और समाधान २०३

—प्रा कृष्णाजी गगाधर दिवाकर

[ राजभाषा विधेयकका लक्ष्य । देशमे विभिन्न प्रतिक्रियाएँ । राजभाषा हिन्दीके विरोधका स्वरूप । राजभाषा हिन्दीका विरोध क्या है ? क्या अहिन्दी भाषी प्रदेशामे राजभाषा हिन्दीके लिये वास्तविक विरोध है ? शकाओका समाधान । ]

५१ अखिल देशीय हिन्दीका वाञ्छनीय स्वरूप २११

—डॉ भगीरथ मिश्र

[ हिन्दीकी विकासशीलतापर आघात न पहुँचे । व्यवहारमे सतर्कता और व्यापकता । वर्तनी सम्बन्धी समस्याका रूप । व्याकरण सम्बन्धी समस्याका रूप । शब्दावलीसे सम्बन्धित समस्याका रूप । पारिभाषिक शब्दावलीका आधार सस्कृत है । सामान्य साहित्य और बोलचालकी शब्दावली । सामान्य साहित्य और बोलचालकी शब्दावलीमे व्यावहारिकता । ]

५२ हिन्दीका सार्वभारतीय सभावित एवम् सकेतित रूप २१७

—डॉ न चि जोगलेकर

[ मत समस्याएँ । भिन्न भिन्न प्रयोगाकी आवश्यकता यही सिद्ध करती है कि भाषाके परिवर्तन अचानक नही होते । भाषाको पराङ्मुख नही होना चाहिए । प्रयोगाकी व्याप्ति और क्षत्रकी विशालतापर भावी रूप निर्भर है । हिन्दीके परिनिष्ठित रूपमे सस्कार । अखिल भारतीय रूपके दो पक्ष । वैज्ञानिक प्रगतिमे परिनिष्ठित रूप न बिगडे । सास्कृतिक और भावनात्मक एकताके साथ आत्मीयता रहे । ]

५३ हिन्दीका भावी रूप २२२

—डॉ राजनारायण मौर्य

[ वादविवाद न करे इसे समर्थ । अधिक प्रायोगिक अवसर प्रदान करनेसे प्रगति सभव । पारिभाषिक शब्दावलीका तत्परतासे प्रयोग । प्रत्येक प्रान्तकी हिन्दीमे भिन्नता होगी । हिन्दीके तीन स्तर । हिन्दीके भावी रूपके निर्माता । राष्ट्रभाषा हिन्दीके भावी रूपकी प्रवृत्तियाँ । उर्दू शब्दोंके प्रयोगोका साव धानीके साथ विचार हो । सस्कृत शब्दाको प्रमुखता देनेके कारण । सस्कृत शब्दावलीसे व्यावहारिक लाभ । ]

## षष्ठ अध्याय

## हिन्दी-प्रचारक-संस्थाएँ और राष्ट्रभाषा प्रचार आन्दोलनका इतिहास

—श्री शान्तिभाई जोवनपुत्रा


५४ हिन्दी प्रचारक संस्थाओंका परिचय २२९

प्रास्ताविक २२९

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, वाराणसी २३०

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग २३७

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास २४६

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा २५०

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धासे सम्बद्ध संस्थाएँ २६८

१ महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पुणे २६८
२ गुजरात प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, अहमदाबाद २७३
३ बम्बई प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, बम्बई २७५
४ विदर्भ राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति, नागपुर २७८
५ उत्कल प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, कटक २८०
६ आसाम राज्य राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति, शिलांग २८२
७ पश्चिम बंग-राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति, कलकत्ता २८३
८ मणिपुर राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, इम्फाल २८५
९ दिल्ली प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, दिल्ली २८६
१० सिन्ध-राजस्थान राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति, जयपुर २८७
११ मध्य प्रदेश राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति, भोपाल २८८
१२ कर्नाटक प्रांतीय राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, हुबली २९०
१३ मराठवाडा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, औरंगाबाद २९१
१४ बेलगाव जिला राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति, बेलगाव २९२
१५ गोवा राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, मडगाव २९२
१६ जम्मू-काश्मीर राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति श्रीनगर २९३
१७ पंजाब प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति, अबोहर २९४
१८ अन्दमान निकोबार राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति, पोर्टब्लेयर २९४
१९ हिन्दी प्रचार-सभा हैदराबाद २९५

अन्य हिन्दी प्रचारक-संस्थाएँ

१ बम्बई हिन्दी विद्यापीठ, बम्बई २९५
२ मानवता मण्डल तथा भारतीय विद्यापीठ, बम्बई २९७

| | | |
|---|---|---|
| ३ | महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा-सभा, पुणे | २९८ |
| ४ | गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद | ३०० |
| ५ | हिंदुस्तानी प्रचार-सभा, वर्धा | ३०१ |
| ६ | अखिल भारतीय हिंदी परिषद, नई दिल्ली | ३०२ |
| ७ | मैसूर हिंदी प्रचार परिषद, बंगलोर | ३०३ |
| ८ | बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना | ३०४ |
| ९ | हिंदी विद्यापीठ देवघर | ३०५ |
| १० | हिंदुस्तानी एकेडमी प्रयाग | ३०६ |
| ११ | महिला विद्यापीठ प्रयाग | ३०६ |
| १२ | भारतीय साहित्य महसार, काशी | ३०६ |
| १३ | हिंदी प्रचार सघ पुणे | ३०७ |
| १४ | राष्ट्रभाषा प्रचारक मण्डल सूरत | ३०८ |
| १५ | पूर्व-भारत राष्ट्रभाषा प्रचार सभा कलकत्ता | ३०९ |
| १६ | आन्ध्र-राष्ट्र हिन्दी प्रचार मघ विजयवाडा | ३०७ |
| १७ | तामिलनाड हिंदी प्रचार सभा तिरुचिरापल्ला | ३०९ |
| १८ | कर्नाटक प्रान्तीय हिंदी प्रचार सभा, धारवाड | ३१० |
| १९ | करल हिंदी प्रचार-सभा, तिपुणीतुरा, कोचीन | ३१० |
| २० | असम प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति गौहाटी | ३१० |
| २१ | साहित्य-अकादमी, नई दिल्ली | ३११ |
| २२ | भारतीय-हिंदी-परिषद, प्रयाग | ३११ |

५५ राष्ट्रभाषा प्रचार आंदोलनके कतिपय मोडोका विवेचन ३१८

—डा न चि जागळकर और डॉ भगवानदास तिवारी

[ राष्ट्रभाषाका देशव्यापी स्वरूप राष्ट्रभाषा प्रचार हिन्दीकी राष्ट्रीय गरिमा, स्वातन्त्र्य प्राप्तिके प्रयत्नामें लगे हुए क्रांति कारियोका हिंदी प्रचार, विशिष्ट व्यक्ति, नेता और सस्थाओका प्रचार-काय राष्ट्रभाषा और राष्ट्र-लिपि, दक्षिण भारतमें हिंदीका प्रचार उत्तरके सांस्कृतिक शिष्ट मण्डलाकी दक्षिण यात्राएँ हिन्दीकी जागतिक प्रतिष्ठा हमारी राष्ट्रभाषाका आतर-राष्ट्रीय स्वरूप ।

५६ राष्ट्रभाषा प्रचार पर विचार ३२२

—श्री प मु डागरे

एक हृदय हो भारत जननी, नागरी हिंदी, सविधानका आदेश-आशीर्वाद, भारतीय भाषाओंको बढाइए एकताके सुदर्शन, हमारा राष्ट्रीय कार्यक्रम, विचार उच्चार प्रचार, राष्ट्रभाषा विचार-सग्रह राष्ट्रभाषा प्रचार—एक महान विचार ।

५७. राजभाषा विधेयक : हिन्दी या अँग्रेजी ? ३२४

— द ब्रृ दड्डीकर

असीमित कालतक अँग्रेजी, अवधिक योग्य उपयोग नहीं किया गया, राजाजीके विरोध · सरकारी नीति अँग्रेजीके पक्षमें हिन्दी विद्वान हिन्दीके पक्षमें जल्दसे-जल्द हिन्दी : अन्यथा विदेशोंमें हमारी बदनामी देशकी सुविधाके लिए सविधान-द्वारा हिन्दीको मान्यता राजाजीका विरोध एक राजनैतिक चाल है— देखिए, अँग्रेजीका स्थान क्या हो ? यह प्रयोग है या खिलवाड ? दक्षिणमें हिन्दीका विरोध नहीं है। ॥

परिशिष्ट क विभिन्न परीक्षाओंका भारत सरकारके–शिक्षा-मन्त्रालयद्वारा दी गयी मान्यता । भारत-सरकारके शिक्षा-मन्त्रालय (केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय) द्वारा जारी की गयी प्रेस विज्ञप्ति २२ अप्रैल, १९६० ]

हिन्दी-पत्रिकाओंकी सूची ३३६–३५४

# शुद्धिपत्र

पाठक गण कृपया निम्न-लिखित अशुद्धियाँ शुद्ध कर पढने वा कष्ट करे।

| पृष्ठ | पंक्ति | शुद्ध शब्द | पृष्ठ | पंक्ति | शुद्ध शब्द |
|---|---|---|---|---|---|
| २९ | १२ | उपरिनिर्दिष्ट | २०९ | १५ | रखनेंसे |
| ३५ | ५ | बगलामें | ,, | १९ | दी |
| ३७ | ५ | लक्ष्मीनारायण | ,, | २० | होती |
| ४२ | १५ | चल | ,, | ३० | विकास |
| ४५ | २५ | दोनों | २२३ | ४ | तबतक |
| ५२ | २९ | विभिन्न | २२५ | ३४ | एकदम |
| ६३ | ३० | तौरपर | २२६ | ३२ | जुड |
| ६५ | १ | नमूने | २२९ | ४ | जानकार |
| ७१ | १ | विदेशी | ,, | २३ | एव |
| ८५ | ४ | सलाहकारोंमें | ,, | २५ | एकताका |
| ९२ | १४ | तथा | २३० | २२ | थे |
| १०२ | २५ | योगदान | २७८ | १६ | शर्मा |
| ,, | २६ | भाषा | ,, | २७ | समिति |
| १११ | ४ | ओर | २७९ | १० | आशीर्वाद |
| ,, | १७ | अपूर्ण | २८३ | १० | तत्त्वावधानमें |
| १२१ | ६ | १९४९ | २८६ | १० | राष्ट्रभाषा |
| १२७ | ३ | उसकी | २८७ | १ | राष्ट्रभाषा |
| १२८ | ३२ | लिये | २९५ | २४ | होता |
| १३० | ३१ | नहीं | ३०७ | २० | हुए |
| १३६ | ३ | एम | ,, | २३ | द्वारा |
| ,, | ११ | वा. | ,, | २७ | और |
| १३८ | ९ | असहमति | ,, | २८ | इस |
| १४२ | २४ | आवश्यक | ,, | ३१ | भारतीय |
| ,, | २९ | चिरप्रगतिक | ३०९ | १८ | इन |
| १५० | १७ | प्रांतोमें | ३१० | २६ | पुस्तके |
| १५५ | २५ | ऐसे | ३१२ | १८ | नेतृत्व |
| १६७ | १८ | ऐक्य | ३१४ | १२ | It (Hindi) |
| १८२ | २७ | एक | ,, | १४ | Grierson |
| १८४ | १७ | राष्ट्रके | ३२४ | १० | राजभाषा विधेयक |
| १९८ | २१ | जैसे | ३२५ | १६ | चित्तसे |
| १९९ | १० | भिन्न-भिन्न | ३२९ | २ | असर |
| ,, | १४ | फारसी | ,, | १८ | विरोध |
| २०३ | २० | १९४९ | ३३१ | १६ | और |
| २०४ | ३३ | हो | ३४७ | २५ | इंडियन |
| २०९ | १३ | तर्कसगत | ३५१ | १६ | प्रकाशन |

## राष्ट्रभाषाके महा-प्राण

राष्ट्रपिता
महात्मा गाधी

राजर्षि
पुरुषोत्तमदास टडन
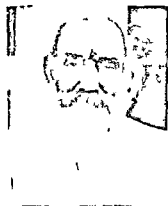
महर्षि
दयानद सरस्वती

महामना
प मदन मोहन मालवीय

# राष्ट्रकी भावनात्मक एकताके प्रतीक

लोकमान्य
बाल गंगाधर तिलक

नेताजी
सुभाषचन्द्र बोस

प्रधान मन्त्री
प जवाहरलाल नेहरू

भारतके प्रथम राष्ट्रपति
डॉ राजेन्द्र प्रसाद

प्रथम अध्याय

# हिन्दीही राष्ट्रभाषा क्यों ?

## हिन्दी और देवनागरीका समर्थन

[ अैसे समयपर जब कि संविधान सभामें राष्ट्रभाषाके प्रश्नपर चर्चा चली थी, हिन्दी साहित्य सम्मेलनने दिल्लीमें भारतीय राष्ट्रभाषा व्यवस्था परिषदका सफल आयोजन किया। परिषदका अधिवेशन अगस्त ६ और ७ को सम्पन्न हुआ। भारतकी भिन्नभिन्न भाषाओंकी सस्थाओंके प्रतिनिधि और गण्यमान्य विद्वान् अिस परिषदमें अुपस्थित थे। अिस परिषदने अेक-मतसे हिंदी-देवनागरीका समर्थन किया। महाराष्ट्र साहित्य परिषद, पुणेके प्रतिनिधि अिस परिषदमें अुपस्थित थे। अुन्होंने परिषदका जो प्रस्ताव वहाँ पढा वह साहित्यपरिषदकी साहित्य-पत्रिकाकी जुलाअी-सितम्बर १९४९*की संख्यामें मराठीमें प्रकाशित हुआ है। अुसका हिंदी अनुवाद यहाँ दिया है। ]

### भारत अेक राष्ट्र है।

जबसे भारतवर्ष स्वाधीन हुआ, तबसे भारतीयोंमें कश्मीरसे लेकर कन्याकुमारीतक जो अेक चैतन्य प्रतीत होता है, अुसका सबसे प्रबलतम आविष्कार अेकराष्ट्रीयत्वकी भावनामें दिखाओ देता है। भले ही कुछ लोग यह कहें कि भारत अेक राष्ट्र-समूह है; किंतु भारतमें भिन्न भिन्न भाषाओ और लिपियोंके रहते हुअे भी राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टिकोणसे विचार करनेपर भारतका यह अेक-राष्ट्रीयत्व सुनिश्चित हो जाता है। देशके किसी भी कोनेमें आपत्ति आनेपर साराका सारा देश सनक अुठता है। अिसका कारण यह अेकराष्ट्रीयत्वकी भावना है।

### अेक राष्ट्रभाषा चाहिये।

अिस प्रकारसे यह निर्विवाद है कि भारतवर्ष अेक राष्ट्र है। अिसलिये अिस देशकी बोधभाषा अेक रहना भी कअी दृष्टियोंसे हितकारी और आवश्यक है। अेक बोधभाषा स्वीकृत करनेसे हमारा आंतरप्रांतीय व्यवहार अधिक सुकर और सामरस्यका होगा, तथा अिसके कारण जनताके मनकी अेकराष्ट्रीयत्वकी भावना अधिक परिपुष्ट होगी तथा अिस देशको दुनियाके अन्य राष्ट्रोंमें गौरवका स्थान प्राप्त होगा।

* महाराष्ट्र साहित्य-पत्रिका, जुलाई-सितम्बर १९४९, वर्ष २२ वाँ, संख्या २ री, पृष्ठ ४६–४७–४८।

## अंग्रेजी राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती ।

कोअी पूछ सकता हैं कि फिर "राष्ट्रभाषाके नाते अंग्रेजीका स्वीकार क्यो न कर लिया जाय ?" अिसका सीधा अुत्तर यह हैं कि हम नहीं चाहते कि हमारे दासत्वकी संतापजनक स्मृति दिलानेवाली अंग्रेजी भाषा हमारी राष्ट्रभाषा हो। हम भारतीयोंके लिये अंग्रेजी अेक परायी भाषा हैं । अध्ययन करनेके आनन्दसे किसी भी भाषाको सीखनेमे आपत्ति नहीं हैं, किन्तु राष्ट्रभाषाका गौरवमय स्थान प्राप्त करनेमे अंग्रेजी भाषा अपात्र हैं । भारतीयोका अंग्रेजी राष्ट्रभाषा मानना अुतनाही असगत होगा जितना कि अंग्रेजी लोगोका हिन्दीको राष्ट्रभाषा मानना । विदेशी भाषाओसे द्वेष करनेका हमारे लिये कोअी कारण नहीं हैं, और अुस तरहकी हमारी शिक्षा-दीक्षा भी नहीं हैं; किन्तु हमारी भाषाओका अधिक अभिमान हमे अवश्य हैं । अंग्रेजी भाषाके कारणही प्रान्तप्रान्तके भाषिक सम्बन्ध दूर हो गये हैं । अुसी तरह प्रान्तीय भाषाओमे अंग्रेजीका व्याकरण और भाषाविषयक सम्बन्ध बहुत दूरका और अुपेक्षणीय है । यही कारण हैं कि सर्वसाधारण मनुष्यके लिये अंग्रेजी भाषा पढनेमे, समझनेमे तथा व्यवहारमे दुर्बोध और अत्यत कष्टकारक हैं । अिन्हीं कारणोसे अंग्रेजी भाषाको राष्ट्रभाषाका पद देना अयुक्त हैं । अितनाही नहीं तो वह हास्यास्पद भी होगा ।

## देशी भाषा चाहिये ।

किसी भी तरह राष्ट्रभाषाके पदकी अधिकारिणी अंग्रेजी नहीं हो सकती । अर्थात् यह स्पष्ट है कि हिंदुस्थानमे जो देशी भाषाअें आज बद्धमूल हैं और हररोजके व्यवहारमे हैं, अुनमेसेही कोअी भाषा राष्ट्रभाषाके पदपर प्रतिष्ठित होना समुचित हैं । यह आकांक्षा स्वाभाविक है कि प्रत्येक प्रान्त अपनी भाषाकोही पद देना चाहेगा ; किंतु अिसीलिये तो हमे चाहिये कि हम अिस प्रश्नका विचार, अतीव निरभिमान अेवम निर्लेप वृत्तिसे तथा देशव्यापक दृष्टिकोणसे और समाहित मनसे करें । अिस दृष्टिकोणको लेकर राष्ट्रभाषाके विषयपर जब हम सोचते हैं तब साधारण तौरपर हम अिस निष्कर्षपर पहुँचते हैं कि देशकी भाषाओमेसे सबकेलिये सुगम, बहुसंख्य लोगोमे पहलेसेही प्रचलित, भाषिक दृष्टिसे अन्य देशी भाषाओंसे शब्दभण्डार और व्याकरणके कारण अधिक सलग्न रही हुअी, तथा भारतीय संस्कृतिकी विविध परंपराओंकी अुत्तम वाहक देशी भाषाही राष्ट्रभाषाके सिंहासनपर आरूढ हो सकती है । अुसी तरह यह आवश्यक हैं कि अुसी भाषामे अत्युच्च और सुदर साहित्य, शास्त्रीय ग्रंथ और वैज्ञानिक वाङमय निर्माण करनेकी पूर्ण क्षमता हो ।

## अैसी देशी भाषा हिन्दीही है ।

राष्ट्रभाषाकी अिस कसौटीपर पूर्णतया खरी अुतरनेवाली देशी भाषा हिन्दीही हैं । अन्य प्रान्तीय भाषाअें हिन्दीको निकटकी भाषा मानती है । अिसके कारण अनेक हैं ।

अिनमेंसे प्रधान कारण ये हैं। अन्य प्रान्तीय भाषाओंके समान वह संस्कृतावलंबी है। संस्कृतके शब्दभण्डारको दिल खोलकर लूटकर अुसको आत्मसात् करनेमें अन्य प्रान्तीय भाषाओंका और हिन्दीका अेकही स्वरूप है। हिन्दीका व्याकरण और अन्य प्रान्तीय भाषाओंका व्याकरण प्रायः अेकही समान अधिष्ठानपर आधारित है। अुच्चारण, वर्णमाला और पारिभाषिक शब्दावली अिन महत्त्वपूर्ण बातोंमें हिन्दी हिन्दीतर भाषाओंकी निकटवर्ती है।

## पारिभाषिक शब्दोंकी समानता।

यह हमारा सौभाग्य है कि आजकल शिक्षाका माध्यम देशी भाषायें हो रही हैं। अिसी कारणसे विविध शास्त्रोंकी पारिभाषिक शब्दावलीका निर्माण करना परमावश्यक हुआ है। अिसी तरहके यत्न अनेक प्रान्तोंमें अुत्साहसे प्रगत हो रहे हैं। यदि शास्त्रीय और वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावलीका सार्वभारतीय बनना आवश्यक है तो अुसका निर्माण संस्कृत भाषाकी टकसालमें ढालकरही हो सकता है। अिसमें शक नहीं कि सभी देशभाषाओंमें संस्कृतसे सम्बद्ध होनेके कारण अिन प्रान्तभाषाओंके और हिन्दीके संबंध अधिक दृढ और प्रेमके होंगे। क्योंकि हिन्दी भी पारिभाषिक शब्दोंके लिये संस्कृतपर ही निर्भर है। अिन तर्कोंसे यह स्पष्ट है कि, अैसी भाषाका समर्पक नाम हिन्दी ही है। यह प्राचीनतम होनेके कारण भी अधिक ग्राह्य है। "हिन्दुस्तानी" नाम ही नूतन है।

## राष्ट्रलिपि अेकही चाहिये।

जिस तरहसे समचे देशको अेक राष्ट्रभाषा रहना आवश्यक है अुसी तरह अेक राष्ट्रलिपि भी। यह अनुचित है कि राष्ट्रलिपिके नाते दो या तीन-तीन लिपियोंको स्वीकृत करके अुसमें हम गौण या प्रधान भाव रखें। अैसा करनेसे यह संभव है कि राष्ट्रलिपिका प्रश्न पेचीदाभी होगा। अिसलिये राष्ट्रलिपि अेकमेव रहना स्वाभाविक, हितकारी और आवश्यक है। राष्ट्रभाषाकी तरह राष्ट्रलिपिकी भी यह कसौटी रखना अुचित होगा कि वही देशी लिपि राष्ट्रलिपि हो सकती है जो देशके शिक्षितोंको पूर्ण ज्ञात है और बहुसंख्य साक्षर भी जिससे परिचित हैं। अैसी लिपि "देवनागरी" है और वही राष्ट्रलिपि होनेके लिये सर्वथैव योग्य है।

## नागरी लिपिकी महत्ता

यह सहजही समझमें आ सकता है कि 'देवनागरी' लिपि कओी अन्य कारणोंसे भी स्वीकार्य है। शास्त्र, अुच्चारण और ध्वनिसंकेतकी दृष्टिसे देवनागरी लिपि सबसे अधिक निर्दोष और संपूर्ण है। संस्कृत, प्राकृत जैसी अभिजात भाषाओंके अध्ययन-अध्यापनके लिये देवनागरी लिपिके सिवाय अन्य कोअी चाराही नहीं है।

जिससे देशभरके अखिल विद्वानोंको—चाहे, अुनकी प्रान्तीय भाषा कोईसी भी हो —अिस लिपिका पूर्ण ज्ञान पहलेसेही है। अन्य कअी देशी भाषाओंके लिये तो "देवनागरी" अधिक निकटवर्ती है। अैसी देशी भाषाअें जाननेवाले लोगोंकी सख्या परिमाणमें बहुत अधिक है। अिसलिये देवनागरी ही शास्त्रत, तारतम्यकी दृष्टिसे और आम जनताकी दृष्टिसे सुगम तथा हितकारी है, अत अुसका स्वीकार युक्तिसगत है।

## राष्ट्रभाषा और प्रादेशिक भाषाओंकी सीमा

केन्द्रीय शासनव्यवहार और भिन्न भिन्न प्रान्तोंका आपसका राजनतिक व्यवहार राष्ट्रभाषा हिन्दीके तथा देवनागरी लिपिके द्वारा चलना अिष्ट होनेके कारण वहां हिन्दीकोही स्थान देना चाहिये। अुन अुन प्रान्तोंमें अपने सब व्यवहार प्रान्तभाषा-द्वारा तथा प्रान्तलिपि-द्वाराही होना अनिवार्य है, किन्तु राष्ट्रभाषा तथा राष्ट्रलिपिके नाते हिन्दी और देवनागरीका स्वीकार हमें करना चाहिये।

यह निर्विवाद है कि शिक्षा-क्षेत्रमें प्राथमिकसे लेकर सर्वोच्च शिक्षातक बोधभाषाके नाते प्रान्तभाषाकाही स्थान है। प्रान्तभाषाअें प्रभावपूर्ण होनेके लिये अुन्हें अुत्तेजन देना चाहिये। प्रान्तीय भाषाअें साधारणतया अुन प्रान्तोंके निवासियोंकी मातृभाषाअें अर्थात् जन्मभाषाअें हैं। यह अनुचित है कि मातृभाषाओंकी अुपेक्षा की जाय या वे मुरझा जायें। जब हम यह नि.सदिग्धतासे घोषित करते हैं कि हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी है और राष्ट्रलिपि देवनागरी है, तब अिस घोषणाका कदापि यह अर्थ नहीं है कि प्रान्तीय भाषाअें और अुनके वाङमयकी अभिवृद्धिकी यत्किंचित् भी अुपेक्षा किसीके द्वारा की जावे। अिन विचारोंके बलपरही, महाराष्ट्र-साहित्य-परिषद राष्ट्रभाषाके नाते हिन्दीका और राष्ट्रलिपिके नाते देवनागरीका समर्थन करती है।

---

## २ : संस्कृतके कारणही मराठी और हिन्दीका नाता

[ ये विचार* पुणेमें 'अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन'के अुनतीसवे अधिवेशनके अवसरपर अुसका अुद्घाटन करते हुये स्वर्गीय श्री न चिं. केलकरजीने प्रदर्शित किये थे। सन १९४०में यह अधिवेशन पुणेमें हुआ था, जो अत्यत महत्त्वपूर्ण था। आधुनिक मराठी

*अ. भा. हिं सा. सम्मेलन, पूना अधिवेशनका विवरण, पृष्ठ २।

साहित्य तथा राष्ट्रनिर्माणमें स्व० न. चिं. केलकरजीका स्थान विशेष प्रतिष्ठापूर्ण अेवम् महत्त्वका रहा है। हिन्दीके प्रचारमें भी आपने काफी योग दिया। ]

## अग्रसर भाषा

संस्कृति तो रेशम या अूनपर बनाये हुअे फूलकी तरह है, या पके हुअे फलके समान। संस्कृतिका अर्थ है अुत्तमोत्तम मानवी विचारोंका तथा भावनाओंका निचोड। अैसी संस्कृतिकी अेक अनमोल निधि हिन्दी भाषामें भरी पड़ी है। तदुपरान्त हिन्दीभाषा सारे भारतवर्षमें बहुसंख्यकोंकी अग्रसर भाषा है और अिसीसे राष्ट्रभाषा कहलानेका सम्मानित पद सहजमें अुसे मिल जाता है।

## बहनोंका नाता

भारतवर्षकी प्रान्तीय भाषाओंका अेक-दूसरोंसे बहनोंका नाता है। अेकही माताकी कन्याअें होते हुअे भी ज्येष्ठ पुत्रीका विशेष स्थान होता है। और अिसीसे हिन्दी सबकी दीदी है, और अुसके योग्य प्रेमादरका वह स्थान है। पवित्र हिमालय जैसे पर्वत, गंगा-यमुना आदि नदियाँ, काशी-प्रयागादि तीर्थक्षेत्र और राम कृष्णादि पूर्णावतार जिस भाषाके हैं अुस हिन्दी भाषाको महाराष्ट्रीय क्यों न प्यार करेंगे?

महाराष्ट्रकी जानपद और प्राथिक बोधभाषा किसी भी हालतमें मराठी ही हो सकती है और रहेगी यह सत्य है; फिर भी मैं दावेसे कहता हूँ कि बीच-बीचमें तुलसीदासजीकी रामायणका दोहा तथा कबीरजीके दोहोंका तत्त्वज्ञान हिन्दीमें ही कहने-सुननेका आनंद लेना महाराष्ट्रको बहुत पसन्द है। हमारे कुछ कीर्तनकार हिन्दीमें कीर्तन कर सकते हैं। मामूली दो-चार हिन्दी वाक्योंको न बोलने या न समझनेवाला महाराष्ट्रीय विरला है। कोअी यह भी सवाल अुठा सकता है कि महाराष्ट्रके अिस हिन्दीके परिचयके बदलेमें हिन्दी प्रान्तके लोग मराठी क्यों न सीखें? अिसका अुत्तर यह है कि अिस तरह व्यावहारिक आदान-प्रदान हिसाबी ढंगसे न कोअी चाहता है, न अैसा करना योग्य है। तो भी मुझे मालूम है कि महाराष्ट्रके वाङ्मयका आस्वाद लेनेका हिन्दी साहित्यिकोंमें चाव है।

## संस्कृतके कारणही

मराठी और हिन्दीके बीच जो नाता पहलेसे है वह तो संस्कृत भाषाके कारण ही है। दोनोंका अुत्पत्तिस्थान संस्कृत है, फिर चाहे जितनी स्थानिक भाषाओं और बोलियोंकी धाराअें अुसके परिणत प्रवाहमें आ मिली हों। मेरा तो निश्चित मत है कि हिन्दी शब्दकोष और मराठी शब्दकोष अिन दोनोंमें पूरे का पूरा संस्कृत शब्दकोष समाविष्ट किया जाय। अुसके क्लिष्ट तथा प्राचीन शब्द व्यवहारमें नहीं चलेंगे; फिर

भी अुनको अपना ही समझना चाहिये। आज यादवकालीन मराठी काव्यमें सैकड़ा शब्द वैदिक संस्कृत शब्दोंके समान दुर्बोध हो चुके हैं, फिर भी वे ही आजकी मराठी भाषाके पुरखाओंके समान हैं। मराठी और हिन्दीका बहुतेरा काव्य साहित्य पिछले शतकतक महाभारत, रामायण तथा पुराणोंपर आधारित रहा है। अिसीसे दोनों भाषाओंका अेक-दूसरेसे लिये लगन है।

पारिभाषिक शब्द समान रहेंगे।

भावना मान लेना बड़ी भूल है। अपनोंके लिये प्रेम और लगन हो तो अिसका अर्थ यह नहीं कि परायोंके लिये द्वेष होता है। आज मराठीमें रूढ और स्थिर सैंकड़ो फारसी, अरबी तथा युरोपीय भाषाओंके शब्द वैसेही रहे और अभिजात मराठीका सम्मान उनको चाहे मिले।

## भाषाशुद्धिमें तारतम्य

मेरा तो मत यह है कि भाषाके शुद्धीकरणमें तारतम्य रखना चाहिये। फिर भी क्या यह सच नहीं है कि हर अेक भाषा अपने मूलाधारको जबतक बने पकड़ रखना चाहती है? पड़ोसिन या परायी स्त्री कोओी रूपसुंदरी क्यों न हो और गहनोंसे लदी हुओी भी हो और अिधर अपनी माता कुरूपसे कुरुप हो तो भी बच्चा अपनी माताकी ओरही दौड़ेगा न? अिसी तरह अन्य भाषाके शब्दोंको अपनी भाषामें समाविष्ट कर लेना हो तो किसी भाविक संस्कारसेही वे स्वीकृत हो सकते हैं। अेकाध रसीला हिन्दी नौजवान किसी आंग्ल युवतीके प्रेमजालमें फँस जाय और अुसे अुसके साथ प्रेमके कारण या किसी अड़चनके कारण विवाहबद्ध होना पड़े तो वह अुसे साड़ी पहनाता है, तिलक लगाता है, ब्राह्मविधिसे घरमें ले आता है। तो अुसके सनातनी हिन्दी माँ-बाप भी पुत्रस्नेहके कारण अिस गौरवर्ण स्त्रीको अपनी पतोहू मानकर घरमें ले ही लेते हैं। यही बात भाषाशुद्धिके बारेमें भी है। अभिजात हिन्दी तो बहुधा सस्कृतमयही रहेगी; तो भी अुर्दू, फारसी, अरबी, अंग्रेजी आदि-आदि अन्य भाषाओंके शब्द सर्वथा त्याज्य नहीं हो सकते। अुनका कठोर बहिष्कार करनेका कोओी कारण नहीं। कोओी परदेशी मित्र किसी सज्जनके घर आये तो यह दरवाजा बन्द नहीं करता; पर हाँ, आक्रमणकारी या दुष्ट हेतु प्रेरित शत्रुको रोकनेके लिये दरवाजा बन्द करना ही पडेगा।

---

## ३ : हिन्दीही क्यों ?

[ स्व. प. ग. र. वैशंपायनजीने अबोहरमें सन १९४१में राष्ट्रभाषा परिषदके अध्यक्षकी हैसियतसे और पुणेके हि. सा. सम्मेलनके २९वें अधिवेशनके स्वागताध्यक्षके नाते १९४०* में ये विचार प्रकट किये थे। पं. वैशंपायनजी राष्ट्रभाषाके कर्मठ पुजारी थे। हिन्दीके अतिरिक्त आप मराठी, गुजराती आदि भारतीय भाषाओंकेभी पंडित थे। महाराष्ट्रमें हिन्दी प्रचारकी नीव डालनेवालोंमें और महाराष्ट्रकी आद्य प्रचारक-

*अ. भा हि. सा सम्मेलन, पूना अधिवेशन, विवरण, पृष्ठ ७।

भी अुनको अपना ही समझना चाहिये। आज यादवकालीन मराठी काव्यमें सेंकड़ों शब्द वैदिक संस्कृत शब्दोंके समान दुर्बोध हो चुके हैं; फिर भी वे ही आजकी मराठी भाषाके पुरखाओंके समान हैं। मराठी और हिन्दीका बहुतेरा काव्य-साहित्य पिछले शतकतक महाभारत, रामायण तथा पुराणोंपर आधारित रहा है। अिसीसे दोनों भाषाओंको अेक-दूसरेके लिये लगन है।

## पारिभाषिक शब्द समान रहेंगे।

यह सनातन स्वतसंबंधकी बात हुओ; पर अिस नये ज्ञानयुगमेंही हिन्दी और मराठीको जोड़नेवाले अेक सबधकी संभावना है। अिस नये युगमें भारतवर्षमें कओी प्रकारकी नयी ज्ञान की बातें बाहरी संसारसे और विशेषतया अंग्रेजोंके द्वारा आती रही हैं। अिस नये ज्ञानकी विचारसंपत्तिको वहन करनेवाले समुचित शब्द-भण्डारकी आवश्यकता हैही और मुझे कहते हुओे हर्ष होता है कि पारिभाषिक शब्दकोष संस्कृतके आधारपरही बननेका झुकाव बढ रहा है। मैं आशा करता हूँ कि हिन्दी और मराठी भाषाभाषी अुसे अपनाकर अुपयोगमें लायेंगे।

## नागरी लिपिही राष्ट्रलिपि

आजकल हिन्दी प्रचारके कारण कुछ विवाद खड़े हो गये हैं। जैसे :—हिन्दी शब्दकी परिभाषा क्या है? हिन्दी और हिन्दुस्तानी अिन दोनो शब्दोंके अर्थमें क्या भेद है? किसी भी भाषाकी लिपि अेक हो या अनेक? अिन बखेड़ोंका सब ज्ञान मुझे नहीं है। मैं अितना जानता हूँ कि नागरी लिपि काशीसे लेकर रामेश्वरतक हिन्दूमात्रको प्यारी है और सभी चाहते हैं कि अुनकी अपनी भाषा संस्कृत शब्दोंसे समृद्ध हो।

## भाषाशुद्धिकी मर्यादा

पर अिसका अर्थ यह तो नहीं है कि हम किसी भी अन्य भाषाके शब्दोंका सौ फीसदी बहिष्कार करें। स्व. लोकमान्य तिलकजीने अेक निबंधमें यह सिद्ध किया है कि वेदोंमें भी 'सर्फरी', 'तुर्फरी' जैसे परभाषाओंके शब्द मिल जाते हैं। वैदिक कालमें मिश्रतक हम वैदिकोका संबंध पहुँचता था। अिसलिअे शब्दोंका आदान-प्रदान तो होगाही। शब्दार्थ ज्ञानमय है और ज्ञान स्वयंप्रमाण अेवम् विशुद्ध है। आपको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि शिवाजीमहाराजके, यानी हिन्दवी स्वराज्यके समयके कुछ कागजपत्र आजके मराठोंके हाथमें दे दिये जायें तो अुनका अर्थ अुनकी समझमें नहीं आयेगा। वे कागज कितनी फारसीप्रधान भाषामें हैं। भाषाशुद्धिके लिअे भी शिवाजीमहाराजने राज्यव्यवहारकोष नामक ग्रंथ बनवाया। अुस समय यह प्रयत्न यशस्वी नहीं हो सका। क्योंकि शिवाजीमहाराजके स्वर्गवासके बादही महाराष्ट्रपर फिरसे महमदीय आक्रमण की बाढ़ आयी। किन्तु अिस शुद्धीकरणकी जड़की द्वेषकी

भावना मान लेना बड़ी भूल है। अपनोंके लिये प्रेम और लगन हो तो असका अर्थ यह नहीं कि परायोंके लिये द्वेष होता है। आज मराठीमें रूढ और स्थिर सैंकड़ों फारसी, अरबी तथा युरोपीय भाषाओंके शब्द वैसेही रहे और अभिजात मराठीका सम्मान उनको चाहे मिले।

## भाषाशुद्धिमें तारतम्य

मेरा तो मत यह है कि भाषाके शुद्धीकरणमें तारतम्य रखना चाहिये। फिर भी क्या यह सच नहीं है कि हर अेक भाषा अपने मूलाधारको जबतक बने पकड़ रखना चाहती है? पड़ोसिन या परायी स्त्री कोओी रूपसुंदरी क्यों न हो और गहनोंसे लदी हुअी भी हो और अिधर अपनी माता कुरुपसे कुरूप हो तो भी बच्चा अपनी माताकी ओरही दौड़ेगा न? अिसी तरह अन्य भाषाके शब्दोंको अपनी भाषामें समाविष्ट कर लेना हो तो किसी भाविक संस्कारसेही वे स्वीकृत हो सकते हैं। अेकाध रसीला हिन्दी नौजवान किसी आंग्ल युवतीके प्रेमजालमें फँस जाय और अुसे अुसके साथ प्रेमके कारण या किसी अड़चनके कारण विवाहबद्ध होना पड़े तो वह अुसे साड़ी पहनाता है, तिलक लगाता है, ब्राह्मविधिसे घरमें ले आता है। तो अुसके सनातनी हिन्दी माँ-बाप भी पुत्रस्नेहके कारण अिस गौरवर्ण स्त्रीको अपनी पतोहू मानकर घरमें ले ही लेते हैं। यही बात भाषाशुद्धिके बारेमें भी है। अभिजात हिन्दी तो बहुधा संस्कृतमयही रहेगी; तो भी अुर्दू, फारसी, अरबी, अंग्रेजी आदि-आदि अन्य भाषाओंके शब्द सर्वथा त्याज्य नहीं हो सकते। अुनका कठोर बहिष्कार करनेका कोओी कारण नहीं। कोओी परदेशी मित्र किसी सज्जनके घर आये तो वह दरवाजा बन्द नहीं करता; पर हाँ, आक्रमणकारी या दुष्ट हेतु प्रेरित शत्रुको रोकनेके लिये दरवाजा बन्द करना ही पड़ेगा।

---

## २ : हिन्दीही क्यों ?

[ स्व. प. ग. र. वैशंपायनजीने अबोहरमें सन १९४१में राष्ट्रभाषा परिषदके अध्यक्षकी हैसियतसे और पुणेके हिं. सा. सम्मेलनके २९वें अधिवेशनके स्वागताध्यक्षके नाते १९४०* में ये विचार प्रकट किये थे। प. वैशंपायनजी राष्ट्रभाषाके कर्मठ पुजारी थे। हिन्दीके अतिरिक्त आप मराठी, गुजराती आदि भारतीय भाषाओंकेभी पंडित थे। महाराष्ट्रमें हिन्दी प्रचारकी नींव डालनेवालोंमें और महाराष्ट्रकी आद्य प्रचारक-

*अ. भा हिं. सा सम्मेलन, पूना अधिवेशन, विवरण, पृष्ठ ७।

संस्था 'हिन्दी प्रचार संघ'की स्थापना करनेवालोंमें आप अग्रणी रहे।
हिन्दी-मराठी तथा मराठी-हिन्दी शब्दकोषोंका आपने संपादन किया है।

## भारतकी अेकता

प्रत्येक भारतवासी अपनी प्राचीन परंपरा और विचारसरणिपर दृष्टि रखता हुआ 'अखंड भारत' की अुपासनामेंही राष्ट्रीयता और राष्ट्रप्रेमका परमोत्कर्ष मानता आया है। कैलाशके अुत्तुंग शिखरसे अुतरकर जब वह कन्याकुमारीके श्यामल अंचलतक पहुँचता है तब विंध्याचलके आरपारके विस्तृत भूखंडके कण-कणमें अुसके पत्ते-पत्तेमें, अुसके समस्त अरण्य, निर्झर, पहाड़ और जलाशयोंमें वह अपने पावन स्वदेशका अनंत स्मृतिमय दर्शन पाकर पुलकित तन, उच्छ्वसित मन और आलोकित भावराशिको न सम्हाल सकनेके कारण प्रति पगपर अपनी कभी न समाप्त होनेवाली श्रद्धा, आस्था, निष्ठा और प्रेमतरंगको अुछालता, भक्ति श्रद्धाजलो बिखेरता, अणुअणुको अपने भालपर चढाता नतमस्तक होता'अेक विचित्र हार्द्य भावको प्राप्त होता है।

## मध्यदेशकी भाषाकी महत्ता

अपने स्वदेशकी जिस अखंडोपासनामें राष्ट्रभाषाके सर्वांगीण-व्यापी शीतल स्पर्शका सुखद अनुभव अुसे मंद समीरणके झूलेपर चढा देता है। वह देखता है, अेक समय गंगा-यमुनाकी पवित्र भूमिमें अुत्पन्न मध्यदेश और ब्रह्मदेशकी देववाणी 'संस्कृत' ने समस्त भारतके हृदयको अेकसूत्रमें गूंथ दिया था। शंकर, रामानुज, माधव, वल्लभ-जैसे धर्माचार्योंने अपनी मातृभाषाको वहीं छोड़ किस अनुरागसे संस्कृतके बलपर सारे भारतमें अपने विचारोंका प्रचार किया था? हृदयको मथनेवाली भावराशिको न रोक सकनेवाले कवि वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भारतकी विभूति भवभूति, भास्करके समान भास, स्वर्गीय संगीतके रचयिता जयदेव आदि शतशः साहित्याराधना करनेवाले न जाने भारतके किस कोनेमें पैदा हुअे थे! कौन प्रान्त कहे कि वे अुसीके गोदके लाल है? नहीं, वे तो संपूर्ण भारतके अपने हैं।

फिर वह देखता है कि युगावतार गौतमबुद्ध आकर संपूर्ण भारतको अेकसूत्रमें बांधनेवाली अुसी मध्यदेशकी भाषा 'पाली' का पाठ पढाते हैं और देशके कोने-कोनेमें पालीके असंख्य प्रेमी पैदा हो जाते हैं।

फिर वह देखता है कि विजयी यवन आते हैं और ये अपनी मातृभाषाको वहीं (रेगिस्तानमें) छोड़कर पाली, प्राकृतकी पुत्री, अेक भारतीय भाषाको अपनाते हैं। अुस पराभवके दिनोंमें भी अपने जातीय जागरणका 'अलख' जगानेवाले संत-कवियों-नेभी अयोध्या और वृंदावनकी बोलीमें अपने हृदयका तार छेड़ा और फलतः सारे भारतके हृदयकी अेकताका राग आलापते हुअे कबीर, नानक, सूर, तुलसी, मीरा

आदि शतशः महान् आत्मायें अवतरित हो गयीं। बंगाल, महाराष्ट्र, अुडीसा, आसाम और दक्षिणका स्वर-सहयोग तथा मुसलमानोंकी रागिनी भी अुस रसवर्षामें अछूती नहीं रहीं।

फिर वह सगर्व देखता है कि आधुनिक परतंत्रताके युगारभमें ही गुजराती भाषा-भाषी स्वामी दयानंदने अपनी मातृभाषाको अेक ओर रखकर अखड भारतकी अुपासनामें अुसी मध्यदेशीय हिन्दी भाषाको अपनाया। बुदेलखडी मैथिलीशरण गुप्तने अुसी भाषामें 'भारत-भारती' में अपनी लेखनीको अद्भुत ढंगसे जगाया।

फिर वह देखता है कि गुर्जर-गौरव महात्मा गांधी अुसी भाषाका सारे दक्षिणमें प्रचार करनेका कार्य आरभ कर देते हैं, स्व. बडौदा-नरेश सयाजीराव भी अुसीका पुरस्कार करते हैं और वही भाषा आज आसाम, अुत्कल, बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात, सिंध—सभी प्रान्तोंमें राष्ट्रभाषाका महिमामय पद पाती है और सारा देश अुसीके स्वरमें अपने विचार व्यक्त करनेको व्यग्र हो उठता है; तब अुसके अनुरागकी सीमा नहीं रह जाती है।

## हिन्दीमें अपनीही संस्कृतिका दर्शन हम पाते हैं।

हिन्दी केवल अपनी सरलता, मधुरता, ओजस्विता आदिसे ही भारतको मोहित नहीं करती है; प्रत्युत अुसका विशाल प्राचीन साहित्य भी अपने गौरव की ओर हमें सकेत करता है। जब हम अुसके कबीर, तुलसी, सूर, जायसी, प्रेमचन्द, प्रसाद आदिकी काव्यकृतियोंको अवलोकन करते हैं, तब हमें अपनी मातृभाषाका गौरव स्मृत हो जाता है। हम अुसके रसमें आकठ डूबकर भावमग्न हो जाते हैं। अुनमें हमें अपनेही प्रवाह, अपनी ही सस्कृति, अपनी अमूल्य निधियोंके अुज्ज्वल दर्शन होते हैं।

## राष्ट्रभाषाका पद किस भाषाको प्राप्त हो ?

देशकी सर्वांगीण अुन्नतिमें राष्ट्रभाषाका पद वही भाषा प्राप्त कर सकती है जिसमें (१) अुच्च शिक्षण, (२) विज्ञानकी परिभाषा, (३) व्यापारकी व्यापकता, (४) अेक सामान्य भारतीय साहित्यके माध्यम होनेकी क्षमता मौजूद हो। (५) जिसमें समस्त भारतीय भाषाओंकी शब्दावलीसे अधिकाशतः अेकताका बीज वर्तमान हो। (६) जो अपने प्रकृत स्वरूपमें परदेशीपनकी गधसे दूर हो, (७) और जो अेक अखड आतरिक तथा बाहरी व्यापक समसूनता अपनी परपरामें रखती आयी हो, (८) जो सुनने, समझने और बोलने-लिखनेमें सिर्फ सरल ही न हो, बल्कि हमारी रागात्मक प्रियता भी प्राप्त करती हो—हमसे अपनेपनका नाता भी जोडती हो, वही भारतकी अखडोपासनामें राष्ट्रभाषाका पद पा सकती है।

[अिस दृष्टिसे अग्रपूजाका मान हिन्दीको कैसे प्राप्त हो सकता है अिसका अेक दृष्टान्त अबोहरके राष्ट्रभाषा परिषदके (दिसंबर १९४१) अध्यक्षके नाते प. वैंशपायनजीने अपने भाषणमें दिया था। वह यहाँ अुद्धृत किया जाता है।]

## हिन्दीका स्थान प्रथम

महाभारतकी अेक सुप्रसिद्ध कथा है। धर्मराजने अेक राजसूय यज्ञ किया था और अुसमें भगवान् श्रीकृष्णचंद्रको सबसे प्रथम स्थान देकर अग्रपूजासे सम्मानित करनेका निश्चय किया था। अिसे देखकर पाडवोंके तथा श्रीकृष्णचंद्रके दुश्मन जलने लगे और अुनकी तरफसे श्रीकृष्णको अग्रपूजाके लिये अयोग्य ठहरानेके पक्षमें हर प्रकारके तर्क अुपस्थित करने लगे। अेकने कहा, "वृद्धके नाते अग्रपूजा की जाती हो तो श्रीकृष्णसे बढ़कर भगवान् व्यास यहाँ अुपस्थित हैं। स्वेच्छामरणी भीष्म, पुरुष श्रेष्ठ दुर्योधन, महाबली कर्ण यहाँपर होते हुअे किस गुणके कारण श्रीकृष्णकी यहाँ पूजा हो रही है? शिशुपालने अुपर्युक्त बातोंको बताते हुअे यह भी कहा कि "दारयोः यस्य चान्येन मिषतः प्राजमानिनः। (सभापर्व अ. ४१) श्रीकृष्ण नामर्द है!" किन्तु आखिर वृद्ध भीष्माचार्यने खुद निर्णय दिया कि "वेदवेदांगविज्ञानं बलं चाप्यधिकं तथा। नृणां लोके हि कोऽन्योऽस्ति विशिष्टः केशवादृते। सबसे बढ़कर सब प्रकारकी शक्ति यानी वेदवेदांगकी परंपरा तथा अत्यधिक बल जिसके कारण श्रीकृष्णही सबसे श्रेष्ठ हैं।" और अिसीमें श्रीकृष्णकी अग्रपूजा हुअी। ठीक अिसी प्रकार भारतीय स्वाधीनताके राजसूय यज्ञमें हिन्दीको राष्ट्रभाषाकी अग्रपूजाका सम्मान जब दिया गया तो कितनीही प्रान्तीय भाषाअें तथा प्रचलित भाषाअें अिसके विरोधमें खड़ी हुअीं! पहले तो कन्नड़ी अपने किन्नरीय संगीतको लेकर आगे आयी और कहने लगी कि हिन्दीसे भी पुरानी द्राविड़ी भाषाअें हैं। अुनको प्रथम स्थान मिलना चाहिये। वर्णके समान बंगला भाषाने कहा— "मुझ-जैसी पुष्ट और बलवती भाषाके सामने हिन्दी किस गिनतीमें?" संस्कृत भाषाके व्यास महर्षिने सबसे पुराने होनेका दावा किया और हिन्दीको नगण्य बतलाया। फिर मटकती-मचलती हुअी अंग्रेजी अुठकर कहने लगी—"मेरी-जैसी राजशक्तिके होते हुअे राष्ट्रभाषाके स्थानपर हिन्दी क्योंकर बैठ सक्ती है?" अिन सब बातोंका जिक्र करते हुअे अुर्दूने हिन्दी-श्रीकृष्णको कितनीही गालियाँ दीं और कहा—"हिन्दी कोअी जबान थोड़ेही है! अुसको तो जितना दबाया दब जाती है। यह तो नामर्द है। अिसके बाद भारती माताने भीष्माचार्यके समान स्पष्ट निर्णय दिया—"दो गुण हिन्दीमें अत्यधिक हैं

*अ. भा. हि. सा. सम्मेलन, अबोहर अधिवेशनका विवरण, पृष्ठ ५८।

और दूसरी कोओी भाषा अुसकी होड़में अुतर नहीं सकती। वेदोंसे लेकर आजतकको परंपरा और धाराको हिन्दीने प्रवाहित रखा है, और अुसका अत्यधिक बल है कि अुसे कम-से-कम १५ करोड लोग बोलते हे। जिसकी पृष्ठभूमि संस्कृत है, भारतीय संस्कृति जिसकी परंपरा है और अधिक से अधिक जनसंख्याको जो मातृभाषा है, विना अुसके राष्ट्रभाषाके सिंहासनपर दूसरी किसीको बिठाया नहीं जा सकता।" भारती-माताका यह निर्णय शिशुपालको छोड़कर सबोंने मान लिया। महाभारतकी कथाके अनुसार आगे चलकर श्रीकृष्णचंद्रको शिशुपालके लिये सुदर्शन चक्रका उपयोग करना पडा है। मैं आशा करता हूँ कि हिन्दीको अैसाही नहीं करना पड़ेगा।

## स्वरूपकी चर्चा क्यों ?

अिस प्रकार हमने अपनी इच्छासे हिन्दी को एक प्रान्तीय भाषा को राष्ट्रभाषाके पद पर बैठाया है। तो फिर अुसके स्वरूपको परिभाषाअें गढना अेक प्रकारका द्रोह है। किसी मनुष्यके सिंहासनपर बिठालेकर उसे राजतिलक करेंगे, सिरपर मुकुट पहनाअेंगे, अुसका शरीर वस्त्रालंकारोंसे सजायेंगे; फिर भी अुसकी शरीर-रचनाको हम नहीं बदलते। अिसी तरह हिन्दीको हम चाहे जितना परिपुष्ट करें; पर अुसकी सांस्कृतिक तथा संस्कृतमयी देहको हम कभी नहीं बदल सकते।

## अन्य भारतीय भाषाओंको राष्ट्रभाषाका पद क्यों नहीं मिलता ?

राष्ट्रभाषाके बारेमें जितने तर्क हमारे सामने आये हैं अुनको मैं थोड़ेमें दुहराता हूँ। अेक दल अिस तरह कहनेवाला है कि :—

(१) बंगला राष्ट्रभाषा बने। राष्ट्रभाषाका अर्थ यही है कि हर अेक राष्ट्रीय विचार, भाव, कल्पना, सूक्ष्म-भावोंकी छटा, अूंचे-से-अूंचे दार्शनिक भाव तथा मामूली-से-मामूली बातको प्रगट करनेवाली भाषा। बंगलाके समर्थक कहते हैं कि बंगलामें ये सभी गुण हैं। पर समय की मांग को ये भूल जाते हैं। मैंने अग्रपूजाके दृष्टान्तमें जो दो कारण बताये हैं अुनमें श्रेष्ठताके साथ साथ अत्यधिक संख्याबल भी हैं। हमारे सामने जल्द-से-जल्द राष्ट्रभाषाका प्रचार करनेका प्रश्न है, सौ वर्ष बाद नहीं।

(२) कानड़ी राष्ट्रभाषा बने तथा कानडी लिपि भी राष्ट्रलिपि बने, क्योंकि वह लिखनेमें बिना हाथ अुठाये झटपट लिखी जाती है और कानड़ी भाषा बहुत पुरानी और मृदु है।

जो बंगलाके लिये कहा गया वही अिसका जवाब हो सकता है। हमारा सवाल सारे भारतका है; केवल मृदुताका नहीं। अिसमें किसी भी भाषाको नीचा दिखानेका सवालही नहीं अुठता।

(३) देववाणी संस्कृतही राष्ट्रभाषा है, क्योंकि वह आरम्भसे ही आर्योंकी अेक सुंदर, सुगठित, अनोखी समृद्ध भाषा है। अैसी भाषाको छोड़ हिन्दीको राष्ट्रभाषा बनाना मूर्खोंका काम है।

यदि संस्कृतके अभिमानी अपने आपको ऋषि-मुनि समझते हों तो हम कह सकते हैं कि 'वृद्धास्ते न विचारणीयचरिताः। अितनी नम्रतासे हम अुनकी वंदना कर सकते हैं और अुनसे कहते हैं कि जरा परंपराको देखो, समयको देखो; तो अपनी पुत्रीका स्थान लेनेका व्यामोह नष्ट हो जायगा।

(४) अुर्दूही राष्ट्रभाषा है, यह दावा करनेवाले खास करके वे लोग हैं जो अपनेको मुगल-सम्राटके अुत्तराधिकारी मानते हैं या जिन्हे घरके बाहर अुर्दूके सिवाय कुछ दिखाअी नहीं देता। दुर्भाग्यसे कुछ समन्वयवादी नाजुक दिलके नेता अनजानमें अुर्दूको राष्ट्रभाषा मानते हैं और समझते हैं कि हिन्दी-अुर्दू अेकही है। किसी नामसे अपना काम चले।

अिन भोले देवताओंके कारण बडी मुसीबत पैदा हुअी है। अुर्दूको अपनी मातृभाषा माननेवाले लोग हिन्दीको कोअी भाषाही नहीं समझते। अुर्दू व्यवहार करनेवाले अपनेको अुर्दूदाँ मानते हैं और कहते हैं कि हम हिन्दी नहीं जानते। अिन सत्य बातोंको देखकर भी जब हमारे नेता हिन्दी-अुर्दू अेक होनेकी दुहाअी देते हैं तो अुर्दूवाले बड़े खुश होते हैं कि अच्छा हुआ, हम हिन्दीको हडप जायँ और अहिन्दी प्रांतवालोंके कान खडे हो जाते हैं और वे हिन्दीसे भी दूर भागते हैं। अुर्दू किसी भी प्रान्तकी भाषा नहीं है। अुर्दूमें भारतीयत्व केवल जन्मकेही कारण है। अुसकी प्रवृत्ति भारत-विरोधी है और सबसे बढकर अुर्दूमें धार्मिक पुट आनेके कारण वह और भी दूर जाती है। बंगला, कानडी आदि प्रांतीय भाषाअें संस्कृतकी पृष्ठभूमिपर अपना सांस्कृतिक विकास लेकर बँधी हुअी हैं; किन्तु अुर्दू अधिकसे अधिक अभारतीय बनती जाती है।

(५) अब और अेक भाषाका स्वाँग राष्ट्रभाषाके सिंहासनको हड़पना चाहता है, जिसका नाम है–हिन्दुस्तानी।

यह हिन्दुस्तानी राजनैतिक हेरफेरकी देन है, जिसने हमारा यह अुपकार किया है कि हम आपसमें अेक-दूसरेसे बैर करना सीखें। अिससे राष्ट्रभाषाके प्रति घृणा हममें पैदा हुअी। हिन्दीसे अहिन्दी प्रांतवालोंको अुदासीन बनानेका काम हिन्दुस्तानीने किया और हमारे राष्ट्रविरोधी दलको अेक अच्छा हथियार मिल गया। समन्वयवादी नाजुक दिलके देवता सबको खुश करनेके लिये राष्ट्रभाषाको हिन्दुस्तानी कहने लगे और अिन भोले देवताओंके अुपासकोंने तो हिन्दुस्तानीको अेक असांस्कृतिक, अधार्मिक, अभारतीय भूत बना डाला। हिन्दी साहित्य सम्मेलनकी स्पष्ट नीति अैसी हिन्दुस्तानीके विरुद्धमें है और हिन्दी-अुर्दूको अपने-अपने स्थानोंमें पनपने देना सुयोग्य समझा गया है।

### हिन्दीकी विकासकी मर्यादायें

हिन्दीको हम संस्कृतनिष्ठ हिन्दी कहते हैं। क्योंकि हिन्दी संस्कृत पृष्ठभूमिके कारण ही अन्य भारतीय भाषाओंके अितने आसपास आ गअी है। जो अैसा मानते हैं कि अिससे हिन्दीका विकास रुक जायगा अुनको यही अुत्तर दिया जा सकता है कि यदि किसी कमरेको विशाल बनाना है, तो क्या चारों दीवारोंके गिरा देनेसे यह कमरा विशाल हो जायगा ? नहीं ! बिलकुल नहीं ! हमारे राष्ट्रभाषा-मन्दिरकी चारों दीवारें सुरक्षित रखकर ही राष्ट्रभाषाका विकास होना चाहिये। हम किसी आवश्यक शब्द या विचारका बहिष्कार नहीं करते; किंतु अुनको हमारी चार दीवारोंकी मर्यादामें ही आकर रहना होगा। ये चार दीवारें हैं—(१) विश्व-बंधुत्व (२) मानवता, (३) राष्ट्रभक्ति और, (४) आत्मशक्ति। विश्वबंधुत्वके विचारसे दुनियाके हरेक शब्द या विचार आवश्यकतापर हम ग्रहण करेंगे; पर किसी राष्ट्र-विरोधी शब्द या विचारको हमारे अिस मन्दिरमें आनेका फाटक बंद रहेगा। मानवता और राष्ट्रभक्तिके पोषणके साथ-साथ हम आत्मशक्तिके कारण नये नये विचारों तथा शब्दोंको अुपजाते रहेंगे। ये हैं हमारे राष्ट्रभाषा-मन्दिरकी मर्यादायें। क्योंकि राष्ट्रभाषा परतंत्रतासे छुटकारा पानेके लिये है; अंग्रेजी जादूको तोड़नेके लिये है; आत्मगौरव तथा आत्मश्रद्धाका राष्ट्रभाषा एक टोटका है।

---

## ५ : हिन्दीका संस्कृतीकरण स्वाभाविक है।

[ श्री. कन्हैयालाल मुन्शी गुजरातीके साहित्यसम्राट् हैं। अुनके कअी अुपन्यासोंका हिन्दीमें भी अनुवाद हुआ है। बम्बअी-राज्यमें तथा केन्द्रीय सरकारमें आपने मन्त्रीपद भी भूषित किया है। हिन्दीके प्रचारमें आपने पर्याप्त सहयोग दिया है। गुजरात राष्ट्रभाषा प्रचार समितिके आप अध्यक्ष है। विधान-परिषद्-द्वारा हिन्दीको राज्यभाषाके नाते स्वीकृत करनेमें आपने बडी तत्परतासे सफल कार्य किया है। जयपूर हिन्दी साहित्य समेलनके अधिवेशनके राष्ट्रभाषा-परिषदके अध्यक्षपदसे ( आश्विन २००१ ) श्री. मुन्शीजीने जो भाषण दिया था, अुसमेंसे कुछ अंश यहाँ अुद्धृत किया है। ]

### स्वभावसिद्ध राष्ट्रभाषा

हिन्दी भारतका स्वभावसिद्ध व न्याययुक्त आन्तरप्रान्तीय माध्यम है। अुसने यह स्थान राजनैतिक प्रचार या धार्मिक अुत्साहके कारण प्राप्त नहीं किया है। अति-

हासिक, सामाजिक व सांस्कृतिक शक्तियोंने, जो कि दीर्घकालसे क्रियाशील थीं, बहुत-सी भाषाओंमेंसे अुसे यह अुन्नत स्थान प्राप्त कराया है।

## मध्यदेशकी भाषाकी महत्ता

भारतके जीवनमें मध्यदेशने जो महान् स्थान प्राप्त किया है, वह अिसका पहला कारण है। साम्राज्यकी राजधानी कन्नौजके राजकवि राजशेखरने अी. स. ९१५ में मध्यदेशको परिभाषित किया। बनारस अिसका पूर्वबिन्दु था। पंजाबके करनाल जिलेका पृथूदक अथवा पेहोवा अिसकी अुत्तरीय व आबू पर्वत पश्चिमीय सीमा थी। दक्षिणमें अिसका विस्तार नर्मदा तक था। अितिहासके प्रारम्भ होनेके कितने ही पूर्व वहांकी भाषाके विभिन्न रूप ठीक गोदावरीके तटतक बोले जाते थे। अशोकके शिलालेखोंसे ज्ञात होता है कि देहरादूनसे बम्बअीके निकटवर्ती सोपारातक जो बोल-चालकी भाषाअें थीं वे अुसी भाषाके विभिन्न स्वरूप थीं। अिनमेंसे मध्यदेशकी भाषा संस्कृत बन गयी, जिसका प्रयोग वहांके सुसंस्कृत लोग करते थे।

## सारांशरूपमें कहा जा सकता है कि

अत्यंतही प्राचीन कालसे कृष्णाके अुत्तरवर्ती समस्त भारतमें अुसी भाषाके विभिन्न रूप प्रयुक्त किये जाते थे, जिसका पूर्ण विकसित स्वरूप मध्यदेशकी बोल-चालकी भाषामें पाया जाता था।

अितिहासके प्रारंभसे मध्यदेश भारतीय राजनैतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक जीवनसे अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण रहा है।

मध्यदेशकी सर्वप्रथम बोलीने संस्कृतके रूपमें पूर्ण विकास प्राप्त किया और अिसीलिये मध्यदेशकी बोलियोंमें संस्कृतके साथ सर्वाधिक समानता थी।

आधुनिक हिन्दी मध्यदेशकी प्राचीनतम भाषाकी अुत्तरोत्तर वृद्धिङगत अत्रुटित प्रणालिकामें विकसित हुअी है व अिसके शब्द-कोषका प्रयोग अुत्तर भारतकी सब भाषाओं तथा द्रविड़ भाषाओं-द्वारा किया जाता है, जिन्होंने युग-प्रतियुगमें संस्कृत शब्दों-द्वारा अपनेको समृद्ध बनाया है।

अतः हिन्दीको राष्ट्रभाषा बनानेकी आवश्यकता नहीं है। वह तो पहलेहीसे राष्ट्रभाषा है।

अंग्रेजोंके आनेतक हिन्दीके दो रूप हुअे—अपभ्रंशसे निकला हुआ अुसका मौलिक रूप व फारसी-द्वारा प्रभावित अर्ध-राजकीय रूप। प्रथम रूप जन-साधारण-द्वारा प्रयुक्त किया जाने लगा, द्वितीय अर्ध-राजभाषा बन गया।

## संस्कृतका सान्निध्य

जब ब्रिटिश-साम्राज्यका सूत्रपात हुआ, तब अंग्रेजोंने अुत्तर-भारतके कुछ भागोंमें मुगल-शासनकी फारसी परिपाटियोंको सुरक्षित रखनेका प्रयत्न किया। मुस्लिम सरदारों व मुस्लिम-शासनके अन्तर्गत समृद्धिप्राप्त हिन्दू-परिवारोंने फारसी

द्वारा प्रभावित हिन्दीको अपना लिया, किन्तु फारसी भाषा-भाषी दरबारोंसे संसर्ग स्थापित करनेकी आवश्यकता अब नहीं रही। अंग्रेजी राजभाषा न्यायालयकी भाषा बन गयी व जनताकी भाषामें फारसी शब्दोंके मिश्रणकी स्वाभाविक क्रिया बन्द हो गयी। विश्व-विद्यालयोंमें अंग्रेजीके साथ-साथ संस्कृतका अध्ययन भी प्रारंभ किया गया। जिसके परिणाम-स्वरूप हिन्दी पुन: अपने शुद्ध रूप व संस्कृतके सान्निध्यको प्राप्त होने लगी। श्री व्यंकटेश नारायण तिवारीने कुछ महत्त्वपूर्ण तुलनात्मक अङ्क दिये हैं, जिनसे स्पष्ट होता है कि किस प्रकार फारसी भाषाभाषी न्यायालयोंके लुप्त होतेही फारसी-द्वारा प्रभावित हिन्दीकी लोकप्रियता भी कम हो गयी।

## संस्कृतका महत्त्व

अत: तथाकथित हिन्दी व अन्य भाषाओंका 'संस्कृतीकरण' बल प्रयोगकी क्रिया नहीं है। वह तो वैदेशिक शब्दोंके प्रदेशके बन्द होनेपर भाषाओंका पुन: अपनी स्वाभाविक शुद्धताको प्राप्त करना है। हिन्दीकी संस्कृतसे समानता स्वाभाविक व न्यायसंगत है। संस्कृत आधुनिक सर्वाधिक प्रभावशाली भारतीय भाषाओंकी जन्मदात्री भाषाका परिपूर्ण रूप है व उन भाषाओंके पूर्वक्रमागत रूपोंमेंसे प्रत्येकने युग-प्रतियुगमें संस्कृतसे समृद्धि प्राप्त की है। आधुनिक हिन्दी लेखक व संस्कृत परिवारकी अन्य भाषाओंके लेखक अपने विषय-वैचित्र्य व साहित्यिक समृद्धिके लिये 'संस्कृतीकरण'के पुनरुज्जीवनसे सम्बन्धित भाषाशास्त्रीय व साहित्यिक आन्दोलनके ठीक उतनेही ऋणी हैं, जितने कि पाश्चात्य साहित्यके शक्तिवर्धक संसर्गके।

## साम्प्रदायिकता नहीं

आधुनिक साम्प्रदायिक समस्याओंने यह भ्रम फैलाया है कि हिन्दीका आवश्यकतासे अधिक 'संस्कृतीकरण' हो रहा है। किन्तु वही स्वाभाविक राष्ट्रभाषा है। क्योंकि उसके स्वर, व्याकरण व शब्दकोश संस्कृतसे लिये गये हैं और उत्तर प्रदेश, बिहार, नेपाल, बङ्गाल, आसाम, उड़ीसा, आन्ध्र, तामिलनाड, कर्नाटक, केरल महाराष्ट्र, गुजरात व राजस्थानकी भाषाओंका भी वही हाल है। उसके संस्कृत भाषासम्बन्धी अंश महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक ग्रन्थिके रूपमें हैं, जो कि भिन्न लोगोंको एकताके सूत्रमें बाँधती है। यही ग्रन्थि उसे देशके प्रान्तीय व्यवहारकी भाषा बनाती है।

## मुसलमान प्रान्तीय भाषा जानते हैं।

कितनीही भाषाओं द्वारा नैसर्गिक राष्ट्रभाषा बननेका दावा किया जाता है। जिस प्रकार अधिकार जमानेवाली भाषाओंमें फारसी भाषासे प्रभावित हिन्दी, जिसे

अुर्दू भी कहते हैं, प्रथम है। अिसे कुछ दिनोंसे अरबीका स्वरूप दिया जा रहा है। जब यह दावा किया जाता है, तब अिस बातको भुला दिया जाता है कि राष्ट्रभाषाकी आवश्यकता केवल हिन्दू-मुस्लिमके पारस्परिक व्यवहारके लियेही नहीं होती, संस्कृत परिवारकी व संस्कृत-मिश्रित प्रान्तीय भाषा-भाषी हिन्दुओंके व्यवहारके लिये अुसकी विशेष आवश्यकता होती है। प्रत्येक प्रान्तके मुसलमान वहाँके हिन्दुओंके साथ अपनी प्रान्तीय भाषामें व्यवहार चला सकते हैं। कुछ वर्ष पूर्वतक वे अेकही प्रायमरी स्कूलमें पढते थे। आजकलकी विकसित अुर्दू अेक विदेशी भाषाके समान अुसी प्रकार अुनकी समझमें नहीं आ सकती, जैसे कि अुत्तर-प्रदेश व पंजाबके बाहरके अधिकांश लोगोंकी समझमें नहीं आ सकती।

## खिचडी भाषा

हिन्दी व अुर्दूके मिश्रणसे अेक खिचडी भाषा विकसित करनेका प्रयत्न भी किया जा रहा है और यह कहा जाता है कि अिसमें संस्कृत या फारसी-अरबीके लिये कोओ पक्षपात नहीं किया जाता। साधारण अर्थमें हिन्दुस्तानी अुत्तरके अशिक्षित लोगोंके दैनिक व्यवहारकी बोली है। जो अिसके लिये राष्ट्रभाषाका दावा करते हैं अुनके लिये यह भाषा नहीं है। यह अेक वृत्ति है, शैलीका अेक भिन्न रूप। सर्वसाधारण द्वारा सरलतासे समझे जानेवाले हिन्दी शब्दोंके प्रयोगके बदले हिन्दीके शब्दकोषको फारसी-द्वारा प्रभावित करनेका प्रयत्न अिसमें स्पष्टरूपसे दृष्टिगोचर होता है।

## हिन्दी ही हमारी राष्ट्रभाषा

मुझे स्पष्ट होना चाहिये। हिन्दी ही अेकमात्र भारतकी राष्ट्रभाषा रह सकती है। क्योंकि अुसका जन्म अेक अैसी भाषासे हुआ है जिसकी संस्कृतसे बडी भारी समानता है, अुसका पोषण युगयुगान्तरमें संस्कृत-द्वारा ही हुआ है और विकास, समृद्धि, सौन्दर्यादिके आवश्यकीय तत्त्वोंके लिये अुसे संस्कृतपरही निर्भर रहना पडता है। यदि वह अपनी भावी शक्तिके लिये संस्कृतसे प्रेरणा प्राप्त करे, तो वह भारतकी राष्ट्रभाषा, अुसकी आत्माका माध्यम, सौन्दर्यका मन्दिर व सांस्कृतिक पैतृक सम्पत्तिकी वाणी सहजहीमें बन सकती है।

## आज्ञामात्रसे भाषाअें नहीं बना करतीं

अुन सब लोगोंको, जो राष्ट्र-भाषाके लिये काम करना चाहते हैं, मैं अेक चेतावनी देना चाहता हूँ। आज्ञामात्रसे भाषाअें नहीं बना करतीं। हिन्दीमें संस्कृत शब्द अींटोंके समान नहीं हैं कि राजनीति या धर्मकी आज्ञापर कुशल अिन्जीनिअर-द्वारा अुनका स्थान परिवर्तन किया जा सके। वे सजीव प्रतीकके रूपमें सब भारतीय भाषाओंमें वर्तमान हैं, वे भारतीयोंके मानसके साथमें अपरिहार्य रूपसे परिणीत हो

गये हैं। वे सांस्कृतिक मन्तव्योंके प्रतिनिधि हैं, जो स्नायुकेन्द्रोंके समान भारतके समस्त समाजके जीवनको धारण करते, अुसे प्रोत्साहित करते व शक्ति प्रदान करते हैं। नये शब्द, विदेशी भाषाके शब्द, जो कि जबरदस्ती लादे जाते हैं, सगठित स्वरूप नहीं प्राप्त कर सकते। अुनका कोअी गहरा तात्पर्य नहीं होता। रूढ फारसी-अरबी शब्दोंसे मेरा कोअी झगडा नहीं है। आन्तरप्रान्तीय माध्यमपर अरबी या फारसी समानार्थी शब्दोंको लादना भद्दा है व अुर्दू नहीं जाननेवाले भारतके लिये निरर्थक है, और जो अुसे बोलते हैं अुनके लिये घृणास्पद है।

---

## ६ : हिन्दी सीखनेमें विलम्ब क्यों ?

[ श्री. माननीय रंगराव दिवाकर कन्नड साहित्यके प्रसिद्ध लेखक हैं। राजनैतिक क्षेत्रमेंभी अुन्होंने जनताका मार्गदर्शन किया है। केन्द्रीय सरकारके सूचना-विभागके मन्त्रीके नाते आपने रेडियोकी हिन्दी भाषाको परिमार्जित करनेका यत्न किया। आप हिन्दीमेंभी लेख लिखते हैं। राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति, वर्धाके आप सदस्य हैं। दिवाकरजी नागरीके प्रेमी हैं और आपके मतमें सभी प्रान्तीय भाषाअें देवनागरी लिपिके माध्यमसे लिखना हितकारी है। २७ दिसबर १९५० को कोटा (राजस्थान) में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके समय राष्ट्रभाषा परिषदका अधिवेशन सपन्न हुआ। अुस परिषदके अध्यक्षपदसे माननीय दिवाकरजीने जो भाषण दिया था अुसका महत्त्वपूर्ण अंश यहाँ अुद्धृत किया है। ]

### राष्ट्र-प्रेमीको राष्ट्रभाषा-प्रेमी होनाही चाहिये।

मैं राष्ट्रप्रेमी हूँ, अिसलिये सब राष्ट्रीय चीजोंका, सब राष्ट्रवासियोंका प्रेमी हूँ तथा राष्ट्रभाषाकाभी। मैं राष्ट्रका प्रेम, राष्ट्रके अन्तर्गत भिन्न-भिन्न लोगोंका प्रेम और राष्ट्रभाषाका प्रेम अिसमें कुछ फर्क नहीं देखता हूँ। जो राष्ट्रप्रेमी है अुसे राष्ट्र-भाषा-प्रेमी होनाही चाहिये। नहीं तो कुछ हदतक राष्ट्रप्रेम अधूराही रहेगा। भाषाओंकी माता संस्कृत और राष्ट्रभाषा हिन्दी अिन दोनोंके सिवाय भी हमारे राष्ट्रमें बहुत-कुछ भाषाअें हैं। लिपिबद्ध और प्रगल्भ जो भाषाअें अिस देशमें हैं अुनमें अैसी भाषाअें भी हैं जो दो हजार वर्षसेभी पुरानी हैं। अुनमें साहित्यभी बहुत प्रौढ, अुदात्त और प्रगतिशील है। लेकिन अभी हमने हिन्दीको राजभाषा व राष्ट्रभाषा मान लिया है। अिसका अर्थ यही है कि जो जो दूसरी पुरानी भाषाअें हैं उन्होंने अपने-अपने प्रान्तमें अपना-अपना स्थान रखते हुअे हिन्दी छोटी बहन होनेपरभी अुसको

बडी बहनका स्थान और मान देनेका निश्चय किया है। अखिल भारतीय प्रतिनिधियोका यह फैसला अभी सविधानमें स्थिर हो गया है।

## हिन्दी परकीय नहीं है, क्योकि यह सस्कृतजन्य और सस्कृतपुष्ट है।

हमारे सौभाग्यसे भारतवर्षमें खानपानकी, पहनावकी, भाषाकी, रहन-सहनकी, जलवायुकी, वर्ण और जातिकी कितनी भी भिन्नता हो, मौलिक विचारो मूलसस्कृतिमें भारी अेकता स्पष्ट है। बाह्य भिन्नता और आन्तरिक अेकता यही भारतीय सस्कृतिका अेक मुख्य लक्षण माना जा सकता है। अिसलिये हिन्दी भाषाका प्रसार और प्रचार होनेमें तात्त्विक दृष्टिसे कुछ कठिनाअियाँ नहीं होनी चाहिये। सास्कृतिक दृष्टिसे हिन्दी भाषाकी रचना, वाक्यविन्यास, अुपमादि अलकार, मुहावरे, शब्दकोष अित्यादि हमें परकीय-जैसे नहीं लगते। अग्रेजीके बारेमें या किसी दूसरी परभाषाके बारेमें हम यह नहीं कह सकते। हिन्दी हिन्दकी, हिन्दीयोकी भाषा है। वह सस्कृतजन्य और सस्कृत पुष्ट है। वह कैसे परकीय हो सकती है? हिन्द तो आज काश्मीरसे कन्याकुमारीतक अेकमेव राज्य है। विशाल और सनातन हिन्दके अन्तर्गत जो जातियाँ, भाषाअें या धर्मपथ हैं वे परस्परको परकीय नहीं मान सकते। वे सब भाओी बहन जैसे या पडोसी जैसे हैं। अुनको परकीय मानना यह अेक बडा पाप होगा।

## भाषा और साहित्यका सम्बध

राष्ट्रभाषा-समिति, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी अेक प्रवृत्ति है, लेकिन राष्ट्रभाषाका विषय हिन्दी-साहित्यसेभी बहुत व्यापक है। भाषा बुनियादी चीज़ है। साहित्य अुसका अेक रूप है। भाषामें साहित्यका समावेश हो सकता है, लेकिन साहित्यमें भाषाका समावेश नहीं हो सकता। भाषा जब कला रूप धारण करती है, तो साहित्य कहलाती है। भाषा मानवताका विकास करनमें महत्त्वपूर्ण भाग लेती है। यदि भाषा न होती तो मनुष्योके विचारो और भावनाओका विकास, प्रसार और प्रचार न होता। गणितशास्त्रका विकास जैसे अकोंके जरिये हुआ वैसाही सस्कृति और सभ्यताका विकास भाषाके सहारे हुआ है। यदि हमें राष्ट्रीय सस्कृतिका विकास करना है, राष्ट्रको सगठित करना है तो राष्ट्रभाषाके जरियेही यह कार्य अच्छेसे अच्छा हो सकता है।

## पुनरुत्थानके लिये राष्ट्रभाषा आवश्यक

भारतको स्वतत्र हुए अभी कुछ ही समय हुआ है। स्वातन्त्र्यकी स्थापनाके पश्चात् आज वैसा अेक मौका आया है जब भारतिय सस्कृतिका केवल पुनरुज्जीवनही नहीं, लेकिन पुनरुत्थान और पुन प्रकाशन और पुन प्रचार होना चाहिये। पाश्चात्य

संस्कृतिकी अच्छी-अच्छी चीजोंको भी हमें हजम कर लेना है। अेक नयी स्फूर्तिसे क़दम अुठाना है। न केवल पंडितोंमें और विद्वानोंमें; बल्कि भारतके सभी निवासियोंमें अेक नयी सांस्कृतिक जागृति और शक्तिका संचार होना चाहिये। अिस महत्त्वपूर्ण कार्यको पूरा करनेमें राष्ट्रभाषा बड़ी सहायता दे सकती है। अिस दृष्टिसे राष्ट्रभाषाका ज्यादासे ज्यादा प्रसार होनेकी आवश्यकता है।

## हिन्दीके विकासमें भारतीय भाषाओंका उपयोग

हिन्दीका रूप कैसाभी हो; अिसकी रूपरेखा संविधानकी ३५१ वीं धारामें स्पष्ट कर दी गयी है। अुसको मान लेनेमें दूरदर्शिता है, चतुराअी है और कार्यसाफल्यभी। भाषाकी वृद्धि किस रूपमें होनी चाहिये, अिस विषयमें कुछ अेक रेखा खींचनेसे कुछ फायदा नहीं होगा। भारतमें जितनी भाषाअें हैं अुन सबको अुपरोक्त धारामें काफी स्थान है। राष्ट्रीय हिन्दीकी वृद्धिके कार्यमें भी भारतीय भाषाओंको अेक खास स्थान और अवकाश दिया गया है। अिससे हिन्दीतर-भाषाभाषीभी हिन्दीके प्रति आत्मीय-भावसे देखेंगे। मैं समझता हूँ कि अभी राष्ट्रभाषाका प्रसार ज्यादासे ज्यादा किस प्रकार होगा, अिसी ओर अिस समितिकी दृष्टि अधिक लग जानी चाहिये। हरअेक भाषा स्वभावानुसार स्वतःकी वृद्धिमें कुछ अेक विशिष्ट नीति और खास शक्ति रखती है। जैसेकि अंग्रेजी पहली, मूलतः अुसको अंग्लोसैक्सन भाषा कहते थे। लेकिन अुसने ग्रीक, लैटिन, फ्रेंच वगैरह भाषाओंसे बहुत कुछ शब्द और चीजें लीं। जितनेसे संतोष न मानकर आज अंग्रेजी दुनियामें जितनी भाषाअें हैं अुन सबसे शब्द लेकर अेक अत्यंत तेजस्वी और सर्वसंग्रही भाषा बनी है। अिसीलिये अुसको आन्तरराष्ट्रीय भाषाका स्वरूप मिला है। अिसी तरह आज मूल हिन्दी भाषाको अेक मौका है कि अब वह भारतीय भाषाओंसे अच्छी अच्छी चीजें लेकर अेक प्रभावशाली राष्ट्रभाषा और अेक तेजस्वी चीज बन सकती है। श्रेष्ठ भारतीय संस्कृतिका यह अेक वाहन बनकर विश्वमें विहार कर सकती है।

## प्रचारक प्रान्तीय भाषाओंको भी सीखें।

भारतकी सब भाषाओंके लिअे अेकही लिपि हो जाय तो ठीक है। अैसा कोअी आन्दोलन करना या प्रयत्न करना आवश्यक भी है। हिन्दी भाषाभाषियोंको यह प्रयत्न अवश्य करना चाहिये कि जिससे हिन्दीतर प्रान्तोंमें हिन्दीके बारेमें अधिकसे अधिक आत्मीयता अुत्पन्न हो। यह आत्मीय भाव तब अुत्पन्न होगा जब हिन्दी प्रचारक अहिन्दी-प्रान्तोंमें काम करते समय प्रान्तीय भाषाओंको अत्यन्त प्रेम और आदरसे सीखें, अपनायें और अुनकी अुन्नतिकेलिये भी प्रयत्न करें। चुने हुअे अहिन्दी साहित्यका भाषानुवाद वगैरह कार्य बहुत तेजीसे किया जाना भी आवश्यक है।

राष्ट्रके अन्तःकरणका द्वार खुलता है।

अहिन्दी-भाषियोंके दिलोंमें हिन्दीके लिये आत्मीय भाव पैदा करनेका दायित्व जैसा हिन्दी भाषा-भाषियोंपर है अुसी तरह अहिन्दी भाषा-भाषियोंपरभी अेक बड़ा दायित्व है। वे राष्ट्रका प्रेम जितनी अुत्कटतासे अपने अंतःकरणमें रखते हैं अुतनाही अुत्कट प्रेम राष्ट्रभाषाके लिये अुन्हें रखना चाहिये। जहाँ प्रेम होता है वहाँ अपनाना बहुत सुकर है। हमारी प्रान्तीय भाषा कितनी भी अच्छी और प्रगत हो; हमें यदि भारतसे कुछ कहना है, भारतीय लोगोंके अन्तःकरणमें जा पहुँचना है, तो हमें हिन्दीमें कुछ कहना होगा और लिखना होगा। आज हम अंग्रेजीसे वह काम कुछ हदतक लेते हैं; लेकिन वह बहुतही मर्यादित है। अंग्रेजीके द्वारा हम आम जनतातक नहीं पहुँचते हैं। हिन्दी केवल अेक राजभाषा होकर रुकनेवाली चीज नहीं है। वह राष्ट्रकी अेक-मेव सामान्य भाषा होनेवाली है। अखिल भारतीय सभा-सम्मेलन या प्रवृत्तियाँ आदि सब हिन्दी भाषामें चलनेका समय नजदीकही आ रहा है। अिस बातकी पूर्ण प्रतीति हमें होनी चाहिये। हम आज और कुछ वर्षोंतक अंग्रेजीमें काम चला सकते हैं, लेकिन हमारे राष्ट्रकी भावी भाषा हिन्दी है, यह समझ लेना चाहिये। वह अंग्रेजी जैसी परकीय भाषा नहीं है; न अुसमें विजेता और विजित जैसी घृणित भावना है। संस्कृत-जन्य, संस्कृत-पुष्ट, भारतीय संस्कृतिसे भरी हुअी अैसी यह राष्ट्रभाषा है। अुसको सीखने और बरतनेमें हम अेक भारतीय भाषाको बढाते हैं और राष्ट्रके अन्तःकरणका द्वार अपने लिये खोल लेते हैं। अंग्रेजीकी अपेक्षा हिन्दी सीखनेमें बहुत कम कठिनाअियाँ हैं। अब हम हिन्दी सीखनेमें विलंब नहीं कर सकते। यदि यह अच्छी बात है, तो विलंब क्यों? "शुभस्य शीघ्रम्।" यह बात हमें समझ लेनी चाहिये और आन्तर प्रांतीय व्यवहारमें हमें हिन्दीका उपयोग तुरन्तही शुरु कर देना चाहिये जैसे बच्चे भाषा सीखते हैं—व्याकरण वगैरह अपेक्षा नहीं रखते—अुसी तरह अहिन्दी-भाषियोंको हिन्दीका अभ्यास शुरु कर देना चाहिये। व्याकरण और शुद्धीकरण आपही आप आ जायेंगे।

---

## ७ : हिन्दीही हमारी राष्ट्रभाषा

[श्री. अेस्. निर्जलिंगप्पा म्हैसूर-राज्यके प्रधान मंत्री थे। जब संविधान परिषदमें हिन्दीके प्रश्नपर चर्चा आरम्भ हुअी थी तब हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग-द्वारा 'राष्ट्रभाषा' नामकी पत्रिका अंग्रेजीमें निकलती थी। अुसकी दिनांक २१ जून १९४९ की संख्यामें आपका जो लेख प्रकाशित हुआ अुसका हिन्दी अनुवाद यहाँ दिया है।]

## देवनागरीही राष्ट्रलिपि

हिन्दी प्रकृतिसेही और सहज-रूपसे राष्ट्रभाषा हो सकती है। अंग्रेजी भाषाको और रोमन लिपिको राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपिके नाते अिस देशमें चलाना लाभदायक नहीं होगा। भारतके अन्य प्रान्तीय भाषाओंसे सम्बन्ध रखनेवाली भाषाकोही राष्ट्रभाषाके रूपमें अपनाया जा सकता है और रोमन लिपिको राष्ट्र-लिपिका रूप देना अत्यत अस्वाभाविक होगा। अिसके साथही यह बहुत अव्यवहार्य होगा। क्योंकि देशके बहुत कम लोग रोमन लिपिको जानते है। देवनागरी लिपिको मैं रोमन लिपिकी तुलनामें सर्वश्रेष्ठमानता हूँ। अिसलिये स्वभाविक रुपसे हमारी राष्ट्रभाषाकी लिपि देवनागरी ही होगी।

## रूढ़ अरबी शब्द रहे; किन्तु स्वाभाविक स्रोत संस्कृतकाही रहे।

हमारी राष्ट्रभाषामें जो शब्द पर्शियन, अरबी और अंग्रेजीके रूढ ही गये होंगे अुनको हम वैसाही रहने देंगे, किन्तु भविष्यमें जहाँ नवीन शब्दोंके प्रवाहका प्रश्न है वहां यदि वे हिन्दीमें सरलतासे आ सके तो अुनका मार्ग हमें बद नहीं करना चाहिये लेकिन हमें दूसरी ओर अिस बातका भी ध्यान रखना आवश्यक है कि हमारा स्वाभा-विक स्रोत संस्कृतकाही रहे या यह अन्य भारतीय भाषाओंका या द्राविड परिवारकी भाषाओंका हो। अिनके बदले अरबी-फारसीका मुंह ताकना अनुचित होगा।

## दो लिपियां अमान्य

हिन्दी-हिन्दुस्तानीकी कोअी समस्याही अुत्पन्न नहीं होनी चाहिये। देवनागरी ही राष्ट्रलिपि है यह तो मानी हुअी बात है। तथा राष्ट्रभाषाका नाम हिन्दी हो अिसमें भी बहुमत अिसी पक्षका समर्थन करनेवाला है। दक्षिण-भारतके लोग दो लिपियोंको कदापि स्वीकार नहीं करेंगे। अुन्हे तो देवनागरी लिपि स्वीकृत होगी। राष्ट्रभाषाका प्रश्न साधारण ज्ञानका प्रश्न है तथा सर्वसाधारण अनुभवकी चीज है।

## प्रान्तीय भाषाअें हिन्दीको बहुत-कुछ दे सकती है।

कानडी भाषामें बहुत पुराना, समृद्ध तथा नानाप्रकारका साहित्य है। हिन्दीको राष्ट्रभाषा माननेसे हम कानडीके अच्छे अच्छे विचार राष्ट्रभाषाके माध्यमसे व्यक्त कर सकते हैं। तभी राष्ट्रभाषा हिन्दी सब प्रकारसे समृद्ध हो सकती है। राष्ट्रभाषाको राष्ट्रकी भाषा बननेके लिये दक्षिणकी द्राविड परिवारकी भाषा-ओंमेंसे तथा अन्य भारतीय भाषाओंमेंसे बहुत कुछ लेना होगा। दक्षिणकी भाषा ओंने संस्कृतसे बहुत-कुछ लेन-देन किया है; अिसी लिये अुसी परपरामें आयी हुअी हिन्दी बडी सरलतासे राष्ट्रभाषा होनेके लायक है।

## ८ : सारे राष्ट्रके लिये अेक भाषाका होना आत्मसम्मानकी बात है।

[ राष्ट्रभाषा-प्रचार-सम्मेलनका जयपुरमें दि. १८, १९ अक्तूबर १९५६ को सातवाँ अधिवेशन सपन्न हुआ। अुसका अुद्घाटन करते हुअे स्व. श्री. बलवन्त नागेश दातार, मन्त्री, गृहमन्त्रालयने भाषण दिया। श्री. दातारजी कन्नड और मराठीके ज्ञाता थे। अुनके भाषणका महत्त्वका अंश यहाँ दिया है। ]

अिस प्रश्नपर, महात्माजीके तथा स्व. रवीन्द्रनाथ ठाकुर, स्व. श्रीनिवास शास्त्री-जैसे प्रसिद्ध भारतीयोंके सुनिश्चित कथन मेरी दृष्टिमें ठीक हैं : अुनके बारेमें यह कभी नहीं कहा जा सकता कि वे, अपनी मातृभाषाके प्रति अुदासीन थे, और यह भी नहीं कहा जा सकता कि उन्हें अंग्रेजीके प्रति घृणा थी। डा. ठाकुरका तो यह दृढ अभिप्राय था कि हमारे राष्ट्रके लिये जहाँतक अखिल भारतीय कार्योंका सम्बन्ध है अेक भाषाकी आवश्यकता है और वह हिन्दी ही हो सकती है तथा उसे अंग्रेजीकी जगह भारतकी राजभाषा तथा अन्तरप्रान्तीय व्यवहारके माध्यमके रूपमें प्रचलित करना चाहिये। अन्तमें अुन्होंने अपना यह विश्वासभी प्रकट किया था कि अुससे प्रान्तीय भाषाओंका विकास नहीं रुकेगा, और न हिन्दी भाषाका वर्चस्व या साम्राज्य स्थापित होकर दूसरी प्रादेशिक भाषाओंको हानि पहुँचेगी। बहुत समय पहले श्री. श्रीनिवास शास्त्रीने कहा था कि तमाम स्कूल और कालेजोंमें, सरकारी दफ्तरोंमें, तमाम न्यायालयोंके व्यवहारोंमें माध्यमके रूपमें हिन्दीको स्वीकार करना चाहिये। यही हमें करना है। सारे राष्ट्रके सामान्य कार्योंके लिये हमारी अेक भाषा हो, यह हमारे सबके लिये राष्ट्रीय आत्म-सम्मानकी बात है।

### हिन्दीही अैसी भाषा है।

संसारकी भाषाओंमें, बोलनेवालों तथा अुसके समझनेवालोंकी सख्याके हिसाबसे चीनी और अंग्रेजीके बाद, हिन्दीका तीसरा स्थान है। अपनी मिलती-जुलती भाषाओं और बोलियोंके साथ, हिंदीके बोलनेवाले १४ करोड लोग हैं और दूसरे भाषा-भाषियोंमेंसे लगभग ६ करोड़ अुसे आसानीसे समझ सकते हैं। अच्छी तरह विकसित आधुनिक भाषा होनेकी अुसकी योग्यताका प्रश्न छोड़ दें; तो भी भारतीय जनताकी जितनी बडी सख्याके द्वारा वह बोली और समझी जाती है। यही अेक अैसी अुसकी योग्यता है कि जिसके कारण जो अुच्चपद अुसको दिया गया है, अुसका स्वीकार होना चाहिये। अिस सम्बन्धमें हिन्दीका जो समर्थन किया जाता है वह अिसलिये नहीं कि अुसका साहित्य समृद्ध है; परन्तु अिसलिये कि वह बहुत बडी सख्याके द्वारा समझी और बोली जाती है और दूसरे वह सरल तथा लचीली है।

## दक्षिणके भाअियोंको डरनेकी आवश्यकता नहीं।

दक्षिण और पूर्वमें अैसे प्रदेश हैं जहां अंग्रेजीके स्थानपर हिन्दीको स्थापित करनेका बहुत अधिक विरोध किया जा रहा है। क्योंकि वे मानते हैं कि अिससे अुनके हितोंको हानि पहुँचेगी। अिस संबंधमें मैं यहां नम्रतापूर्वक कहूँगा कि अैसा डर रखनेकी कोअी आवश्यकता नहीं। दक्षिणकी भाषाअें भारतकी अन्य भाषाओंके कुलकी नहीं हैं और दूसरे कुलसे निकली हैं; फिर भी यह ध्यान रखना चाहिये कि द्रविड़ भाषाओंने न केवल संस्कृत परन्तु दूसरी आर्य भाषाओंसे भी बहुत बडी संख्यामें शब्दोंको लिया है और अपनाया है। दूसरी बात यह है कि संस्कृत तथा अिन आर्य भाषाओंने —अंग्रेजीने भी—दक्षिणकी प्राचीन भाषाओंसे बड़ी संख्यामें शब्द ग्रहण किये हैं। दक्षिण भारतकी भाषाअें अेक प्रकारसे "अिंडो-आर्यन" भाषाओंकी सहविकसित बहनें ही हैं। जैसा कि मुझसे कहा गया है, तेलगू और कन्नडमें ४० फीसदी संस्कृत शब्द पाये जाते हैं। दक्षिणके लोग यदि अंग्रेज़ी-जैसी सम्पूर्ण विदेशी भाषापर अितनी सुविधासे पूरा अधिकार तथा प्रभुत्व प्राप्त कर सकते हैं, तो कोअी कारण नहीं है कि वे हिन्दीपर यदि अधिक नहीं तो अुतनाही अधिकार तथा प्रभुत्व क्यों नहीं प्राप्त कर सकते? पश्चिमके विद्वानोंका भी यह अभिप्राय है कि हिन्दीको समझना और सीखना आसान है। हमारे अबतकके विदेशी शासकोंने डेढ़सौ सालतक योजनापूर्वक प्रयत्न किया; फिर भी शिक्षितोंकी संख्या कम रही है और अिन शिक्षितोंके दिमागपर अंग्रेजीका जो प्रभुत्व है अुसे कायम रखना मेरे विचारसे आत्मघातक होगा। यदि जनतन्त्रको सफल बनाना है तो भारतमें प्रादेशिक भाषाओंको हानि पहुँचाये बिना अेक सर्वसामान्य भाषा होना आवश्यक है। प्रादेशिक भाषाओंके हितोंकी भली भांति रक्षा की जा सकती है और की जावेगी। हिन्दी भाषाके विकासमें पर्याप्त प्रगति हो रही है। अिसलिये हमारे सबके सम्मिलित प्रयत्नोंसे हमने राजभाषा और राष्ट्रकी सर्वमान्य भाषाके रूपमें हिन्दीकी पसन्दगी की है और अुनके लिये यह अपनेको अवश्य योग्य सिद्ध करेगी।

## अैतिहासिक कारणोंसे हिन्दी राष्ट्रभाषा बनी।

पुराने जमानेमें सन्यासी और फकीर लोग अुत्तरमें प्रवास करते थे। तब वे किसी तरह हिन्दीके द्वारा अपना मतलब दूसरोंको समझा देते थे। पूर्वमें जगन्नाथ पुरी, मध्यमें प्रयाग, दक्षिणमें रामेश्वर, पश्चिममें द्वारका और नासिक तथा अुत्तरमें हरिद्वारके मेलों और यात्राओंमें भारतके तमाम प्रदेशके लोग आते थे और अुन्हें प्रतिदिन आपसमें सम्पर्कमें आने के लिये हिन्दीके सामान्य माध्यमके कारण ही अुत्साह होता था। अतीत कालमें अुनके द्वारा भारतकी आध्यात्मिक अेकता दृढ़ हुअी। अिसी प्रकार राजकीय तथा सामाजिक क्षेत्रमें अेकता सिद्ध करनेका कार्य

अखिल भारतीय सम्मेलनों तथा वार्षिक अधिवेशनोंके द्वारा होता था। सामान्य व्यवहारके लिये हिन्दीका अुपयोग करनेसे भिन्न-भिन्न प्रान्तोंके निवासियोंमें राष्ट्रीय अैक्य तथा भ्रातृभावकी सामान्य ग्रंथि बहुतही दृढ़ हो सकी थी। अिसलिये हिन्दीको संविधानमें जो अुच्च स्थान दिया गया है, अुसका अैतिहासिक औचित्य भी है।

## आन्तरप्रान्तीय व्यवहारकी भाषा

जिन प्रान्तोंकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है, अुन प्रान्तोंकी जनताके मनमें भ्रम अुत्पन्न हो गया है कि हिन्दीके अुत्थानका अर्थ अुनकी प्रान्तीय भाषाका पतन है। हमें अिस भ्रमको दूर करना होगा। हमें यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि जिस प्रकार अंग्रेजी अिस देशपर लादी गयी थी अुस तरह हम हिन्दीको किसीपर लादनेके अिच्छुक नहीं हैं। अंग्रेजोंने अंग्रेजीको अिस देशकी शिक्षाका माध्यम बना दिया था। अिस देशकी धारासभाओंकी भाषा भी अंग्रेजी कर दी गयी थी। अिस देशकी अदालतोंकी भाषा भी अंग्रेजी बना दी थी। जिन राज्योंकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है, वहांकी शिक्षाका माध्यम अुस प्रान्तकी भाषा ही होनी चाहिये। अिस प्रकार वहांकी धारा-सभा और वहांके न्यायालयोंकी भाषा भी अुस प्रान्तकी भाषा ही रहनी चाहिये। हिन्दी तो केन्द्र और आन्तरप्रान्तीय कार्यकी भाषा रहेगी। हां, द्वितीय भाषाके रूपमें अुसका समूचे देशमें शिक्षण अनिवार्य होगा, अन्यथा केन्द्रका कार्य नहीं चल सकता।

## अपनी भाषाका अभिमान : चीनका अुदाहरण

मुझे खेद है कि अंग्रेजोंके चले जानेपर भी अंग्रेजीके प्रति हमारा मोह दूर नहीं हुआ है। अिस देशके विद्वानोंके मुखसे आये दिन हम कहीं न कहीं और किसी न किसी प्रकार यह सुना करते हैं कि अंग्रेजीको अपने वर्तमान पदसे पदच्युत कर हम अिस देशको रसातलमें ले जायेंगे। विदेशी भाषाके प्रति मैंने अिस देशका जैसा अनुराग देखा वैसा दुनियाके किसी देशमें नहीं। मैं अिस संबंधमें आपको चीनका अपना अेक अनुभव बताता हूं। जब मैं चीन गया अुस समय मैं वहां भारतीय-चीन-मैत्री-संघका मेहमान हुआ था। अिस संघके अुपसभापति श्री. चेंन मुझे लेने पीकिंग स्टेशनपर आये थे। पहले दिन अुनकी और मेरी बातचीत अेक दुभाषियेके द्वारा हुअी। वे चीनी भाषामें जो कहते अुसका अंग्रेजीमें यह दुभाषिया अनुवाद करता और मैं अंग्रेजी भाषामें कहता अुसका यह दुभाषिया चीनी भाषामें अुलथा करता। दूसरे दिन जब श्री. चेंन मुझसे मिलने आये तब अुन्होंने धड़ाकेसे अंग्रेजी बोलना आरम्भ किया। मुझे बडा आश्चर्य हुआ। क्योंकि अेक रातमें तो कोअी व्यक्ति अितनी अंग्रेजी भाषा सीख नहीं सकता। जब मैंने अपना आश्चर्य व्यक्त किया तब अुस आश्चर्यको दूर करते हुअे श्री. चेंनने मुझसे कहा कि वे बीस वर्षतक योरप और

अमरीकामें रह चुके हैं और इंग्लडके केम्ब्रिज विश्वविद्यालयके स्नातक हैं। परन्तु चीनी सरकारका यह आदेश है कि किसी विदेशीसे विदेशी भाषामें बातचीत न की जाय, अिसीलिये वहां विदेशियोंसे दुभाषियोंको रखकर बातचीत की जाती है। पर चूंकि मैं केवल चार दिन पीकिंगमें रहनेवाला हूँ अिसलिये अिस रस्मअदाओके बाद अुन्होंने मेरे सुभीतेके लिये मुझसे अंग्रेजीमें बातचीत करना आरम्भ कर दिया। कहां चीनियोंका अपनी भाषाके प्रति यह प्रेम और कहां हमारे देशके लोगोंका अंग्रेजीके प्रति विराट् अन्धा मोह!

## आन्तरराष्ट्रीय क्षेत्रमें हिन्दीको स्थान मिलना चाहिये।

राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिको अेक बहुत बड़ा कार्य करना है। अुसने जिस प्रकार हिन्दी भाषाका भारतके अुन क्षेत्रोंमें प्रचार करनेका प्रयत्न किया, जहांकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है, अुसी प्रकार अुसे अब आन्तरराष्ट्रीय क्षेत्रोंमें हिन्दीको ले जानेका यत्न करना चाहिये। भारतके बाहर भी राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिकी कुछ शाखाअें स्थापित हुअी हैं। अिनकी संख्या अुसे अधिकसे अधिक करनी है। हिन्दीके राजभाषा पदपर आसीन होनेके पश्चात् मेरी यह कल्पना रही है कि आन्तरराष्ट्रीय क्षेत्रमें और अिस क्षेत्रमें राष्ट्रसंघ(यू. एन. ओ.) में अुसका वैसाही स्थान होना चाहिये जैसी अंग्रेजी, फ्रांसीसी, रूसी और स्पेनिश भाषाओंका है। हिन्दीके प्रचारकी दृष्टिसे ही मैं यह बात नहीं कहता; परन्तु हिन्दी भाषाके प्रचारके साथ ही हिन्दी भाषाका जो संदेश है, अुस दृष्टिसे भी मैं यह बात कह रहा हूँ। हिन्दी जिन संस्कृत और प्राकृत भाषाओंसे निकली है, अुन भाषाओंके साहित्यमें प्राणिमात्रके प्रति स्नेह व अनुकम्पा, प्राणिमात्रके सुखमें अपना सुख और प्राणिमात्रकी सार्थकतामें अपनी सार्थकता, ये आधारभूत तत्त्व रहे हैं। अिसलिये अुस साहित्यका मूलमन्त्र है "वसुधैव कुटुम्बकम्।" संस्कृत और प्राकृतके साहित्यसे हिन्दीकोभी यह मूल-मन्त्र मिला है और अिसी लिये हिन्दीके सन्त-साहित्य-जैसा साहित्य संसारकी अन्य भाषाओंमें दुर्लभ है। "वसुधैव कुटुम्बकम्" सिद्धान्त अेक दार्शनिक खोजपर अवल-म्बित है। यह खोज हमारे ऋषि-महर्षियोंने की थी। युद्धके भयसे थरथराते हुअे संसारको अिन्हीं तत्त्वोंके ज्ञान और अुनके अनुसार कर्मकी आवश्यकता है। हमारा साहित्य यही संदेश देता है। अतः केवल हिन्दी प्रचारकी दृष्टिसे नहीं; परन्तु संसारके कल्याणकी दृष्टिसे भी हिन्दी को आन्तरराष्ट्रीय क्षेत्रमें स्थान मिलना आवश्यक है।

---

## ९ : राष्ट्रभाषाका अध्ययन अनिवार्य

### (हिन्दी भाषा-भाषीभी अन्य प्रान्तीय भाषा सीखें।)

[ डॉ सुनीतिकुमार चटर्जी कलकत्ता विश्वविद्यालयके भाषातत्त्व-विभागके अध्यक्ष हैं और भाषा विज्ञानके आंतरराष्ट्रीय कीर्तिके पंडित हैं। आपका (Indo Aryan and Hindi) 'हिन्दी और भारतीय भाषाअें' नामका ग्रंथ राष्ट्रभाषाके अभ्यासकोंके लिये विशेष रूपसे पठनीय है। अुसका हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हो गया है। कराचीके हिन्दी साहित्य-सम्मेलनके अधिवेशनमें राष्ट्रभाषा-परिषदके आप अध्यक्ष थे। सन १९५३में हुअी पुणे विद्यापीठके द्वारा आयोजित भाषा विकास परिषदके 'पारिभाषिक विभाग परिषदके' आप अध्यक्ष थे, तथा अुसी वर्ष अहमदाबादमें हुअे प्राच्य विद्या परिषदके अधिवेशनके भी आप सभापति थे। आप राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति वर्धाके सदस्य हैं तथा आप अुससे संबद्ध बंगीय राष्ट्रभाषा परिषदके अध्यक्ष हैं।

राष्ट्रभारती वर्ष १, संख्या ७, जुलाअी १९५१ में आपका लेख प्रकाशित हुआ था। अुसमेंसे महत्त्वपूर्ण अंश यहाँ लिये गये हैं।]

#### आजका प्रश्न

केवल विधानसभा-द्वारा हिन्दीको राष्ट्रभाषाकी मर्यादा दिलानेसे काम पूरा नहीं हो सकता। अिसके प्रतिकूल जितनी शक्तियाँ, जितने मनोभाव काम करते हैं, हमें उन सबका सामना करना पड़ेगा। कुछ तो अैसे प्रतिकूल मनोभाव हैं, जो केवल अुपेक्षा करनेसे ही शक्तिहीन होकर मिट जायेंगे, पर कुछ अैसे मनोभाव भी हैं, जो अुपेक्षा करने या विरोध करनेसे नहीं मिटेंगे। युक्ति, विचार विमर्श, मेल-जोल और स्वीकृतिकी राहसे बहुतेरे प्रतिकूल मनोभावोंको तय करना होगा।

#### अुर्दू आम-फहम भाषा नहीं है

अबतक अधिकतर लोगोंका यह विचार चला आया है कि हिन्दी भाषाकी जो अुर्दू या मुसलमानी शैली बनी है, वह अुत्तर भारतकी हिन्दू-मुसलमान जनताकी सम्मिलित चेष्टाका फल है, परन्तु यह विचार अैतिहासिक दृष्टिसे ठीक नहीं है। स्व० श्री० चन्द्रबली पाण्डेने अपनी मूल्यवान खोज-द्वारा अिसे प्रमाणित कर दिया था कि अरबी फारसीके शब्दोंसे लदी हुअी हिन्दी शैली—जो अुर्दू कहलाती है—सचमुच शुरूमें अेक आम फहम बाजारू बोली न थी, और देशी भाषासे प्रेम रखनेवाली भारत-सन्तान—क्या हिन्दू, क्या मुसलमान—पहलेपहल अधिकतया अिसके

विषयमें ही थी। अठारहवीं सदीके मध्य-भागमें ओरान तथा तूरानसे आये हुअे कुछ मुसलमान अुमरावोंने हिन्दीके आधारपर अेक खास अिस्लामी भाषा बनानेकी कोशिश की थी, और होनहार शुमाली अुर्दू-अदबके कुछ प्रमुख कवियोंको अुन्होंने मदद दी थी। भारतीय भाषाको फारसी वाङ्मयकी छायामें ले आनेकी जो आकांक्षा और चेष्टा प्रकट हुअी, हिन्दीके कुछ मुसलमान लेखकोंने भी अिसका विरोध किया था। अुर्दू-शैलीका अुद्भव बाजारोंमें नहीं; अुच्च-वंशके मुसलमान रअीसों तथा अमीरोंके महलों या बैठकोंमें हुआ था। पहलेपहल यह विदग्ध-मण्डलीकी अेक बनावटी भाषा थी। अिसके प्रतिपादक फारसी साहित्यके रसिक थे और अुस साहित्यकी हवा भारतमें बहानेके लिये अुन्होंने अुर्दूको माध्यम बनाया था। मुसलमानी दरबारमें अिसकी प्रतिष्ठा हुअी और साथ-साथ मुस्लिम सरकारके प्रसादसे पुष्ट कुछ हिन्दू दरबारी और कारिन्दे—जो राजभाषा फारसीके माहिर थे—अिसका उपयोग करने लगे। अिस प्रकार भारतमें अुपनिर्दिष्ट और फारसीके अच्छे विद्वान् कश्मीरी ब्राह्मण तथा सरकारी दफ्तरों और अदालतोंमें काम करनेवाले अुत्तर-भारतके कायस्थ आदि अुर्दूको मार्जित, पुष्ट, तथा जनतामें प्रचारित करनेके कासमें अुतरे। मुग़ल साम्राज्यके अवसानके बाद अंग्रेज सरकार कायम हुअी, और अंग्रेजोंने सोचा कि फारसीके साथ-ही-साथ दरबारकी भाषा अुर्दू ही देशकी जनताकी भाषा होनी चाहिये। अतअेव, अुर्दूकी प्रतिष्ठा हुअी। अिस विचारसे, अंग्रेज अुत्तर-भारतके सरकारी दफ्तरों, अदालतों अेवं फौजोंमें अुर्दूके पृष्ठपोषक बने। दफ्तरी और अदालती भाषा होनेके कारण नौकरीके अुम्मीदवार हिन्दू भी बिना प्रश्न किये अुसे अपनाने लगे। अुर्दू दरबारके मुसलमान रअीसोंकी भाषा अुन्नत हुअी और अंग्रेजोंके अधीन अेक दूसरी नौकरशाही भाषा बनी। अब लोगोंके विचार बदलनेका मौका आया। **अुर्दू या मुसलमानी हिन्दी शैलीको कुछ अदूरदर्शी अितिहासानभिज्ञ व्यक्तियोंने सम्मिलित हिन्दू-मुस्लिम जनताकी भाषाके रूपमें सिंहासनपर बिठा दिया।** अिससे भारतीय संस्कृतिकी पर्याप्त क्षति हुअी। नागरी-प्रचारिणी-सभा, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, आर्य-समाज आदि प्रतिष्ठानोंकी ओरसे प्रचुर चेष्टा होते हुअे भी अिसकी अबतक पूर्णतया पूर्ति नहीं हुअी।

## संकटसे अुत्तर-भारतकी मुक्ति

मुसलमानी रूप अुर्दूसे हिन्दीका आदर्श तथा भागवत तत्त्व पहलेसेही होने लगा। कुछ दिनोंतक हिन्दीके लिये यह सर्वप्रधान समस्या थी कि राष्ट्रभाषाके सिंहासनपर हिन्दीकी कौन मूर्ति प्रतिष्ठित होगी। विदेशी तथा देशके अधिक सख्यक-जनोंके लिये अबोध्य या दुर्बोध्य अरबी-फारसी शब्दोंसे लदी हुअी अुर्दू अथवा हिन्दु

स्तानी, या शुद्ध हिन्दी तथा संस्कृत शब्दमय हिन्दी ? अब बाह्यतः यह समस्या मिट गयी है।

हिन्दीकी पुनः-प्रतिष्ठाका अर्थ यह है कि अिस्लामी भाव-जगतसे प्रभावित अुत्तर-भारतमें भारतीय संस्कृतिकी पुनः-प्रतिष्ठा हुअी है। यह सीधी बात भारतके कुछ प्रदेशोंके लिये समझमें नहीं आती। जैसे—बंगालमें और दक्षिण-भारतमें। अुर्दू अलफाज़से लदी हुअी राष्ट्रभाषाका फल था अपने घरमें जातीय मनोभावना सदाके लिये परदेशी बना रखना। अब अिस संकटसे अुत्तर-भारतकी जनताको मुक्ति हो गयी है।

## अभीतक संस्कृतिवाहिनी भाषा नहीं बनी है।

हिन्दीके लिये और कुछ समस्याअें हैं। अेक तो यह कि प्रान्तीय भाषा तथा बोलियोंके साथ हिन्दी किस नीतिसे बर्ताव करेगी ? अैसी समस्या अहिन्दी प्रान्तोंमें मुख्यतया दिखाअी देती है। अब भाषागत साम्राज्यवादका कोअी स्थान नहीं है। प्रान्तीय भाषा जहां जहां बोली जाती है वहां हिन्दीका स्थान मुख्य नहीं हो सकता, गौण ही रहेगा। यह हिन्दी-संसारको मानना पड़ेगा कि अेक बंगभाषी, अेक महाराष्ट्रीय, अेक गुजराती, अेक तामिल-भाषी प्रभृतिके लिये हिन्दी अभीतक संस्कृति-वाहिनी भाषा नहीं बनी है। हिन्दी-संसारके लोगोंमें जबतक अुच्च शिक्षा और आधुनिक जगतकी अुपयोगी मानसिक संस्कृति सुप्रतिष्ठित नहीं हो जायगी, तबतक हिन्दीके द्वारा भारतके सांस्कृतिक नेतृत्वकी स्थापना दूरकी बात रहेगी।

## अेक विषयके नाते 'अंग्रेज़ी' पढ़ना अनिवार्य है।

अेक बात और भी सोचनी है। कुछ लोगोंका विचार है, अंग्रेज़ीके बिना भी आधुनिक जगतकी चिन्ताधाराको अपने देशमें हम फैला सकेंगे। आधुनिक जगतकी चिन्ता-प्रणालीसे जिनकी थोड़ी भी जानकारी है, अुनको यह विचार भ्रान्त ही जँचता है। अंग्रेज़ हमारे देशसे चले गये हैं; पर अंग्रेज़ी भाषा हमारे लिये फ़ायदावर रहेगी। यह भाषा अब केवल अंग्रेज़ और अमेरिकन जातिके लोगोंकी निजी चीज़ नहीं रही है। यह विश्वमानवकी अेक साधारण सम्पत्ति बनी है; अिसलिये अिस भ्रान्त राष्ट्रीयता बोधके कारण अिसे छोड़ देना हमारे लिये मानसिक आत्महत्या ही होगी। जहां नवीन ज्ञान-विज्ञानकी नयी भाव-धाराओंको आत्मसात् करनेका प्रश्न है वहां भाषाविषयक अभिमान गौण वस्तु ही होनी चाहिये।

हमारी जातीय धी-शक्तिकी गम्भीरता और अुसके प्रचारके लिये अंग्रेज़ी साहित्य अेकमात्र रसायन हो सकता है। हां, अिसके साथ-साथ फ्रांसीसी, जर्मन आदि ज्ञानगर्भित आधुनिक भाषाओंका अुपयोग होना अपेक्षित है। पर हमारे देशमें आधुनिक विश्व-संस्कृतिकी मुख्य प्रतीक अंग्रेज़ीने अपना आसन जमा लिया है।

अंग्रेजी सहज-लभ्य है। अिसकी शिक्षा-शैली देशमें तैयार है, चालू है। अिससे फायदा अुठाना सहज होगा। बाहरसे हवा और रोशनी आनेके लिये अिस खिड़कीको हम बन्द न कर दें। मेरी रायमें, अुच्च शिक्षामें स्कूलोंकी अुच्च कक्षाओंसे शुरू कर कालेजों और विश्व-विद्यालयोंकी श्रेणियोंमें अंग्रेजी भाषाको—और कला-विभागके छात्रोंके लिये अंग्रेजी साहित्यको भी—अनिवार्य या आवश्यक पाठच विषय रखना चाहिये। जैसे सोवियत रूसमें, चीनमें, जापानमें, स्याममें, बर्मामें छात्रोंको अंग्रेजी सिखानेपर जोर दिया जाता है; मिस्र तथा दूसरे अरब देशोंमें, तुर्क देशमें, अीरान और अफगानिस्तानमें, फ्रान्सीसीके साथ-साथ अंग्रेजीकी भी पढ़ाअी होती है। जैसे—अिन्दोनेशियामें ओलान्दाज या डच भाषाके साथ और फिलिपाअिन द्वीप-पुञ्जोंमें हिस्पानी या स्पेनिश भाषाके साथ अंग्रेजीकी भी पढ़ाअीको अुच्च कक्षाओंके छात्रोंके लिये अनिवार्य किया गया है। अैसा करनेसे हमारे राष्ट्रीय अभिमानपर कोअी भी खतरा नहीं पहुँचेगा।

## संविधानके हिन्दी अनुवादकी भाषा संस्कृतानुसारिणी

हिन्दी-संसारके दो हिस्से हैं। अेक पछाँही बोलियोंके बोलनेवाले—जिनके लिये खड़ीबोली हिन्दी अपनी निजी, स्वाभाविक साहित्यिक भाषा है—और दूसरे पछाँहीके बाहरके हिन्दी प्रान्तोंकी बोलियोंके बोलनेवाले, जिनके लिये शुद्ध हिन्दी सीखना श्रम-साध्य कार्य ही होता है। हिन्दी अखिल भारतकी राष्ट्रभाषा बननेके कारण अहिन्दी प्रान्तोंके लोगोंका यह दावा सुनाअी देता है कि हिन्दीको आधुनिक शैलीको बनानेमें, हिन्दीके व्याकरणको सरल करनेमें तथा हिन्दीके लिये नीति-प्रवर्तित करनेमें हमारा भी अधिकार है। यह अधिकार साधारणतया स्वीकार किया जाता है। हिन्दीके अुच्च कोटिके शब्दोंके लिये यह नीति भारतकी विधान-सभाने भी मान ली है। वह नीति यह है कि राष्ट्रभाषाको अुच्च कोटिके शब्दोंके विषयमें संस्कृतनिष्ठ या संस्कृतानुसारिणी ही होनी चाहिये। अिसी विचारसे भारतकी राष्ट्रीय संविधान-पुस्तकके हिन्दी तथा दूसरी भाषाओंमें जो अनुवाद किये गये हैं या किये जा रहे हैं, अुनकी भाषा यथासंभव संस्कृतानुसारिणी रखी गयी है। अिससे संस्कृतके वातावरणसे जिनका परिचय नहीं है, अैसे बहुत लोग आशंकासे घिरे हैं, और अैसी संस्कृतनिष्ठ भाषाके विषयमें अिन्होंने भला-बुरा कहा है; मजाक भी अुड़ाया है। पर हमें दूरकी दृष्टिसे देखभाल करनी चाहिये। भाषाकी शैली कअी पीढ़ियोंको लेकर बनती जाती है। अेक पीढ़ीकी असुविधा दूसरी पीढ़ीके लिये कल्याण-कर होती है। भारतीय संस्कृतिकी बुनियाद पक्की रखनेके लिये संस्कृतमूलक भाषा अनिवार्य है। संविधानमें देवनागरीमें लिखी हुअी हिन्दीको भारतकी सरकारी भाषा मान लिया गया है। मेरे विचारमें रोमन लिपिको भी यदि अैच्छिक रूपसे मान लिया

जाता तो अच्छा होता। कुछ बरसोंतक अंग्रेजी—जैसे अिस समय चालू है वैसे ही—रखी जायगी। धीरे-धीरे अंग्रेजीके स्थानपर सरकारी कामकाजोंमें हिन्दीको बिठा दिया जायगा।

## राष्ट्रभाषाका अध्ययन अनिवार्य

अिसलिये हिन्दीका शिक्षण भारतमें अनिवार्यही होगा। अहिन्दी प्रान्तोंके कुछ लोग अिससे खुश नहीं हों, यह तो स्वाभाविक है, पर अिस विरोधी मनोभावको दूर करनेके लिये और अहिन्दी प्रान्तोंमें हिन्दीका स्थान सुदृढ़ करनेके लिये अेकही तरीका है। यह है अहिन्दी प्रान्तोंमें हिन्दीको आवश्यक भाषा बनानेके साथ-ही साथ हिन्दी प्रान्तमें भारतकी और किसी भी सरकार-द्वारा स्वीकृत प्रान्तीय भाषाको पढना हिन्दी भाषियोंके लिये आवश्यक करना। अिससे शिक्षा तथा राजकार्यके क्षेत्रोंमें विभिन्न प्रान्तीय भाषा बोलनेवाला तथा हिन्दी बोलने वालोंमें भारसाम्य रहेगा। किसीको यह कहनेका मौका नहीं मिलेगा कि अेक और भाषा—जिसका सांस्कृतिक मूल्य हमारे लिये अुतना नहीं है—जबरदस्ती हमारे अूपर लादी गयी है। विद्यालयोंके छात्रोंके लिये हर प्रान्तमें दो आधुनिक भारतीय भाषाअें—अेक अपनी मातृभाषा और दूसरी राष्ट्रभाषा हिन्दी—तथा जहां हिन्दी ही मातृभाषा है, वहाँ भारतकी और कोअी प्रौढ साहित्यिक भाषा (जैसे —बंगला, मराठी, गुजराती, अुडिया, असमिया, तेलगू, तमिल, कन्नड या मलयालम) अपने सुभीते और अपनी रुचिके अनुसार अिनमेंसे किसी भी अेकको चुनकर लेना पडेगा। यह विधि साधारण शिक्षा-नीतिके तौरपर गृहीत हो जाय तो हिन्दीके विपक्षमें किसीको अेक शब्द भी बोलनेका अवकाश नहीं रहेगा और अिस तरहसे हिन्दी अपना स्थान बना लेगी।

---

## १० : हिन्दी भाषा बन चुकी है। केवल पारिभाषिक शब्द चाहिये।

[ हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सैंतीसवें अधिवेशनमें (हैदराबाद, सन १९४६) २४ दिसम्बर राष्ट्रभाषा परिषदके अध्यक्षके नाते दिये गये, श्री क्षितीश चट्टोपाध्यायके अभिभाषणसे यह अंश अुद्धृत किया है। श्री चट्टोपाध्यायजी बंगला भाषी हैं और अलाहाबाद युनिव्हर्सिटीमें कार्य करते हैं। ]

## हर्ष खेदका समय

आज हिन्दीके लिये साथ ही-साथ हर्ष और खेदका समय है। हर्ष जिस बातपर कि हिन्दी राष्ट्रभाषाके रूपमें विधान-परिषद-द्वारा स्वीकृत हुअी है और खेद जिस कारणसे कि जिन स्वीकृतिमें पेंच है। जिस अभागे देशमें अुचित बातपर लोगोंमें अेकमत नहीं होता है। राष्ट्रभाषाके स्वागतमें जिस प्रकारका अुत्साह देश-प्रेमियोंमें अुचित है, विधान-परिषदमें वह अुत्साह नहीं दीख रहा है। अंग्रेजी अेक अच्छी भाषा है। जिसका ज्ञान अंग्रेजोंसे देशका सम्बन्ध टूट जानेपर भी शिक्षित समाजमें आवश्यक है। जिसका कारण यह है कि यह भाषा वर्तमान परिस्थितिमें भारतके बाहर अन्य देशोंसे अथवा वहाँकी भाव-धाराओंसे सम्बन्ध स्थापन करनेके लिये हमारे सामने आवश्यक है। परंतु पंद्रह वर्षतक हमारे राष्ट्रीय व्यवहारमें जिसका अक्षुण्ण अधिकार और अुसके बादभी प्रयोगकी संभावना हमारी राष्ट्रीयताके लिये घातक है। सदियोंकी परतंत्रताने हमारी जातीयताकी बुद्धिको मंद कर दिया है, अतः हम लज्जाकी बातपर भी लज्जित नहीं होते हैं।

## बंगला मराठीसे हिन्दी प्रभावित हुअी है।

हिन्दीको राष्ट्रभाषाके रूपमें स्वीकार करते समय कअी लोगोंने अुसकी शक्ति पर अकारण शब्दप्रयोग किया है। विधानकी धारा ३५१ मेंभी अैसा अिशारा है। हिन्दी मेरी मातृभाषा नहीं है। मेरी मातृभाषा बंगला अेक बहुत संपन्न भाषा है और अुसपर मुझे विशेष गर्व है। परन्तु वर्षोंसे हिन्दी प्रान्तमें रहकर हिन्दी भाषाका निरंतर प्रयोग देखकर मुझे यह अनुभव हुआ है कि हिन्दी भाषामें भाव प्रकाशकी शक्ति किसी भाषासे कम नहीं है। हिन्दीके प्रति यह अवज्ञाकी भावना नितान्त अनुचित है। योग्यता तो प्रयोगहीसे आती है। अंग्रेजी भाषाकी या भारतीय अन्य भाषाकी वर्तमान योग्यताके पीछे वर्षोंका या सदियोंका प्रयोग है। जब राष्ट्रभाषा हिन्दीका प्रयोग समर्थ लेखक करने लगेंगे तो जिसकी शक्ति सबको प्रत्यक्ष हो जायगी। हिन्दीके पीछे संस्कृत भाषाका, अुर्दू गद्यशैलीका, गुजराती और मराठीका प्रभाव वर्तमान है। अिधर कुछ वर्षोंसे अंग्रेजीका भी प्रभाव देखनेमें आ रहा है। कुछ नयी योजना बनाकर हिन्दीको प्रयोग-कुशल बनानेकी कोअी आवश्यकता नहीं है। यह कुशलता बन चुकी है। हिन्दीका वर्तमान साहित्यिक रूप सब व्यवहारोंके योग्य और सकल प्रान्तोंमें स्वीकारके योग्य है। मेरा यह कथन अनुभवपर आधारित है; अन्याय-पक्षपातपर नहीं। हिन्दीकी शक्तिको हिन्दी प्रान्तोंके बाहर रहनेवाले कअी विशिष्ट विद्वानोंने भाँप लिया है, जिसके कारण वे हिन्दीका पक्ष लेते चले आ रहे हैं।

## प्रान्तीय भाषाओंको हिन्दी निकटकी

संस्कृत भाषा जब जन-साधारणके बोलचालसे हट गयी और अुसके स्थानपर प्राकृत भाषाओंकी अुत्पत्ति हुआी तब अिन प्राकृत भाषाओंमें अितना परस्पर भेद होने लगा कि अेक भाषा बोलनेवाला दूसरी भाषा बोलनेवालेके सामने दुर्बोध बनता गया। जैन और बौद्ध शास्त्रोंकी भाषा पहले विभिन्न प्राकृत रही। परन्तु जब भाषाकी अेकताकी आवश्यकता अनुभव होने लगी, लोग पुनः संस्कृतकी ओर लौटे।

यहांतक कि जैन और बौद्ध लोगभी संस्कृत भाषाका प्रयोग करने लगे। मध्य-युगमें कथित भाषा न होनेपरभी संस्कृतका पूरा साम्राज्य था। प्राकृत और अपभ्रंश साहित्यमेंभी संस्कृत साहित्यका प्रभाव अत्यंत अधिक मात्रामें देखनेमें आता है। अपभ्रंशके बाद जो वर्तमान भाषाअें बनी अुनमेंभी संस्कृतका प्रभाव अक्षुण्ण रहा। आज तो हरअेक भाषाके साहित्यिक रूपमें संस्कृतकी भरमार है। तेलुगू, कन्नड, मलयालम और तामिल अिन द्राविड भाषाओंके साहित्यमें संस्कृत शब्दोंका बहुत प्रचार है। अिस कारण संस्कृत शब्दोंका प्रयोग सब भारतीय भाषाओंका अनुगत धर्म है। संस्कृतनिष्ठ भाषाके द्वाराही अेक प्रान्तवाले अपनेको और प्रान्तवालोंके सामने सरलतासे बोधगम्य कर सकते हैं। अतः हमारी राष्ट्रभाषाका संस्कृतनिष्ठ होना अत्यंत आवश्यक है। सौभाग्यसे बंगला ग्रंथोंके अनुवादके प्रभावसे हिन्दी भाषाका साहित्यिक रूप संस्कृतनिष्ठ बन चुका है। अिस कारण हिन्दीको राष्ट्रभाषाकी दृष्टिसे और विकसित करनेकी कोअी आवश्यकता नहीं है। यह पिष्टपेषण होगा। आवश्यकता है समर्थ लेखकोंकी अिस ओर दृष्टिका होना। अुनके हाथों हिन्दी अद्भुत शक्ति दिखा सकती है।

## विधानमें 'हिन्दुस्तानी' नाम निरर्थक है।

हमारे देशकी साहित्य-प्रचलित भाषाओंमें हिन्दीका अेक रूप 'अुर्दू' भी है। अिसका विदेशी रूप और विदेशी भाव अिसे देश-ग्राह्य नहीं करते हैं। तथापि अुर्दू भाषाका अेक व्यक्तित्व है। "हिन्दुस्तानी"की तो कोअी सत्ताही नहीं है। विधानकी धारा ३५१ में जो "हिन्दुस्तानी"का नाम लिया गया है वह सर्वथा निरर्थक है। कारण अनुसूची ८ में जो भाषाअें सन्निविष्ट हैं अुनमें "अुर्दू" है, "हिन्दुस्तानी" नहीं। "हिन्दुस्तानी" शब्दके प्रयोगमें अिधर विशेष धोखा-धडी पायी जाती है। अिसका अर्थ है कभी "अुर्दू" कभी "हिन्दी-अुर्दूकी खिचडी", और कभी "तद्भव-बहुल हिन्दी भाषा"। अुर्दू गद्य हिन्दीकी खडी बोलीपर आधारित होनेपरभी विशेष शक्तिशाली भावका माध्यम है। अुसका प्रभाव हिन्दी गद्यपर पड चुका है। फारसी-अरबी शब्द पर्याप्त मात्रामें साहित्यिक हिन्दीमें आ चुके हैं। अुस मात्रामें अधिक फारसी-अरबी शब्दोंके प्रयोगसे हिन्दी भाषा अुत्तर-भारतके बाहरकी जनताके लिये दुर्बोध हो जायगी।

प्रधानतया संस्कृतनिष्ठ भाषाही निखिल भारतमें स्वीकारने योग्य है। "हिन्दी-अुर्दूकी खिचड़ी" अेक किभूत किमाकार वस्तु है, जिसमें कला या व्यवहारकी दृष्टिसे कोओी भी गुण नहीं है। तद्भव शब्दोंमें मधुरता है और कभी कभी सुन्दर भाव-प्रकाशकी शक्ति भी पायी जाती है। परन्तु वे विभिन्न भाषाओंमें भिन्न हैं। हिन्दीमें "सूरज" कहेंगे, बंगालमें "शुज्जि"। अिनमेंसे अेक दूसरेको पहचान नहीं सकता। अिनके प्रयोगसे बड़ाही विभ्रम फैलेगा। संस्कृत तत्समोंका रूप सर्वत्र अेक है। अतअेव संस्कृत तत्सम-बहुल भाषाही निखिल भारतवर्षमें ग्रहण करनेके योग्य है।

## संस्कृतसे चिढ़ क्यों ?

मेरी समझमें नहीं आ रहा है कि क्यों कुछ लोग संस्कृतके नामसे चिढ़ते हैं ? संस्कृत न तो ब्राह्मणोंकी ही निधि है और न हिन्दुओंकीही। वस्तुतः यह तो सकल भारतवासियोंकी—अथवा यों कहिये यह विश्वकी—संसारकी—संरक्षणीय संपत्ति है। संसारकी अन्य समस्त जातियाँ अिसे अपनाती हैं। देखिये, मुसलमान प्रान्तके काबुलमें संस्कृतके अध्ययनसे कुछ नहीं होता है। मन्दिर-विध्वंसी सुलतान महमूदके सिक्कोंपर मुस्लिम कलमाके संस्कृतानुवादसे कुछ भी कुफ्र नहीं हुआ है। अबतक हमारे देशके कुछ तथाकथित मुस्लिम-प्रेमियोंकी दृष्टिमें संस्कृत शब्दोंका प्रयोग पाप क्यों और कैसे समझा जाता है ? हमारे मुसलमान भाअियोंकी सुविधा अुनको हमसे अलग बताना अुन्हींके लिये हानिकर है। धर्म भिन्न होनेपर भी जातीय जीवन सबका अेक होना चाहिये।

## केवल पारिभाषिक शब्द चाहिये।

पारिभाषिक शब्दोंके बनानेके अतिरिक्त राष्ट्रभाषा हिन्दीके विकासके लिये किसी कार्यकी आवश्यकता नहीं है। विधानकी धारा ३५१ में कहा गया है कि ये शब्द प्रधानतया संस्कृत भाषासेही लिये जायेंगे। यह निर्णय अुचितही है। कारण संस्कृतकी शब्द-समृद्धि और नूतन शब्द-निर्माणकी शक्ति अनुपम है। परन्तु पारिभाषिक शब्दोंके निर्माणमें अतिशीघ्रता नहीं करनी चाहिये। जहाँतक हो सके अैसे शब्द चुन लिये जायँ जिनका अुस अथवा तदनुरूप अर्थमें प्रयोग अधिक संख्यक भारतीय भाषाओंमें है। शब्द चुने जानेपर वे विभिन्न प्रान्तोंके और विश्वविद्यालयोंके विशेषज्ञ विद्वानोंके द्वारा स्वीकृत हों; तब अुनका प्रयोग होना चाहिये, जिससे विभ्रम पैदा न हो। प्रायः अैसा देखनेमें आता है कि सरकार या विधान-परिषदके द्वारा गठित कमेटियोंके कुछही सदस्य तत्तत् कार्यके लिये योग्य होते हैं। परंतु निर्णय बहुमतासे होता है। यह निर्णय अुचित है या नहीं यह बहुत देख-भालसे समझना चाहिये।

## वर्तमान रूपको लेकर चलें।

मैं पुनः कहना चाहता हूँ कि हिन्दी भाषा बन चुकी है। अुसको बनानेकी व्यर्थ चेष्टा न की जाय। देशका कल्याण अिस बातपर है कि सिद्ध वस्तुको लेकर चलें।

संसारके सकल पदार्थ परिवर्तनशील हैं। भाषाभी अिस नियमके अधीन है। हिन्दी भी स्वभावसे, नाना भाषाभाषियोंके प्रयोगके कारण अवश्यही बदलेगी। परन्तु बदलकर क्या रूप लेगी यह कहा नहीं जा सकता है। अुस भविष्यरूपके अंध अन्वेषणको छोड़कर वर्तमान रूपको लेकर आगे बढना चाहिये। कुछ लोगोंका कहना है कि हिन्दीमें लिंगकी कठिनाअी और भाषावालोंको आकुल करती है। अतअेव अिसे मिटा देना चाहिये या कुछ सरल नियमोंसे अिसे बाँध देना चाहिये। परन्तु मैं अिस मतका पोषण नहीं कर सकता। लिंगके सम्बन्धमें कठिनाअी और भाषाओंमें भी है। यथा—जर्मन, फ्रेंच। परन्तु विदेशियोंकी सुविधाके लिये आन्तरराष्ट्रीय व्यवहारमें अिन भाषाओंमें कोअी परिवर्तन नहीं किया जाता है। संस्कृतमें लिंगकी कठिनाअी कम नहीं है। कौन भाषा अैसी है जिसमें कोअी कठिनाअी न हो? अंग्रेजी—जिसे बहुत लोग छोड़ना नहीं चाहते—कुछ अंशोंमें बहुत कठिन भाषा है। जैसे—अुपसर्गोंका प्रयोग।

## भाषानुसारी प्रान्त-रचना हो।

राष्ट्रभाषाके सम्बन्धमें अुचित विधान करनेमें जो अड़चनें पड़ीं अुनमें कअी भाषा बोलनेवाले प्रान्तोंकी सत्ताभी अेक कारण है। कांग्रेसने पहिलेसेही भाषाके अनुसार प्रान्तोंका विभाजन किया था; किन्तु कांग्रेस-सरकार अुन सिद्धान्तोंको राष्ट्रीय शासनके क्षेत्रमें क्यों कार्यान्वित नहीं करती है, यह मेरी समझमें नहीं आता है। अिससे हम टुकड़ोंमें बँट जायेंगे, यह कहना नितान्त दुराग्रहकी बात है। कअी प्रान्तोंमें अेकही भाषा प्रायः सर्वत्र चलती है। वे प्रान्त अगर भारतवर्षसे अलग नहीं हैं तो और प्रान्त कैसे परस्पर विच्छिन्न हो जायेंगे। कोअी प्रान्त बड़ा हो या छोटा। जनसंख्याके अनुसार शासन-व्यवस्था हो सकती है। मोटी तौरपर अेक भाषाका अेक प्रान्त बनानेसे शिक्षाकी सुव्यवस्था सुधर जायगी। कारण मातृभाषाही शिक्षाके लिये सर्वोत्तम माध्यम है।

## शिक्षाका माध्यम मातृभाषा

मेरी सम्मतिमें प्रान्तीय सकल कार्य, विश्व-विद्यालयोंमें शिक्षा, प्रधान न्यायालयमें व्यवहार, प्रान्तीय भाषामें हो और केन्द्रीय सकल कार्य और आन्तर-प्रान्तीय कार्य राष्ट्रभाषामें। केन्द्रीय सर्वप्रधान न्यायालय तथा प्रान्तीय न्यायालयोंके निर्णय अनुवाद-द्वारा सर्वजन-विदित किये जा सकते हैं। प्रान्तीय विश्व-विद्यालयोंमें अितर प्रान्तके विद्वान् अध्यापक हो तो वे तबतक राष्ट्रभाषामें अध्यापन कर सकेंगे जबतक वे प्रान्तीय भाषा सीख नहीं लेते हैं।

## राजदूतोंके कार्य हिन्दीमें हों

भारतवर्षके बाहर आन्तरजातीय व्यवहारके लिये हम तुरन्त राष्ट्रभाषाको काममें ला सकते हैं। अगर राजदूतोंके कार्यालयोंमें हिन्दी जाननेवाले पर्याप्त नहीं

हैं तो हर क्षेत्रमें अेक अेक हिन्दी जानकार व्यक्तिको नियुक्त करके और अवशिष्ट व्यक्तियोंके हिन्दी शिक्षाकी व्यवस्था करके हम अेसा वर्षके अन्दर-बाहर हिन्दीके द्वारा कार्य चला सकेंगे।

## ११ : भारतकी संघ-भाषा

[भारतीय संविधान-सभाके सदस्य श्री० लक्ष्मीनारायण साहूजी, 'कटक' का जो लेख 'राष्ट्रभाषा' अंग्रेजी पत्रिका, नयी दिल्ली, मअी १२, १९४९ में प्रकाशित हुआ था, अुसका यह अनुवाद है।]

### संन्यासियोंकी भाषा

सब लोगोंके लिये कौन-सी भाषा भारतवर्षमें प्रयुक्त हो सकती है ? भारतवर्षके कोने-कोनेमें यहाँसे वहाँतक बोली जानेवाली सर्वसाधारणभाषा अेक हिन्दीही हो सकती है। अिसे सिद्ध करनेकी कोअी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि कअी वर्षोंसे सब प्रान्तोंके, सर्व धर्मोंके तथा सर्व देशोंके सन्यासी अिसी भाषाका प्रयोग करते आये हैं। चाहे वह सन्यासी बौद्ध-धर्मी रहा हो, अथवा जैन-धर्मी या हिन्दू-धर्मका भी क्यों न हो; वह हिन्दीकेही माध्यमसे अपना काम चलाता आया है। अपनी धार्मिक विचार-परंपराको सब हिन्दीके माध्यमसे व्यक्त करते रहे हैं। अिस कार्यमें उन्होंने अपना बंगालीपन,ओरियापन, तामिलपन या तेलुगुपन आदिका कोअी विचार ध्यानमें न लेते हुअे हिन्दीको ही आश्रय दिया; न कभी किसी संन्यासीने अपने संन्यास-धर्मका महत्त्व अंकित करनेके लिये अुसके बंगाली, मद्रासी, आदि होनेका दावा किया।

### मठाधिपतियोंके द्वारा हिन्दीका स्वीकार

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह देखी गयी है कि भारतके मठोंके मठाधिपति या महन्तोंकी पीठ-स्थापनाके समय अुत्तर-भारत और दक्षिण-भारतके आचार्योंका आदान-प्रदान होता रहा है। अिस आदान-प्रदानके कार्यके लिये भी हिन्दीकाही आश्रय लिया गया। अिन मठोंके आचार्योंने हिन्दीकाही आश्रय लिया। अिन मठोंके आचार्योंने हिन्दीको क्यों आत्मसात् किया ? बदरीनाथ, काशी या सक्करके किसी मठके लिये किसी सुदूर दक्षिणभारत-निवासीको अुसके आचार्य-पदपर नियुक्त किया जाता था। अुसी प्रकार दक्षिण-भारतके मठाधिपत्यके लिये किसी अुत्तर-भारतीय व्यक्तिको ढूँढा जाता था। यह आदान-प्रदान हिन्दीके ज्ञानपरही निर्भर रहता था। अिस प्रकारका आदान-प्रदान भारतके सभी प्रान्तोंमें चलता आया है। हिन्दीकी परंपराको भी अिन मठोंके अधिपतियोंने अक्षुण्ण रखा है।

### तीर्थोंकी भाषा

तीसरी बात यह है कि भारतके चार पवित्र धामोंकी यात्रा करनेवाले सभी प्रान्तोंके भारतीयोंके साथ अुन तीर्थोंके पंडे हिन्दीमेंही सब व्यवहार करते रहे हैं। (१) दक्षिणमें रामेश्वर, (२) पूर्वमें जगन्नाथपुरी, (३) अुत्तरमें बदरीनाथ तथा (४) पश्चिममें द्वारका—ये भारतीयोंके चार बड़े-बड़े तीर्थस्थान माने गये हैं। यहांसे हिन्दीके आदान-प्रदानका वैचारिक कार्य होता रहा है। अिस कार्यके करनेवाले पंडे भलेही पढ़ेलिखे क्यों न रहे हों; फिरभी अुन्होंने अपना कार्य हिन्दीकेही द्वारा चलाया।

### संस्कृताश्रयी भाषा भारतकी प्रकृतिके अनुकूल

अिस प्रकार हमने देखा कि अिन हिन्दू संन्यासियों और पंडोंकी भाषा वही हिन्दी रही, जिसे सब आसानीसे समझते रहे तथा जिसका मूल स्रोत संस्कृतही रहा। अिसी प्रकार अुड़िया, बंगाली, मराठी, गुजराती आदि भाषाअें भी संस्कृतसेही निकली हैं। अतअेव अिन भाषा-भाषियोंके लिये हिन्दीको समझना सदैव आसानही रहा।

अुर्दू या हिन्दुस्तानीका प्रवेश भारतमें मुसलमानोंके द्वारा हुआ। अुर्दू या हिन्दुस्तानी अेक खिचड़ी भाषा है। फ़ारसी या अरबीका मिश्रण कर बोलनेसे हिन्दुस्तानी समझी जाती है तथा अपनी प्रेरणा संस्कृतसे हिन्दीही लेती रही है। यह प्रेरणाही सबसे महत्त्वकी ठोस चीज़ है। रामायण और महाभारत भारतके दो महान् ग्रंथ हैं। अिनकी मूल प्रेरणा संस्कृतसे प्राप्त हुअी है। सभी महत्त्वपूर्ण कार्य संस्कृतसे ही प्रेरणा लेते रहे हैं। नये शब्दोंके निर्माणार्थ आकर भाषाके रूपमें भी हम संस्कृतका ही मुंह ताकते हैं। यह बिलकुल स्वाभाविकही है, क्योंकि यह भारतकी प्रकृतिके अनुकूल ठहरता है।

### थोड़े विदेशी शब्द आत्मसात् कर सकते हैं।

यदि कोअी चाहे तो अुर्दू सीख सकता है; जिस प्रकार कोअी अंग्रेजी सीखना चाहे तो सीखता है। जैसे हमारे लिये विचार प्रदर्शित करनेका माध्यम अंग्रेजी नहीं हो सकती अुसी प्रकार अुर्दूभी नहीं हो सकती। हम अुर्दूके शब्दोंको अुसी तरह अपना सकते हैं जैसे अंग्रेजीके। पुराने समयसे हमने कअी विदेशी भाषाओंको शब्दोंको अपना लिया है। यह कार्य विदेशियोंके संपर्कमें आनेसे होता रहा। किसी दूसरी भाषाके शब्दोंको आत्मसात् करना अेक बात है और किसी भाषाके बदले किसी दूसरी भाषाको लेना अेक अलग बात है। प्रकृतिके द्वाराही भिन्न-भिन्न भाषाअें भिन्न-भिन्न स्थानोंमें बोली जाती रही हैं। मनुष्य अुनको निश्चित नहीं कर सकता। युरपमें चाहे वह अंग्रेजी या फ्रेंच हो; फारसमें, तुर्कस्तानमें या अरबमें चाहे वह फारसी या अरबी हो; किन्तु भारतमें, भारतकी (Linqua Indica) सर्वसाधारण भाषा हिन्दी ही है और वह केवल हिन्दीही रहेगी।

## अुर्दू 'भारतीय प्रवृत्तिके विरुद्ध'

भविष्यमें अुर्दू या हिन्दुस्तानी भारतकी जनसाधारणकी भाषा बने, अिसलिये कुछ लोग प्रयत्नशील हैं। किसी भी वृक्षकी वृद्धि अुसकी जड़ोंपर निर्भर रहती है। यदि जड़ें मजबूत न हों तो वृक्ष कभीभी नहीं पनप सकता। अुर्दू किसी भी भारतीय भाषाका मूल या जड़ नहीं है। वह कभी भी किसीको प्रेरणा नहीं दे सकती। अुर्दू या हिन्दुस्तानी लश्करके साथ पड़ावकी भाषा रहती आयी है। पहले वह मुसलमानी लश्करकी भाषा थी, बादमें अंग्रेजी लश्करकी भाषा बनी। अिसलिये अुर्दू या हिन्दुस्तानी सर्वसाधारण भाषाके स्थानपर कभी आरूढ़ नहीं हो सकती। यह स्थान केवल हिन्दीको ही मिल सकता है। क्योंकि अिसे अधिकसे अधिक संख्यामें लोग बोलते या समझते हैं। अुसकी प्रेरणा संस्कृतपर निर्भर है। अरबी या फारसीपर आश्रित अुर्दू भारतकी मिट्टीके अनुकूल नहीं है। भारतकी सारी प्रकृतिही अुसके विरुद्ध रहेगी।

## शब्द आते जाते रहेंगे।

फिर हिन्दीके सर्वसाधारणकी भाषा बननेमें डर किस बातका है? डर केवल अिस बातका है कि जो शब्द अरबी-फारसीसे आकर हिन्दीमें घुल-मिल गये हैं। अुनका धीरे-धीरे लोप हो जायगा। यदि यह लोप हुआ तो क्या होगा? यह तो सभी मानते हैं कि जो शब्द या मुहावरे किसी समय प्रचलित थे वे आज नहीं हैं। अैसा क्यों है? मानवका मस्तिष्क सभी अनगिनत शब्दोंको सदा अपनेमें कभी नहीं रख सकता। अिसकीभी अेक मर्यादा होती है। अिसलिये शब्द तो आते-जाते रहेंगे ही। शब्दोंका अिस प्रकारका सम्बन्ध और आदान-प्रदान भाषामें निरंतर होता रहता है। व्यापार और व्यवसायसे नये-नये शब्द हमारी शब्द-सम्पत्तिमें भरते है। पुराने और अप्रचलित शब्द भूलकर नये शब्द अुनका स्थान ग्रहण कर लेते हैं। शब्दोंका जबतक अुपयोग हो सकता है तबतक वे प्रचारमें रहते हैं। जो शब्द हमपर लादे गये थे वे निकल जाते हैं। अिसलिये अूपर प्रदर्शित भय निरर्थक और अनावश्यक है।

## सांस्कृतिक भाषाकी आवश्यकता

आजका नवनिर्मित भारत राष्ट्र अेक सांस्कृतिक भाषाकी आवश्यकताका अनुभव करता है और अुसकी पूर्ति हिन्दीके द्वाराही होगी। अुर्दू या हिन्दुस्तानीके द्वारा यह कार्य नहीं होगा।

मैं यह भी दावेके साथ कह सकता हूँ कि हमारी संस्कृति संस्कृतसेही बनी है। हमारे जीवनके दार्शनिक, धार्मिक तथा ज्ञानके क्षेत्रके सभी तत्त्व संस्कृत शब्दोंमें

तथा संस्कृत साहित्यमें भरे पड़े हैं। अुनकी ठीक प्रकारसे पूर्ण अभिव्यक्ति हिन्दी-केही द्वारा हो सकती है। हिन्दीकी अन्य भाषा-भगिनियाँ अुड़िया, मराठी, बंगला तथा गुजराती आदि संस्कृतकीही पुत्रियाँ हैं। हिन्दीके बदले अुर्दू या हिन्दुस्तानीकी समस्या खड़ी करना व्यर्थका आडम्बर मात्र है।

### हिन्दीही हमारी राष्ट्रभाषा

अुर्दू अन्य भाषाओंकी तरह अेक अलग भाषा रह सकती है। प्रश्न यह है कि संघकी भाषा कौनसी हो? जिसका अुत्तर मैंने देही दिया है और सिद्ध भी कर दिया है कि वह केवल हिन्दीही हो सकती है। वह हिन्दी विशुद्ध हिन्दीही होगी जिससे कि हमारे कर्मचारी विदेशी शब्दोंको गलत समझकर अुनका दुरुपयोग करनेसे बचे रहेंगे।

---

## १२ : अुड़िया और हिन्दीमें समानता

[ अुड़ीसाकी भाषा अुड़ियामें और हिन्दीमें कैसी समानता है, यह बतलानेके लिये "हिन्दी" मासिक पत्रिकाके जुलाअी-अगस्त-सितम्बर १९४६ की संख्या १० से १२ में आये हुअे लेखका (पृ २८–२९) मुख्य भाग यहाँ दिया है। अुसके लेखक श्री भैरवलाल नवयाना, कटक हैं। ]

### अुड़ियाकी लिपि

अुड़ीसा अहिन्दी प्रान्त है। अुसकी भाषा अुड़िया है जो संस्कृतकी पुत्री है। अुड़िया भाषाका अधिकारी ढंगसे अध्ययन करनेपर यह स्पष्ट होता है कि अुसके स्वर, व्याकरण व शब्दकोश संस्कृतसे लिये गये हैं तथा अुसमें संस्कृत भाषासम्बन्धी महत्त्वपूर्ण अंश है। अुसकी लिपि देवनागरी लिपिकाही अपभ्रंश है। अुड़िया भाषाके विशेषज्ञोंका मत है, कि प्राचीन कालमें लोहेकी कलमसे तालपत्रपर लिखावट होनेके कारण देवनागरी लिपिकी लिखावटमें घुमाव-फिराव आ गया है। लोहेकी कलमसे आडी लकीरें खींची जानेके कारण तालपत्रके फट जानेकी संभावना रहती है। अस्तु, अक्षरोंका सिर बाँधनेमें और अक्षरोंके आडी लकीरोंको लिखनेमें घुमाव फिरावकी प्रणाली पड गयी और धीरे धीरे आगे चलकर अुसका स्वरूप भिन्न सा हो निश्चित हो गया। अुड़िया भाषाका सोलह आना संस्कृतसे साम्य है अुसकी लिपि देवनागरीसे मिलती-जुलती होनेके कारण हिन्दीके अधिक समीप है। अितिहासका अध्ययन करनेसे पता चलता है कि अुड़िसा संस्कृत-प्रधान देश रहा है। पुरी, भुवनेश्वर आदि

स्थानोंमें संस्कृतके धुरंधर विद्वानोंके विशाल समूह प्राचीन कलिंगकी गौरव-गरिमाको प्रकाश देते रहे हैं। अशोकके शासन-कालमें शिक्षित वर्गकी व्यावहारिक भाषा संस्कृत या पाली थी। समयानुसार अुसमें परिवर्तन होकर अुसका वर्तमान स्वरूप अुड़िया भाषा हो गया। अुड़िया भाषाके स्वर-व्यंजनोंकी बनावट देवनागरी लिपि और कुछ बंगलाके समान है। बंगाल और अुड़िसाका निकटतम सम्बन्ध सदियोंसे रहा है। अिसपर बंगला भाषाका भी प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

## कुछ अुदाहरण

अुड़िया भाषा बोलनेमें थोड़ी कठिन है; किन्तु समझनेमें बड़ी सरल है। भारतके किसीभी प्रान्तका व्यक्ति दो-चार महीने अुड़ीसामें रहनेके कारण अुड़िया भाषाको बोल और समझ सकता है। जिस प्रकार हिन्दी और गुजराती भाषामें साधारण अन्तर है, अुसी प्रकार हिन्दी और अुड़ियामें भी है। अुड़िया शब्दोंका अुच्चारण प्रायः हिन्दीसे मिलता-जुलता है। अुदाहरणके लिये कुछ वाक्य देता हूँ।

| हिन्दी | अुड़िया |
|---|---|
| १. क्या करोगे ? | १. कण करिब ? |
| २. कहाँ जा रहे हो ? | २. कुआडे जाअु अछ ? |
| ३. आपका नाम क्या है ? | ३. आपणांकर नाम कण ? |
| ४. राम कल पुरी चला गया। | ४. राम कालि पुरी चालि गला। |
| ५. तुम पाठ पढ़ोगे। | ५. तुमें कालिकि पाठ पढ़िब। |
| ६. रामशास्त्री बड़ा धुरंधर विद्वान् है। | ६. रामशास्त्री बड़ धुरंधर विद्वान्न। |
| ७. आप यदि कल आ जाते तो हमारा बड़ा अुपकार होता। | ७. आपण जदि कालि आसन्ते त आमर बड़ अुपकार हुअन्ता। |
| ८. आपके भलेके लिये हमारा यह प्रयास है। | ८. आपणांकर भल सकाशे अमर यही प्रयास। |

अिस प्रकार आप देखेंगे कि अुड़िया और हिन्दी भाषाकी समानता कितनी अधिक है।

## संस्कृतीकरण स्वाभाविक.

अुड़ीसा हिन्दुओंका धर्म-प्रधान देश है। भारतके सुदूर प्रान्तोंसे अुसका सम्बन्ध सदियोंसे रहा है। प्रतिवर्ष लाखों यात्री जगन्नाथकी यात्रा करनेके लिये तीर्थ-धाम पुरीमें आया करते हैं। अुन आनेवालोंका व्यावहारिक कार्य बोलचालकी हिन्दीमें ही होता है। अुड़ीसाके राजा अनंग भीमदेवके शासन कालमें (१२ वीं शताब्दीमें) जगन्नाथजीके मन्दिरका निर्माण हुआ। अुसकी पूजा प्रतिष्ठा आदिके लिये अुत्तरी

भारतसे सहस्र ब्राह्मण-परिवारोंको लाकर अुडीसामें बसाया गया । अुन ब्राह्मण-परिवारोंकी तत्कालीन व्यावहारिक भाषाभी संस्कृतसेही मिलती-जुलती थी, जो परिवर्तित होकर अुडिया भाषामें मिल गयी । भाषा-विशेषज्ञोंका मत है कि अुडिया भाषाका संस्कृतीकरण स्वाभाविक और बहुत प्राचीन है । अुडिया और हिन्दीकी भिन्नता साधारण है । अुडीसामें हिन्दी प्रचारकी व्यापकता अधिक है ।

## हिन्दीका प्रभाव

बिहार और मध्यप्रान्तका पडोसी होनेके कारण अुडीसापर हिन्दीका प्रभाव स्वाभाविक और प्राचीन है । आजकल यहाँ लगभग अेक लाख हिन्दी भाषा-भाषी जनता वाणिज्य-व्यवसायके कारण निवास करती है, जिनके सम्पर्कके कारण अुडीसाकी जनतामें हिन्दी भाषाका व्यवहार वर्षोंसे व्यापक बनता आ रहा है । वाणिज्य-व्यवसायको लेकर अुडीसा-वासियोंका भी दूसरे प्रान्तोंमें जाना होता है । जहाँपर हिन्दी भाषा-द्वाराही सब काम अुन्हें करना होता है । अुडीसाका शिक्षितवर्ग हिन्दी-की गुण-गरिमाका अधिक अनुभव करता है और दिन-प्रतिदिन वह हिन्दी भाषाके निकट पहुँच रहा है । अुडिसाके किसीभी कोनेमें चले जानेसे हिन्दी भाषाकी बोल-चालसे साधारणतया काम चला जाता है ।

---

# १३ : संस्कृतही राष्ट्रभाषाका आधार ।

[कालिकतके सविधान-सभाके सदस्य श्री करुणाकरजी मेननका यह कथन (Statement) राष्ट्रभाषा (अंग्रेजी) के अंकमें मअी १२–१९४९ में प्रकाशित हुआ । अुसका अनुवाद यहाँ दिया है।]

## हमारी समस्या

यदि हम केन्द्रीय सविधानमेंही राष्ट्रभाषाका सवाल तय कर लें तो भविष्यमें देशकी किसी आगामी केन्द्रीय विधान सभा को अिसे तय करना नहीं पडेगा । अिसके कारण बहुत स्पष्ट हैं । यदि हम अिस बारेमें कोअी निर्णय न ले और अुसे वैसाही छोड दें तो अिसका अर्थ यह होगा कि देशकी प्रगति सब रूपोंसे रुक जायगी । अुसमें नाना प्रकारसे गतिरोध अुत्पन्न होगा । हमारे अुच्च न्यायालयोंकी रिपोर्ट छापनेमें असुविधा अुत्पन्न होगी । यदि अिनकी रिपोर्ट अलग अलग प्रान्तीय भाषाओंमें प्रकाशित की जाय तो बडी गडबडी अुत्पन्न हो जायगी । जिस प्रान्तमें कअी भाषाअें बोली जाती हैं, वहाँ तो और भी असुविधा अुत्पन्न हो जायगी ।

## मलयालमपर संस्कृतका प्रभाव

हमारी राष्ट्रभाषा अैसी हो जो सब प्रान्तोंके लोग आसानीके साथ समझ सकें। जहाँतक मलयालम जाननेवाले लोगोंका सवाल है, मैं कह सकता हूँ कि वे चाहेंगे कि हमारी राष्ट्रभाषा अैसी हो जो संस्कृतसे प्रेरणा लेती है। फिरभी मेरा निजी मत यह है कि आवश्यकतानुसार अरबी-फारसी तथा अन्य भाषाओंके शब्दभी ग्रहण करनेकी छूट राष्ट्रभाषामें रहे। अैसा सर्वसाधारणतया समझा जाता है कि मलयालम भाषा तमिलकी भाषाभगिनी है तथा अुससेही निकली है। फिरभी मैं यह कह सकता हूँ कि मलयालमपर संस्कृतका प्रभाव बहुत अधिक है। संस्कृत का जितना प्रभाव बंगलाको छोडकर शायदही किसी अन्य भाषापर पडा हो। आजकलभी मलयालमपर संस्कृतका प्रभावीकरण विशेष रूपसे जारी है। संस्कृतसे यदि पारिभाषिक शब्द बनाये जायँ तो मलयालम-भाषी लोगोंको कोअी आपत्ति नहीं होगी। राष्ट्रभाषाके स्वरूप-निर्माणमें अरबी फारसीको संस्कृतके समान स्थान देना मुझे कतअी स्वीकार नहीं।

## राष्ट्रभाषाका आधार संस्कृतही

हमें दो प्रकारसे नये शब्द निर्माण करने होंगे। अेक तो नूतन शब्द बनाने पडेंगे तथा दूसरे अन्य भाषाओंके शब्द राष्ट्रभाषामें लेने पडेंगे। यह कार्य समय तथा आवश्यकता दोनोंको ध्यानमें लेकर करना पडेगा। अिसी तरह राष्ट्रभाषा समृद्ध विचारोंको अभिव्यक्त करनेमें सक्षम और परिपुष्ट होगी। फिरभी मूलत हमारी राष्ट्रभाषाका ढाँचा संस्कृतपर निर्भर रहेगा। अुर्दू-पर्शियनसे निकले हुअे शब्द तथा संस्कृतसे निकले हुअे शब्द अिस प्रकारके दोहरे प्रकारोंके शब्दोंके मैं विरुद्ध हूँ। पर्याय चल सकते हैं, किन्तु नये शब्दोंके गठनमें अेकही 'आधार-भाषा' यदि मान ली जाय तो बडा अच्छा होगा। नहीं तो भविष्यमें अिन दो प्रकारके शब्दोंसे बडी गडबडी अुत्पन्न होगी। नये विचारके लिये नया शब्द बने। मान लीजिये, मलयालममें किसी मौलिक बातको प्रदर्शित करनेके लिये कोअी मौलिक शब्द प्रचलित है और यह राष्ट्रभाषामें नहीं है, तो अैसी परिस्थितिमें मलयालम शब्दको राष्ट्रभाषामें ग्रहण कर लेना अुचित होगा। अन्य भाषाओंके बारेमें भी यही कहा जा सकता है। किन्तु यदि अैसा शब्द राष्ट्रभाषाकी प्रवृत्ति तथा स्वभावके अनुकूल न हो तो संस्कृतकाही सहारा लिया जाय।

## मलाबार—मुस्लिमभी फारसी लिपिका अस्वीकार करेंगे।

मलयालम-भाषा प्रदेश राष्ट्रभाषाके लिये देवनागरीके साथ फारसी लिपिका स्वागत कभी नहीं कर सकता। हमारी मलयालम लिपिके साथ हमें देवनागरी और फारसी लिपि भी सीखनी पडे तो तीन लिपियोंका बोझ हमारे सिरपर पडेगा,

जो हमें असह्य होगा और हम दक्षिण-भारतीयोंपर यह बड़ा अन्याय होगा। फारसी लिपिको अनिवार्य कर देनेसे अुसकी घोर प्रतिक्रिया और अुग्रतम विरोध होगा जिसका परिणाम दोनों लिपियोंका बहिष्कार होगा। फारसी लिपि मलयालम-भाषी लोगोंके स्वभावानुकूल नहीं है। मलयालमके मौलवी अरबी लिपिके खिलाफ हैं और साधारण मलयालम मुस्लिमभी फारसी-अरबी लिपिका प्रयोग नहीं करते। मलाबारके लोगोंके लिये फारसी लिपि अेक विदेशी चीज होगी। अिसलिये मलाबारके मुस्लिमभी अिसे अस्वीकार करेंगे।

### अनुवादकी आवश्यकता

हिन्दीके अुत्तमोत्तम चुने हुअे ग्रंथ मलयालममें और मलयालमके हिन्दीमें अनुवादित किये जायें। अिससे सांस्कृतिक प्रगति और अैक्य तथा आत्मीयता बढ़ानेमें सहायता मिलेगी।

---

## १४ : अंग्रेजीका स्थान हिन्दीही ले सकती है।

[ दिसम्बर सन १९४८ में मेरठके साहित्य-सम्मेलनके अधिवेशनके अवसरपर राष्ट्रभाषा-परिषदके अध्यक्षपदके नाते श्री० अनंतशयनम् आयंगारने जो भाषण दिया, अुसमेंसे महत्त्वपूर्ण अंश यहांपर दिया है। श्री आयंगारजी तमिल भाषा-भाषी हैं। आप भारतीय लोकसभाके सभापतिपदपर प्रतिष्ठित हैं। ]

### भारतीय भाषाओंका हृदय अेक है।

भारतके स्वर्णिम-युगमें संस्कृत अेक भाषा रही। धीरे-धीरे अुसका स्थान प्राकृत, मागधी आदि अुसकी पुत्रियोंने लिया और कालान्तरमें पौत्रियोंके रूपमें अुसकी जो संतानें अुत्पन्न हुअीं अुन्होंने भारतकी विभिन्न प्रान्तीय भाषाओंका रूप धारण किया। अपनी अिस अवस्थामें वे अेक-दूसरेसे कुछ भिन्न रूपा अवश्य हो गयीं; परन्तु अुनकी जननी अेक संस्कृत होनेके कारण अुनका हृदय अबभी अेक बना हुआ है। अुनकी वर्णमाला अेकही सिद्धान्तको लेकर चलती है, अुनके रूप अबभी संस्कृतनिष्ठ हैं और अुनकी भावव्यंजना अबभी अेक-सी है। दक्षिणकी भाषाओंको लें तो अुनमें भी ७५ प्रतिशत शब्द संस्कृतके मिलते हैं। प्रान्तीय भाषाओंकी यह अेकरूपताही पुकार-पुकार कर बता रही है कि हमारी राष्ट्रभाषा क्या हो सकती है? हम राजनैतिक पचड़ोंमें पड़कर कोअी कृत्रिम भाषा बनानेका

प्रयत्न भलेही कर लें; परन्तु प्रकृति अुसे चलने नहीं देगी। वह तो अुसीको राष्ट्रभाषाके रूपमें जीवित रहने देगी जो सत्य है, कृत्रिम नहीं; जो स्वाभाविक है, बनावटी नहीं; जो विशुद्ध भारतीय है, अभारतीय नहीं और विदेशी भाषाओंके निकट नहीं, हमारी प्रान्तीय भाषाओंके निकटतम है।

## अुर्दू जनताकी भाषा न बनी।

भारतपर अनेक बार विदेशी आक्रमण हुअे। राजनैतिक दृष्टिसे हम पराजित हुअे रही; परन्तु हमारी राष्ट्रभाषा फिरभी पराजित नहीं हुअी। अुसके आगे आक्रमणकारियोंको भी मुंहकी खानी पड़ी। मुसलमान बादशाहोंने यहाँ आकर फ़ारसीको भारतकी राजभाषा बनानेका जी जानसे यत्न किया; पर वे अन्तमें विफल हुअे। विवश होकर उन्हे फारसीका फातिहा पढकर देशमे राष्ट्रभाषाके रूपमें चलित हिन्दीके तत्कालीन रूपको अपनाना पड़ा। हिन्दी शब्दोंसे अनभिज्ञ होनेके कारण अुन्होंने राष्ट्रभाषामें अरबी-फारसी शब्दोंको मिला दिया और यहींसे हिन्दीके मुसलमानी रुप अुर्दू की सृष्टि हुअी। अिस प्रकार अितिहासमें अुर्दूकी सृष्टि राष्ट्रभाषा हिन्दीको विदेशियोंपर प्राप्त हुअी विजयकी सदा प्रतीक बनी रहेगी। बादमें मुसलमान लेखकोंने अिसे अरबी-फारसी, तथा अभारतीय भावोंसे पुरी तरह भर दिया और अिस रूपको पाकर वह भारतीय जीवनसे दूर दूर होती चली गयी। परिणाम यह हुआ कि वह जनताकी भाषा न बनकर अिने-गिने पढ़े-लिखे लोगोंकी भाषा बनकर रह गयी।

## अंग्रेजीका प्रभाव

मुसलमानोंके बाद अंग्रेज आये और अुन्होंने यहाँ अंग्रेजीका बोलबाला करना आरंभ किया। जहाँ राजनीतिके क्षेत्रमें अुन्होंने हमें पराजित किया वहाँ भाषाके क्षेत्रमें भी हमें कुचलनेकी ठानी। मुसलमान विदेशियोंने जहाँ स्वयम् फ़ारसी छोड़कर फ़ारसीमयी हिन्दीको अपना लिया था वहाँ अंग्रेजोंने अिससे विपरीत यह यत्न किया कि अिस देशके निवासी अपनी भाषाको भूल जायें और अुनकी अंग्रेजी भाषाही अपना लें। यह कूटनैतिक चाल अितनी सफल हुअी कि देखते-ही-देखते हिन्दी तथा अुर्दू ोों-पर अंग्रेजी हावी हो गयी। क्रमशः यह समय आ गया जब अंग्रेजी पढ़े-लिखे व्य क्तही देशके सिरमौर माने जाने लगे। धोबी, माली आदि निम्नसेवकों और अंग्रेजीसे अनभिज्ञ वायू-समुदायसे वार्तालाप करनेके लिये अंग्रेजोंने हिन्दुस्तानी नामकी अेक नयी विचित्र भाषाकी सृष्टि कर डाली जो अंग्रेजी अुच्चारणके कारण अत्यन्त विकृत रूपमें प्रकट हुअी। आगे चलकर हमारे अंग्रेजी शिक्षित भारतीयोंने अिसे हास्यास्पद रुप दे दिया। अिसका अेक अुदाहरण यहाँ दे देना अुचित होगा।

" मैंने यह ट्रेन मिस कर दी । आपने डिटेन न कर लिया होता तो मैं ज़रूर कैच कर लेता ।"

अिस प्रकारकी खिचड़ी भाषा अंग्रेजी-शासनमें चल सकती थी । पर अब स्वतंत्र भारतमें अिस वर्णसंकरके लिये कोअी स्थान नहीं हो सकता ।

## अंग्रेजी छोड़ो

अब रही बात अंग्रेजीकी । सो अंग्रेजोके चले जानेके बाद भी अंग्रेजी यहाँ रह जाय तो हमारे राष्ट्रपिताके 'अंग्रेजो, भारत छोड़ो' आन्दोलनका कोअी अर्थ नहीं रहता । यदि स्वतंत्र भारतमें भी हम अंग्रेजीको गले लगाये रहे तो हमारी अयोग्यताका अिससे बडा प्रमाण और क्या होगा ? अिसी कारणसे अुन्होंने अंग्रेजीमें भाषण देना त्याग दिया था । जब कभी विवश होकर अुन्हें अंग्रेजीमें बोलनाही पडता था तो अुनके हृदयको बडा दुःख होता था और वे यह कहे बिना न चूकते थे कि " अब अंग्रेजी छोडो और अपनी राष्ट्रभाषा अपनाओ । " हमें अिस मंत्रको लेना होगा । अंग्रेजीने हमारी संस्कृतिका विनाश कर दिया और हमारा मानसिक दृष्टिकोणभी बदल डाला । हमें आत्मिकता और हमारी दार्शनिकताके आधारपर यदि अपने जीवनका आधार बनाना है तो अंग्रेजी भाषाकी सत्ताका अन्त कर देना होगा । अिससे यह अभिप्राय नहीं कि अंग्रेजीका सर्वथा बहिष्कार कर दिया जाय । आन्तरराष्ट्रीय जगतमें यह बड़ी प्रभावशाली भाषा है । अतः आन्तरराष्ट्रीय व्यवहारके लिये हम अिसका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं । प्रत्येक भाषाकी अपनी संस्कृति होती है, जिसके विस्तारके साथ अुस भाषाका भी विस्तार होगा । भारत में अंग्रेजी अिसे पूर्णतः व्यक्त नहीं कर सकेगी । अतः अंग्रेजी छोड़कर हमें अपनी राष्ट्रभाषा लेनी होगी । अिसी कारणसे अंग्रेजीको हम अपनी राष्ट्रभाषाके पदपर नहीं रख सकते ।

## हिन्दीही हमारी राष्ट्रभाषा

अब यह प्रश्न अुत्पन्न होता है कि जब अंग्रेजीका अन्त हो जाय तो फिर अुसके स्थानपर समस्त भारतवर्षके लिये अेक सामान्य भाषा होना भी आवश्यक है । विभिन्न प्रान्तीय भाषाओंका अपना प्राचीन अितिहास और साहित्य है । अतः अुनकी स्थिति अक्षुण्ण रहनी भी परमावश्यक है । यह देखते हुअे भी हमें आन्तरप्रान्तीय सम्पर्कके लिये अेक भाषा चुननीही पडेगी । प्रजातन्त्रीय देशमें अधिकतम जनसमुदायद्वारा बोली और समझी जानेवाली भाषाही यह कार्य संपादन कर सकती है । अिस दृष्टिसे हिन्दी अिस कसौटीपर पूरी अुतरती है । हिन्दी संस्कृतके निकटतम है, अिसमें हमारी प्राचीनतम संस्कृति भी सुरक्षित है और यह सबसे अधिक मात्रामें भारतीयोंद्वारा बोली, समझी और लिखी-पढी जाती है । अिसमें प्रत्येक प्रकारके भाव व्यक्त करनेकी क्षमता है । अितनाही नहीं, अहिन्दी भाषाभाषी प्रान्तोंके लोग भी सरलतासे टूटी-

फूटी हिन्दी बोलकर अपना काम चला लेते हैं । मद्रास, सिन्ध, महाराष्ट्र, आन्ध्र, कन्नड आदि प्रान्तोंके निवासी जब केदार, बद्री, प्रयाग, काशी, मथुरा, वृंदावन आदि तीर्थोंकी यात्रा करने निकलते हैं तो यही हिन्दी अुनकी सहायिका होती है । अिसी प्रकार अुत्तर-भारतके पंजाब, बंगाल, आदि प्रान्तोंके निवासी जब दक्षिणमें मदुरा, काची, रामेश्वरम् यात्राको जाते हैं तो अिसी हिन्दी-द्वारा अपना काम चलाते हैं । अतः पहलेसेही प्रस्तुत अपनी अिस राष्ट्रभाषाको छोडकर अरबी-फारसीके मोहमें पडकर यदि हम कोअी कृत्रिम भाषा गढनेमें अपना और समस्त देशवासियोंका समय नष्ट करें तो वह कदापि बुद्धि संगत नहीं होगा ।

## संस्कृतके कारण भाषा क्लिष्ट नहीं होगी

अूपर मैंने हिन्दीको संस्कृत भाषाके निकटतम होनेकी बात कही है । संस्कृतमें हमारी संस्कृतिकी समस्त निधि सुरक्षित है । अतः हमारे निकट हिन्दीके नये शब्द गढनेके लिये संस्कृतसे सहायता लेना स्वाभाविक और सर्वथा अुचित होगा । अिसका अर्थ यह नहीं कि हम अपनी राष्ट्रभाषाको अैसा क्लिष्ट बना लेंगे जो व्यवहारमें आही न सके । अन्य भाषाओंके सरल शब्द हमारी राष्ट्रभाषामें आकर खप और पच जायेंगे । अुन्हें हम सहर्ष शिरोधार्य करेंगे । अिस प्रकार हमारी राष्ट्रभाषा किसी अजायब-घरकी नहीं; वरन् अेक जीती-जागती वस्तु होगी —जिसमें जीवन होगा, स्फूर्ति होगी, ओज होगा, सामर्थ्य होगी, सौन्दर्य होगा और सरलता होगी ।

## पाकिस्तानके बाद

अभीभी राष्ट्रभाषा बनानेमें दो प्रकारका विरोध है । अेक अुन लोगोंको ओरसे जो हिन्दुस्तानीके समर्थक हैं और दूसरा अुनका जिन्हें हिन्दीके विषयमें भ्रम है । पाकिस्तान बन जानेके बादभी हिन्दुस्तानीकी बात करना और देशकी सरल भाषामें बलात् अरबी-फारसीके शब्द डालनेका यत्न करना अब न तो तर्कसंगत है और न देशके लिये कल्याणकारी है ।

महात्मा गांधीजीने प्रायः पचीस वर्षपूर्व राष्ट्रभाषाकी आवश्यकताको पूर्ण करनेके सत्प्रयत्नोंको व्यावहारिक रूप देना आरम्भ किया और अुन्होंने यह कार्य हिन्दीको लेकर आरम्भ किया । अिस दिशामें पर्याप्त प्रगति हो चुकनेके बाद मुसल-मानोंको भी साथ रखनेका प्रश्न आया; तो अुन्होंने हिन्दीके बदले हिन्दुस्तानीको राष्ट्रभाषा बनानेका यत्न आरम्भ किया । यह परिवर्तन समयकी गतिके अनुसार किया गया था । समयकी गतिने पलटा खाया । अधिकांश मुसलमानोंने अलग होकर पाकिस्तान बना लिया तथा अुसकी राष्ट्रभाषा अुर्दूभी घोषित कर दी । अैसी दशामें अब भारतमें भी अुर्दूको बनाये रखनेका कोअी कारण नहीं है । अतः हमें अब फिर अपनी वास्तविक राष्ट्रभाषा हिन्दीकी ओर लौट आना चाहिये, जो हमारे राष्ट्रपिता

महात्मा गांधीको अत्यंत प्रिय थी। भारतकी अखंडता और हिंदुओं तथा कादिरानी मनोवृत्तिके मुसलमानोंकी अेकता बनाये रखनेके लिये महात्माजीने अपनी भाषाका बलिदान करना स्वीकार कर लिया और हिंदुस्तानीका प्रचार भी आरम्भ कर दिया, परन्तु विपक्षियोंने अुनके अिस प्रयत्नकी रत्तीभर चिन्ता न की, अलग होनेका अपना राग बराबर अलापते रहे और अन्तमें अलग राष्ट्र बना ही लिया। अैसी दशामें हमें फिर हिंदीको अपना लेना चाहिये। अुसके अनेक अंगोंकी वृद्धि अौर पुष्टि होना आवश्यक है। हमारी प्रान्तीय भाषा चाहे जो हो, परन्तु यदि हमारी लेखनीमें शक्ति है तो अुसके थोडे-बहुत पत्र-पुष्प राष्ट्रभाषाके देवतापर भी अर्पित करना हमारा पुनीत कर्तव्य है। पारिभाषिक शब्दावलीके निर्माण-कार्यके लिये समस्त प्रान्तीय भाषाओंके विद्वानोंका अेक बोर्ड बनानेकी आवश्यकता है। डा. रघुवीरका कार्य अिस दिशामें प्रशंसनीय कहा जा सकता है।

## यह आडम्बर छोड दें।

हिंदुस्तानीके पक्षपाती अपना आडम्बर छोड दें। अुन्हें यह सोचना चाहिये कि पूर्व-पंजाब, अुत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान, मध्यप्रान्त, आदिकी राजभाषा हिन्दी हो जानेके पश्चात् हिंदुस्तानीका क्षेत्र कहाँ रहेगा? जो भाषा कहींकी भाषा न होकर केवल कल्पनालोकके भावुक जीवोंका अेक आग्रहमात्र हो, अुसके पीछे समस्त राष्ट्रको चलानेकी टेकपर अड रहना कहाँतक अुचित है?

## हिन्दीसे प्रान्तीय भाषाओंकाही लाभ

कुछ लोगोंको यह भ्रम है कि हिंदी राष्ट्रभाषा हो गयी तो प्रान्तीय भाषायें नष्ट हो जायेंगी। यह भ्रम अेकदम निराधार है, यह मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। विधानमें यह स्पष्ट किया जा चुका है कि अपने-अपने प्रान्तोंमें प्रान्तीय भाषाओंके फलने फूलनेकी पूर्ण स्वतन्त्रता रहेगी। हिंदी तो वहीं आयेगी जहाँ आंतरप्रान्तीय अथवा केन्द्रीय सरकारके कार्यका सम्बन्ध होगा। मान लीजिये हम यदि हिंदीके बदले अंग्रेजीकोही राष्ट्रभाषा बनी रहने दें—जैसी कुछ लोगोंकी अिच्छा है—तब क्या प्रान्तीय भाषाओंका मार्ग निष्कंटक हो जायगा? ठंडे दिमागसे यदि हम विचार करें तो हिन्दीको राष्ट्रभाषा बनानेमें प्रान्तीय भाषाओंकी हानि नहीं वरन् लाभ होगा। हम अपनी साहित्यिक अेवम सांस्कृतिक प्रगतिसे अनभिज्ञ रहते हैं। वह दूर होकर परस्पर प्रान्तीय भाषाओंका संपर्क बढेगा, आंतरप्रान्तीय साहित्य-संगम होगा और देशके अेक स्थलपर प्रकट हुअे ज्ञानका लाभ देशकी समस्त भाषाओं और अुनके बोलने वालोंको अनायासही प्राप्त हुआ करेगा। अिस प्रकार हमारी अेक भाषा होनसे हमारी अेक संस्कृति होगी और हमारा राष्ट्र अेक सुदृढ़ शक्तिशाली राष्ट्र होगा।

### देवनागरीका प्रयोग

देवनागरीको राष्ट्रलिपि बनानेका विरोध प्रायः शान्त हो चुका है। अुसकी वैज्ञानिकता और अुपादेयताके आगे विरोधियोंके तर्क टिकेही नहीं। मैं मानता हूँ कि विभिन्न प्रान्तोंको अेक-दूसरेके अधिकतम निकट करनेके लिये यदि हम धीरे-धीरे सभी प्रान्तीय भाषाओंके लिये अेक देवनागरी लिपिही अपना लें तो अुन्नतिके पथपर अग्रसर होनेमें हमें बडी सुविधा हो जायगी। सभी प्रान्तीय लिपियां अिसी देवनागरीसे निकली हैं; अतः यह कार्य कठिनभी नहीं है। समस्त प्रान्तीय भाषाओंकी अेक लिपि हो जानेसे जहां हममें अेकता अेवम् अेकरूपता अुत्पन्न हो जायगी वहां मुद्रण, टाअिप-राअिटर, टेलिप्रिन्टर आदि के दैनिक कार्योंको बडी सुविधा हो जायगी। आजसे प्रायः ३८ वर्ष पूर्व श्री वी कृष्णस्वामी अय्यर और बाबू शारदाचरण मित्र जैसे हमारे नेताओंने भी यही अनुरोध किया था। अुनका कहना था कि राष्ट्रीय अेकताके लिये हमें प्रान्तीयताकी भावना त्यागकर सभी प्रान्तीय भाषाओंके लिये अेक लिपि देव-नागरी अपना लेनी चाहिये।

---

## १५ : हिन्दीही दक्षिणकी भाषाओंकी निकटकी भाषा

[डॉ रघुवीरजी अेम अे, पीअेच डी के द्वारा राष्ट्रभाषाके सम्बन्धमें अंग्रेजीमें कुछ पत्रक प्रकाशित किये गये थे। अुनमेंसे पत्रक-क्रमांक १ से आवश्यक अंशका अनुवाद यहां लिया गया है।]

### हिन्दी अन्तर्मुख : अुर्दू बहिर्मुख

मेरे कुछ दाक्षिणात्य भाअियोंने मुझसे हिन्दी, हिन्दुस्तानी और अुर्दूमें क्या सम्बन्ध है अिसे स्पष्ट करनेके लिये कहा। वस्तुतः "हिन्दुस्तानी" यह शब्द कअी अर्थोंमें प्रयुक्त होता है। अुसका रूप समझना होगा। भारतके सैनिकी कर्मचारियोंके लिये हिन्दुस्तानीके मानी हैं अुर्दू। हमारे कुछ भारतीय नेताओंके द्वारा दी गयी परि-भाषाके अनुसार हिन्दुस्तानी हिन्दी और अुर्दूकी खिचडी है। वैसे अिस खिचडी भाषाका कोअी साहित्य देखनेके लिये नहीं मिलता जिससे अुसे मान्यता दी जाय। अिस मिश्रण युक्त भाषाके रूपको जाननेके पहले हमें यह जानना आवश्यक है कि हिन्दी और अुर्दूमें क्या अन्तर है। मूलतः यह अेकही भाषा है। क्योंकि अिनका व्याकरण तथा मुहावरे करीब करीब अेकही हैं, अन्तर अुनके लिखने-मात्रसे प्रकट होता है। हिन्दी देवनागरी

लिपिमें लिखी जाती है, तो अुर्दू, फारसी लिपिमें लिखी जाती है। भारतकी कओ भाषाअें देवनागरीमें लिखी जाती हैं। फारसी, अरबी और तुर्कीके कुछ व्यञ्जनोंके रूप अुर्दूकी फारसी लिपिमें अधिक मिलते हैं। हिन्दीके पारिभाषिक शब्द तथा सुसंस्कृत शब्द संस्कृतसे लिये जाते हैं। अुर्दू अपने पारिभाषिक शब्दोंके लिये अरबी-फारसीपर निर्भर रहती है। हिन्दी साहित्यमें वाल्मीकि, व्यास और कालिदासके विचारोंकी परम्परा सुरक्षित है। अुर्दू अपनी प्रेरणा अरबी और फारसीसे लेती है तथा यहाँकी भारतीय परंपराका त्याग करती है। हिन्दी हिन्दू मनको सभी प्रवृत्तियोंकी अभिव्यञ्जना करती है और भारतीय जीवनदर्शनका साक्षात्कार कराती है। अुर्दूमें अरबी-फ़ारसी मनका प्रतिबिम्ब देखनेको मिलता है। अुर्दूकी आधारशिला अिस्लाम है। साराश यह कि हिन्दी अन्तर्मुख है तो अुर्दू बहिर्मुख।

## हिन्दुस्तानीका रूप

मैंने स्वयम् अिस बातका प्रयोग कर देखा है कि हिन्दी और अुर्दूका मिश्रण किस प्रकार तैयार किया जा सकता है? क्या हम अुर्दूवालोंको अन्तर्मुख बनावें या हिन्दीवालोंको बहिर्मुख? किसीकोभी अिस प्रकारके प्रयोगमें सफलता नहीं मिली। ऑल अिन्डिया रेडियोके प्रयत्नोंको देखा और अुन्हें भी सफलता नहीं मिली। बिहार और कश्मीरके शिक्षणाधिकारियोंने अुर्दूकी ओर अधिक झुके हुअे जो पुस्तकोंके प्रयोग किये वेभी असफल रहे। दस-बारह हिन्दी शब्द और बाकीके सब अुर्दू शब्द मिलाअिये कि हिन्दुस्तानी तैयार हो गयी। स्व० महात्मा गांधीजीको भी—जो कि "हिन्दुस्तानी"के प्रणेता माने जाते हैं—कश्मीर और बिहारकी तथाकथित हिन्दुस्तानी पाठ्यपुस्तकोंसे सन्तोष नहीं था।

## बोली और भाषामें अन्तर

*अब हमें हररोज बोली जानेवाली निरक्षर लोगोंकी बोली तथा साक्षरों,* विद्वानों, कर्मचारियों और कानून बनानेवालोंकी शुद्ध साहित्यिक भाषाका अन्तर देखना चाहिये। बोली जानेवाली भाषा हजार शब्दोंमें बाँधी जा सकती है; तो लिखी जानेवाली भाषा अेक लाख शब्दोंका विचार प्रकट करनेमें साधन-रूपसे प्रयोग करेगी।

## हिन्दुस्तानी अनुपयुक्त

दक्षिण-भारतीयोंके लिये अुर्दू या अुर्दूसे अनुप्राणित हिन्दुस्तानी या पचास प्रतिशतवाली अुर्दू न समझने-योग्य चीज होगी। हिन्दुस्तानीकी अबतककी प्रणाली तथा प्रवृत्ति संस्कृत शब्दोंका बहिष्कार करनेकी है। अुत्तर और दक्षिणको भाषा-ओंका सूत्र अेकमात्र संस्कृतके द्वाराही जोडा जा सकता है। हिन्दुस्तानी-जैसी खिचडी भाषाके द्वारा दोनोंमें अभ्यासपूर्वक अन्तर निर्माण होता जाता है। अतः हिन्दुस्तानी और दक्षिण-भारतकी भाषाओंमें समानता कुछभी नहीं रह जाती है।

व्याकरणकी दृष्टिसे दक्षिण-भारतीय भाषाओंमें और हिन्दीमें बहुत समानता नहीं है; परन्तु शब्दसंपत्ति याने कोषकी दृष्टिसे देखिये; तो पता चलता है कि हिन्दी शब्दकोषका विद्वत्तापूर्ण अंश दक्षिण-भारतीय भाषाओंमें समानरूपसे मिलता है। यह समानता सस्कृतसेही दोनों लेतीं हैं।

## संस्कृत शब्दावलि—समान

पारिभाषिक शब्दोंकी दृष्टिसे स्कूलमें पढाये जानेवाले विषयोंके शब्दोंको देखिये। जैसे—गणित, भूगोल, कला, संगीत और अैसेही अनेक शब्द जिन विषयोंके सम्बन्धमें हिन्दीमें तथा दक्षिण-भारतीय भाषाओंमें समान मिलेंगे। अुत्तर-भारतीय भाषाओंमें भी वे समान-रूपसे मिलेंगे। "व्याकरण" यह शब्द पंजाबसे लेकर सीलोनतक प्रचलित है। स्कूलीय विषयोंको छोडकर आयुर्वेद, ज्योतिष, वास्तुविद्या, धर्म तथा दर्शनके क्षेत्रोंमें आअिये; यहांपरभी हजारों शब्द संस्कृतकेही समान रूपसे मिलेंगे। तथाकथित हिन्दुस्तानीमें अधिकसे अधिक तादादमें सस्कृतेतर शब्द रहा करेंगे। हिन्दुस्तानी और दक्षिण भारतीय भाषाओंके शब्दकोषोंमें समान रूप कुछ भी नहीं रहेगा। यदि हिन्दुस्तानीको काममें लाया जावेगा तो दो हजार बरसोंसे अुत्तर तथा दक्षिण भारतीय भाषाओंके शब्दकोषोंमें जो घनिष्ठ सम्बन्ध प्रस्थापित हुआ था वह नष्ट हो जाअेगा। केवल हिन्दीही अेकमात्र अैसा अटूट सम्बन्ध रखनेका माध्यम हो सकती हैं जो भाषिक सम्बन्ध अेक कर सकती हैं। दक्षिण-भारतीय हिन्दीको आत्मीय दृष्टिसे देख सकते हैं। क्योंकि अुन्हे वह अपनीही चीज जान पड़ेगी।

---

# १६ : असमीया भाषा, साहित्य और हिन्दी

[श्री. जितेन्द्रचन्द्र चौधुरीजी बगला, असमीया और हिन्दीके विद्वान् है। कअी वर्षोतक प्राध्यापकका कार्य करनेके साथ आपने सेवाभावसे हिन्दी-प्रचारकेकार्यकोभी अपनाया था। समयकी आवश्यकताको देखकर प्राध्यापकका कार्य छोडकर अी स १९५२ से हिन्दीके कार्यको आपने पूरा समय देना शुरू किया। आज जितेन्द्रजी आसाम राज्य राष्ट्र-भाषा प्रचार समितिके सचालक है और रा. भा प्र. समिति वर्धा-केभी सदस्य हैं। हमारी प्रार्थनापर आपने यह लेख लिख अिस सग्रहकी पूर्ति करनेमे बडी सहायता की हैं अिसलिये हम आपके ऋणी हैं। —सम्पादक]

## आसामका स्थान

भारतवर्षके मानचित्रकी अुत्तर-पूर्व दिशामें, अुत्तरसे दक्षिणतक विस्तृत, बर्माकी ओर नजर लगाकर बैठे हुअे गरुड़ पक्षीके चित्रकी तरह जिस भू भागके दर्शन होते है वही आसाम राज्य है। आज भी आसामका नाम भारतीयोंके मनमें कल्पनाके रंगसे रँगा हुआ है। यह आज भी अुत्सुक व्यक्तियोंके मनमें कुतूहल अुद्दीपन कर रहा है। बहुतोंकी कल्पना है कि आसाम, पर्वतोंकी गुफाओंमें रहनेवाले नग, अर्धसभ्य व्यक्तियों, काल्पनिक वन्य पशुओं तथा जादू-मन्त्रद्वारा पुरुषोंको भेड बनानेवाली योगिनियोंका देश है। जो वहाँ अेक बार जाता है वह फिर वापस नहीं आता।

अिस कल्पनाका आधार कहाँ है, यह कहना सम्भव नहीं, किन्तु तान्त्रिकोंका पीठस्थान कामाख्यामें, गैंडे जैसे दुर्लभ वन्य पशुओंने तथा नागा, कुकी आदि पर्वतीय भाअियोंके सहज, सरल तथा नैसर्गिक जीवनने अपनी अपनी विशेषताओं-द्वारा भारतीयोंके मनमें विचित्र कल्पनाकी सामग्री प्रस्तुत की है, अैसा अनुमान किया जा सकता है।

भारतकी स्वतन्त्रता प्राप्तिके पूर्व आसामका भौगोलिक तथा अैतिहासिक ज्ञान आसामेतर प्रदेशवासियोंको बडा ही अस्पष्ट रहा। पडोसी बंगाल तथा बिहारके अधिवासियोंको सुजला, सुफला, सस्य श्यामला, प्रकृतिका लीला निकेतन आसाम और अुसके निवासियोंकी भाषा तथा सभ्यता-संस्कृतिका परिचय नहीं था। पढे-लिखे लोग अपने सीमित अध्ययनद्वारा समझ लेते थे कि अिस वन्य भूभागसे ब्रह्मपुत्र नद बहता है और अिसके दोनों तटोंपर चाय बगान हैं। वहाँ अंग्रेज, बंगाली, बिहारी तथा मारवाडी भाअी मलेरिया कालाज्वर आदि रोगोंसे लडाअी करते हुअे अपने-अपने अुद्योग-धंधे चला रहे हैं।

### अ–सम अर्थात् अतुलनीय

भारतके अिस पूर्वी विभागका नाम "असम" क्यों पडा, अिसके सम्बन्धमें कअी मत हैं। साधारणत "सम" अर्थात् समतल न होकर पहाडियोंसे भरा होनेके कारण ही यह प्रदेश 'असम" नामसे प्रख्यात हुआ है। दूसरा अेक मत यह है कि असममें मिट्टी-तेल, कोयला, अभ्रक आदिकी खानें हैं। यहाके जंगलोंमें अैसे जन्तु, मूल्यवान काष्ठ, बेंत, खर, राल, धूना, कत्था आदि मिलते हैं जो और किसी भी प्रदेशमें अिस मात्रामें नहीं हैं। चायकी खेतीके लिये तथा मूल्यवान रेशमके लिये भी यह प्रदेश संसार भरमें प्रसिद्ध है। विभिन्न भाषाभाषी लोगोंकी आबादी तथा अुनके जीवनकी अलग अलग कलात्मक अभिव्यक्तिने भी आसामको अन्य प्रान्तोंसे अधिक मनोहर कर रखा है। प्राकृतिक सौन्दर्यमें, आबादीकी विविधतामें, सभ्यता तथा संस्कृतिके

विचित्र तथा चित्ताकर्षक समावेशमें असम प्रदेश सचमुच "अ-सम" अर्थात अतुलनीय है। जिन सब कारणोंके अतिरिक्त भारतके जिस प्रदेशमें सर्वप्रथम सूर्योदय होता है उस प्रदेशका नाम "असम" होना सर्वथा अुचितही है।

भाषा-शास्त्रके महापंडित स्वर्गीय डा. वाणीकान्त काकतिने नामके सम्बन्धमें शास्त्रीय तर्क अुपस्थित किया है। ये असम नामका सम्बन्ध "शान" आक्रमणकारियोंसे जोड़ते हैं। सन् १२२४ औ. सेही ब्रह्मपुत्रा अुपत्यकाका पूर्वी भाग "शान" यानी ताओी (सम्भवतः थाओीलैंडवाले) जातिके अधिकारमें आ गया था। जिन शान आक्रमणकारियोंका अुल्लेख तत्कालीन साहित्यमें "आहम" नामसे है। "स" का अुच्चारण असमिया भाषामें "स" और "ह" को मिलाकर बीचका होता है। और अेक तर्क अुपस्थित किया जाता है कि शान जाति बड़ी दुर्धर्ष जाति थी। असीम पराक्रममें वह "अ-सम" अर्थात अप्रतिद्वन्द्वी थी। जिन विजेताओंके नामानुसार ही जिस प्रान्तका नाम असम पड़ा होगा॥

## बहुभाषियोंका निवास स्थान

सभी दृष्टियोंसे आसाम वैचित्र्यपूर्ण देश है और यहाँ बहुभाषा-भाषियोंका वास है। विभिन्न जातियाँ अपने-अपने जातीय अभिमान तथा अपनी-अपनी विशेषताको लेकर आसामको अपना प्यारा देश मानकर अनेकतामें अेकताका दृष्टान्त दिखा रही हैं। अतः असमी जन-समुदायको हम मुख्यतः तीन भागोंमें विभक्त कर सकते हैं। पहले भागमें वे जातियाँ हैं जो कि नागा की, मिशमी, अबर, मिजो, लशाओी, गारो, खसीया, जयन्तीया, मिकिर, बोड़ो आदि नामोंसे प्रख्यात हैं। जिन जन-जातियोंने पहाड़ी अंचलोंमें अपने-अपने समाज विधान, भाषा तथा वैशिष्ट्यको लेकर अपनी-अपनी पुरानी परम्पराको जीवित रखा है। बीच-बीचमें विदेशी मिशनरी पादरी लोग ओीसाओी धर्मके प्रचार-द्वारा अुनकी खास परम्परामें सुधार या विकार लाये, जिनको अपने ढंगसे सुसभ्य बनानेका प्रयास किया, अंग्रेजीपनका मादक फल भी चखाया; परन्तु वे पूर्णतया सफल नहीं रहे। अुन्हें केवल जिस हदतक सफलता मिली कि जिसके परिणाममें हमारेही ये भाओी हमें विदेशी समझने लगे। जिन भाषियोंकी भाषाअें अलग-अलग; पर सभी "अस्ट्रो-मंगोलियन, है। गोष्टोकी आश्चर्यकी बात होनेपरभी सत्य है कि तीन लाख नागाओंमें दर्जनसेभी अधिक अैसी भाषाअें बोली जाती हैं जो अेक दूसरेसे पूर्णतः भिन्न हैं। "आवो" नागा, "अंगमी" नागाकी भाषा नहीं समझते। खसिया, गारो, जयन्तीया तथा बोड़ो भाषाओंमें कुछ अैसे शब्द अवश्य मिलते हैं जो कि संस्कृत शब्दोंके विकृत रूप हैं। असमीया भाषाका खास प्रभाव अुन भाषाओंपर न रहनेपर भी अुन भाषा-भाषियोंपर अवश्य है। ये

भिन्न भाषाभाषी जन-जातियाँ असमीया भाषा-द्वारा अेवं कहीं कहीं टूटी-फूटी हिन्दी-द्वारा परस्पर भाव-विनिमय कर लेती है। अिनकी संख्या प्रायः ४० प्रतिशत है।

दूसरे वर्गमें बंगला, हिन्दी तथा नेपाली भाषा-भाषी समतलवासी असमीया हैं, जो अपने-अपने रीति-रिवाज, भाषा तथा संस्कृतिके अुपासक है। फिर भी असमकोही अपना देश मानकर बसते हैं। अिनकी संख्या ३० प्रतिशत होगी।

तीसरे वर्गमें जो समतलवासी मुसभ्य आर्य-संस्कृति-परम्पराके असमी जन-समुदाय हैं, वेही हैं मूल असमीया। अिनकी आबादी ३० प्रतिशत होगी। अिनका खास क्षेत्र ब्रह्मपुत्र नदके दोनों ओरकी अुपजाअू भूमि है, जो लखीमपुर जिलेसे लेकर कामरूप जिलेतक है। अिनकी भाषाही असमीया भाषा है और अिनकी संस्कृतिकोही असमीया संस्कृति कहते हैं। असमीया भाषा तथा साहित्यका विकास अिन्हींके द्वारा हुआ है और अपनी भाषा तथा साहित्यको दूसरी भाषा तथा साहित्यके राहु-ग्राससे बचाकर अिसके अुन्नति-साधनार्थ येही प्रयत्न करते आये हैं। असमीया भाषा हिन्दी आर्य भाषा-गोष्ठीकी प्राचीन भाषा है और अिसका प्राचीन साहित्य वैभवशाली है। अिसका आधुनिक साहित्य प्रगतिके पथपर होनेपर भी शंका लगी रहती है कि बहुभाषा-भाषियोंद्वारा अध्युषित क्षेत्रमें अिनकी संख्या पर्याप्त न होनेके कारण कहीं अिसके गति-पथपर बाधाअें न पड जायें। भारत-वर्षकी आधुनिकतम श्रेष्ठ भाषाओंमें असमीया भाषाकी गिनती है। अिसके अुज्ज्वल भविष्यको अुज्ज्वलतम करना सभी भारतीयोंका कर्तव्य है। क्योंकि अिससे भारतकाही गौरव बढेगा।

## जनताकी भाषा नहीं दबी।

पहलेही कहा जा चुका है कि असमीया भाषाका क्षेत्र बहुत छोटा है और अिसके बोलनेवालोंकी संख्या भी बहुत कम है, जिसका परिणाम यह हुआ कि पडौसी समृद्धिशाली बंगला भाषाका भाव असमपर पडने लगा और असमकी मूल असमीया भाषा अुपेक्षित होकर रही। ब्रिटिश-शासनके प्रारम्भमें अुच्च पदाधिकारी बंगाली शिक्षित लोक असममें नियुक्त होकर आये। अंग्रेजोंने अिस देशकी भाषाको प्रोत्साहन न देकर, असमीया भाषाको बंगलाकी अेक अुपभाषा मान लिया और राजकार्य आदिके लिये बंगलाकोही अुच्च स्थान दे रखा। परन्तु जनताकी भावो-त्पादक भाषा दबाये भी नहीं दबी। यह अन्त सलिला फल्गु नदीकी तरह शहरकी अप्राकृतिक वातावरणसे मुक्त होकर प्रकृतिलीला-निकेतन गाँवोंमें प्रवाहित होने लगी। शासकों-द्वारा अनादृत होनेपर अुपजाअू ग्राम्यभूमिमें निर्वासित होकर यह फूलने-फलने लगी। फिर अैसा अेक समय आया जब कि अिस भाषाने पाश्चात्य ढंगसे शिक्षित असमीया शहरवासियोंकी दृष्टि आकृष्ट की। अिस समय ऑसाओ मिशनरियोंने बडा अुपकार किया, जिन्होंने बाअिबिल आदि धर्मग्रन्थोंको असमीया

भाषामें अनूदित करके भाषाका चमत्कार दिखाया। समग्र जनताने भाषाको अपना लिया और अिसे अपने स्वस्थानपर सम्मान प्रतिष्ठित करनेके लिये शासकोंको बाध्य किया।

## असमीयाका विकास-काल।

असमीया भाषाका विकास-काल सन ६०० ओी. से माना जाता है। अिस समय जो साहित्य रचा गया वह मौखिक जन-साहित्य था। अिस समयकी भाषाका परिचय चीनी परिव्राजक ह्युअेनसंगने—जो कामरूप राज्यके तत्कालीन राजा कुमार भास्कर वर्माके निमन्त्रणसे पधारे थे, अपने यात्रा-विवरणमें स्पष्टरूपमें दिया है—"अिस देशकी भाषा बंगला या आसपासकी अन्य भाषाओंसे भिन्न है; किन्तु पश्चिमोत्तर भारतकी भाषासे कुछ मिलती-जुलती है।" महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्रीने अपने "बौद्धगान ओ दोहा" और महापंडित राहुल सांकृत्यायनने अपनी "पुरातत्त्व-निबन्धावली"में बौद्ध सिद्धचार्योंके द्वारा रचे गये चर्यापद-समूहके भाव, भाषा तथा लेखकोंके सम्बन्धमें आलोचना की है। ये पद बौद्ध-महायान-सम्प्रदायके साधना-संगीत हैं। पंडितोंने अिन गीतोंको भाषाका प्राचीनतम निदर्शन माना है; पर असमीया भाषाके दृष्टिकोणसे अुन गीतोंका अध्ययन किया जाय तो असमीया भाषाकी परिपक्वताके भी दर्शन अुन गीतोंमें होंगे। अतअेव, असमीया भाषाका आदिरूप अुन्हीं चर्या-पदोंमें मिल जाता है।

मणिकुँवर और फूलकुँवरका गीत भी प्राचीन असमीया भाषाका निदर्शन-स्वरूप है। चर्या-पदके समान बौद्धधर्मकी भिन्न-भिन्न शाखाओंके साधक-गण जो काव्यरचनाअें कर गये हैं अुनमें असमीया भाषाका जो रूप मिलता है, अुससे स्पष्ट प्रमाणित होता है कि प्रारम्भिक कालमें भाषाका विकास अच्छी तरहसे हो गया था।" "डाकर वचन"—जिसपर बंगाल और अुड़ीसाभी दावा करते हैं—में भी आदिकालकी असमीया भाषाके दर्शन होते हैं।

## असमीयाका पंडितमान्य रूप

अुस कालमें शैव, शाक्त और तन्त्र-मन्त्रके प्रभावसे भी भाषाकी अुन्नति हुअी। कामरूपको केन्द्र करके तान्त्रिक साहित्यकी जो रचना हुअी थी अुसमें हम भाषाका पंडितमान्य रूप यानी संस्कृत शब्दोंसे परिपूर्ण भाषाका निदर्शन पाते हैं। अिसके बाद समग्र असममें वैष्णव-युगका अेक बड़ा धर्मविप्लव दिखाअी दिया। अिस समय भाषा नियारामें बहने लगी। अुत्तर-पूर्व-असममें अहोम राजघरानेके विद्यानुरागके तथा कोच नरेशोंके प्रोत्साहनके सहारे श्रीमंत शंकरदेव, माधवदेव तथा दामोदरदेवने अपने धार्मिक साहित्यमें भाषाको परिमार्जित और सुललित

कर दिया। कामरूपके तन्त्र-मन्त्र-पूर्ण शाक्त-साहित्यमें भाषाका दूसरा रूप और ग्वालपाड़ा तथा अिसके आसपासके अिलाकोंमें अेक वर्णसंकर भाषाका रूप मिलता है; किन्तु अुत्तरपूर्व-असममें भाषाने जो परिपक्वता प्राप्त की थी अुसके परिणाम-स्वरूप वहाँकी चालू भाषा यानी शिवसागर और नौगांवकी भाषाही साहित्यिक भाषा बन गयी। अुत्तर-वैष्णव युगमें वही भाषा क्रमशः विकसित होकर आधुनिक साहित्यिक भाषा बनी। वैष्णव-युगकी भाषा, जो असममें "ब्रजाबुली" अर्थात् व्रजभाषा नामसे प्रख्यात है, शंकर-साहित्यकी भाषा है। श्रीमंत शंकरदेवने वेद, पुराण, अुपनिषद आदिका सारांश असमीया भाषामें लिखकर साहित्यकी श्रीवृद्धि की। अपने धर्ममतको भगवान बुद्धकी भाँति जनगणकी भाषामें लिखकर प्रचार करनाही अुन्होंने अुचित समझा। अुनके कीर्तनकी भाषा मनोहर और प्रभावोत्पादक थी। भारतके अन्य प्रदेशोंमें श्री चैतन्य, संत ज्ञानेश्वर, सूर, तुलसी आदि सन्तोंने धार्मिक विप्लव-द्वारा जैसे अपनी-अपनी भाषाओंको अुन्नति की थी, अुसी प्रकार श्रीमन्त शंकरदेव तथा अुनके अनुयायियोंने भी अपनी भाषा की उन्नति की थी।

## ब्राह्मीसे ही लिपिका विकास

असमीया भाषाकी लिपि ब्राह्मी लिपिकाही क्रम-विकसित रूपान्तर है और वह दो अक्षरोंकी बनावटके सिवा बंगला लिपिसे हू-बहू मिलती है। कुछ अुच्चारण असमीया भाषामें अलग है; पर अुनकी शकल सूरतमें कोअी भिन्नता नहीं है। भोजपुरी, मैथिली, मगधी, बंगला, अुड़िया आदि भाषाओंकी तरह र, ड, ढ तथा ह्रस्वदीर्घ स्वरोंके अुच्चारणमें पार्थक्य बहुत कम है; किन्तु च, छ तथा स, श, ष, का अुच्चारण असमीया भाषाकी अेक खास वस्तु है जो दूसरी भारतीय भाषाओंमें नहीं मिलती। अितालीय भाषाकी तरह तालव्य और दन्त्य वर्णोंका अुच्चारण प्रायः अेक-सा होता है। प्रारम्भमें असमीया लिपिके अनेक रूप और नाम थे। जैसे---गर्गया, बामुनिया, लखारी और कैथिली आदि। किन्तु अब अिनमेंसे कोअीभी व्यवहारमें नहीं आती।

## शब्दावली--तत्सम और तद्भव

शब्दावलीके सम्बन्धमें निश्चित रूपसे कहा जा सकता है कि साठ प्रतिशत शब्द तत्सम और तद्भवही हैं। विदेशी शब्द दस प्रतिशतसे अधिक नहीं होंगे। शेष देशी शब्द अस्ट्रोमंगोल, तिब्बती-बर्मी तथा मनखामेर भाषाओंके शब्दोंसे मिलते-जुलते हैं। असमीया शब्द-विन्यास, विभक्ति आदिके रूप बौद्ध-गान औ दोहा तथा चंडीदासके श्रीकृष्ण-कीर्तनकी भाषासे बहुत-कुछ मिलने-जुलनेपर भी अिनका स्वतंत्र स्वरूप अवश्य है, जिसके द्वारा अपनी पुरानी परम्पराकी रक्षा

हुअी है । असमीया भाषाकी अेक विशेष व्याकरण-प्रणाली भी दृष्टिगोचर होती है । जिसमें सर्वनाम, क्रियापद तथा अव्यय आदि बंगला और हिन्दीसे कुछ-कुछ मिलनेपर भी अुच्चारण और जोडनीमें भिन्न हैं; किन्तु ध्यानसे अध्ययन करनेपर असका अुत्तर-पूर्व-भारतकी आर्य-गोष्ठीकी भाषाओंसे जो अेक पक्का सम्बन्ध है असका अनुमान सहजहीमें किया जा सकता है । असका प्रमुख कारण यह है कि हिन्दी तथा बंगलाकी भाँति साहित्यिक प्राकृतसेही असकी अुत्पत्ति हुअी है । और सातवीं शताब्दीके प्रारम्भसेही असका व्यवहार असममें होने लगा है । साहित्यिक प्राकृतके साधारणतः चार मुख्य विभाग हैं --शौरसेनी, महाराष्ट्री, अर्धमागधी अेवं मागधी अथवा गौड़ी प्राकृत । बंगला तथा अुड़िया भाषाकी तरह असमीया भाषाका विकास भी मागधी गौड़ी प्राकृतसे हुआ है । असीलिये अपनी बहनों अर्थात् बंगला,तथा अुड़ियाके साथ असका नैकटच दिखाअी देता है ।

## असमीयाके लिये देवनागरी

पहले यह कहा जा चुका है कि असमीया भाषा हिन्दीसे भी बहुत-कुछ मिलती-जुलती है, जैसे कि भारतके अुत्तराखंडकी दूसरी भाषाअें । अतः भाषाओंकी समबोध्यता तथा परस्परके लेन-देनकी सुविधाके मार्गको प्रशस्त करनेके हेतु लिपिकी अेकरूपताकी आवश्यकता स्वतन्त्रताके अग्नियुगके प्रारम्भसेही महसूस हुअी थी । कलकत्ताके जस्टिस् शारदाचरण मित्रने अेकलिपि-परिषदकी स्थापना करके यह प्रयास शुरु किया था कि बंगला आदि आर्य भाषाअें भी हिन्दी तथा संस्कृतकी तरह देवनागरीमें लिखी जायँ, तो सभी भाषाअें अलग अलग भाषाओंके बोलनेवाले भारतीयोंकी बोधगम्य हो सकेगी और भाषासम्बन्धी दुरूहता दूर होती जाअेगी । यद्यपि अैसा कोअी ठोस कदम असममें नहीं बढ़ाया गया, फिर भी कुछ प्रमुख विद्वानोंका अिशारा तो अिस ओर अवश्य था । प्रमाणके लिये हिन्दी-पत्रिकाके वर्ष ३ दिसम्बर सन १९४३ संख्या १२ में पंडित थी. सत्यकामजीके लेख असमीया भाषा और हिन्दीसे अेक अंश अुद्धृत किया जा रहा है—"लिपिसम्बन्धी आलोचनाके प्रसंगमें असमके अद्वितीय विद्वान् डा० वाणीकान्त काकतिने मुझसे कहा था—पंडितजी, आप हमारी ओरसे हिन्दी तथा देवनागरीकी संस्थाओंको लिख भेजिये कि यह प्रान्त राष्ट्रभाषाके रूपमें हिन्दीको और राष्ट्रलिपि तथा प्रान्तीय लिपिके रूपमें देवनागरीको अपनानेके लिये तैयार है ।"

सन् १९५० को जुलाअी मासमें सरकारी स्तरपरसे असम-शिक्षासम्मेलन बुलाया गया था । अिसमें भी अेक अैसे प्रस्तावपर विचार किया गया था कि असमीया भाषा देवनागरीमेंही लिखी जाय । यद्यपि कअी व्यावहारिक असुविधा-

ओंके कारण अिस प्रस्तावको आगे बढाया नहीं जा सका; फिर भी यह स्पष्ट है कि असमीया भाषाको नागरीमें लिखनेके पक्षमें पर्याप्त अुत्साह सम्मेलन तथा अुसकी अुपसमितिमें विद्यमान था । लेखक अिस कानफ्रेंसमें सक्रिय सदस्य, स्मार-पत्र (Memorendum)—लेखक, तथा हिन्दीके पक्षके समर्थन करनेका अेकमात्र वक्ता था । अुदाहरणस्वरूप यहाँ असमीया भाषाका अेक अनुच्छेद नागरीमें लिखकर दिया जा रहा है :—

### महाकवि कालिदास-जयन्ती

"१६ तारिखे तेजपुर असम संस्कृत विद्य-परिषदर द्वारा महाकवि कालिदास-जयन्ती पालन करा हय । अेअि अुद्देश्ये आहूत होवा अेखन सभात सभापतित्व करे श्री चन्द्रनाथ शर्माजि । श्री महादेव शर्माजि सभान अुद्बोधनी भाषण दिये । सभात महाभारतर कर्णार्जुन आरु अभिज्ञान शकुन्तला नाटकर परा दुटा दृश्य देखुवा हय ।"

### असमीयापर संस्कृतका प्रभाव ।

असम राज्यमें प्राचीन कालसेही संस्कृतके अध्ययन-अध्यापनपर विशेष अुत्साह दृष्टिगोचर होता हैं । कामरूपके नलबाडी नामक स्थानमें संस्कृतकी चर्चा अभीतक ब्राह्मणोंमें दिखाअी देती है । नलबाडीके आचार्य और पंडितोंके नाम पूर्व-भारतकी डिपंत-मंडलीमें आदरके साथ लिये जाते हैं । संस्कृतका प्रभाव असमीया भाषा तथा साहित्यपर विशेष रूपसे दिखाअी देता है जैसा कि दूसरी प्रमुख भारतीय भाषा और साहित्यपर । शब्दावलीका अध्ययन करनेसे हमें ज्ञात होता है कि तत्समका प्रयोग बंगला भाषाकी तरह असमीया भाषामें भी अधिक है । श्रीमन्त शंकरदेव तथा तदीय शिष्य माधवदेव आदि धर्माचार्यों तथा साहित्यिकोंकी भाषामें संस्कृतनिष्ठा अधिक थीही; फिरभी आधुनिक साहित्यमें भाषाका परिमार्जित तथा प्रौढ रूप संस्कृत-निष्ठाके कारणही सम्भव हुआ है । आर्य संस्कृतिका अन्यतम श्रेष्ठ स्थल असम-भूमि संस्कृतकी गौरव-ध्वजा आदिकालसेही फहरा रही है ।

### सर्वत्र हिन्दीका अेकही रूप

कभी कभी अैसा कहते सुनाअी देता है कि प्रान्तीय हिन्दी और राष्ट्रीय हिन्दी अलग होगी । अैसा विचार सर्वथा अनुचित है । अिस विचारमें तथाकथित हिन्दुस्तानी मतवादके समर्थकोंकी अपरिमार्जित रुचिका परिचय प्राप्त होता है । राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा साहित्यिक हिन्दी अभिन्न हैं । राष्ट्रका गौरव राष्ट्रभाषामें झलकता है और अेकरूपताके भी दर्शन होते हैं । असममें साधारण

जनतासे लेकर बडे विद्वानोंतक कोअी भी हिन्दुस्तानीका या किसी अेक पृथक् हिन्दीका समर्थक नहीं है । साहित्यिक हिन्दी असमीया भाषासे अतिनिकट सम्पर्क रखती है । हिन्दुस्तानीका अुर्दूरूप असमीया भाषाके माधुर्यकी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हो सकता । असमीया साहित्यकी अन्तरात्मा दार्शनिक तथा सम्पूर्ण भारतीय होनेके कारण असमीया भाषा हिन्दुस्तानीकी अभारतीय तथा अशास्त्रीय रीतिको आत्मसात् नहीं कर सकेगी । अिससे अिसकी पुरानी परम्परागत तथा भाषाका सौन्दर्य नष्ट हो जाअेगा ।

हिन्दीके अध्ययनसे असमीयाका लाभ ।

असमीया भाषा वर्तमान युगमें प्रगतिपर है और अिस प्रगतिका प्रेरणास्रोत कुछ अंशोंमें हिन्दीही है । हिन्दी तथा असमीया भाषाका निकटतम सम्पर्क संस्कृतसे रहनेके कारण पारिभाषिक शब्दावली तथा भाषाशैलीमें समानता दृष्टिगोचर होती है । हिन्दीके अध्ययनसे असमीया भाषाका अुपकारही होगा — अनिष्ट नहीं ।

---

## १७ : हिन्दी + अुर्दू = हिंदुस्तानी

[स्व. महात्माजीकी प्रेरणासे राष्ट्रभाषा हिन्दीके प्रचारको बल और सम्मान मिला, प्रचारकी गति तीव्र हुअी और हिन्दीतर प्रदेशमें हिन्दी पढना अेक राष्ट्रीय कार्य माना जाने लगा । अी स १९३४ से —किन्तु विशेष रूपसे अी स १९४२ से—राष्ट्रभाषाके दो लिपियोंका (नागरी और अुर्दू या फारसीका) ज्ञान अनिवार्य करनेका आग्रह महात्मा गान्धीजी करने लगे । अिसलिये आपने हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाकी स्थापना भी की । अिस प्रश्नपर राष्ट्रमे तीव्र मतभेद रहा । आखिर संविधान-सभाने अेकमात्र देवनागरी लिपिको राष्ट्रभाषाकी लिपि माननेका निर्णय किया, जो अन्यत्र दिया है । राष्ट्रपिताकी विचारधारासे परिचित होनेकी दृष्टिसे यह लेख 'राष्ट्रभाषाका प्रश्न' पुस्तकसे यहाँ अुद्धृत किया है । ]

नीचे लिखा पत्र अेक भाअीने २९ जनवरी सन् १९४२ को लिखकर मेरे नाम रजिस्ट्रीसे भेजा था, जो मुझे सेवाग्राममें ३१ जनवरी १९४२ को मिला ।

" काशी विश्वविद्यालयवाले आपके भाषणका मुझपर गहरा असर पडा है । खास तौरपर हमारी शिक्षा-संस्थाओंमें हिन्दुस्तानीकी पढाअीका माध्यम

बनानेकी बात अुस मौकेपर बहुत मौजूद रही। लेकिन क्या सचमुच ही आप यह मानते हैं कि हिन्दुस्तानी नामकी कोअी ज़बान आज हमारे देशमें मौजूद है? दरअसल तो अैसी कोअी ज़बान हैही नहीं। मुझे डर है कि कामोंमें आपने हिन्दुस्तानीकी अुतनी हिमायत नहीं की जितनी हिन्दीकी, और यही हाल सब कांग्रेसियोंका है। मुझे ताज्जुब होता है कि आप अपने मनकी बात खुले खुले तौरपर क्यों नहीं कहते? कहिये कि आप हिन्दी चाहते हैं। अिस हिन्दीको आप हिन्दुस्तानी और अुससे भी बदतर हिन्दी-हिन्दुस्तानी क्यों चाहते हैं? कुछ साल पहले आपने अुसे यह नाम देना चाहा था। लेकिन किसीने अिसे अपनाया नहीं।

महात्माजी, आप कहते हैं, आपको अुर्दूसे कोअी द्वेष नहीं। मगर आप तो अुसे खुल्लमखुल्ला फारसी लिपिमें लिखी जानेवाली मुसलमानोंकी भाषा कह चुके हैं। आपने यह भी फरमाया है कि अगर मुसलमान चाहें तो भले अुसकी हिफाजत करें। दूसरी तरफ आप कअी बार हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके सभापति रह चुके हैं, और हिन्दीकी हिमायत करते हुअे अुसके लिये लाखोंका चन्दा जुटा चुके हैं। क्या कभी आपने अुर्दूका प्रचार करनेवाली किसी सभाकी सदारत की है? अब भी आप अिस तरहकी सदारत मंजूर करेंगे? और क्या कभी अुर्दूकी तरक्कीके लिये आपने अेक पाअीका भी चन्दा अिकट्ठा किया है?

मैं तो कांग्रेसवालोंके मुंहसे सुनते सुनते छिक आ गया हूँ कि मुस्लिम लेखकोंको फारसी शब्दोंका और हिन्दू लेखकोंको संस्कृत शब्दोंका अिस्तेमाल करनेसे बचना चाहिये। वे कहते हैं कि अिस तरह जो ज़बान बनेगी, वह हिन्दुस्तानी होगी।

महात्माजी, आप खुद अेक बहुत अच्छे लेखक हैं। आपको तो यह पता होना चाहिये कि-मँजे हुअे लेखक-जिनकी अपनी अेक शैली बन चुकी है, कभी फारसी और संस्कृतके अुन शब्दोंको छोड़ न सकेंगे, जो अुनकी अपनी भाषाके अंग बन चुके हैं। अिसलिये आपकी यह सलाह बिलकुल अव्यावहारिक है।

मगर अेक रास्ता है, कि यू० पी० जैसे किसी अेक सूबेमें हाअीस्कूलतक पढ़ाअीके लिये अुर्दू और हिन्दी दोनोंको लाज़िमी बना दीजिये। अिस तरह जिस सूबेमें दोनों ज़बानें लाज़िमी तौरपर पढ़ायी जायेंगी, वहाँ क़रीब पचास सालके अन्दर अेक आम-फ़हम भाषा तैयार हो जायेगी। वह हमारी अपनी भाषा है, यह हमारे साथ रहेगी और जिसे हम अपने अूपर ज़बरदस्ती लाद रहे हैं, वह हमारे जीवनसे हट जायेगी। स्पष्ट ही जब हम दोनों भाषायें सीखेंगे, तो अपने आप हम अुसीमें अपने विचार प्रकट करना पसन्द करेंगे, जो ज्यादा विकसित, ज्यादा खूबसूरत, ज्यादा लुभावनी, ज्यादा मुख्तसर और ज्यादा अर्थसूचक यानी

थोड़ेसे बहुत कहनेवाली होगी। अिससे न सिर्फ देशी भाषाओंके प्रचारका मार्ग सरल और सुगम बनेगा, बल्कि हिन्दू-मुसलमानोंके सामाजिक जीवनके बीच पड़ी हुओ चौड़ी खाओको पाटनेमें भी बड़ी मदद मिलेगी। अेक दूसरेके साहित्यको पढ़कर हम अेक-दूसरेसे आदर्शों और विचारोंको समझ सकेंगे और अुनके लिये मनमें हमदर्दी रख सकेंगे। हो सकता है कि अिस तरह हिन्दी और अुर्दूके मेलसे अेक नयी ज़बान सामने आ जाय और वह हिन्दुस्तानी कहलाये। चूंकि यह ज़बान दोनों ज़बानोंकी जानकारीका नतीजा होगी अिसलिये वह दोनों कौमोंकी अेक कुदरती ज़बान बन रहेगी।

महात्माजी, अगर आप सचमुच अपने अिस मुल्कके लिये अेक आमफ़हम कौमी ज़बान चाहते हैं, तो मुझे यकीन है कि आप मेरे अिस सुझावको मंजूर कर लेंगे, और अपनी सिफ़ारिशके साथ अिसे देशके सामने पेश करेंगे। मगर मैं मानता हूँ कि आप अैसा नहीं करेंगे। क्योंकि आप बराबर हिन्दीकी ही हिमायत करते आये हैं और अुसीको मुल्कपर लादनेकी आप भरसक कोशिश करते रहे हैं, और आप यह भी जानते होंगे कि अगर हिन्दी और अुर्दू दोनों अनिवार्य बना दी गयीं, तो अुर्दू हिन्दीको मैदानसे खदेड़ देगी। क्योंकि हिन्दीके मुक़ाबले वह ज्यादा सही, ज्यादा मँजी भी हुअी, ज्यादा अर्थसूचक और ज्यादा ख़ूबसूरत है। मगर मेरी यह तजवीज़ दोनों ज़बानोंको यकसाँ मौक़ा देती है। अगर आपका ख्याल है कि हिन्दी मुल्ककी अपनी कुदरती भाषा है, तो आपको यह विश्वास होना चाहिये कि वह अुर्दूको खदेड़ देगी, जैसा कि आपने पिछले साल भी मुझे लिखा था। आपका यह कहना कि दोनों ज़बानोंको लाज़िमी बनानेकी कोअी ताक़त आपके हाथमें नहीं है, बेमतलब-सा है। अगर आप अिस तजवीज़को अपनी सिफ़ारिशके साथ मुल्कके सामने रखना पसन्द करेंगे, तो ज़रूरही अुसका असर भी होगा।"

अिन्होंने खतके नीचे अपनी सही तो दी है। लेकिन साथही अुसपर निजी भी लिखा है। अिसलिये यहाँ मैं अिनका नाम नहीं दे रहा हूँ। नामका कोअी खास महत्त्व भी नहीं। मैं जानता हूँ कि जो ख्याल अिस भाअीके हैं वेही और भी बहुतेरे मुसलमानोंके हैं। मेरे हज़ार अिन्कार करनेपर भी यह बुराअी दूर नहीं हो पायी है।

लेकिन जहाँतक मुझसे ताल्लुक है, अिस भाअीको मेरे अुस लेखसे तसल्ली हो जानी चाहिये, जो अिसी विषयपर २३ जनवरीको लिखा गया था और १ फरवरी १९४२ के 'हरिजन-सेवक' में छप चुका है।

मैं पत्र लेखककी अिस बातसे पूरी तरह सहमत हूँ कि जो लोग अेक राष्ट्र, भाषाके हिमायती हैं, अुन्हें अुसके हिन्दी और अुर्दू दोनों रूप सीखने चाहिये अिन्हीं लोगोंकी कोशिशसे हमें वह भाषा मिलेगी, जो सबकी भाषा या लोकभाषा कहलाअेगी। भाषाका जो रूप लोगोंको—फिर वे हिन्दू हों या मुसलमान—ज्यादा जँचेगा और जिसे लोग ज्यादा समझ सकेंगे, बिलाशक वही देशकी लोकभाषा बनेगी। अगर लोग मेरी अिस तजवीजको आम तौरपर अपना लें तो फिर भाषाका सवाल न तो राजनैतिक सवाल रह जाअेगा और न वह किसी झगड़ेकी जड़ ही बन सकेगा।

मैं पत्र लेखककी अिस बातको माननेको तैयार नहीं कि 'अुर्दू ज्यादा विकसित, ज्यादा खूबसूरत ज्यादा लुभावनी ज्यादा मुअस्सर, और ज्यादा अर्थसूचक यानी थोड़ेमें बहुत कहनेवाली जबान है।' ये सब चीजें किसी अेक भाषाकी अपनी बपौती नहीं होतीं। भाषा तो जैसी हम अुसे बनाना चाहें, बन जाती है। अंग्रेजीकी जो खूबियाँ आज हमें मालूम होती हैं, वे अंग्रेजोंकी कोशिशसेही अुसमें आयी हैं। दूसरे शब्दोंमें, भाषा हमारीही कृति है और वह अपने सरजनहारके रंगमें रँगी रहती है। हरअेक भाषामें अपना अनन्त विस्तार करनेकी शक्ति रहती है। आधुनिक बंगलाको बनानेवाले बंकिम और और रवीन्द्रही थे न? अिसलिये अगर अुर्दू आज हिन्दीसे हर बातमें बढ़ी चढ़ी है तो अुसकी यही वजह हो सकती है कि अुसके विधाता हिन्दीके विधाताओंसे ज्यादा लायक रहे हों। मगर अिसपर मैं कोअी राय नहीं दे सकता। क्योंकि भाषा शास्त्रीकी दृष्टिसे मैंने दोनोंमेंसे किसी अेकका भी अध्ययन नहीं किया। अपने सार्वजनिक कामके लिये जितना जरूरी है अुतना ही मैं अिन्हें जानता हूँ।

लेकिन क्या अुर्दू हिन्दीसे अुतनीही विभिन्न है, जितनी बंगला मराठीसे? क्या अुर्दू अुसी हिन्दीका नाम नहीं जो फारसी लिपिमें लिखी जाती है और संस्कृतसे नये शब्द लेनेके बजाय फारसी या अरबीसे नये शब्द लेनेकी तबीयत रखती है? अगर हिन्दू और मुसलमानोंके बीच किसी तरहकी अनबन न होती तो लोग अिस चीजका खुशीसे स्वागत करते, और जब आपसका यह अदावत मिट जायगी—जैसा कि अेक दिन अिसे मिटनाही है—तो हमारी संतान हमारे अिन झगड़ोंपर हँसेगी और अपनी अुस सर्वमान्य भाषा हिन्दुस्तानीपर गर्व करेगी, जो असंख्य लेखकों और लोगों द्वारा अुनकी अपनी आवश्यकता, रुचि और योग्यताके अनुसार कअी भाषाओंमेंसे खुले दिलके साथ लिये गये शब्दोंके सुमेलसे बनायी जाअेगी।

यहाँ मैं अपने पत्र लेखककी अेक भूलको दुरुस्त कर देना चाहता हूँ। अुनको कुछ अैसा ख्याल मालूम होता है कि आखिरकार हिन्दुस्तानी तमाम प्रांतीय

भाषाओंकी जगह ले बैठेगी; यह न तो कभी मेरा सपना रहा और नही अुन लोगोंका, जो देशके लिये अेक राष्ट्रभाषाकी चिन्ता करते हैं। हम सब. सपना तो यह देख रहे हैं कि मुल्कमें हिन्दुस्तानी अुस अंग्रेजीकी जगह ले ले, जो आज पढ़े-लिखे लोगोंके आम रियायाके बीच व्यवहारका माध्यम बन गयी है। अिसका नतीजा यह हुआ है कि पढ़ेलिखोंके और आम रियायाके बीच आज अेक खाओी-सी खुद गयी है। अिस दुर्भाग्यका प्रतिकार तभी हो सकता है, जब आन्तरप्रान्तीय व्यवहारके लिये हम अुस भाषाको अपनायें, जो देशकी लोकभाषा हो, यानी जिसे देशके ज्यादासे ज्यादा लोग बोलते हों। अिसलिये दरअसल झगड़ा अुर्दू-हिन्दीका नहीं, बल्कि अुर्दू और हिन्दी दोनोंका अंग्रेजीसे है। नतीजा अिसका अेकही हो सकता है—दोनोंकी फतह—हालाकि आज ये दोनों बहनें बडी भारी अड़चनोंके बीच जी रही हैं और फिलहाल अिनसे आपकी अनबन भी है।

पत्र-लेखकको हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके साथ मेरे सम्बन्धसे शिकायत है। मुझे अिसके साथके अपने अिस सम्बन्धका अभिमान है। अबतकका अुसका अितिहास अुज्ज्वल रहा है। 'हिन्दी' शब्दसे हिन्दू-मुसलमान, दोनोंका समान रूपसे बोध होता था। दोनोंने हिन्दीमें लिखकर अुसके भण्डारको समृद्ध बनाया है। स्पष्टही पत्र-लेखकको यह पता नहीं है कि सम्मेलनके साथ मेरे सम्बन्धका क्या असर हुआ है? सम्मेलनने मेरी प्रेरणासे—न सिर्फ अपनी बुद्धिमानीका—बल्कि देश-भक्तिका और अुदारताका परिचय देते हुअे—हिन्दीकी अुस परिभाषाको अपनाया जिसमें अुर्दू भी शामिल है। वे पूछते हैं कि क्या मैं किसी अुर्दू अंजुमनमें कभी शामिल हुआ? मुझसे किसीने कभी अिसके लिये गम्भीरतापूर्वक कहाही नहीं। अगर कोओी कहता, तो मैं अुसके साथ भी वही शर्त करता जो मैंने मुझे सम्मेलनका सभापति बननेके लिये कहनेवालोंके साथ की। मैं अपने अुर्दू-भाषी मित्रोंसे—जो मुझे न्यौतने आता—कहता कि वे मुसको जनतासे यह कहने दें कि वह अुर्दूकी अैसी व्याख्या करें, जिसमें देवनागरी लिपिमें लिखी हिन्दी भी शुमार हो, लेकिन मुझे कोओी मौका नहीं मिला।

मगर अब जैसा कि मैं अपने पहली फरवरीवाले लेखमें अिशारा कर चुका हूँ, मैं चाहता हूँ, किसी अैसी संस्था या समितिका संगठन हो, जो अपने सदस्योंके लिये हिन्दी और अुर्दूका अुनके दोनों रूपों और दोनों लिपियोंके साथ अध्ययन करनेकी हिदायत करे और अिस अुम्मीदके साथ अिस चीज़का प्रचार करे कि आखिरकार किसी दिन ये दोनों कुदरती तौरपर मिलकर अेक सर्व-साधारण आन्तरप्रान्तीय भाषाका चोगा पहन लेंगी और हिन्दुस्तानी कहलाने लग जाअेंगी। अुस समय अिनका समीकरण हिन्दी + अुर्दू = हिन्दुस्तानी, न होकर हिन्दुस्तानी = हिन्दी = अुर्दू होगा।

## १८ : हिन्दी-हिंदुस्तानी हिन्दू-मुस्लिम पैक्टकी भाषा है : अैक्यकी नहीं

[ भिक्षु भदन्त आनन्द कौसल्यायनका नाम राष्ट्रभाषा प्रचारके अितिहासमें सदैव रहेगा। राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति वर्धाके प्रधानमंत्रीके नाते सजग रहकर लेख, भाषण आदिके द्वारा तथा यात्राके माध्यमसे हिंदी प्रचार कार्यको अुन्होंने आशातीत आगे बढ़ाया है और वे इसे मंत्रीपदसे हटनेपर भी बढ़ा रहे हैं। वर्धामें रहकर हिंदुस्तानीका प्रबल विरोध तथा हिन्दीका प्रबल समर्थन अुनके-जैसा किसीने नहीं किया। आपकी मातृभाषा पंजाबी है। आपका अेक भाषण—जो कि बम्बअी हिन्दी विद्यापीठके दीक्षान्त भाषणके रूपमें दिया था—यहां 'हिन्दी काशी दिसम्बर १९४४ से अुद्धृत किया है। अेक तरहसे हिन्दी हिन्दुस्तानीका झगड़ा समाप्त हुआ-सा मालूम होता है, किंतु अैसा लगता है कि हिन्दीके दो रूपोंकी कल्पनामें वही झगड़ा फिरसे हमारे सामने आ रहा है। अिस दृष्टिसे पाठकोंको यह लेख आज भी अुपयुक्त सिद्ध होगा।]

हिंदुस्तानी हिन्दु-मुस्लिम पैक्टकी भाषा है। हिन्दु मुस्लिम-अैक्यकी नहीं, अेकदम बनावटी। अुसका अुद्देश्य है—अैसी भाषा लिखनेका प्रयत्न करना, जिसमें न संस्कृतके शब्द हों न अरबी फारसीके, और जो दोनों लिपियोंमें लिखी जा सके। अुत्तर-भारतमें काफी आर्यसमाजी साहित्य प्रचलित है, जो ठेठ हिन्दीमें है, लेकिन अुसे अुर्दू लिपिमें लिखकर छाप दिया है, यहांतक कि आर्यसमाजकी संस्कृत संध्याको भी। अुर्दू लिपिमें लिखा होने मात्रसे क्या वह सारा साहित्य 'हिन्दुस्तानी' समझा जाअेगा ? यदि नहीं, तो अिधर जो कुछ साहित्य पैदा होने लगा है, जो ठेठ अुर्दू है, लेकिन जो देवनागरीमें छाप दिया जाता है, वह कैसे हिन्दुस्तानी कहला सकता है ? मेरे अेक आदरणीय मित्र हैं। अुन्होंने अेक किताब लिखी है जो देवनागरी अक्षरों तथा अुर्दू हरफ दोनोंमें छपी है। मैंने अुस किताबको हस्तलिपिके रूपमें देखा था। वह अुर्दूमें लिखी गयी थी। और अेक दिन अुन्होंने मुझसे पूछा कि अब बताओ अिसमें कहां कहां, कौन-कौन शब्द काटकर बदल दिये जायें, जिससे वह देवनागरीमें छप सके ? मैंने कहा, मुझे यह अत्यन्त अस्वाभाविक मालूम होता है। अिससे अुर्दू शैलीका प्रभाव नष्ट होता है और हिन्दीपन तो आही नहीं सकता, तो भी हुआ वही, जो वे चाहते थे। जहां-तहां कुछ शब्दोंकी जगह 'हिन्दी' शब्द लिख दिये गये और वह पुस्तक देवनागरी अक्षरोंमें भी छप गयी।

## हिन्दुस्तानीके भिन्न-भिन्न नमूने

दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार-सभाने 'हिन्दुस्तानी' नामसे अेक पुस्तक प्रकाशित की है। अुसमें मौलाना अबुल कलाम आजादका अुर्दूमें लिखा हुआ अेक दीबाचा है जो देवनागरी अक्षरोंमें भी ज्योंका त्यों 'दीबाचा' ही है? दीबाचः शब्द फ़ारसीका है। अुसे फ़ारसीमें जगह है और हिन्दुस्तानीमें तथा अुर्दूमें भी; लेकिन हिन्दुस्तानकी भूमिपर जिनका जन्म हुआ अैसे ये दो शब्द— 'प्रस्तावना' और 'भूमिका' आप कृपया कहें कि अब कहां शरण ढूंढें? हिन्दुस्तानमें तो अब अुनको शरण मिलेगी नहीं, क्योंकि वे हिन्दुस्तानी नहीं हैं।

और क्या यह 'न संस्कृत, न अरबी-फ़ारसी' भाषा लिखनेका प्रयत्न सफल होता है? यदि आपको सारे साहित्यमें "मैं जाता हूँ, मैं खाता हूँ" जैसे दो-दो शब्दोंके वाक्योंसेही काम लेना हो तो बात दूसरी है; अन्यथा आप जरा भी गहराओमें अुतरे तो आपको अपनी 'न संस्कृत, न अरबी-फ़ारसी' वाली बात तुरंत छोड़ देनी होगी। मैं अिस 'हिन्दुस्तानी' किताबसे ही—जो अेकदम बच्चोंके लिये लिखी गयी है—दो अुदाहरण देता हूँ। अेक जगह फुटनोट है— मुजक्कर मुवन्नसकी वजहमें अिफआलमें जो फर्क पैदा होता है, अुस्ताद अुसे समझाअें और मश्क कराअें।" हिन्दुस्तानी आदर्शवादियोंने अुसे देवनागरी अक्षरोंमें कैसे लिखा है?—'पुल्लिंग और स्त्रीलिंगकी वजहसे क्रियाओंमें जो फ़र्क पैदा होता है, अुस्ताद अुसे समझाअें और मश्क कराअें। दोनों लिपियोंमें लिखी जाने योग्य भाषा बनानेके फेरमें देवनागरीमें भी 'कारण' न लिखकर 'वजह' लिखा गया है, 'अध्यापक' न लिखकर 'अुस्ताद' लिखा गया है, अभ्यास न लिखकर मश्क लिखा गया है। मानों ये शब्द पहले सब शब्दोंकी अपेक्षा सरल हों, 'आम-फहम' हों! लेकिन तब भी क्या दोनों लिपियोंमें भाषा लिखी जा सकी? देवनागरीमें क्रियाअें अुर्दूमें 'अिफआल' हैं। फेलका बहुवचन फेलों हो जाता; लेकिन तब तो वह हिन्दी व्याकरणानुसार होता। देवनागरीमें पुल्लिंग है तो अुर्दूमें मुजक्कर है। देवनागरीमें स्त्रीलिंग है अुर्दूमें मुवन्नस है।

दूसरा अुदाहरण लें—पृष्ठ ९४ पर "मुतकल्लिम हाजिर-गायब हालतोंकी मश्क फेल-हालके मुजक्कर मुवन्नसकी सूरतोंमें करा दी जाय।" दोनों लिपियोंमें अेकही भाषा लिखनेके अिच्छुकोंको देवनागरीमें अिसे यों लिखना पड़ा—"अुत्तम और मध्यम पुरुषकी मश्क वर्तमानकालके पुल्लिंग और स्त्रीलिंगके रूपोंमें करा दी जाय।" दोनों वाक्योंमें अेक 'मश्क' शब्द छोड़कर कौनसा विशेष शब्द समान है? यदि हम 'अभ्यास'की जगह अिस 'मश्क' शब्दको अपनी भाषामें जगह दें और हिन्दुस्तानीकी खातिर "अभ्यास"को 'देशनिकाला' भी दे दें, तब भी क्या अिससे वह हिन्दी "हिन्दुस्तानी" हो जाती है?

'नाममें क्या रखा है ?'

पिछले दिनों दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार-सभाके १२ वें-१३ वें पदवीदानके अवसरपर जनाव सैयद अब्दुल्ला ब्रेलवीसाहबने अेक तकरीर फरमायी थी। अुसमें आपने दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार-सभाको नेक सलाह दी है कि वह अपना नाम हिन्दी-प्रचार-सभा न रखकर 'हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा'में तबादला कर दे। आप फरमाते हैं—"हिन्दी नामसे पैदा होनेवाले भ्रमको हटानेके लिये मैं अपनी अपीलपर जोर दूँगा। खास करके अिसलिये कि मुझे पूरा यकीन है कि अिस तबादलेसे मुसलमानोंके मनपर बड़ा अच्छा असर होगा।" कुछ लोग कहा करते हैं कि नाममें क्या रखा है ? लेकिन ब्रेलवीसाहब नामके तबादलेसे मुसलमानोंके मनपर अच्छा असर पैदा करनेकी अुम्मीद करते हैं। आपने अपनी तकरीरमें फरमाया है कि क़ौमी ज़बानको अुनके जो तीन नाम मिले हैं हिन्दी, अुर्दू, हिन्दुस्तानी, ये तीनों मुसलमानोंके दिये हुअे हैं। यदि यह बात ठीक है तो 'हिन्दुस्तानी' नाममें वह कौनसी खासियत है जिसकी वजहसे मुसलमान भाअी 'हिन्दी' और 'अुर्दू' दोनों नामोंपर अुसे तरजीह देंगे ? आज आप मुसलमानोंपर 'अच्छा असर पड़ेगा'की बात करते हैं और राष्ट्रभाषाको 'हिन्दुस्तानी'ही कहनेकी सलाह देते हैं ! कल आप अुसे अुर्दू कहनेकी सलाह भी दे सकते हैं ! १९४२ में गांधीजीने जब 'हिन्दुस्तानी सभा'की नींव डाली तब अुसके ३८ बुनियादी मेंबरोंमें कितने मुसलमान भाअी मेंबर बने थे ! स्वयं ब्रेलवीसाहब तो खैर अुसमें थे ही नहीं ! कसम खानेके लिये तीन नाम दिखाअी देते हैं; लेकिन अैसे जिनमेंसे कोअी भी भाषासम्बन्धी शोधोंके लिये प्रसिद्ध नहीं—न आज़ाद हैं, न जाकिर हुसैन हैं, न अब्दुल हक हैं।

क्षमा कीजिये, यह हिन्दुस्तानी-आन्दोलन हमारे मान्य राजनैतिक नेताओंकी सूझ है और किसी राजनैतिक आवश्यकताका परिणाम भी। लेकिन शर्तोंपर आश्रित अेकता—बनावटी अेकता—स्थायी नहीं होती।

---

## १९ : हिन्दीसे अुर्दूको खतरा नहीं है।

[ भारत-सरकारके परराष्ट्र-मन्त्रालयके मन्त्री डा० सैयद महमूदने नवम्बर १९५६ में पटनामें सार्वजनिक भाषण दिया था। अुसका जो अंश 'राजभाषा' (दिल्ली) के २२ नवम्बर १९५६ के अंकमें प्रकाशित हुआ था वह यहाँ दिया है। अुन्होंने कहा कि राष्ट्रभाषा

हिन्दीको सीखनेकी चेष्टा भारतके प्रत्येक नागरिकको करनी चाहिये। अुन्होंने भारतीय मुसलमानोंकी अिस गलत-फहमीकी आलोचना की कि हिन्दीके प्रचलनसे अुर्दूको खतरा है। अुन्होंने आगे कहा कि अेक भाषा दूसरी भाषाको कदापि मिटा नहीं सकती। ]

अुर्दूको मुसलमानोंकी भाषा समझनेकी गलती अभी भी लोग करते हैं। वास्तवमें अुर्दूका जन्म भारतमें हुआ और हिन्दी तथा संस्कृतका अिसपर काफी प्रभाव पडा है।

जब हिन्दीको सरलसे सरल बनाया जाअेगा तभी अिसका प्रचलन अधिक हो सकेगा। आज हिन्दीको 'सघन' बनानेकी कोशिश ही की जा रही है, जो अुचित नहीं है। मैं अिस पक्षमें नहीं हूँ कि हिन्दीके व्यवहारके लिये कोअी अंतिम तिथि निश्चित की जाय। लोगोंमें स्वयं हिन्दीके प्रति प्रेम चलेगा और वे अिसे अपने व्यवहारकी भाषा बना सकेंगे।

मुसलमानोंने अगर हिन्दीमें अपने धार्मिक साहित्यका अनुवाद कर दिया होता तो हिन्दू-मुसलमानोंके बीच फैली हुअी बहुत सी भ्रान्तियोंका आज समाधान हो गया होता। हिन्दी न तो हिन्दू-मात्रकी भाषा है और नहीं अुर्दू मुसलमान-मात्रकी। अुर्दूके रचे हुअे गीत भी हिन्दू लोग भजनके रूपमें गाते हैं और आज अुर्दूके जितने अच्छे कहानीकार हैं, वे हिन्दू ही हैं।

---

## २० : हिन्दी प्रान्तीयता से अूपर है।

[ पूज्य विनोबाजीको कौन नहीं जानता? वे राष्ट्रपिता बापूजीके अत्यन्त निकटके विश्वास-पात्र थे। गान्धीजीके तत्त्वोंको पूर्णरूपसे अुन्होंने समझा है। भूदान-यज्ञ-जैसे शान्तिके साधनकी कल्पना-द्वारा जमीनका बँटवारा करनेका अुनका कार्य अेक अमर कार्य है। आप कअी भाषाओंके जानकार हैं। आपने 'गीता-प्रवचन', गीताअी जैसे कअी ग्रन्थ लिखे हैं।

### मातृभाषावत् राष्ट्रभाषाका ज्ञान आवश्यक

दक्षिण-भारतकी रचनात्मक संस्थाओं और आश्रमोंका निरीक्षण करते समय आचार्य विनोबाजीने अपने विचार अेक भाषणमें प्रकट किये थे और दक्षिण-भारतीयोंको राष्ट्रभाषा-हिन्दी

सीखनेका अनुरोध किया था। वह भाषण राष्ट्रभाषा में दिसम्बर १९४९ के वर्ष ९ अंक २ में छपा था। यहाँपर अुसमेंसे महत्त्वपूर्ण अंश दिया है। राष्ट्रभाषाका कितना ज्ञान होना आवश्यक है, अिसके सम्बन्धमें अुनके विचार मार्गदर्शक हैं। ]

## आश्रम-भाषा हिन्दी हो

यहाँ दक्षिण-भारतमें आनेके बाद यह काम अेक पहाड़ चढ़ने-जैसा मालूम होता है। पर कैसे पहाड़ चढ़ेगा? अिसका आरम्भ हमारी रचनात्मक संस्थाअें विशेष रीतिसे कर सकती हैं। मुझे लगता है, विनयाश्रम-जैसी संस्थामें आश्रम-भाषाही बना देनी चाहिये---संस्थाकी मान्य भाषा। आसपासके देहातोंकी सेवाके लिये प्रान्तभाषा चाहिये। अुसको तो बढ़ाव मिलनेवाला है, अुसके बारेमें हमें बहुत-ज्यादा सोचनेकी जरूरत नहीं है। लेकिन सारे देशका हृदय अेक करनेके लिये हमारी संस्थाओंकी भाषा देशभाषाही होनी चाहिये, ताकि नित्य अुसका प्रयोग पड़े और प्रगति सहज हो सके। रसोअी-घरमें, शिक्षणालयमें, अुद्योगालयमें, आश्रमवालोंकी आपसी बातचीतमें, जो आश्रमीय वर्ग चलेंगे अुनमें हिन्दीकाही व्यवहार हम लोग करें। हम यह नहीं चाहते कि देशभाषामें, यानी हिन्दीमेंही आम लोगोंको तालीम दी जाय; लेकिन आश्रमवाले और संस्थावाले तो अुस भाषामें तालीम भी पाअें। नहीं तो मैं देखता हूँ कि अभी यहाँ शायदही कोअी मनुष्य होगा जो दिल्लीमें जाकर अपने विचार लोगोंके सामने रख सके। जब हमारी रचनात्मक संस्थाओंकी भी यह हालत है, तो अखिल भारतीय सरकारके नौकरोंको हम क्या कह सकते हैं?

## हिन्दी प्रान्तीयतासे अूपर है।

अगर हिन्दीमें हम व्यवहार करने लगें तो हिन्दीका सर्वोत्तम साहित्य भी हम सीखेंगे और अुसकी वृद्धि भी करेंगे। मलाबारके शंकराचार्यने मलयालम भाषाका महत्त्व समझते हुअे भी संस्कृतमें ग्रन्थ लिखना लाभदायक समझा। अुसी तरह दक्षिणवाले यदि हिन्दीमें प्रवीणता पा लेंगे तो हिन्दी-साहित्यमें वे वह काम कर सकेंगे जो तुलसीदासजीने किया है। अगर हिन्दी सब लोगोंकी भाषा हुअी है तो सबका बुद्धि-योग अुसकी अुन्नतिके लिये होना चाहिये। वैसा हुआ तो विचार भी व्यापक बनेगा। मैं यहाँ खुले दिलसे कह रहा हूँ। मेरा अर्थ गलत समझा जावेगा अैसा डर यहाँ मैं नहीं रखता हूँ। वैसे डरनेका मेरा स्वभाव नहीं है और यहाँ तो मैं अपने कुटुम्बियोंमेंही बोल रहा हूँ।

आज मैं लड़कोंका अेक हस्तलिखित पढ रहा था। अुसमें आन्ध्रदेशका गौरव लड़कोंने कवितामें गाया था। गौरवमें कोअी नापतोल तो नहीं रहता। लेकिन संस्कृत भाषामें अिस तरह प्रान्तीय गौरव हम कम पाते हैं। राष्ट्रीय गौरवही अुसमें मिलता है। मैंने अभी शंकराचार्यकी मिसाल दी। वही मैं लेता हूँ।

## अुनमें मलयालमपन ढूँढ़नेपर भी आप नहीं पाअेंगे

मैंने अुनके सारे ग्रन्थ देखे हैं जो प्रकाशित हुअे हैं। और अुनका काफी बारीकीसे अभ्यास भी किया है, और अुनके ग्रंथोंका मेरे हृदय और जीवन-पर बड़ा गहरा असर हुआ है। अुनके किसी ग्रन्थमें अैसा कोअी वाक्य नहीं—अेक भी नहीं—जिससे यह साबित किया जा सके कि वे मलयाली थे। मलयाली होना कोअी बुरी बात नहीं थी; लेकिन अेक अैसी अखिल भारतीय दृष्टि अुनकी थी जिससे आज वे मलयाली लोगोंको जितने अपने लगते हैं अुतनेही हिन्दुस्तानके सब लोगोंको लगते हैं। जैसे युक्लिडकी भूमितिमें कहीं यह पता नहीं लगता कि युक्लिड ग्रीक था—वही शंकराचार्यका हाल है।

## . .स्फुट विचार

हिन्दीके द्वारा सारा भारतवर्ष अेकसूत्रमे पिरोया जा सकता है। हिन्दु तो अिसके झंडेके नीचे आही जायँगे, मुसलमानोंके लिये भी अिसका अपनाना आसान होगा। क्योंकि अुर्दू भाषाका सारा ढाँचा हिन्दीका रूपही लिये है। —**स्वामी दयानंद**

(जनवरी १९४०, हिन्दी-प्रचार-समाचार, मद्रास)।

यह तो सर्वसम्मत है कि कोअी भी देश अपनी राष्ट्रीय भावनाको विदेशी भाषा-द्वारा न तो अुन्नत कर सकता है और न ठीक व्यक्त कर सकता है। — **डॉ० राजेन्द्रप्रसाद**

(जुलाअी १९४१, 'हिन्दी' काशी)।

अिंग्लेण्डमे हमारा क्रान्तिकारियोंका दल था। हम प्रतिदिन **प्रण** दुहराते थे कि, हमारा देश हिन्दुस्तान, हमारा गीत वन्देमातरम्, **और हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी है।** — **स्वातंत्र्यवीर सावरकर**

[२-८-४२ को 'हिन्दी प्रचार सघ, पुणे'के सम्मेलन मे दिये हुअे भाषणसे]

## २१ : हिन्दीही हमारी राष्ट्रभाषा है।

[ प्रस्तुत लेख स्व० दा० दा० चितळेजी की प्रसिद्ध मराठी पुस्तक "हिन्दी हीच आमची राष्ट्रभाषा" पर आधारित है। यह रचना मनोहर ग्रंथमाला प्रकाशन, तिलक रोड, पुणे-२ से २८-१२-१९४७ को प्रकाशित हुअी थी। श्री चितळेजी राष्ट्रभाषाके प्रबल समर्थक तथा हिन्दी राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धा; हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन प्रयाग; हिन्दी-प्रचार-सघ व अनाथ विद्यार्थी गृह, पूना आदि सस्थाओंके प्रख्यात कार्यकर्ता थे। हिन्दी-प्रचारके क्षेत्रमे सगठन और नेतृत्व करनेकी आपमे अपूर्व क्षमता थी। ]

### राष्ट्रभाषा कौनसी ?

किसी भी देशमे चले जाअिये, वहाँ आपको यह देखनेके लिये मिलेगा, कि वहाँ अुस देशकी अपनी राष्ट्रभाषा है। सदेह-रहित अवस्थामें यह कहा जा सकता है कि अमुक देशकी अमुक राष्ट्रभाषा है। पर यह हमारा दुर्भाग्य है कि अिस देशमें राष्ट्रभाषाके सवालको लेकर वितडावाद शुरू हो गये—चर्चाअें हुअीं, और अनेक मत सामने आये। आरभसेही पार्थक्य और भेदकी भावना अिस प्रश्नको लेकर सामने आती गयी।

## अुर्दू राष्ट्रभाषा नहीं तथा अँग्रेज़ी तो विदेशी भाषा है।

वैसे देखा जाय तो किसी भी देशमें जाकर यदि जाँच-पड़ताल की जाय तो यह निश्चित रूपेण कहा जा सकता है कि अुस देशकी राष्ट्रभाषा वही है जिसे बहुसंख्यामें लोग बोलते हैं। हिन्दी-भाषी लोग अधिक सख्यामें अुसे जानते हैं तथा हिन्दी-तर भाषियोंमें भी अधिकतर लोग [कम या अधिक प्रमाणमें अुसे बोलते या समझते हैं। अुर्दूके बोलनेवालोंकी भी सख्या अनुपातमें कम होनेसे वह राष्ट्रभाषा बननेका दावा नहीं [कर सकती। वैसे वह पाकिस्तानकी राष्ट्रभाषा है। अतः भारतकी वह राष्ट्रभाषा तो [अब बनही] नहीं सकती। अंग्रेज़ी विदेशी भाषा है। अुसे राष्ट्रभाषा बनाया जाय अैसा आग्रह अंग्रेज़ी मिशनरियों, युरोपियनों, अंग्लो अिण्डियनों और कुछ अंग्रेज़ी-प्रेमियों-द्वारा निरंतर होता रहा है, और होता रहेगा। परन्तु वह किसी भी प्रकारसे राष्ट्रभाषा बननेका दावा कदापि नहीं कर सकती।

## राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपिका निर्णय हिन्दी और देवनागरीके पक्षमें

अेक संकर भाषा हिंदुस्तानीका समर्थन भी काफी विद्वानों और नेताओंने किया। अुनका स्वप्न साकार न हो सका। अेकताके बदले पार्थक्यकी भावना बढ़ चली। फलतः हिन्दुस्तानी सबके द्वारा परित्यक्त तिरस्कृत, और अुपेक्षित हुअी। अतः अपमानित होकर वह पनप न सकी। कुछ समयतक यह वाद जोरोंसे प्रस्तावित होकर चर्चित हुआ और अन्तमें क्षीण होकर अब लुप्त-प्रायसा हो गया है। हमारे संविधानने प्रचंड बहुमत से यह मान लिया है कि हमारे देशकी राष्ट्रभाषा हिन्दी है और अुसकी राष्ट्र-लिपि देवनागरी है।

## राष्ट्रभाषाका प्रश्न भावनात्मक अेकताका प्रश्न है।

राष्ट्रभाषाका प्रश्न या उसकी समस्या धार्मिक नहीं है; बल्कि वह राष्ट्रीय अेकात्मता चिरंतन रूपसे सिद्ध करनेवाली आत्मीयत्वकी वृद्धि करनेवाली भावनाका प्रश्न है। राष्ट्रभाषा वह माध्यम है जिसके द्वारा राष्ट्रीय अेकात्मता और अुसका आत्मीयत्व अभिव्यक्त हो जाय। स्वातंत्र्य और पारतंत्र्य अिन दोनों अवस्थाओंमें भी सामाजिक अेकताकी दृष्टिसे राष्ट्रभाषा किसी भी देशमें होना नितान्त आवश्यक है। राष्ट्रभाषाके बिना अेक राष्ट्रीयत्वका शक्तिशाली बंधन किसीपर भी लागू नहीं हो सकता। अिस देशको अेकसूत्रमें पिरोनेवाली राष्ट्र-भाषा हिन्दीके अतिरिक्त और दूसरी कोअी भाषा नहीं हो सकती। क्रान्ति-कारकोंने भी अपने कार्यकी गुप्तता सुरक्षित रखनेके लिये राष्ट्रभाषाका ही प्रयोग किया था। अिसका अेक अन्य अुद्देश्य भारतके प्रान्तीय व्यवहार आंतर-प्रान्तीय स्तरपर करना भी है। अिसके लिअे राष्ट्रभाषाकी अत्यन्त आवश्यकता

है। मानवी जीवनमें सास का जो महत्त्व है, वही राष्ट्रीय जीवनमें राष्ट्रभाषाका है। भारतवर्षकी तुलना स्विट्झरलैण्डसे नहीं करनी चाहिअे। क्योंकि भारतवर्ष खण्ड-प्राय देश है और अुसकी स्थिति असाधारण है। अत. १३–१४ भाषाअें हर भारतीयको आनी चाहिये, यह तर्क असगत होगा। यो हर शिक्षित भारतीय अपनी मातृभाषा, राष्ट्रभाषा और कोअी अेक अन्य भाषा अवश्य जानता है। अशिक्षित भी कम-से-कम दो भाषाअें तो जानता ही है। हिन्दी मातृभाषी अिसके अपवाद है। उन्हे चाहिये कि वे दक्षिणकी एक भाषा भी सीखें।

## राष्ट्रभाषा हिन्दी सीखनेके कतिपय अुद्देश्य।

हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है अिसलिये, भारत-भ्रमण करनेके लिअे, तुलसी-सूर, कबीर आदिके साहित्यका अध्यापन करनेके हेतु, अन्य भाषाओंके साहित्यका हिन्दीमें अनुवाद करनेके लिये, हिन्दी-भाषी प्रदेशमें व्यवसाय करनेकी दृष्टिसे तथा अन्य सभी भारतीय क्षेत्रोंमें काम करनेका सुअवसर प्राप्त करने के लिये राष्ट्रभाषा सीखना जरूरी है। मातृभाषाके समान, राष्ट्रभाषामें हम लिख-पढ और बोल सके, यह भी अेक अुद्देश्य हो सकता है। अपने विचार हम राष्ट्र भाषामें अभिव्यक्त कर सकते हैं। यह भावना राष्ट्राभिमान और राष्ट्र-भाषाके सामर्थ्यको प्रकट करनेवाली है। राष्ट्रभाषाके साथ राष्ट्र-लिपिका भी ज्ञान अत्यावश्यक है। राष्ट्रभाषा-प्रचारकको राष्ट्रभाषामें सोचना, सम्भाषण करना, व्याख्यान देना, लेख लिखना, पढना, पत्रव्यवहार करना तथा ग्रन्थ-निर्मिति और उत्कृष्ट कोटिके अनुवाद करना आना चाहिये। राष्ट्रभाषा प्रचारक अपनी मातृ-भाषामें तथा राष्ट्रभाषामें यदि निपुण नहीं है तो वह ‘राष्ट्रभाषा-प्रचारक’ सज्ञा के लिये अपात्र है।

## अेक तथ्य

राष्ट्रभाषाकी शिक्षा राष्ट्रीय अग होनेसे हर भारतीय नागरिकको चाहिए कि वह अिस तथ्यका मर्मज्ञ हो जाय कि अपने देशमें अपने आतर प्रातीय व्यवहारकी भाषा हिन्दी ही होगी—अग्रेजी नहीं। सास्कृतिक, वैज्ञानिक और राजनैतिक दृष्टिसे भी हर प्रान्तमें प्रान्तीय भाषा राजभाषा होगी और भारतमें राजभाषा और राष्ट्रभाषा हिन्दी ही होगी। यह स्थान अग्रेजी कदापि नहीं ले सकती।

(३) अन्य प्रान्तीय भाषाओंकी शब्दावली, व्याकरणके नियम, अुच्चारण, वाक्य-रचना, लिपि और वर्णमाला आदि बातोंमें समानता हो, जिससे यदि राष्ट्र-भाषामें बोलना न भी आता हो, तो कम-से-कम समयमें अुसे सीखा और समझा जा सके।
(४) शास्त्रीय पारिभाषिक शब्दावलीके शब्द अुस भाषामें अैसे हों, जो अन्य प्रान्तीय भाषाओंमें समान रूपमें मिले तथा जिसमें अैसे शब्द बनाये जा सकें—यह सक्षमता हो।
(५) यह भाषा राष्ट्रीयही हो, क्योंकि विदेशी भाषाका स्वीकार करना राष्ट्राभिमानको छोड़ना सिद्ध करता है।
(६) राष्ट्रभाषा कोओी मृतभाषा कदापि नहीं हो सकती। वह प्रचलित समृद्ध भाषा ही होनी चाहिअे।
(७) व्याकरणके नियम अधिक न हों।
(८) राष्ट्रीय भावना, राष्ट्रीय विचार और राष्ट्रीय संस्कृतिका प्रतिबिम्ब अुस भाषामें प्रकट हो जाय।
(९) राष्ट्रभाषाकी लिपि सुगम और वैज्ञानिक हो, तथा अन्य प्रान्तीय भाषाओंके अुच्चारण-लेखनकी क्षमता अुसमें हो, जिससे सारी प्रान्तीय भाषाअें अुस लिपिमें लिखी जा सकें।
(१०) कार्यक्षमताकी दृष्टिसे उसकी लिपि मुद्रण-सुलभ तथा टंकन लेखन यंत्र की सहायता करने योग्य हो।

## विदेशी जेताओंकी भाषा अंग्रेजी राष्ट्रभाषा नहीं है।

अिन दस गुणोंको राष्ट्रभाषा हिन्दीपर लागू करनेसे अैसा प्रतीत होता है कि हिन्दीमें ये दसों गुण विद्यमान हैं। अिस भाषाके दो रूप प्रचलित हैं। अेक बोलचालकी भाषाका रूप और दूसरा ग्रांथिक रूप। हिन्दीमें दोनोंकी सक्षमता है। अंग्रेजीमें अूपर बतलाये गये दस गुणोंमेंसे छ गुण नहीं हैं। वह आन्तर-राष्ट्रीय व्यवहारका माध्यम भले ही हो, किन्तु प्रान्तीय व्यवहारकी भाषा नहीं हो सकती। ज्ञान प्राप्तिके लिअे अंग्रेजी या जर्मन, रशियन, फ्रेन्च आदि कोओी भी भाषा पढ़ी जा सकती है। विशेषत अंग्रेजी विदेशी और जेताओंकी भाषा है। अत किसी भी देशाभिमानीके द्वारा राष्ट्र-भाषाके नाते अंग्रेजीका समर्थन नहीं किया जाना चाहिये।

## स्वयसिद्ध राष्ट्रभाषा हिन्दी है।

संस्कृत भारतीय भाषाओंकी जननी है। यह मध्यदेशकी भाषा रह चुकी है। प्राय अिस देशकी राष्ट्रभाषा मध्यदेशकी भाषा ही रही है। अिसी परंपरामें अर्धमागधी, पाली, शौरसेनी, प्राकृत, महाराष्ट्री, अपभ्रंश और हिन्दी

आती है। आकर भाषाके रूपमें संस्कृतने ही अिन भाषाओंको पुष्ट किया है। हिन्दीका अुपयोग सन्तोंके द्वारा होता रहा है। मरहठोंने अिस चीज़को पहचानकर अपने शासनकालमें अुसको अपनाया था। क्रान्तिकारकोंने हिन्दीको ही राष्ट्रभाषा पद प्रदान किया था। ब्र. केशवचन्द्रसेनके मतानुसार भारत-वर्षकी अेकता प्रस्थापित कर सकनेवाली हिन्दी ही हो सकती थी। हिन्दीमें राष्ट्रीयत्व और सारे प्रान्तीय भाषाओंका आंशिक शक्तिशाली रूप विद्यमान है। संस्कृतकी आंतरिक शक्ति आधुनिक हिन्दीमें निहित है। 'राष्ट्रभाषा हिन्दी' यह अभिधान सार्थक है, क्योंकि वह देशके सर्वव्यापी भारतीयत्वको प्रदर्शित करता है। अतः यह स्वयसिद्ध है कि निस्सन्दिग्ध आत्मीयताको प्रकट करनेवाली भाषाही राष्ट्रभाषा हो सकती है। फलतः हिन्दीके अतिरिक्त और अिसके लायक अन्य कोअी भाषा कैसे हो सकती है? अतः हमारा अनुरोध है कि स्वयसिद्ध राष्ट्रभाषा हिन्दीको अपनानेमें भारतीय गौरवकी गरिमा तथा राष्ट्रका हित है।

## राष्ट्रभाषाके कर्मठ-प्रचारक

देवदास गांधी

बाबा राघवदास

महापण्डित
राहुल साङ्कृत्यायन

पण्डित
ग र वैशंपायन

# राष्ट्रभाषाके जागरूक तपस्वी

आचार्य
विनोबा भावे

आचार्य
काकासाहब कालेलकर

मो सत्यनारायण

सेठ गोविन्ददास

द्वितीय अध्याय

# हिन्दीका स्वरूप

# २२ : अुत्तर-भारतकी हिन्दी और राष्ट्रभाषा हिन्दी अेकही है।

[दिनांक २३ फरवरी १९५२ को बम्बअीमें अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा-प्रचार-सम्मेलनका चौथा अधिवेशन संपन्न हुआ। अुसके अध्यक्षपदसे श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शीजीने जो भाषण दिया था, अुसका महत्त्वपूर्ण अंश यहाँ दिया है।]

## हिन्दीकी परिभाषा

जब हमारा विधान नहीं बना था तब हिन्दी-अुर्दूपर झगडा चलता था। बडे कठिन संघर्षके बाद श्री गोपालस्वामी आयंगार और मैंने अेक रास्ता निकाला और करीब-करीब सर्व-सम्मतिसे हमारी संविधान-सभाने अुसको स्वीकार किया। हिन्दीकी व्याख्या अुन्होंने जिस प्रकार की थी —

"हिन्दी भाषाको प्रसार-वृद्धि करना, अुसका विकास करना, ताकि वह भारतकी सामाजिक संस्कृतिके सब तत्त्वोंकी अभिव्यक्तिका माध्यम हो सके, तथा अुसकी आत्मीयतामें हस्तक्षेप किये बिना हिन्दुस्तानी और अष्टम अनुसूचीमें अुल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओंके रूप, शैली और पदावलीको आत्मसात् करते हुअे तथा जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो, वहाँ अुसके शब्द-भण्डारके लिये मुख्यतः संस्कृतसे तथा गौणतः वैसी अुल्लिखित भाषाओंसे शब्द ग्रहण करते हुअे अुसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघका कर्तव्य होगा।"

यह हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है और असके लिअे हम सबको महा प्रयत्न करना है।

## धारा ३५१ का अर्थ

आपको यह विश्वास था कि संविधान पास होनेपर संविधान-द्वारा हिन्दीको राष्ट्रभाषा स्वीकार किये जानेपर, आपकी जो सेवाअें हैं अुनकी कद्र होगी, आपका जो कार्य है शासनसे अुसमें मदद मिलेगी और सब पुराने झगडे भुला दिये जायेंगे। आपको अैसा लगता है कि यह नहीं हुआ। पुराने झगडे नये स्वरूपमें अभीतक खडे हैं, पुरानी शक्तियाँ अपने मतभेद भुला नहीं सकीं और अब भी कुछ अधिकारियोंपर अुनका प्रभाव है। संभवतः आप लोग दुःखी हैं।

पक्षपातके समर्थनमें कानूनको भी लाया गया है। अुदाहरणके लिये बम्बअी टेक्स्ट बुक कमेटी, जिसमें हिन्दुस्तानीके पुराने समर्थक ही लिये गये थे; अुन्होंने अपना निर्णय कर दिया कि संविधानकी हिन्दी अुत्तर-प्रदेशकी हिन्दीसे अलग है;

बल्कि यह कोअी और भाषा है जिसका निर्माण अभी होना है। अर्थात् वह अुनकी प्यारी हिन्दुस्तानी है। अेक वकीलकी हैसियतसे मैं अैसे विशेषज्ञोंसे झगडा मोल लेना नहीं चाहता। किन्तु आपके सभापतिके रूपसे मुझे आपको अपनी राय देनी है। संविधानके अनुच्छेद ३५१ में राष्ट्रभाषाके सम्बन्धमें कहा गया है :—

(१) आधुनिक हिन्दी जो प्रचलित है अुसको ही आधार मानना।

(२) अैसी हिन्दीकी आत्मीयता।

(३) अिसकी भावी अुन्नति, और

(४) अिसे समृद्ध करना। समृद्ध अिस प्रकार किया जायगा —

(क) अिसके दूसरे रूप, अर्थात् हिन्दुस्तानीसे हिन्दीकी आत्मीयताको विकृत किये बिना शब्द आदि ग्रहण करना, और (ख) अन्य भाषाओंसे गौणत तथा संस्कृतसे मुख्यत शब्द ग्रहण करना।

यह कहना कि अनुच्छेद ३५१ में अुल्लिखित हिन्दी, अुत्तर-प्रदेश तथा बिहारकी संस्कृत जनताकी हिन्दी नहीं है, किसी भी वकीलकी समझमें आना मुश्किल है।

## बाजारू हिन्दी नहीं चाहिये।

अिसके अतिरिक्त, भाषासम्बन्धी संकल्पका प्रारूप तैयार होते समय तथा सदनमें और दलमें विवादके समय, मेरा अिस प्रश्नसे घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। मुझेही नहीं, संविधान-सभाके अुन बहुत-से सदस्योंको भी—जो संकल्पसे सहमत थे—यह सुनकर आश्चर्य होगा कि जब हम हिन्दीका अुल्लेख कर रहे थे, तब वास्तवमें हमारा अभिप्राय प्रचलित शिष्ट हिन्दीसे नहीं, बल्कि बाजारू हिन्दुस्तानीसे था, जिसे भविष्यमें सरकारी प्रयोगके लिये साहित्यिक भाषाका रूप देना है।

आप दो बातें न भूलें। पहली तो यह कि संविधानने हिन्दीकी जो व्याख्या दी है अुससे मनुष्यका हृदय अेकदम बदला नहीं जा सकता, न ही राग-द्वेष और प्रिय-अप्रियका भेद सहसा मिटाया जा सकता है। अिस व्याख्यासे केवल भाषाकी परिभाषाके अनुसार मनुष्यको अपना दृष्टिकोण बदलनेका अवसर मिला है, यह भी अेक फायदा है। अिस प्रकार दोनों पक्ष अेकही व्याख्यासे प्रेरणा लेकर अेक दूसरेके निकट आ जायेंगे।

## शासक भाषा नहीं बना सकते।

दूसरी बात यह है कि भाषा न प्रचारक बनाते हैं, न राजपुरुष; न अुसके आश्रित, न अधिकारी लोग और न ही भाषा-शास्त्री। अुसके बनानेवाली तो आम जनता होती है और अैसे साहित्यकार होते हैं, जिनमें प्रबल शब्दोंके

सृजन करनेकी शक्ति है। भाषा सामान्य व्यवहार और अुच्च अभिव्यक्तिकी आवश्यकताओंके सतत समन्वयसे बनती है। शासक भाषा नहीं बना सकते। शताब्दियोंतक मुसलमान राज्य करते रहे और फारसीको अपनी राज्यभाषा न बना सके। डेढ़ शताब्दीतक अंग्रेजोंके लिये प्रयत्न किये, परन्तु कुछ न कर सके। जो अपनी भाषाको समृद्ध बनाता है, कलात्मक बनाता है—जैसे कि सूरदास, तुलसीदास, बंकिम और ठाकुर—वही भाषाका निर्माता है। निजामने अुसमानिया यूनिवर्सिटीके द्वारा जबरदस्ती अुर्दूको राज्यकी प्रधान भाषा बनानेका प्रयोग हैदराबादमें किया था। जिस क्षण अुन्हें सत्यका स्पर्श हुआ अुसी क्षण अुस भाषाके टुकड़े हो गये।

## कैन्यूटकी तरह अव्यवहार्य

अुत्तर-भारतकी हिन्दी और राष्ट्रभाषा हिन्दीके बीच भेद करनेका प्रयत्न अनभिज्ञतापर और कुछ भाषा-शास्त्रियोंके भारतको नयी भाषा देनेके जोश और अत्यधिक आत्मविश्वासपर आधारित है। हिन्दी तो १५ करोड़ आदमियोंकी व्यावहारिक भाषा है। कितनीही सरकारोंने अिसका स्वीकार किया है। करीब १२ युनिवर्सिटियोंने अुसको अपना माध्यम बनाया है। लाखों पुस्तकें अुसमें प्रकाशित हो रही हैं। यह कहना कि यह भाषा प्रदेश विशेषकी है और दूसरे प्रदेश अपनी हिन्दी स्वयं निर्माण करेंगे, बुद्धिमत्ताकी बात नहीं। यह राजा कैन्यूटकी तरह आज्ञा करनेके बराबर है कि सागर अुसकी आज्ञाका पालन करेगा और अुसके राज्यमें प्रवेश नहीं करेगा।

## हिन्दीका विकास और संस्कृतीकरण

जब हम यह कहते हैं कि हिन्दीका विकास संस्कृत द्वारा प्रभावित होना चाहिये, तो अिसका यह अर्थ नहीं कि हिन्दीका संस्कृतीकरण किया जाना चाहिए। अुच्चतर विकसित भाषाओंके और बोल-चालकी दैनिक भाषाके प्रभावसेही किसी भाषाकी अभिवृद्धि होती है और अुसमें सौन्दर्य, समृद्धि और अभिव्यञ्जना-शक्तिका समावेश हो पाता है। अुर्दूके अतिरिक्त सब आधुनिक भारतीय भाषाओंने संस्कृत और अंग्रेजी, और कहीं-कहीं अन्य प्राचीन भारतीय भाषाओंके प्रभावसेही शक्ति और सुन्दरता प्राप्त की है। यह विकास-विधि आगे भी चलती रहनी चाहिये।

बंगालमें बंकिम और ठाकुर, महाराष्ट्रमें तिलक और आपटे, गुजरातमें नर्मदसे मुनशीतक जैसे सृजनात्मक लेखकों तथा आधुनिक हिन्दी-लेखकों और अुन लेखकोंके प्रयाससे भावी हिन्दीका निर्माण होगा, जिन्होंने हिन्दीको राष्ट्रीय भाषाके रूपमें अंगीकार किया है।

### पारिभाषिक शब्द

आधुनिक सभ्यता और विज्ञान तथा आन्तरराष्ट्रीय अुपयोगमें आनेवाले टेकनिकल शब्दोका प्रयोग दूसरा महत् विषय है। मेरी रायमें अिन शब्दोंको बदल देना, यदि सम्भव भी हो तो भी हानिकारक सिद्ध होगा। यदि हिन्दीको आधुनिक भाषा बनना है तो अंग्रेजीको और आन्तरराष्ट्रीय टेकनिकल शब्दोको रखना होगा। हाँ, यह सम्भव है कि अुनको सुगमतासे समझे जानेवाला भारतीय रूप दे दिया जाय। आज अंग्रेजीकी और किसी समय सस्कृतकी भी अभिवृद्धि विदेशी शब्दोंको अपनानेसे ही हुअी थी। देशकी अुच्चतर शिक्षाके लिये हिन्दीको अंग्रेजीके स्थानमे माध्यम बनाने तथा अगले पन्द्रह वर्षोंमें अिसे राष्ट्रीय भाषाका रूप देनेकी ध्येय-पूर्तिके लिये केवल अिसी पथका अनुकरण करना होगा।

### सस्कृतका प्रभाव रहेगा।

अत. भाषाके निर्माणकी ओर विशेष ध्यान न दीजिये। सस्कृतकी परिधिसे हमारी भाषाओंको बलपूर्वक बाहर निकालनेके बहुतसे प्रयोग हो चुके हैं। आजतक अिस प्रयोगमें कोअी सफल नहीं हुआ और न हो सकेगा।

[भारत की राष्ट्रभाषा पर सस्कृत का प्रभाव अवश्य रहेगा।
—सम्पादक]

---

## २३ : राष्ट्रीय हिन्दी और प्रान्तीय हिन्दीमें भेद नहीं है : बुद्धिभेद पैदा न करो।

[श्री मोहनलालजी भट्ट, राष्ट्रपिता महात्मा गाधीजीकी प्रेरणा पाकर कअी वर्षोंसे गुजरातमे हिन्दीका प्रचार-कार्य अेकनिष्ठासे करते आये हैं। गुजरात प्रान्तसे आपने राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति वर्धामे प्रतिनिधिके रूपमे भी कार्य किया है। सन १९५२ से आप राष्ट्र-भाषा-प्रचार-समिति वर्धाके प्रधानमत्रीकी हैसियतसे काम कर रहे हैं। आप दृढ रहकर बड़ी निष्ठासे और दत्तचित्त होकर राष्ट्रभाषाका प्रचार-कार्य करनेवाले हैं। अुनका यह लेख राष्ट्रभारतीके मअी १९५७ के अक से यहाँपर लिया गया है।]

### जबरदस्त भेद दिखाया जाता है।

जिस विषयपर अभी-अभी बम्बअी-राज्य और अुससे जुड़े हुअे प्रदेशोंमें काफी चर्चा हो रही है। पोद्दार-कमिटीकी रिपोर्ट, बम्बअी सरकारकी ओरसे

किया गया अुसका समर्थन, सरकारी नौकरोंको हिन्दीकी योग्यता प्राप्त करनेके लिये जिन-जिन परीक्षाओंमेंसे अेक परीक्षा देना आवश्यक माना गया है अुनमें कोविदकी लोकप्रिय और हिन्दीकी योग्यता प्राप्त करनेकी दृष्टिसे अुत्तम कोटिकी परीक्षाको शामिल न करना आदि अैसी बातें हैं, जिनपर हिन्दी-प्रेमी जनता चुप नहीं रह सकती।

बम्बअीमें अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा-प्रचार-सम्मेलन हुआ। अुसके अध्यक्ष स्थानसे दिये भाषणमें माननीय श्री. कन्हैयालाल मा० मुन्शीने, जिन लोगोंने प्रचलित हिन्दी और राष्ट्रभाषामें अकारण भेद करना चाहा है और जिसके लिअे संविधानके अमुक नियमोंको लेकर बालकी खाल निकालनेका प्रयत्न किया है और अेक अच्छे चलते हुअे राष्ट्रभाषा-प्रचारके रचनात्मक कार्यको ठेस लगानेकी कोशिश की है अुन लोगोंकी मनोवृत्ति तथा निष्कारण राष्ट्रके कार्यमें बाधा पहुँचानेकी दृष्टिपर अच्छा प्रकाश डाला है। जिससे वे चिढ-से गये हैं और यह स्वाभाविक ही है। अुनमेंसे कुछ लोगोंने श्री मुन्शीजीको अुत्तर देनेके बहाने कुछ अैसी दलीलें पेश की हैं जो दरअसल दलील ही नहीं कही जा सकतीं। अुनकी दलीलोंको पढनेके बाद यही लगता है कि ये लोग अपने किसी स्वार्थवश जहाँ भेद नहीं है वहाँ जबरदस्ती भेद दिखाना और बढाना चाहते हैं।

## हिन्दीकी भिन्न-भिन्न शैलियाँ

आज जो हिन्दी भाषा अुत्तर-भारतमें चलती है अुसका सम्पूर्ण विकास हो गया है, अैसा तो किसीने नहीं कहा। अुसमें भिन्न-भिन्न शैलियाँ नहीं हो सकतीं यह भी तो किसीने कहा है। संस्कृतनिष्ठ हिन्दी, अुर्दू-मिश्रित शैली ठेठ-हिन्दी आदि शैलियाँ अुसमें भी हो सकती हैं और अुनका भी विकास हो रहा है और होगा। कोअी भी प्राणवान् भाषा स्थिर नहीं रह सकती। यदि अुसका विकास रुक जाय तो वह मृत भाषा बन जायगी और केवल अनुसंधान-शालाओंके कुछ विद्वानोंके अध्ययनका विषय ही बनकर रह जायगी; परन्तु हिन्दी तो प्राणवान् भाषा है। करोडों मनुष्योंके नित्य व्यवहारमें आने-वाली भाषा है और अब राजभाषा या राष्ट्रभाषा बननेके बाद तो अुसका महत्त्व और भी बढ गया है। अुस भाषाके करोडों बोलने-वालोंके जीवन और आदर्शोंका ही प्रतिबिम्ब अुसमें अब नहीं पडेगा; बल्कि हमारे राष्ट्रीय जीवन और महत्त्वा-कांक्षा, राष्ट्रके विचार और आदर्शोंकी दृष्टि, अुसकी संस्कृति और जीवन-सिद्धान्त, अिन सबका अुसपर प्रभाव पडनेवाला है और अिस प्रभावके कारण अुसका जो विकास होगा वह अधिक प्राणवान् और गौरवपूर्ण होगा। हमारी संस्कृति

और अेकराष्ट्रीयता दोनो अुसमें प्रतिबिम्बित होगी, वह भाववाही और आत्म-विश्वास तथा बल प्रदान करनेवाली होगी । वह तमाम प्रान्तीय भाषाओंको बल देगी और अुनसे बल प्राप्त करके जहाँ आवश्यक होगा वहाँ अुनका भी प्रतिनिधित्व करेगी ।

कुछ लोग यदि यह कहें कि जब हिन्दीका अिस प्रकारका विकास होगा तभी हम अुसे राष्ट्रभाषा कहेंगे; तो अुन लोगोंसे हमारा कोअी झगड़ा नहीं है। हिन्दीके आधारपर यह भाषा बननेवाली है; अिसे तो विधानमें ही स्वीकार किया गया है और जो नये शब्द ठेठ हिन्दीके अथवा फारसी, अरबी और संस्कृतके भी लिये जायेंगे अुन्हें हिन्दीमें आत्मसात् करने होंगे, यह भी विधानमें स्पष्ट किया गया है। विधानमें यह भी स्पष्ट किया गया है कि नये शब्द अधिकांशमें संस्कृतसे लिये जायेंगे। अिसके बाद मतभेदके लिये कहाँ और कौन-सा स्थान रहता है, यह हमारी समझमें नहीं आता ।

## क्रमिक विकाससेही हिन्दीका भावी रूप निखरेगा।

राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिने अपनी ३०।१२।५१ की बैठकमें अपनी भाषा-नीतिके सम्बन्धमें जो प्रस्ताव किया है वह अिस प्रकार है :—

"राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिकी यह घोषणा है कि आरम्भसे अुसकी यह नीति रही है कि राष्ट्रभाषा हिन्दीका रूप दिन-दिन अिस रीतिसे विकसित हो कि अुसके निर्माणमें देशकी समस्त भाषाओंका हाथ हो और वह सच्चे अर्थमें भारतीय जनताका प्रतिनिधित्व करे ।

अिस समितिकी धारणा है कि भारतीय संविधानने हिन्दीके अिसी रूपकी कल्पना की है । यह रूप किसी अप्राकृतिक रूपसे पैदा नहीं किया जा सकता। जो हिन्दी पुराने समयसे देशभरमें फैली हुअी है अुसीके क्रमिक विकाससे हिन्दीका भावी रूप निखरेगा । हालमें कुछ भाअियोंने यह दिखानेका प्रयत्न किया है कि राष्ट्रीय हिन्दी और प्रान्तीय हिन्दीमें भेद है । अिस समितिके विचारमें अिस प्रकारका भेद सर्वथा निर्मूल है और अिससे हिन्दीके विकासमें कोअी लाभ नहीं हो सकता ।

स्थानीय बोलियोंके अतिरिक्त हिन्दीका कोअी रूप राष्ट्रीय हिन्दीसे भिन्न नहीं है । साहित्यिक और सांस्कृतिक हिन्दी अेक है । वही सब प्रदेशोंमें प्रचलित है । अुसीके द्वारा राष्ट्रीय कार्य सम्पन्न हो सकेगा और उसके क्रमिक विकासमें संविधानके अनुसार संस्कृत तथा देशकी अन्य भाषाओंका भाग होगा।"

गीताके निर्माता पुरुषोत्तम कृष्ण कहते हैं — न बुद्धिभेदं जनयेत् — बुद्धिभेद मत पैदा करो। सीधे-से जिस राष्ट्रभाषा और भारत-भारती शब्दको लेकर कितना बुद्धिभेद अुत्पन्न किया गया यही अेक महान् आश्चर्य है।

प्रस्ताव अितना स्पष्ट है कि अुसके बारेमें और अधिक कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं है। कुछ लोगोंको छोड़कर—जिनको सहज अंगुलियोंपर गिननेलायक है और जिनका प्रभाव भी नहीं है—हिन्दी या राष्ट्रभाषाका कोअी भी अैसा अभिभावक, हितैषी या कार्यकर्त्ता नहीं है जो हिन्दीमें प्रचलित अुर्दू, अंग्रेजी या दूसरे विदेशी शब्दोंका बहिष्कार करना चाहता हो। अुर्दूका भी बहिष्कार हम नहीं करना चाहते। हाँ, हम यह अवश्य कहते हैं कि वही अुर्दू चलेगी जो आम-फहम होगी और जो हिन्दीकी अेक विशिष्ट शैली बनकर अुसकी शोभा बढ़ाअेगी। अुर्दूके आलिमोंने चलते हुअे शब्दोंको भी खास लहजेमें प्रयोग करके अैसी अच्छी वाक्य-रचनाअें की हैं और भाषाको चलती हुअी और भाववाही बनानेमें अैसी सूक्ष्म दृष्टि और कला दिखायी है कि अुनकी प्रशंसा ही करनी होगी। भाषाके अैसे वैभवको कोअी अुससे छीनना नहीं चाहता। परन्तु यह तो स्वीकार करनाही होगा कि यह अमुक हदतक ही सम्भव होगा।

विधानमें नागरी लिपिका स्वीकार किया गया है। अब हमारे विचारसे तो भाषाके रूपके सम्बन्धमें कोअी मतभेद नहीं रहता है। भारतके प्रधानमन्त्री पं. जवाहरलालजी अेक प्रकारकी हिन्दी बोलते हैं, शिक्षामन्त्री मौलाना आजाद दूसरे प्रकारकी और हमारे राष्ट्रपतिकी हिन्दी अिन दोनोंसे भिन्न होती है। लेकिन आज तो हमें यह मानना ही होगा कि वे सब हिन्दीही बोल रहे हैं। यह तो अब समयकी बात है। अिन भिन्न-भिन्न प्रकारकी शैलियोंमेंसे गुजरनेपर अन्तमें अेक अैसी निखरी हुअी शिष्ट और संस्कार-सम्पन्न भाषा हमें प्राप्त होगी जिसपर सारा राष्ट्र अपनी मुहर लगा देगा।

## सम्मेलनको विधान स्वीकार्य है।

कुछ लोगोंकी यह ग़लत-फ़हमी भी है कि सम्मेलनने विधानकी भाषाको स्वीकार नहीं किया है और कुछ लोग तो जान-बूझकर ग़लत ख्याल जनतामें फैलानेका प्रयत्न कर रहे हैं। नागरी लिपि, संस्कृतसे अधिकांश शब्दोंका लिया जाना, भाषाका नाम हिन्दी होना आदि बातें तो हिन्दी-साहित्य सम्मेलनके अनुकूल हैं। अुसीकी तो यह माँग थी। भाषाके रूपके सम्बन्धमें तो कोअी खास मतभेद है ही नहीं। महात्मा गांधीजी और श्री० टण्डनजीके बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ था अुससे यह स्पष्ट है कि गांधीजीके साथ टण्डनजीका जो मतभेद था वह केवल लिपिका ही मतभेद था। अवश्य, विधानमें पन्द्रह वर्षकी जो अवधि अंग्रेजीके लिये रखी गयी है और अंकोंके बारेमें जो निर्णय हुआ है अुसपर

सम्मेलनने असन्तोष प्रकट किया है। परन्तु यहाँ यह भी कह देना आवश्यक है कि अंग्रेजीको हटाना चाहिये और अुसका स्थान राष्ट्रभाषा हिन्दीको मिलना चाहिये, यह सिद्धान्त स्वीकार कर लेनेके बाद कितने कालमें यह कार्य किया जाय, अुसपर जो मतभेद है वह सैद्धान्तिक मतभेद नहीं कहा जा सकता। अंकोके बारेमें भी विधानमें हिन्दी अंकोंका विकल्पमें अुपयोग स्वीकार किया गया है और भारत-सरकार तथा राज्य-सरकारें अपने-अपने प्रकाशनोंमें हिन्दी अंकोंका अुपयोग करती भी हैं।

### लिपिका प्रश्न फिरसे न अुठाअिये।

कुछ मित्रोंने लिपि (अुर्दू और रोमन) के प्रश्नको फिर अुठाना चाहा है। अुनका यह प्रयत्न निरर्थक है, यह जानते हुअे भी कहना चाहिये कि अुनकी यह प्रवृत्ति अुचित नहीं है। राष्ट्रभाषा हिन्दीको अेशियाकी अेक बड़ी भाषा बनानेके अुद्देश्यसे हो, या अुसे दुनियाकी बडी भाषाओंमें गिनानेकी महत्त्वाकांक्षासे हो, अैसी प्रवृत्ति हमारी राष्ट्रभाषा और राष्ट्र दोनोंके लिये हानिकर ही होगी। हम यह नहीं कहते कि किसी दूसरी लिपिमें हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दीका लिखा जाना ही अुसके लिये हानिकर होगा। परन्तु अरबी और रोमन लिपिको स्वीकारनेकी बात करना या अुसका प्रयत्न करना यह जनतामें बुद्धि-भेदका कारण अवश्य होगा। और आज अुसकी आवश्यकताही क्या है, जब कि विधानमें नागरी लिपिको स्वीकार कर लिया गया है? नागरी लिपि अितनी सरल है कि जो कोअी भी हिन्दी लिखना चाहेगा अुसे नागरी लिपि सीखनेमें न बहुत समय देना पड़ेगा और न बहुत कठिनाओ ही होगी।

### महत्त्वाकांक्षाके साथ सयम।

और सबसे महत्त्वकी बात तो यह है कि हिन्दीको अेशियाकी भाषा बनानेके पहले—अुसे दुनियाकी भाषाओंमें स्थान दिलानेसे पहले—यह आवश्यक है कि अुसे भारतकी सच्ची राष्ट्रभाषा बनायी जाय; अुसे भारतीय संस्कृति और हमारी राष्ट्रीय भावनाओंको प्रेरणा देनेवाली भाषा बनायी जाय; प्रान्तीय भाषाओंके साथ अुसका मेल हो और प्रान्तीय भाषाओंके विकासके साथ-साथ अुसका अपना भी सम्पूर्ण विकास हो और अिस तरह प्रान्तीय भाषाके साथ विकास-प्राप्त राष्ट्र-भाषाको अुच्च शिक्षा और अुच्च न्यायालय, राज-काज और भारतीय दूतावासों आदिके तमाम कार्योंके लिये कार्य-क्षम बनाया जाय। जबतक राष्ट्रभाषा हिन्दी सच्ची राष्ट्रभाषा नहीं बनेगी, राष्ट्रके गौरवको निभाने-योग्य न बन सकेगी तबतक अुसका विदेशोंमें, अेशियाके दूसरे देशोंमें जैसा चाहिये वैसा आदर कभी न होगा। महत्त्वाकांक्षाअें अच्छी होती हैं; परन्तु अुसके साथ कुछ संयमकी भी आवश्यकता है। सबसे महत्त्वका और निहायत जरूरी काम तो यह है कि हमने अंग्रेजीको जो स्थान दे रखा है अुसपर हिन्दीको जल्दी अधिष्ठित किया जाय।

## २४ : हिन्दीके तथा-कथित दो रूपोंके बीचकी रेखा कौन खींचेगा ?

[स्व. श्री. किशोरीलालजी मश्रूवाला म० गांधीके विश्वास-भाजन सलाहकारोंमें प्रमुख रहे हैं। अुन्होंने 'हरिजन-सेवक'का संपादन बड़ी लगनसे और सफलतासे किया। श्री. मगनभाओजी देसाओके अेक लेखका अुत्तर श्री. घनश्यामसिंहजी गुप्ताने—जो कि संविधानका सरकारी रीतिसे हिन्दी अनुवाद करनेवाली समितिके अध्यक्ष थे—हरिजन-सेवकमें दिया था। अुस समय श्री. मश्रूवालाजीने जो संपादकीय टिप्पणी लिखी थी वह बड़े महत्त्वकी है। गुप्ताजीका पत्र और वह टिप्पणी इस प्रकार है—]

### अेकही शब्दका अर्थ सभी भारतीय भाषाओंमें अेक होना चाहिये।

मैं श्री. म. प्र. देसाओका ता. २३-६-५१ के "हरिजन" में प्रकाशित लेख ध्यानपूर्वक पढ़ गया हूँ। मैं अुनके साथ जिस बातपर अपनी सहमति अेकदम जाहिर कर सकता हूँ कि संविधानकी हिन्दीको—जैसा कि मैंने कओ बार कहा है—सार्वदेशिक होना चाहिये। दिल्ली, लखनअू, रायपुरमें अुसका जो रूप हो गया है, वह प्रादेशिक हिन्दी मान्य होना चाहिये। अुसे सर्वसंग्राहक होना चाहिये। भारतकी सब बड़ी भाषाओंसे अपनी समृद्धिके लिये अुसे निःसंकोच पूरी मदद लेनी चाहिये। विरोधकी शान्ति और भारतकी सारी बड़ी राज्यभाषाओंके लिये पारिभाषिक शब्दावलीकी अेकतापर पहुँचनेकी यही अेक कुंजी है। यदि भारतको अेक संयुक्त राष्ट्रकी तरह चलना है, तो यह अेकता आवश्यक है। न्यायालयों या विद्यालयोंमें जिनका अुपयोग होता है, अैसे शब्द—जिनमें कोओ पारिभाषिक अर्थ होता है—हमारी सब भाषाओंके लिये अेकही होने चाहिये। नहीं तो बड़ी अुलझन पैदा होगी और गड़बड़ी मचेगी। हमारे पारिभाषिक शब्द अैसा होना चाहिये कि वह हिन्दी, मराठी, बंगला तथा भारतकी दूसरी भाषाओंमें अेकही अर्थका सूचन करे। हिन्दीको अपना विकास जिसी दिशामें बढते हुअे करना है तथा अनुच्छेद ३५१ में दिया गया आदेश यही है।

### संविधानका हिन्दी अनुवाद, ३५१ वीं धाराके अनुसार

संविधानका हिन्दी रूपान्तर करनेके लिये बनायी गयी समितिके सदस्य आदेशके जिसी आशयको निगाहमें रखकर चुने गये थे। जिस हिन्दी—समितिमें

दूसरी भाषाओंके प्रसिद्ध विद्वान् भी थे । अध्यक्षको छोडकर बाकी सात सदस्योंमें पाँच दूसरी भाषाओंके निष्णात् थे । डॉ सुनीतिकुमार चटर्जी, न्यायमूर्ति वा. र पुराणिक और प्रो म मुजीब (जिन्होंने बादमें समिति छोड़ दी ) अिसके सिवाय परिशिष्ट ८ में जो भाषाअें दी गयी हैं अुनके विशेषज्ञोंका ( जिनकी संख्या ४५ थी ) अेक सम्मेलन भी बुलाया गया था, जिसका उद्देश यह था कि वह संविधानके हिन्दी अनुवादमें आनेवाले शब्दोंपर अिस दृष्टिसे विचार करें कि सब भाषाओंमेंसे ज्यादा भाषाअें कौन-सा शब्द स्वीकार करनेके लिये तैयार होंगी और फिर अुनपर अपनी आखिरी सहमति दें । संविधानके हिन्दी अनुवादमें अिन स्वीकृत शब्दोंकाही अुपयोग हुआ है । अिसलिये यह हिन्दी अनुवाद अनुच्छेद ३५१ में जो आदेश दिया गया है, अुसका प्रयोग-सिद्ध और प्रत्यक्ष नमूना है तथा सार्वदेशिक हिन्दीके भावी विकासके लिये अुसे अनुकरणीय माना जाना चाहिये । कोअी भी पुस्तक—अुसका अपना मूल्य जो भी हो—यदि अिस आदर्शका बहिष्कार करती है, तो वह सार्वदेशिक या राष्ट्रीय हिन्दी होनेका दावा नहीं कर सकती ।

## ३५१ वी धारामें अुल्लिखित हिन्दुस्तानी राष्ट्रभाषा नहीं है ।

हमारी खुशकिस्मती है कि हिन्दी-हिन्दुस्तानी-विवादका कायमके लिये अन्त हो गया है और अुसे दुबारा छेडनेसे कोअी लाभ नहीं होगा । लेकिन अिस विषयपर श्री देसाओकी दलीलमें, मुझे लगता है कि अेक गलत-फहमी है और मैं अुसे दूर करनेकी कोशिश किया चाहता हूँ । अनुच्छेद ३५१ मे अुल्लिखित हिन्दुस्तानी सार्वदेशिक हिन्दी या वकील श्री. देसाअी ३६१ वीं धाराकी हिन्दी नहीं है । अनुच्छेद ३५१ में अुल्लिखित हिन्दी और हिन्दुस्तानी दोनो अेकही नही हो सकतीं । अैसा किया जाय, तो यह सारा अनुच्छेद अर्थशून्य हो जाता है । आप अनुच्छेद ३५१ में आये "हिन्दुस्तानी" शब्दकी जगह हिन्दी शब्द रखकर देखिये तो यह अर्थशून्यता स्पष्ट हो जाती है । संविधान-सभाकी नियमावलीके नियम ३० में हिन्दुस्तानी शब्दका अुपयोग हिन्दी और अुर्दू दोनोंके सामान्य-वाचककी तरह हुआ है । हिन्दुस्तानीका मतलब हिन्दी और अुर्दूका वह स्थानीय मेल है जिसका अुपयोग साधारण बोलचालमें दिल्लीके आसपास तथा और जगहोंमें होता है । यह निश्चित है कि अुसका आशय आजकलकी या संविधानके अनुच्छेद ३५१ में जिसकी कल्पना की गयी है, वह बन रही राष्ट्रभाषा नहीं है ।

—घनश्यामसिंह गुप्ता

## हिन्दी शब्दके अर्थमें बारीकियाँ करनेकी आवश्यकता नहीं।

हमारी राष्ट्रभाषाका नाम और रूप क्या हो, अिसपर विवाद चलानेकी मेरी अिच्छा नहीं होती। भाषाके निर्माणमें जिन कारणोंका योग होता है, अुनका अेक बडा कारण विद्वान है, और दूसरा बडा कारण जनप्रिय लेखक तथा वह जनता है जो अुन भाषाओंको बोलती है। कभी वे अिनपर हावी हो जाते हैं, कभी ये अुनपर। कभी अिनकी चलती है तो कभी अुनकी। और कभी-कभी दोनों साथ साथ अपनी अपनी चलाते रहते हैं। भाषाकी रचनामें बहुत-ज्यादा हिस्सा तो अुन जनप्रिय लेखकों और कवियोंका होता है, जिन्हें जनता बहुत पढती है, अुनके चलाये अशुद्ध प्रयोग भी चल जाते हैं और विद्वान् या वैज्ञानिक भी अुन्हें रोक नहीं पाते।

## पारिभाषिक शब्दावलीके सबधमें सावधानी—

पारिभाषिक शब्दावली भी—यद्यपि समानताका काफी महत्त्व है और अुसके लिये भरसक कोशिश होनी चाहिये—अुसी अेक चीजपर बहुत ज्यादा जोर नहीं दिया जा सकता। और यह भी हो सकता है कि हमारे बहुत सावधानीसे पढे गये शब्द भी बादमें गलत या असुविधाजनक साबित हों। अिसके सिवाय, शुद्ध वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द अक्सर बहुत लम्बे-लम्बे और अैसे कितनी होते हैं कि वैज्ञानिक पुस्तकोंमें भी अुनका लगातार बार बार अुपयोग नहीं किया जा सकता, और अिसीलिये बहुत सी चीजोंको कोअी छोटा चालू नाम देना पडता है, जिसका प्रयोग सब आसानीसे कर सकें। Organic और Inoraganic Chemistry तथा Positive और Negative Electricity आदि शब्द अुन वैज्ञानिक परिभाषाओंके अुदाहरण हैं जो बादमें अनिश्चित मानी गयीं। लेकिन अितने दिनके अुपयोगसे अब वे आसान बन गये और अुनके लिये जो नये शब्द Chemistry of Carbon Compounds और Non Carbon Compounds तथा Cathode और Anode दिये गये हैं वे अब अुन्हें अपनी जगहसे हटा नहीं सकते। सैकडों Carbon Compounds के पूरे पारिभाषिक नाम अुसी तरह नहीं लिये जा सकते, जैसे कि षष्ठ जाजके सारे क्रिश्चियन नाम नहीं लिये जा सकते। अिस तरह अुनके प्रचलित नामही मान्य हो जाते हैं। और आजकल तो यह रीति चल पडी है कि बडे बडे नामोंकी जगह अुनके आरंभिक अक्षरोंसे बने हुअे नाम चलते हैं। जैसे—"यू अेन"," अे आअी अेन सी सी", "आअी सी सी" अित्यादि। अंग्रेजी "Financial" शब्दके लिये भारतके सब विद्वानोंने "वित्तीय' शब्द तय किया और गुजरातीके सारे वैयाकरण निःसन्देह "नाणाकीय' शब्दको बिलकुल अशुद्ध बताअेंगे। लेकिन 'वित्तीय' शब्द गुजरातकी प्रचलित बोलीसे

"नाणाकीय" को शायद नहीं हटा सकेगा। "अच्छनीय" व्याकरणकी दृष्टिसे अशुद्ध है। लेकिन गुजरातमें कोओ लेखक अुसकी जगह "अेवयणीय" कहे, तो वह पोथी-पण्डित माना जायगा। भाषाअें ज्यामितिकी आकृतियोंके नियम मानकर नहीं चलतीं। हम सब अुत्तम भाषा गढनेकी कोशिश करें। लेकिन अगर अुनमें कभी-कभी दो भाषाओंके योगसे बने हुअे या अशुद्ध या अेकही अर्थके लिये अनेक प्रयोग आ जाते हैं तो हम अुसकी चिन्ता न करें और न अुसपर झगड़ें ही।

## दोनों रूपोंकी विभाजक रेखा कौन खींचेगा ?

अनुच्छेद ३५१ में आये "हिन्दी" शब्दके अर्थमें बहुत बारीकियाँ करनेकी आवश्यकता मालूम नहीं होती। हिन्दीके तथा-कथित सार्वदेशिक और प्रादेशिक रूपोंके बीचकी विभाजक रेखा कौन खींचेगा? क्या सार्वदेशिक हिन्दीका कोष प्रादेशिक हिन्दीके कोषोंके बिना बनाया जा सकेगा? और सार्वदेशिक हिन्दी या हिन्दुस्तानीका कोओ लेखक कोओ बढ़िया पुस्तक लिखे तो प्रादेशिक हिन्दीके लेखक क्या अुसका बहिष्कार करेंगे? हम लोग अंग्रेजीमें अनेक भारतीय शब्द भर सकते हैं। लेकिन क्या यह हम कह सकते हैं कि आक्सफर्ड डिक्शनरी, या नेसफील्डकी ग्रामर हमारे लिये प्रामाण्य ग्रन्थ नहीं हैं? अिसी तरह सार्वदेशिक हिन्दीके विकासमें हमें प्रादेशिक हिन्दीको महत्त्वका स्थान देनाही पड़ेगा।

हरिजन-सेवक २५-९-५१ —कि. घ. मशरूवाला

---

# २५ : हिन्दी-हिन्दुस्तानीका झगड़ा खतम हुआ : शैली-विशेषका आग्रह अनुचित

[ दिनांक १० और ११ नवम्बर १९५३ को अ. भा. राष्ट्रभाषा प्रचार-सम्मेलनका पांचवां अधिवेशन नागपुरमें हुआ। अिस अधि-वेशनके अध्यक्ष माननीय श्री. न. वि. अुर्फ काकासाहब गाडगीळजी थे। अुस समय दिये गये भाषणका महत्त्वपूर्ण अंश यहाँ अुद्धृत किया गया है। राष्ट्रभाषाके प्रचार-कार्यमें आपका संबंध सन १९३४ के पहलेसेही रहा है। महाराष्ट्रकी आद्य हिन्दी-प्रचार-संस्था 'हिन्दी-प्रचार-संघ' पुणेके संस्थापकोंमेंसे आप अेक हैं तथा आप महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पुणेके अुपाध्यक्ष भी हैं। ]

## हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका कार्य

१९१० की १९ अक्तूबरको हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका जन्म हुआ और अुस दिनसे आजतक अनेक कठिनाअियोंके साथ झगड़ा करके हिन्दीका जो प्रचार हुआ वह मेरी दृष्टिमें गौरवकी बात है। जब १९१० में सम्मेलनका जन्म हुआ अुस समय मैं नहीं जानता हूं कि किसीने यह आशा कि होगी कि चालीस वर्षके अन्दर-अन्दर हिन्दी राष्ट्रभाषा हो जाअेगी। सन १९१८ में अिंदौरका अधिवेशन हुआ; और अुस अधिवेशनमें हिन्दीको राष्ट्रभाषा तथा नागरीको राष्ट्रलिपिके रूपमें स्वीकार करनेका प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। अिसके पूर्व हिन्दीके साथ जो व्यवहार रहा, वह अुपेक्षाका था। १९१८ में जब अधिवेशनका सभापतित्व गांधीजीने किया, अुस वर्षसे हिन्दी-भाषाके प्रचार-कार्यको अेक नयी शक्ति प्राप्त हो गयी। १९१८ से सन १९२६ तक अनेक कार्यकर्ताओंने विभिन्न अहिन्दी-क्षेत्रोंमे हिन्दी-प्रचारका कार्य किया। 'हिन्दी-प्रचार,' स्वातंत्र्य-आन्दोलनका भी अेक अंग बन गया। यही कारण है कि प्रचारमें व्यापकता और चेतनता आ गयी।

## पाकिस्तानके बाद हिंदुस्तानीका प्रचार विफल

१९३६ में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका अधिवेशन अिसी नागपुर शहरमें डॉ. राजेंद्रप्रसादजीकी अध्यक्षतामें हुआ। अिस अधिवेशनमें राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिका निर्माण करनेके लिये प्रस्ताव स्वीकृत हुआ और समितिका संगठन भी हो गया। अिस प्रचार-समितिके निर्माण और संगठनकी वजहसे प्रचारका कार्य सूत्रबद्ध और सतत होने लगा। कुछ संघर्ष भी पैदा हुअे। हिन्दी और हिंदुस्तानीका झगड़ा शुरू हो गया। साथ-साथ लिपिके संबंधमें भी विवाद अुठ खड़ा हुआ। हिन्दी और अुर्दू दोनों शैलियाँ और लिपियां भारतवासी सीखें तथा दोनोंके संयोगसे अेक अैसी शैलीका निर्माण करें जिसे हिंदुस्तानी नामसे पुकारा जाअे और वही भारतकी राष्ट्रभाषा हो, यह भी कहा जाने लगा। १९४० में अिस संघर्षको हटानेके लिये सेवाग्राममें चर्चा हुअी और कुछ काम-चलाअू समझौता हो गया। परिणाम यह हुआ कि पृथक् हिंदुस्तानी-प्रचार-सभाका निर्माण हो गया। १९४५ में अिस समझौतेका अन्त हुआ और हिन्दी और हिन्दुस्तानी दोनोंके समर्थकोंमें कोअी समान भूमिका नहीं रही। राष्ट्रकी अेकताके लिये अेक भाषा आवश्यक माननेवालोंमें भाषाके प्रश्नपर संघर्ष हुआ। हिंदुस्तानी भाषाकी रचना और प्रचारमें जो उद्देश्य था वह तो पाकिस्तान बननेके बाद विफल हो गया और अुर्दू बोलनेवालोंका कोअी अेक प्रदेश भारतमें न रहा; तब हिंदुस्तानीकी भी खास जरूरत नहीं रही। अब हिन्दीको स्वतंत्र भारतकी भाषा स्वीकार करना अनिवार्य हो गया।

## संघ-राज्यकी भाषा और प्रत्येक राज्यकी भाषा

जब संविधानकी रचना शुरू हुअी तब यह बात बिलकुल स्पष्ट हो गयी कि अगर कोअी भाषा संघराज्यकी भाषा होनेकी पात्रता रखती है, तो वह हिन्दीही है। भारत अेक राष्ट्र था या नहीं अिस संबंधमें चर्चा करना निष्फल है। संविधानमें भारत अेक संघराज्य है। अिसके लिये संघराज्यकी कोअी भाषा निश्चित करना भी आवश्यक प्रतीत हुआ। अंग्रेजी भाषा संघ-राज्यकी भाषा नहीं हो सकती थी। किन्तु हिन्दीको अेकदम संघ-राज्यकी भाषा बनानेमें बहुत दिक्कतें थीं, अिसी लिये संविधानमें यह योजना रखी गयी कि शासनकी कार्यवाही पन्द्रह वर्षोंतक अंग्रेजी भाषामें हो। सिद्धान्त-रूपसे संविधानकी ३४३ वीं धारामें संघकी भाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी स्पष्ट रूपसे घोषित हुअी। मैं समझता हूँ कि अिस सम्बन्धमें सिद्धान्त-रूपसे कोअी चर्चा करनेकी आवश्यकता नहीं। हमारा संविधान संघीय संविधान है। अिसका अर्थ यह है कि देशका विस्तार, देशके प्रदेशोंकी भाषा, संस्कृति अित्यादि बातोंकी विविधता ध्यानमें रखकर घटक-राज्योंको (कॉन्स्टिटचूअण्ट स्टेट्स) सम्मिलित करना ठीक समझा गया और संविधानकी रचनाके लिये जो हालत थी वही स्वीकृत करके २७ घटक-राज्योंको संविधानमें स्थान मिला। अब समय आया है कि कुछ शास्त्रीय सिद्धान्तोंके आधारपर राज्योंका भी पुनर्निर्माण हो। वर्तमान स्थितिमें तो अेक ओर कुर्गसरीखा छोटा राज्य और दूसरी ओर अुत्तर-प्रदेशसरीखा बड़े आकारका राज्य है। अिस स्थितिको बदलना है। सब घटक-राज्योंको स्वयं कार्यक्षम-बनानेकी दृष्टिसे पुनर्रचना आवश्यक है। जिस तरह हम राष्ट्रकी अेकताके लिये अेक भाषा आवश्यक मानते हैं, अुसी तरह घटक राज्यकी अेकताके लिये भी अेक भाषा आवश्यक है। भाषा, संस्कृति, सभ्यता, अर्थव्यवहार अित्यादिमें समानता हो तो राज्यकी नींव—चाहे वह घटक हो या संघराज्य—सुदृढ होती है। अिसलिये मेरी राय है कि भाषाकी दृष्टिसे राज्योंकी पुनर्रचना हो और जो संघर्ष अिस सम्बन्धमें नजर आता है अुसको समाप्त किया जाये। लोग समझते हैं कि भाषाकी दृष्टिसे पुनर्रचना होनेपर भारतकी अेकता नहीं रहेगी। यह विचार मेरी दृष्टिसे ग़लत है। जब संविधानमें घटक-राज्य और केन्द्र-राज्यके अधिकारोंका और आयका विभाजन रखा गया है और केन्द्र-राज्यका आधिपत्य स्वीकार करकेही घटक-राज्य बने हैं और बनेंगे; तब अुस प्रकारकी शंका निर्मूल है। मकानके अन्दर कमरोंकी संख्यामें कम-ज्यादा होनेकी वजहसे घरकी सीमा या अुनका रूप नहीं बदल सकता। अिसी तरह भारतीय संघ-राज्यकी अेकता भी अिस पुनर्रचनासे नष्ट नहीं होगी। संविधानके अनुसार भाषा हिन्दीही रहेगी और घटक-राज्योंकी भाषा अुनमें रहनेवाले लोगोंकी भाषा होगी। मुझे तो अिस बातमें कोअी शंका नहीं कि भाषाकी दृष्टिसे राज्योंकी पुनर्रचना होनेके बाद हिन्दी अुन्नति करेगी और साथ-साथ राज्यभाषाअें भी बढ़ेंगी।

## प्रान्तीय भाषाओंकी प्रगति हिन्दी नहीं रोक देगी।

हिन्दीके खिलाफ जो आक्षेप हैं अुनमें अेक बडा आक्षेप यह है कि हिन्दी भाषा-भाषी संकुचित दृष्टिसे सोचते हैं कि हिन्दी, हिन्दुस्तानकी अेकमात्र भाषा रहे और हिन्दुस्तानमें जो आज अन्य भाषाअें हैं वे सब खत्म हो जाअें। अैसा न होनेपर भारत, अेकराष्ट्र नहीं रहेगा। मैं समझता हूँ कि अैसे विचार रखनेवाले हिन्दीके बहुत बडे शत्रु हैं। संविधानमें मुख्य चौदह भाषाओंका निर्देश है। अुसमें किसीको भी कम करनेके लिये संविधानको बदलना होगा। घटक-राज्योंको अधिकार है कि वे शासनकी भाषा अपनी सुविधानुसार निश्चित करें। मैं समझता हूँ कि जब राज्योंकी पुनर्रचना होगी तब हर अेक घटक-राज्यको अपनी-अपनी भाषाकी प्रगतिके लिये पूरा अवसर मिलेगा। मुझे तो कोअी डर नहीं लगता कि संघराज्यकी भाषा होनेसे हिन्दी अन्य भाषाओंकी प्रगति रोक देगी। आज हिन्दीका अन्य भाषाओंसे अधिक घनिष्ठ संबंध है; लेकिन भविष्यमें हिन्दी और अन्य भाषाओंमें साहित्यिक दृष्टिसे जो लेन-देन होगा, अुससे परस्परके संबंध और भी मजबूत होंगे।

## प्रादेशिक शासनमें हिन्दीकी आवश्यकता नहीं है।

आज जो लोग अंग्रेजी भाषाके पक्षमें अंग्रेजी और प्रादेशिक भाषाओंका प्रचार कर रहे हैं अुनका अुद्देश्य क्या है यह भी देखना है। यह बात ठीक है कि भारतमें अेकराष्ट्रकी कल्पनाको विशद करनेके लिये अंग्रेजीने बहुत काम किया। अगर यह भी कहा जाअे कि स्वतंत्रता-आंदोलनमें अंग्रेजी जबान हमारे लिये शक्तिका साधन थी तो अनुचित नहीं होगा। डेढसौ वर्षोंके अन्दर शासन, शास्त्र, विज्ञान और ज्ञानके अनेक क्षेत्रमें अंग्रेजीका बोलबाला रहा, परंतु स्वातंत्र्य-प्राप्तिके बाद अंग्रेजीका अनन्तकालतक राज्यभाषा रहना बिलकुल अनुचित होता। अिस लिये संविधानमें संघकी भाषा हिन्दी स्वीकार की गयी। व्यावहारिक दृष्टिसे पंद्रह वर्षोंतक संघराज्योंकी कार्यवाही अंग्रेजीमें भी हो सकेगी। अभी राज्योंके प्रतिनिधियोंने सर्व-सम्मतिसे जो कुछ निश्चित कर लिया है अुसके बाद संघ राज्यकी भाषा या लिपिके बारेमें बार बार सवाल अुठाना ठीक नहीं। हमारे सामने सवाल यह है कि संविधानमें जो कुछ लिखा है अुसको किस तरह हम कार्यान्वित कर सकें? अिस सिलसिलेमें कुछ बातें कहनी होंगी। प्रादेशिक शासनमें हिन्दीकी आवश्यकता नहीं है। चंद लोगोंका कहना है कि जहाँ-जहाँ अंग्रेजीका अुपयोग होता है वहाँ-वहाँ हिन्दीका अुपयोग होना चाहिये। अिस विचारसे मैं पूर्ण रूपसे सहमत नहीं हूँ। हमें अपने देशमें हिन्दीका प्रचार करना है। देहातोंमें अैसे लाखों लोग हैं जो शिक्षाविहीन हैं—न वे अंग्रेजी जानते हैं न हिन्दी। अुनके लिये जहाँ अंग्रेजीकी आवश्यकता नहीं, वहाँ हिन्दीकी आवश्यकता

भी नहीं है। वे अपनी मातृभाषाकोही शिक्षा ले लें। हिन्दीकी आवश्यकता प्रादेशिक राज्यशासनमें नहीं है। प्रादेशिक राज्यके शासनकी भाषाका तो वहांकी ही भाषा होनी चाहिये। संघ-राज्यके आन्तरप्रान्तीय सम्बन्धकी भाषा आन्तर-प्रान्तीय होनी चाहिये। आज प्रादेशिक राज्योंमें अंग्रेजी चल रही है। असकी जगह अगर हम हिन्दीका आग्रह करेंगे तो अुस प्रदेशकी भाषाके साथ अन्याय होगा। सक्षेपमें हिन्दीका क्षेत्र संघराज्यका शासनकार्य और आन्तरप्रान्तीय व्यवहारतकही सीमित रहना चाहिये। अगर अैसा न हुआ और जहां अंग्रेजी है वहां हिन्दी चलायी गयी तो यह न्यायसगत न होगा और सविधानके मूल सिद्धान्तका भी विरोध होगा।

## हिन्दीके भावी विकास के लिये संस्कृत हमारी रिझर्व बैंक है।

दूसरा प्रश्न यह खडा होता है हिन्दीका स्वरूप क्या हो? अिस सम्बन्धमें संविधानकी ३५१ वीं धारामें यह लिखा है कि—"हिन्दी भाषाकी प्रसार-वृद्धि करना, अुसका विकास करना ताकि वह भारतकी सामाजिक संस्कृतिके सब तत्त्वोंकी अभिव्यक्तिका माध्यम हो सके तथा अुसकी आत्मीयतामें हस्तक्षेप किये बिना हिन्दुस्तानी और अष्टम अनुसूचीमें अुल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओंके रूप, शैली और पदावलीको आत्मसात् करते हुअे तथा जहां आवश्यक या वांछनीय हो, वहां अुसके शब्द-भंडारके लिये मुख्यतः संस्कृतसे तथा गौणतः अुल्लिखित वैसी भाषाओंसे शब्द ग्रहण करते हुअे अुसकी वृद्धि सुनिश्चित करना संघका कर्तव्य होगा।"

हिन्दी हमारे सघ-राज्यकी भाषा है। असके लिये हम सबको प्रयत्न करना है। हिन्दीका जो स्वरूप संविधानमें बताया गया है, अुसके सम्बन्धमें कुछ प्रश्न पैदा हुअे हैं। कौनसी हिन्दी आधारभूत मानी जाअे और भावी हिन्दीका स्वरूप क्या हो? मैं समझता हूं अिस सम्बन्धमें कोअी संकुचित दृष्टि या आग्रह नहीं होना चाहिये। जैसा कि व्यवहारमें अच्छा चलन (करन्सी) स्वीकार किया जाता है, अुसी तरहसे नये शब्द या वाक्यप्रचार भाषाके बाजारमें आअेंगे। अगर लोग अुसको स्वीकार करेंगे तो ठीक; नहीं तो वे व्यवहारमें नहीं रहेंगे। सविधानमें जो कुछ बताया गया है अुसके अनुसार यदि अन्य भाषाओं तथा हिन्दुस्तानीमें भी अच्छे शब्द और वाक्य हो, तो अुनको लेना चाहिये। जहां आवश्यक और वांछनीय हो वहां मुख्यतः संस्कृतसे ही शब्द लिये जाअें। मैं समझता हूं संस्कृत हमारे लिये अेक 'रिझर्व्ह बैंक' है। जहांतक हो सकता है वहांतक प्रचलित भाषाओंके शब्द हिन्दीको समृद्ध करेंगे। और जहां अनिवार्य है वहां अिस रिझर्व्ह बैंकसे शब्दसंपत्ति लेकर हिन्दीको समृद्ध किया जाअे। जो शब्द बरसोंसे हमारी भाषाके व्यवहारमें आ रहे हैं। अुनको निकालना ठीक नहीं; भलेही वे फारसी, अंग्रेजी

### हिन्दीके दो रूप कभी नहीं हो सकते ।

मैं स्पष्ट कहता हूँ कि, बम्बओ सरकारकी पोतदार-समितिने हिन्दीके जिन दो रूपोंको चर्चा की है अुसके दो रूप कभी नहीं हो सकते। अिस महादेशकी संघभाषामें सब प्रकारकी अभिव्यंजना-शक्तियोंको आत्मसात् करनेकी शक्ति होनी चाहिये । यह कार्य भारतीय भाषाओंके विचारों-शब्दों आदिके आदान-प्रदानहीपरही निर्भर रहेगा। खड़ी बोलीका वह विशाल रूप—जो आजके रूपमें अुत्तर-भारतमें सर्वत्र बोला जाता है—सब प्रकारकी अभिव्यंजना-शैलियोंकी क्षमता रखता है। भारतीय संविधानने अिसेही अुचित रूपसे अपनी राजभाषाके रूपमें मान्यता दी है

श्री. क. मा. मुन्शीजीने जो विचार सन १९५२ में हुअे बम्बओके राष्ट्र-भाषा-प्रचार-सम्मेलनके चतुर्थ अधिवेशनके सभापतिकी हैसियतसे प्रकट किये हैं अुनसे मैं पूर्णरूपसे सहमत हूँ। यह कहना कि, संविधानकी ३५१ धाराके अनुसार जिस हिन्दीकी चर्चा की गयी है वह हिन्दी अुत्तर-प्रदेश और बिहारके शिष्टजनोंकी हिन्दी नहीं है—अेकदम निराधार और भ्रान्तिपूर्ण धारणा है।

### मराठी-गुजरातीसे हिन्दीका सम्पर्क पहलेसे है।

राष्ट्रभाषाका प्रचार कभी भी प्रान्तीय भाषाओंके विकासमें बाधक नहीं होना चाहिये, अिसका ध्यान रखा जाना आवश्यक है। मेरी यह धारणा है कि अैसा नहीं होगा; बल्कि यह हो कि राष्ट्रभाषाके प्रचार और प्रसारमें भिन्न-भिन्न हिन्दीतर-भाषी प्रान्तोंके साहित्यकी विभिन्न धाराओंका, शैलियोंका, पुरानी तथा नयी विचार-संपदाओंका समावेश किया जा सके। यदि गौरपूर्वक देखा जाय तो यह दिखाओ देगा कि अिस प्रकारकी विचार-संपदाका समन्वय पहलेसेही अच्छी तरह बुद्धिपुरस्सर बंगला, मराठी तथा गुजराती आदि भाषा-भाषी लोग हिन्दी भाषाभाषियोंके साथ करते रहे हैं। किन्तु अिस प्रकारका स्थायी सम्पर्क या सम्बन्ध अभी प्रस्थापित नहीं हुआ है और न कोओी सराहनीय प्रयत्न अिस दिशामें आगे आता दिखाओ दे रहा है जो दक्षिणकी तामिल, तेलुगू, मलयालम, कन्नड़ भाषाओंको हिन्दीके निकट लाकर रखे।

### दक्षिणकी भाषाओंके अध्ययनकी उत्तर-भारतके विद्यापीठों मे सुविधा

अुत्तर-भारतके विश्व-विद्यालयों, केन्द्रीय सरकार, प्रान्तीय सरकारों—जैसे मध्य-प्रदेश, अुत्तर-प्रदेश, बिहार, राजस्थान आदि—को अिस समस्याको अपने हाथोंमें लेना चाहिये और अिसकी महत्त्वपूर्ण परिस्थिति अेवम् आवश्यकताको समझकर जल्दसे जल्द अिसको अपनाना चाहिये। बनारस हिन्दू-विश्व-विद्यालय, लखनऊ-विश्व-विद्यालय, अलाहाबाद, पटना, आगरा, तथा देहलीके विश्वविद्यालय

अिस विषयको हाथमें लेकर अपने विश्व-विद्यालयोंमें दक्षिणकी अिन प्रान्तीय भाषाओंके अध्ययनकी व्यवस्था करें तथा वहांके निवासियोंको याने हिन्दी-भाषियोंको अिन दक्षिणी भाषाओंमेंसे कमसे-कम अेक भाषा पढ़ना अनिवार्य कर दें। अुपाधि-धारीको अिस प्रकारकी अेक भाषा अनिवार्य की जाय। तबतक वह विश्व-विद्यालय न छोड़े जबतक कि वह अिसमें अुत्तीर्ण न हो। सरकारभी अिस कार्यमें किसी अन्य प्रकारसे सहायता दे सकती है। अिस प्रकारके ठोस कार्योंसेही मैत्रीका वातावरण निर्माण हो सकता है और भ्रान्तियां, गलत-फहमियां तथा पारस्परिक डर व सन्देहके बादल हट सकते हैं और सुदूर दक्षिण-भारतके निवासियोंका विश्वास प्राप्त हो सकता है कि हिन्दी अुनकी भाषाओंका हनन कदापि नहीं करेगी। बल्कि पारस्परिक सहयोगके वातावरणसे अुनका विकास करेगी और हिन्दी भी बलवती व पुष्ट बनेगी।

हिन्दू कालेज, कोयापेट.
९-१-५३.

## २७ : प्रान्तीय हिन्दी और राष्ट्रीय हिन्दीमें मौलिक भेद नहीं होगा।

[ दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार-सभा मद्रासके मुखपत्र हिन्दुस्तानी-प्रचार वर्ष १४ : सख्या १२ दिसम्बर १९५१ में, सभाके मंत्री श्री. सत्यनारायणजीका भाषण छपा है, अुसमेंसे आवश्यक अंश यहाँपर दिया है। श्री. सत्यनारायणजी कभी वर्षोंसे दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार-सभाके कर्णधार हैं। ]

### राष्ट्रभाषाका क्षेत्र

भारतकी अेक विशेषता यह है कि अुसमें बहुत-सी भाषाअें प्रचलित हैं और वे सारी भाषाअें सम्पन्न हैं। संस्कृत अुनका स्रोतभी है; फिरभी अिन भाषाओंका ज्ञान-भाण्डार रिक्त नहीं। हरेक भाषामें यह तकाजा है, योग्यता है और शक्तिभी है कि वह अपने प्रान्तकी राजभाषा बन सकेगी और राज्यका कारोबार अुसीके द्वारा चल सकेगा। अैसी हालतमें किसी अन्य भाषाका बोझ—चाहे वह भारतीय भाषा ही क्यों न हो—अुनपर लादना, अुसी भाषामें सारा व्यवहार करनेके लिये लाचार करना, अुनकी स्वतंत्रतापर आघात करनेके समान होगा। जहाँ राष्ट्र-

भाषाकी जरूरतही होगी वहाँ हम अुसका जरूर प्रयोग करें। अिसके लिये किसीका विरोध नहीं होगा। आन्तरप्रान्तीय व्यवहारके लिये तथा विचारोंके आदान-प्रदानके लिये हमें राष्ट्रभाषाका आश्रय लेनाही होगा। क्योंकि बगैर अुसके हमारा काम कभी नहीं चल सकेगा।

## राष्ट्रभाषा सुसम्पन्न चाहिये।

संविधान-सभाने भी यह माना है कि प्रचलित हिन्दी भाषा जो किसी प्रान्तकी प्रादेशिक भाषा[1] है, राष्ट्रभाषा नहीं बन सकती है। राष्ट्रभाषा हिन्दी अैसी होगी जो सब प्रान्तोंमें समान रूपसे समझी जाअेगी। अुसके विकासमें सब भारतीय भाषाओंका सहयोग रहेगा। अिस भाषाको बनाते समय हमारी दृष्टि सिर्फ अुसकी अुपयोगितापरही नहीं रहनी चाहिये; फिरभी भाषा-सौष्ठव और अुसकी साहित्य संपन्नता अिन बातोंकी ओर ध्यान देना आवश्यक होगा। आसान भाषाके नाते यह न समझिये कि अुसमें साहित्य-निर्माणकी क्षमता नहीं होनी चाहिये। अगर सिर्फ आसानीकी तरफ हम झुकते जाअेंगे तो वह भाषा ज्ञानवाहक नहीं बन सकेगी। अुसमें अुत्तमोत्तम साहित्य पैदा नहीं होगा तथा शास्त्रीय ज्ञानके बोझको वह ढो नहीं सकेगी। हमारी राष्ट्रभाषा अिस दृष्टिसे सुसपन्न होनी चाहिये और अुसे अुसी तरह बनाना हम भारतवासियोंमेंसे हरेकका कर्तव्य है। अुक्त भाषा बनते समय और अेक कठिनाओका सामना हमें करना पड़ेगा। वह यह है कि कओ अैसे शब्द हैं जो भारतीय भाषाओंमें अुपयोगमें लाये जाते हैं; लेकिन हर भाषामें अुसका अलग-अलग अर्थ रहता है। अितनाही नहीं कओ अैसे शब्द हैं जिनका अर्थ बिलकुल अुलटा होता है। अिस कठिनाओको दूर करनेके लिये हमारी सरकारको चाहिये कि वह अेक अैसी अकेडमी कायम करे, जिसके द्वारा शब्दोंके चुनावका तथा अुनके अधिकृत अर्थोंका[2] काम सुगमतासे हो सके। दूसरी कोओ संस्था अिस कामको अपने हाथोंमें नहीं ले सकेगी। क्योंकि अगर वह यह काम करे तो भी आम जनता अुसे स्वीकृत करेगी, सो बात नहीं। लेकिन जब सरकारकी मुहर लगाकर कोओ बात बाहर आ जाती है तो अुसका अेक तो विरोध नहीं होता और अगर विरोध हो तो भी अुस बातको कोओ रोक नहीं सकता।

---

१. संविधान-सभामें यह प्रस्ताव रखनेवाले श्री. मुन्शी अिस बातको नहीं मानते। देखिये पृष्ठ ७८ और श्री. चतुर्जीका स्पष्टीकरण पृ १३३।

२. शब्दोंका समान चुनाव और अर्थ अेक रखनेपर 'अलग-अलग' रूपोंका मतलब क्या? —सम्पादक

प्रादेशिक और राष्ट्रीय रूपमें मौलिक भेद नहीं होगा।

यह बात स्पष्ट है कि यू. पी., प० बंगाल, बिहार, महाराष्ट्र, मद्रास प्रान्तोंकी हिन्दी अलग-अलग होगी; याने अुनमें मौलिक[3] भेद कुछ नहीं होगा। फिरभी प्रादेशिक भाषाओंके प्रभावसे अुनके स्वरूपमें भिन्नता पैदा होगी। लेकिन यह भिन्नता राजकाजके मामलोंमें या शास्त्रीय ज्ञानके क्षेत्रमें नहीं होगी। वहां तो अेक शब्दका[4] अेकही अर्थ होना चाहिये। नहीं तो अनर्थही हो जाअेगा।

राजनीतिमें भाशाका महत्व

वास्तवमें देखा जाय तो भाषाका असली महत्व राजनीतिमें है, क्योंकि राजनीतिका बल अिसीमें है। बगैर भाषाके राज-काजका काम चलताही नहीं। अपने विचारों और सिद्धान्तोंको दूसरोंको समझानेका काम भाषा-द्वाराही हो सकता है। जहांतक हो सके हमें चाहिये कि हम प्रादेशिक भाषामेंही वहांका कामकाज करें तथा *शिक्षाका माध्यमभी प्रादेशिक भाषा बने। लेकिन अेक महत्त्वकी बातको* हमें भूलना नहीं चाहिये। वह यह है कि हिन्दीका ज्ञानही अनिवार्य है। अनिवार्यरूपसे हिन्दीकी पढाअी होनी चाहिये। जिससे अूपर बतायी हुअी अेकताकी[5] प्रवृत्तिको बढानेमें यह सहायक होगी तथा केन्द्रीय सरकारकी कार्यवाहीकी जानकारी होती रहेगी।

---

३ 'मौलिक भेद' कुछ नहीं होगा तो अुसे अलग भाषा क्यों मानें? आप चाहते भी हैं 'समान रूपसे समझी जानेवाली भाषा।'

४ क्या 'राजकाज और शास्त्रीय ज्ञान' के अतिरिक्त अन्यत्र अेक शब्दके अनेक अर्थ चल सकेंगे?

५ अेकताकी प्रवृत्ति बढानेवाली भाषाका स्वरूप सबकेलिये अेकसाही चाहिये न?
—संपादक

## २८ : हिन्दीकी आत्माके प्रतिकूल परिवर्तन अुसमें न किये जायँ।

[ पुणे विद्यापीठ-द्वारा दिनांक २३,२४,२५ मअी १९५३ को भाषा-विकास-परिषद पुणेमें सम्पन्न हुअी। अिस परिषदके अध्यक्ष म. म. काणेजी थे। विभागीय अध्यक्ष डॉ. चतर्जी, श्री शास्त्री व्यंकटेश आयंगार और डॉ. रघुवीर थे। भारतवर्षके कअी विद्वान् अिस परिषदमें सम्मिलित हुअे थे। परिषदके निर्णय संक्षेपमें नीचे दिये हैं। ]

### पारिभाषिक शब्दोंका निर्माण

तमाम पारिभाषिक शब्द जहाँतक सम्भव हो, संस्कृतसे बनाये जायँ;

सिम्बोल, साअिन तथा फॉरमूला, अनेक प्रकारके चिह्न या संक्षेप जो विज्ञानमें प्रयोगमें आते हैं, वे आज हैं वैसे ही आन्तरराष्ट्रीय रहें,

जहाँ योग्य भारतीय शब्द न मिलें वहाँ आन्तरराष्ट्रीय पारिभाषिक शब्दही कायम रखे जायें;

और सारे भारतकी शास्त्रीय परिभाषा अेक हो।

### प्रादेशिक भाषाका क्षेत्र

प्रादेशिक भाषाके क्षेत्रमें संघ-भाषाका आक्रमण होगा; यह आशंका संघ-भाषाके विकासमें बाधा अुत्पन्न करती है; अिसलिये यह स्पष्ट कहना चाहिये कि भिन्न-भिन्न प्रदेशोंमें वहाँके शिक्षा तथा अन्य तमाम कार्य वहाँकी प्रादेशिक भाषामेंही किये जायें।

हिन्दी भारतकी राजभाषा मानी गयी है। अिसीलिये अन्यभाषी प्रादेशिक राज्योंको भी अुसके प्रसारके लिये कार्य करना चाहिये।

### हिन्दीकी आत्माके प्रतिकूल परिवर्तन न किये जायँ

विधानके अनुसार हिन्दीका विकास करनेका कार्य भारतके सभी भाषा-भाषियोंके प्रयत्नपर निर्भर है। अिसलिये तमाम युनिवर्सिटियों, शिक्षा-संस्थाओं और भाषा तथा साहित्य-सम्बन्धी संस्थाओंसे अनुरोध किया जाता है कि वे अुसके लिये संविधानकी ३५१ वीं धाराके अनुसार कोअी ठोस कार्य करें। अैसे प्रयत्नोंके

कारण वर्तमान हिन्दी भाषामें जो परिवर्तन हों वे अैसे हो हों जो अुसकी आत्मा (Genius) के प्रतिकूल कभी न हो, जिससे हिन्दी भाषा-भाषियोंको भी सरलतासे तथा स्वाभाविक रीतिसे भाषा मान्य हो ।

## प्रादेशिक-भाषाका क्षेत्र

प्राथमिक शालासे लेकर युनिवर्सिटीकी शिक्षा मातृभाषा द्वाराही दी जानी चाहिये ।

सभी माध्यमिक शालाओंमें हिन्दीकी शिक्षाका प्रबन्ध होना चाहिये ।

जहां सम्भव हो वहां दूसरी अेक प्रादेशिक भाषाके अध्ययनका भी प्रबन्ध होना चाहिये ।

तमाम युनिवर्सिटियोंमें भारतीय भाषाओंके अुच्च शिक्षण तथा अनुसन्धान-कार्यके लिये प्रबन्ध होना चाहिये ।

राज्यके शिक्षण मन्त्रालय, युनिवर्सिटियां तथा भाषा अेवं साहित्यसभाओंमें अेक अनुवाद-समिति भी होनी चाहिये, जो अेक भारतीय भाषाके साहित्य तथा शास्त्रीय ग्रन्थोंका दूसरी भारतीय भाषाओंमें अनुवाद करनेका कार्य करेगी ।

भारतीय भाषाओंके व्याकरण तथा बातचीतके ग्रन्थ और कोष तैयार किये जायें ।

प्रत्येक प्रदेशमें अेक अैसी पत्रिका होनी चाहिये जिसमें दूसरी तमाम भाषाओंकी साहित्यिक प्रगतिकी सम्पूर्ण जानकारी दी जाय ।

केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों द्वारा शालाओंके योग्य शिक्षक तैयार करनेके केन्द्र खोले जायें और अुनके द्वारा अुपरोक्त काम करनेके लिये युनिवर्सिटियोंको, लेखकोंको तथा संस्थाओंको अुत्साहित करनेको पुरस्कार, सहायता और फंड आदिका प्रबन्ध किया जाय ।

—जयभारती, मओ जून १९५३, पुणे.

# २९ : हिन्दीके दो रूप नहीं हैं। संविधानके निर्देशका स्पष्टीकरण

[ भारतीय हिन्दी-परिषद, अलाहाबादकी ओरसे कुछ बुलेटिन निकाले गये थे जिनका अुद्देश्य था कि हिन्दीका विकास, प्रसार, समृद्धि समयसमयपर विभिन्न प्रदेशोंमें किस प्रकार हो ? तथा जो समस्यायें अिस सम्बन्धमें अछूती रह गयी हों अुन्हें करानेमें योजना बनाना आदि रहा है। अप्रैल १९५३ में निकाली गयी (No 1) संख्या (The Constitution and Hindi) में 'संविधान और हिन्दी' लेखमें ३५१ वीं धारापर जो टिप्पणी है वह अनूदित करके यहाँ संग्रहीत की है।

अिस "भारतीय हिन्दी-परिषद-बुलेटिन"की परामर्शदात्री समितिमें डॉक्टर दीनदयालु गुप्ता, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ रामकुमार वर्मा, आचार्य श्री नंददुलारे वाजपेयी, श्री हरिहरनाथ टंडन और डॉ० विश्वनाथप्रसाद हैं।]

१. संघका कर्तव्य होगा कि यह हिन्दी भाषाकी प्रसार-वृद्धिको प्रोत्साहन दे। अिसके लिये कअी प्रकारके साधन अपनाये जा सकते हैं। अुनको निर्दिष्ट करना अनावश्यक है।

२. संघका कर्तव्य है कि वह हिन्दीको अिस रीतिसे सवर्धन करे कि, वह भारतकी आजकी संस्कृति बनानेमें जो विविध तत्त्व सहायक हुअे हैं अुन सभीको अभिव्यक्त करनेका माध्यम बने। अिस सिद्धिके लिये सर्वश्रेष्ठ अुपाय यह होगा, कि जितने भी विभिन्न तत्त्व हैं अुनको समझकर हिन्दीमें अुन तत्त्वोंके सम्बन्धमें अनूदित और मौलिक साहित्य निर्माण करनेके लिये प्रोत्साहन दे।

३. संघका यह कर्तव्य है कि हिन्दुस्तानी तथा अष्टम अनुसूचीमें* अुल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओंके रूप, शैली और अभिव्यक्तियोंको आत्मसात् करके तथा शब्दसंपत्तिके लिये मुख्यतः संस्कृतसे और गौणतः अन्य भाषाओंसे शब्द ग्रहण करके हिन्दीको समृद्ध बनाये। किन्तु अिस सम्बन्धमें निम्नलिखित बातोंको ध्यानमें रखना होगा —

(अ) विभिन्न रूपों, शैलियों और पदावलीद्वारा हिन्दीको समृद्ध करनेके पहले यह देखना चाहिये कि जो कुछ हिन्दीमें लाना है अुनका हिन्दीमें अभाव

*देखिये पृष्ठ १२७.

है तथा अुनके लिये काम-चलाअू पर्यायभी हिन्दीमे नहीं है। अनावश्यक शब्दादि भाषामे लानेसे बड़ी अव्यवस्था व गड़बड़ी मचती है। अुर्दू और हिन्दुस्तानीका अितिहास जो जानते हैं अुन्हें अच्छी तरह मालूम है कि अरबी-फ़ारसीके मनमाने (Indiscriminate) शब्द तथा कुछ हदतक अुनके रूप, शैली और अभिव्यंजनाके प्रकार हिन्दीमें लानेसेही अुर्दूकी अुत्पत्ति हुअी। अुसी तरह हिन्दी-अुर्दूके मिश्रणमें मनमाने पश्चिमात्य--विशेषरूपसे अंग्रेजी शब्द--लानेसे तथा कुछ हदतक अंग्रेजीके रूप, शैली और अभिव्यंजनाके प्रकार लानेसेही, तथाकथित हिन्दुस्तानीकी अुत्पत्ति हुअी। यदि प्रविष्ट किये गये शब्द, रूप, शैलियाँ, अभिव्यंजनाअें अैसी होतीं कि जिनका हिन्दीमें अभाव है तो हिन्दीसे भिन्न अुर्दूका कोअी रूप न बन पाता, और व्याकरणको छोड़कर आज जैसी वह अिस देशको परकीय न मालूम पड़ती। और हिन्दुस्तानी भी अितनी व्यक्तिगत विशेषताविहीन न होती कि--किसी भी भाषाके लिये जब वह जनताके भारी और आकांक्षाओंसे परिपूर्ण होती तब जो स्नेह प्राप्त होता --अुससे भी वह वंचित रहती। हाँ, हिन्दीको प्रभावशाली और समर्थ राजभाषा बनानेकी दृष्टिसे अत्यन्त आवश्यक सीमातकही विवेकसे शब्दों आदिका ग्रहण करना स्वागतार्ह है।

## हिन्दीकी 'आत्मा' का अर्थ

(ब) अिस समृद्धिके लिये प्रयत्न करनेके पहले, हमें अेक निश्चित धारणा हिन्दीकी आत्माके बारेमे बना लेनी होगी, जिसके कारण "आजकी हिन्दी हिन्दी है" और "जिसके बिना वह 'हिन्दी' ही नहीं रहेगी।" हिन्दी सदासे अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व रखती आयी है और भविष्यमें भी अुसका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व रहना चाहिये। अिसी अन्तर्वर्ती (Inherent) शक्तिको और अिस भाषाके भीतरी गुणोंको--कि जिनके कारण वह अिस खंडप्राय देशकी राष्ट्रभाषा घोषित हुअी है--जितनी शीघ्रतासे हम समझेंगे अुतनाही हमारे लिये अच्छा होगा। क्योंकि तबही हम अुसे अुतनी प्रभावी और सक्षम बना सकेंगे जिससे वह हमारे राष्ट्रीय जीवनके हर अंगोको और अनुभवोको भी--जहाँ आज अेक विदेशी भाषा (अंग्रेजी) अपनी धाक जमाये हुअे है, वहाँ भी—अुपयुक्त हो सके। और संविधानने यह निःसन्दिग्ध रूपसे स्पष्ट किया है कि समृद्धशाली बनानेके प्रयत्नोंमें किसी भी प्रकारसे हिन्दीकी आत्माको न बिगाड़ा जाय।

(स) अिस धारामें आत्मसात् करनेकी पद्धतिकी जो सूचना है अुसे भी पूर्णतया समझ लेना चाहिये। आत्मसात् करनेका अर्थ है अेकजीव करना या किसी चीजको अिस तरह अंदर लेना—जैसे अन्न या खाद्य वस्तु—जिसे खाकर हजम करके रक्तपेशीके रूपमें परिवर्तित किया जाता है। हिन्दीकी आत्मीयताको ध्यानमें

न पहुँचे, अितनी सावधानीसे हिंदुस्तानी और अष्टम अनुसूचीमें अुल्लिखित भाषाओंके रूप-शैली और अभिव्यक्तियाँ आदिको आत्मसात् करके हिन्दीकी समृद्धि करनी है।

(द) शब्दावलीके चयनमें समृद्धिकी दृष्टिसे, अन्य भाषाओंकी अपेक्षा संस्कृतको प्रधानता दी गयी है। अुसके बाद अन्य भाषाअें आती हैं। किन्तु यह कार्य भी जब आवश्यक और वांछनीय हो वहींपर किया जावेगा। यहाँ भी भारतीय भाषाओंमेंसे तथा संस्कृतसे भी मनमाने ( Indiscriminate ) शब्दोंका स्वीकार सूचित नहीं किया है।

४. (इ) फिर भी हिन्दीको अुपर्युक्त प्रकारसे समृद्ध करनेका सबसे अुत्कृष्ट तरीका यही है कि अन्य भाषाओंकी अुत्तमोत्तम तथा अत्यन्त अुपादेय पुस्तकोंका, ठीक संविधानकी धाराओंकी सूचनाके अनुसारही तथा हिंदीकी समृद्धिकी ओर लक्ष्य करके, अनुवाद कराना। जितनी जल्दीसे यह कार्य किया जायेगा, उतनीही जल्दीसे हिन्दी संविधानके अनुकूल समृद्ध होगी।

(फ) अुपर्युक्त अुद्देश्योंकी पूर्तिके लिये दूसरा प्रभावकारी मार्ग है कि भिन्न-भिन्न भाषाओंके प्रामाणिक शब्दकोषोंका हिन्दीमें रूपान्तर करना।

(ग) और अिस कार्यकी आवश्यकता है कि अिन भाषाओंका--विशेषतः हिन्दीकी दृष्टिसे--तुलनात्मक अध्ययन करना। अिसके अुद्देश्य रहेंगे कि हिन्दीकी आवश्यकताअें क्या हैं और हिन्दीकी आत्मीयता बिगडेबिना अन्य भाषाअें अुसे क्या दे सकतीं हैं यह जानना और अिस देनको हिन्दीमें आत्मसात् करनेके अैसे अुत्तम अुपाय ढूँढना जिससे हिन्दी 'विशाल भारत राष्ट्रके' योग्य प्रभावशाली राष्ट्रभाषा बन जाय।

---

## ३० : साहित्यिक और राष्ट्रभाषा हिन्दी अेकही है।

[ अिसी बुलेटिनकी दूसरी संख्यासे (मअी १९५३) निम्नलिखित *अंश अुद्धृत किया गया है।* ]

### हिन्दी भाषाके विकासमें भारतीय भाषाओंका योगदान

(१) राष्ट्रके रूपमें देशभरमें प्रचलित होनेके बाद हिन्दी प्रादेशिक भाषाओंके घनिष्ठ सम्पर्कमें आयेगी और स्वाभाविक रूपमें अुनके साथ अुसका आदान-प्रदान होगा। अिस प्रकार हिन्दीको अपने विकासमें प्रादेशिक भाषाओंसे अवश्य

सहायता मिलेगी; किन्तु परिषदका यह निश्चित मत है कि हिन्दी प्रदेशोंमें प्रचलित साहित्यिक हिन्दीसे राष्ट्रभाषा हिन्दी भिन्न नहीं हो सकती। अुसे समस्त अर्वाचीन भारतीय भाषाओंसे कृत्रिम सहयोगके आधारपर नये सिरेसे निर्मित करनेकी कल्पना, यदि कोअी करता हो तो यह निराधार और निरर्थक है।

(२) परिषद अपना यह विचार दुहराती है कि हिन्दी तथा सभी प्रादेशिक भाषाओंके लिये समान पारिभाषिक शब्दावलीका निर्माण होना चाहिये और अिस कार्यमें समस्त प्रादेशिक भाषाओंमें प्रचलित पारिभाषिक शब्दोंपर निष्पक्ष होकर विचार करना चाहिये।

## हिन्दी साहित्यके विकासमें भारतीय भाषाओंका योगदान

(१) हिन्दीमें भारतकी सभी आधुनिक भारतीय भाषाओंका श्रेष्ठ साहित्य अनुवादके द्वारा लाना और अुसे सम्पूर्ण भारत राष्ट्रके साहित्य-परिचयका माध्यम बनाना आवश्यक है। अिस सम्बन्धमें प्रकाशकों तथा साहित्यिक संस्थाओंको विशेष क्रियाशील होना चाहिये।

(२) *देवनागरी लिपिका देशव्यापी व्यवहार राष्ट्रकी अेकताका अेक प्रबल* साधन हो सकता है। अतः सभी प्रादेशिक भाषाओंका श्रेष्ठ साहित्य अपने मूल रूपमें भी देवनागरी लिपिमें प्रकाशित होना चाहिये। अिससे सभी भाषाओंका परस्पर सहयोग बढ़ेगा तथा वे न केवल हिन्दी साहित्यकी समृद्धिमें बल्कि अुसके भाषा विकासमें भी सहायता पहुँचायेंगी।

---

# ३१ : हिन्दीका आजका रूपही राष्ट्रव्यापक है।

[ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका अधिकृत अधिवेशन अिधर कअी वर्षोंसे नहीं हो रहा है। अिस परिस्थितिमें कअी समस्याओंपर विचार करनेके लिये वर्धा-समिति-द्वारा हिन्दी साहित्यिकों और प्रचारकोंका अेक सम्मेलन 'अखिल भारतीय हिन्दी सम्मेलन' नामसे बुलाया गया था। यह अधिवेशन दि ३०—३१ दिसम्बर १९५६ में वर्धामेंही सफलतासे सम्पन्न हुआ। अिसके सभापति थे श्री द्वारकाप्रसाद मिश्र। अिसमें निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयीजीने रखा, अुसका अनुमोदन श्री श. दा. चितलेजीने किया और समर्थन किया श्री मोहनलालजी भट्ट और महापंडित राहुलजी सांकृत्यायनने। ]

कुछ विद्वानोंने कहीं-कहीं हिन्दीके दो रूपोंकी चर्चा की है, अेक अुसका राष्ट्रीय रूप और दूसरा अुसका प्रादेशिक रूप। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और अुसकी राष्ट्र-भाषा-प्रचार समिति तथा अन्य समितियोंमे जो रूप बरता जाता है और सम्मेलनकी परीक्षाओंमे जिस रूपका चलन है अुसको अिन लोगोंने हिन्दीका प्रादेशिक रूप बताया है। राष्ट्रीय रूपके नामसे अुन्होंने अुस रूपकी कल्पना की जो भविष्यमे अन्य भारतीय भाषाओंके शब्दों और शैलियोंके सम्मिश्रणसे हिन्दी धारण करेगी। अिस सम्मेलनके विचारमे यह कल्पना नितान्त असगत और भ्रम-मूलक है। हिन्दीके प्रादेशिक रूप ब्रज-भाषी, अवधी, राजस्तानी, बिहारी, बुंदेल-खंडी, भोजपुरी और मैथिली आदि हैं। अिन सबमे अपना-अपना साहित्य है और अुनका स्थानीय क्षेत्रोंसे सम्बन्ध है। परन्तु हिन्दीका जो रूप अिस समयतक स्थिर हो चुका है और जो अिस समय हिन्दी पुस्तकों, पत्रिकाओं, सार्वजनिक सस्थाओं, शिक्षण-सस्थाओं, पाठ्यक्रमों और राजकीय कामोंमे बरता जा रहा है वह वास्तवमे हिन्दीका राष्ट्रीय रूप है। जैसे-जैसे हिन्दी राष्ट्रीय कामोंके लिये अपनाओी जाअेगी वैसे वैसे अुसका विकास होगा और अन्य भाषाओंके शब्द हिन्दीमे अपना स्थान पाअेंगे; परन्तु भाषाके रूपका आधार वर्तमान प्रचलित साहित्यिक भाषाही रह सकती है। अुसमे सामयिक परिवर्तनका होना अवश्य सभव है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा अथवा अिस अखिल भारतीय हिन्दी सम्मेलन-द्वारा मान्य हिन्दीके रूपको प्रादेशिक वेही लोग कहेंगे, जिन्हें हिन्दीके विकासका ज्ञान नहीं है।

अिस सम्मेलनकी घोषणा है कि वह हिन्दीके अुत्थानमे अन्य भाषाओंके शब्दोंका स्वागत करता है और अन्य भाषाओंके साहित्यकारोंको आवाहन करता कि वे हिन्दीके क्षेत्रमे अपनी लेखनी अुठाअें और राष्ट्रभाषा हिन्दीमे अपनी भाषाओंके* अुपयुक्त शब्दोंका रोचक समावेश करें। हिन्दीका जो भावी विकास होगा वह हिन्दीके अु न क्षेत्रोंमे भी फैलेगा जो हिन्दीके विशेष प्रदेश माने जाते हैं, अर्थात् हिन्दीका अेक राष्ट्रीय रूपही देशभरमें हिन्दी भाषी राज्यों तथा अहिन्दी भाषी राज्योंमें प्रयुक्त हो जिससे अेकही भाषामें लिखित पुस्तकोंका पठन-पाठन समान रूपसे देशभरमें हिन्दी-द्वारा गहन विचारोंको व्यक्त करने के लिये काम में लाया जाये।

---

*पढिये पृष्ठाव १२१.

## ३२ : राष्ट्रभाषा हिन्दी।

[ डॉ० भगीरथ मिश्र अेम् अे. पी-अेच् डी अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, पूना-विश्वविद्यालय, पूना अेक सुप्रसिद्ध कवि और समालोचक हैं। हिन्दी भाषा और साहित्य, काव्यशास्त्र तथा समीक्षाके क्षेत्रमे अुन्होने बडी महत्त्वपूर्ण सेवायें की है। प्रस्तुत लेख डॉ० मिश्रद्वारा विदर्भ राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, नागपुरके तत्त्वावधानमे दिनाक १० फरवरी सन् १९६३ को दिये गये दीक्षान्त-भाषणसे लिया गया है। ]

### अखिल भारतीय दृष्टिकोण

आज हमारे सामने राष्ट्रीय सकट है। सतोषकी बात है कि अिस सकट-कालमे हम सभी अेक हैं। विभाजक तत्त्वोके अूपर राष्ट्रीय तत्त्वोकी विजय हुअी है। पर सकटकालमेही आनेवाली और शातिसमयमे नष्ट हो जानेवाली अेकता, हमारे राष्ट्रीय चरित्रके विकास और देशकी प्रगतिमे बाधक है। अिसका कोअी ठोस गहरा और व्यापक परिणाम नहीं है। अिसके विपरीत यदि शातिके समयमे हमारी यह राष्ट्रीय अेकता कायम रहे तो सकटकाल अुपस्थित ही नहीं होगा।

अत यदि हम शातिके समय भी राष्ट्रीय दृष्टिसे देखें, सोचे विचारें और काम करें, तो सकटकालमे हमे चिन्ताग्रस्त अेवम् परमुखापेक्षी होना ही नहीं पडेगा। मेरे विचारमे अैसी स्थिति प्राप्त करनाही हमारी वास्तविक स्वाधीनता है।

अिसके लिये अखिल भारतीय दृष्टिकोणके विकास और प्रचारका कार्य आवश्यक है। अिस प्रसगमे मैं आपको स्पष्ट कर दूँ कि हमारे देशके दार्शनिको आचार्यों, भक्तो और सन्तोने भारतके अेक कोनेसे दूसरे कोनेतक जाकर जो अपना अुपदेश दिया था, अुसमे हमारे अैक्यका सदेश ही निहित था। अखिल भारतीय धर्म, सस्कृति और राष्ट्रीयताके प्रचारमे राष्ट्रभाषाका हाथ प्रमुख रीतिसे रहा है। प्राचीन कालमे वैदिक, शैव, अेवम् वैष्णव धर्मके प्रचारमे सस्कृत भाषाका महत्त्वपूर्ण कार्य रहा, जिसके परिणामस्वरूप भारतीय संस्कृति अेवम् साहित्यका वैभव न केवल भारतीय, वरन् सार्वभौम महत्ता प्राप्त कर सका था। बौद्ध और जैन-धर्मों अेव संस्कृतिके प्रचारमे पाली, प्राकृत अेवं अपभ्रश भाषाओका विशेष योगदान रहा। अुसके अुपरान्त मुस्लिम शासन-कालमे राजकीय कार्योंमे फारसीका व्यवहार अवश्य होता था; पर साहित्यिक,

सांस्कृतिक अेवं जन-सपर्ककी अखिल भारतीय भाषा हिन्दी ही थी, जो कहीं व्रज, अवधी, कहीं हिन्दी, हिन्दवी, अुर्दूके दक्खिनी रूपमें व्यवहृत हुआी। मध्य-युगके सन्तों और भक्तोंने अपने सन्देशके अखिल भारतीय प्रचारके लिये जिस भाषाको अपनाया था, वह हिन्दी ही थी। अिसी अखिल भारतीय दृष्टिकोणको ध्यानमें रखते हुये ही विभिन्न भाषाभाषी प्रदेशोंके सन्तोंने अपने अुपदेश हिन्दीमें भी दिये। महाराष्ट्रके सन्त नामदेव, एकनाथ, तुकाराम, समर्थ स्वामी रामदासकी वाणियाँ हिन्दीमें भी मिलती हैं। गुजरातके नरसी मेहता, भालण, केशव आदिने तथा पंजाबके गुरु नानक, गुरु गोविंदसिंह तथा अन्य गुरुओंने हिन्दीमें लिखा और खूब लिखा। अतिरिक्त बंगालमें कुतुबन, चीरभान, चौहान, कृष्णदास, भारत-चन्द आदिने हिन्दीमें रचनाअें कीं, असमके शंकरदेव और माधवदेवने १५ वीं, १६ वीं शताब्दीमें व्रजभाषामें पद लिखे। साथही कर्नाटकके पुरन्दरदासके भी कुछ पद हिन्दीमें मिलते हैं, जो वारकरी संप्रदायके थे और जिनका समय नामदेवके समकालीन था।

## दक्षिण-भारतमें हिन्दीके प्रयोग

दक्षिणमें तंजोरतक शिवाजी तथा भोंसले राजाओंके शासनकालमें हिन्दीका प्रचार था। महाराज शिवाजीके पिताजी शहाजीके दरबारमें २२ हिन्दी कवियोंका नामोल्लेख जयराम पिंड्येकृत "राधामाधव विलास" नामक चम्पू काव्यमें मिलता है। साथ ही हिन्दीके सुप्रसिद्ध कवि चिन्तामणि और अुनके छोटे भाओी भूषण शहाजी और शिवाजीके सम्मानित कवि थे। अितनाही नहीं संवत् १७५० के लगभग मलयालमके प्रतिभाशाली कवि कुंचन नम्बियारके "स्यमन्तकम्" नामक लघुकाव्यमें हिन्दी शब्दों और पंक्तियोंका समावेश है। यह स्थिति अंग्रेजी शासन आनेके पहले थी जब कि हमारे अखिल भारतीय या अन्तर-प्रान्तीय विचारोंका माध्यम हिन्दी थी। मध्ययुगीन काव्यमें व्रजभाषाकी व्यापकता सार्वदेशिक थी। अतः हम कह सकते हैं कि जिस प्रकार प्राचीन कालमें अेकताका सुदृढ सूत्र संस्कृतद्वारा निर्मित हुआ था, असी प्रकार मध्य-युगमें हिन्दी भाषा भावनात्मक अेकताका प्रबल माध्यम बनी हुआी थी और अुत्तरसे दक्षिण अेवं दक्षिणसे अुत्तर जानेवाले सन्त और व्यापारी जिसका व्यवहार करते थे। दक्षिणके अनेक संस्कृत कवि अुत्तरमें जाकर व्रजभाषामें सुन्दर रचना करते थे। सेनापति, देवर्षि कृष्णभट्ट, कवीन्द्राचार्य सरस्वती, पद्माकर भट्ट आदि अिसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। अिसके अतिरिक्त महाराष्ट्र क्षेत्रमें राजकीय पत्रव्यवहार भी हिन्दीमें होता था। अभीतक लगभग दो-तीन सौ पत्र अिसके प्रमाण-स्वरूप प्राप्त हुअे हैं।

## आधुनिक युग और हिन्दी

आधुनिक कालमें अँग्रेजी शासनकी भारतमें स्थापना हो जानेपर स्थिति बदली। पिछले कुछ वर्षोंमें अंग्रेजी शिक्षित समाजके बीच अखिल भारतीय भाषा बनी, परन्तु अुसका प्रभाव दासताके प्रबल अभिशापको लिये था। शिक्षितोंकी अखिल भारतीय भाषा बनकर भी यह केवल तीन-चार प्रतिशत भारतीय जनताकी भाषा रही। दासतासे मुक्तिके साथ विदेशी माध्यमकी दासता छोड़नेकी भावना भी स्वाभाविक थी। अतअेव हमारे राष्ट्रके कर्णधारोंने अपनी अखिल भारतीय दूरदृष्टि अेवं राष्ट्रीय विवेकसे काम करते हुअे हिन्दीको राष्ट्रभाषाके रूपमें स्वीकार किया। १४ सितम्बर १९४९ में हिन्दी भारतकी राजभाषा घोषित हुअी। अिस घोषणाके पूर्वही हमारे धार्मिक, सांस्कृतिक अेवं राजनीतिक नेताओंने अखिल भारतीय माध्यमकी आवश्यकताका अनुभव करते हुये अिसे स्वीकार किया था। स्वामी दयानंदने स्वयं गुजराती होते हुअे भी आर्य-समाजके अखिल भारतीय प्रचारके लिये हिन्दीको अपनाया और स्वामीजीको अिस बातका सुझाव देनेवाले कलकत्तेके बंगाली ब्रह्मो समाजके नेता केशवचन्द्र सेन थे, अिनके अतिरिक्त हमारे राष्ट्रीय अेवं सांस्कृतिक नेता जैसे लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी, सरदार वल्लभभाअी पटेल, नेताजी सुभाष, आचार्य विनोबाजी आदि सभी अहिन्दी भाषी थे, परन्तु इन्होंने हिन्दीको ही हमारी अेक-सूत्रताका माध्यम स्वीकार किया। अतः हमें यह भूलना नहीं चाहिये कि हिन्दीकी राष्ट्रभाषाके रूपमें प्रतिष्ठा हिन्दी भाषियोंके बहुमत-मात्रसे नहीं वरन् अहिन्दी-भाषी दूरदर्शी नेताओंके अपनापन और स्वीकृतिका परिणाम है।

### राष्ट्रभाषाका स्वरूप

हिन्दी भारतकी केवल राजभाषाही नहीं, वरन् वह देशकी राष्ट्रभाषा है। वैधानिक रीतिसे राजभाषा होते हुये भी अुसका दर्जा फारसी और अंग्रेजीसे भिन्न है, जो कि विदेशी भाषाअें हैं और जिनके सैकड़ों वर्षोंतक राजभाषाअोंके रूपमें प्रतिष्ठित रहनेपर भी वे देशके सामान्य जनकी भाषाअें नहीं हो सकीं। प्रशासनिक अुपयोगिता होनेपर भी अिन भाषाओंको समझनेवाले लोग १० प्रतिशतसे अधिक नहीं रहे। ये भाषायें हमारे देशके किसी बड़े क्षेत्रके निवासियोंकी मातृभाषाओंके रूपमें नहीं थीं। परन्तु हिन्दीकी स्थिति अिनसे सर्वथा भिन्न है। वह न केवल देशके चार-पाँच बड़े राज्योंकी मातृभाषा है वरन् सारे देशमें अिसको समझनेवाले काफी संख्यामें मौजूद हैं। अिसको समझनेवाले शिक्षित समुदायके ही व्यक्ति नहीं, वरन् भारतके सभी बड़े शहरोंमें विभिन्न प्रान्तोंके व शिक्षित व्यक्तियोंके भाव-विनिमयका यही माध्यम

है। स्टेशनों, बाजारों, होटलों, सिनेमाघरों, तीर्थस्थानोंमें सर्वत्र अिस भाषाका काफी पहलेसे प्रचार है। अनेक अहिन्दी प्रदेशोंके ग्रामीण क्षेत्रोंमें भी लाखोंकी संख्यामें लोग हिन्दी जानते हैं। दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार-सभा तथा राष्ट्रभाषा-प्रचार समितिको इसका श्रेय प्राप्त है। अिस प्रकार हिन्दी भारतकी न केवल राजभाषा है, वरन् वह बहुसंख्यक भारतीय जनताकी राष्ट्रभाषा भी है। वह विभिन्न प्रांतीय विचार-विनिमयका अेक प्रबल व्यावहारिक माध्यम है। अेक प्रसिद्ध विद्वानके शब्दोंमें जिसकी मातृभाषा मलयालम है और जो दस-बारह आर्य भाषाओंके भी पण्डित है — "हिन्दी बीसवीं शताब्दीकी संस्कृत है।" अैसी दशामें यह हमारे राष्ट्रकी भावात्मक अेकताके निर्माणका अेक सुदृढ साधन है। अिस सुदृढ साधनका असंदिग्ध रूपमें समुचित अुपयोग कर हमें साधन और साध्य अर्थात् राष्ट्रभाषा और राष्ट्रीय अेकता दोनोंकी चिरस्थायी दृढता स्थापित करना चाहिये और समग्र राष्ट्रको तीव्र गतिमें प्रगतिकी ओर अग्रसर करना चाहिये।

हिन्दी हमारे अन्तरप्रान्तीय विचार-विनिमयका स्वीकृत, परंपरागत, व्यवहृत अेवं वैज्ञानिक दृष्टिसे प्रतिष्ठित माध्यम है। यह हमारा अेक राष्ट्रीय निर्णय है। अिस निर्णयको शीघ्र कार्यान्वित करनेमें ही राष्ट्रीय हित अेवं प्रगति संभव है। अतः प्रत्येक भारतवासीका वह कर्तव्य हो जाता है कि वह राष्ट्रीय अेकताको सुदृढ करनेवाले सभी निर्णयोंको स्वीकार कर अुनको कार्यान्वित करे। राष्ट्रभाषा प्रचार कार्य करनेवाली अनेक संस्थाअें राष्ट्रीय स्वतंत्रता अेवं हिन्दीकी राजभाषा-रूपमें प्रतिष्ठाके बहुत पहलेसे कार्य कर रही हैं। अुस समय हिन्दी सीखना कोअी आर्थिक अुपयोगिताकी बात न थी, फिर भी बहुतसे लोगोंने प्रेमपूर्वक हिन्दी सीखी। अुनके पीछे व्यापक पारस्परिक संपर्क और राष्ट्रीयताकी भावना काम कर रही थी। हिन्दी काफी व्यापक रूपमें स्वाधीनता-आन्दोलनकी गतिविधि अेवं क्रिया-कलापकी माध्यम रही। यह भी अुसके राष्ट्रभाषा-रूपका बहुत बड़ा प्रमाण है।

## विदेशोंमें हिन्दीका प्रचार-प्रसार

आज हिन्दीका प्रचार और भी बढ़ा हुआ है और देशके कोने-कोनेमें असंख्य जन अुपयोगिता, प्रेम, राष्ट्रीय भावना या ज्ञानवर्धनकी दृष्टिसे हिन्दी सीख रहे हैं, यह अेक तथ्य है। अितना ही नहीं, भारतके बाहर भी अमेरिका ब्रिटेन, फरान्स, जर्मनी, अिटली, जेकोस्लोवाकिया, युगोस्लाविया, रूस, चीन, जपान, मलाया, ब्रह्मा, लंका, पूर्वी द्वीपसमूह, जंजीबार, अंडमान आदिमें हिन्दी सिखानेकी संस्थाअें काम कर रही हैं। अनेक देशोंमें हिन्दी ग्रंथोंका अनुवाद

अुनकी भाषाओंमें हो रहा है और कभी देशोंसे हिन्दीमें पत्र पत्रिकायें तथा रेडिओ-कार्यक्रम भी होने हैं। अनेक विदेशी जो कार्यवश भारत आते हैं, वे यहाँ रहनेकी अवधिमें हिन्दी भी सीखते हैं। अिस प्रकार हम हिन्दीके देश-विदेशमें व्यापक प्रचारका अनुमान लगा सकते हैं। फिर भी कभी-कभी हमें भिन्न कोनोंसे और कभी २ अपने बीच कुछ विरोधी स्वर भी सुनाओ पड़ते हैं। अुनसे हमें निराश नहीं होना चाहिये। वरन् अुनको ध्यानपूर्वक सुनना और अुनपर विचार करना चाहिये, क्योंकि महात्मा कबीरने कहा है'—

> निन्दक नियरे राखिये, आंगन कुटी छवाय।
> बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करे सुभाय।।

वास्तवमें अिन विरोधी स्वरोंमें हमें राष्ट्रभाषा हिन्दीके विकासके सुझाव और हिन्दी प्रचार अेवं राष्ट्रीयताके प्रसार-कार्यमें हुओ त्रुटियोंके बीज मिल जाते हैं। प्रायः हमें अैसा लगता है कि हमारे कार्यमें किसी प्रकारकी त्रुटि हो जानेसे यह परिणाम हो गया है। मुझे ध्यान है कि मैं अभी हालमें अपनी मद्रास-यात्रासे वापिस लौट रहा था। मुझे अपने दो तामिल-भाषी सहयात्रियोंसे अुनके प्रारंभके विरोधके कारण कओ बातें प्राप्त हुओं। अुनको कहींसे गलत सूचना थी कि हिन्दी तो अंग्रेजोंने चलायी और वह कोओ स्वतंत्र भाषा नहीं है। कुछ फारसी और कुछ संस्कृत शब्दोंको मिलकर हिन्दी बन गयी। जब मैंने अुन्हें हिन्दीके विकासका अितिहास बताया और समाविष्ट अन्य भाषाओंकी शब्दावलीका रहस्य स्पष्ट किया, तो वे दोनों सज्जन बड़े प्रसन्न हुये और मुझसे हिन्दीमें बातें करने लगे। अितना ही नहीं, वरन् यह सुझाव दिया कि हिन्दीकी संकेत शब्दावली (कोड वर्ड्स)के लिये वर्णमालाका भिन्न रूप अपेक्षित है। अिस प्रकार विरोधसे प्रारंभ होते हुये भी हम लोग अेक-दूसरेके प्रति कृतज्ञता-ज्ञापनके साथ बिदा हुये।

## राष्ट्रभाषा और हिन्दी-प्रचार-संस्थाओंकी वर्तमान स्थिति तथा तत्सम्बन्धी सुझाव

वास्तवमें मैं अेक बातपर विशेष बल देना चाहता हूँ कि हिन्दीके राष्ट्र-भाषा हो जानेपर हिन्दीके विकास और प्रचारका अुत्तरदायित्व प्रत्येक भारतवासीपर आ गया है और केवल हिन्दी भाषियोंतक ही वह सीमित नहीं रहा। सन्तोषकी बात है कि अहिन्दी भाषी सज्जन काफी तत्परता, अुत्साह और निष्ठासे यह कार्य कर रहे हैं और संस्थाओंका अुद्भव और विकास हुआ है। अिस सम्बन्धमें मेरा निवेदन यही है कि हमें सहकार्यकी भावनासे काम करना चाहिये, विरोध और विद्वेषकी भावनासे नहीं—क्योंकि यह कार्य भी असीम है।

जिनकी मातृभाषा हिन्दी है अुनका यह पावन राष्ट्रीय कार्य हो जाता है कि वे हिन्दी न जाननेवालो को हिन्दी सिखानेका व्रत लें और स्वय कमसे कम हिन्दी और अँग्रेजीके अतिरिक्त एक अन्य भाषा सीखें। अुसे सीखकर अुस भाषाके माध्यमसे हिन्दी सिखानेका प्रयत्न करें और अुसके साहित्यके अनुवादसे हिन्दीका भाडार भरें। हिन्दी भाषियोंकेलिये यह अेक राष्ट्रीय सेवाका व्रत है। हिन्दी प्रचार सस्थाओको भी यथावश्यक अन्य भाषा शिक्षण एव अनुवाद-कार्यका प्रबन्ध करना चाहिये।

## (क) स्वार्थ और अर्थलाभका प्रयोजन—

हिन्दी प्रचार-सस्थाओके प्रसगमें अेक स्पष्ट बात यह है कि प्राय अिनमें पारस्परिक द्वेष भावनाका समावेश हो गया है। नि स्वार्थ सेवाकी स्थितिमें द्वेष भावना जागृत नहीं होती, परन्तु जब किसी कार्यके साथ स्वार्थ सिद्धि अब अर्थ-लाभकी भी सभावनाअें आ जाती हैं, तब शुद्ध सेवाभाव भी नहीं रहता और द्वेष भावना भी आ जाती है। हिन्दी प्रचार-कार्यकी भी अब कुछ अिसी प्रकारकी स्थिति है। पर मैं यह स्पष्ट करना चाहता हूँ कि हिन्दी प्रचारका कार्य आज भी अेक राष्ट्रीय सेवाका कार्य है। यह बात दूसरी है, फिर भी अिसमे अुन्हीं लोगोको प्रविष्ट होना चाहिये जो आर्थिक लाभका ध्यान कम और राष्ट्रसेवाका ध्यान अधिक रखें। अिनके सचालकोको अिस बातपर विशेष ध्यान देना चाहिये, अन्यथा सस्थाओकी बदनामी होगी और फिर न स्वार्थ सिद्ध होगा और न परार्थ।

अिसके अतिरिक्त कुछ सस्थाअें अैसी हैं जो एकाधिपत्य चाहती हैं और पारस्परिक द्वेषको अुभारती हैं। यह कार्य नितान्त अवाछनीय है और अिससे किसी भी सस्थाको लाभके बदले हानिही होगी। अब भी यह कार्य अितना विशाल है कि अनेक सस्थाअें कार्य कर सकती हैं। अुनमे होड अच्छे कामकी होनी चाहिये। जिसका काम अच्छा होगा, अुस सस्थाका स्वत विकास होगा, पर अच्छा काम करनेवाली किसी भी सस्था की हानि नहीं हो सकती। अखिल भारतीय सगठनों तथा प्रादेशिक एव केन्द्र-सरकारको चाहिये कि अच्छा कार्य करनेवाली सभी सस्थाओंको मान्यता प्रदान करे और यदि सभव हो तो सभीको एक सगठनमें सूत्रबद्ध कर दे। ऐसा करनेमे प्रत्येक सस्था दूसरेकी पूरक हो जाएगी। अन्यथा कॉंग्रेस और अुससे अलग हो जानेवाले विभिन्न राजनैतिक दलोंसे जैसे देशकी एकता छिन्न भिन्न हो रही है अुसी प्रकार हिन्दी-प्रचारका कार्य भी कमजोर हो जाअेगा। अिसी प्रकार विभिन्न सस्थाओं-द्वारा आयोजित विभिन्न पदवियोसेभी एक प्रकार की भ्रातिका निर्माण होता है, अतअेव समस्त हिन्दी सस्थाओ द्वारा स्वीकृत अुपाधियाके नाम

अेकही होने चाहिअे। अुनके पाठयक्रम आदि सम्थाओंके अनुसार कुछ भिन्न-भिन्न हो सकते हैं।

## हिन्दी परीक्षाओंकी व्यवस्थाका स्वरूप

हिन्दी प्रचार सस्थाओंके प्रसगमें, तीसरी बात जिसकी ओर में आप लोगोका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ वह है शिक्षा-परीक्षा पद्धति सबधी। अधिकाश हिन्दी प्रचार सस्थायें शिक्षा-प्रतिबधके बिनाही परीक्षाओं लेती हैं। अिन परीक्षाओंमें परीक्षार्थियोंकी अुत्तीर्णताका प्रतिशतभी कम नहीं होता। अत सभी परीक्षार्थियोके ज्ञानका स्तर अुच्च नहीं हो सकता। अत अिस सबधमे मेरा सुझाव यह है कि सम्मिलित रूपसे राष्ट्रीय या क्षेत्रीय स्तरपर शिक्षकों, परीक्षार्थियों एव प्रचारकों के शिविरोंमे अनुभवी एव समुचित ज्ञान सम्पन्न व्यक्तियोंके भाषणों, परिसवादों, गोष्ठियों आदिका प्रबध करना चाहिअे। कमसे कम सर्वोच्च पदवीके लिअे अिन शिविरोंमें अुपस्थिति प्रत्येक परीक्षार्थीके लिये अनिवार्य होनी चाहिए। अिससे कार्यकर्त्ताओं और परीक्षार्थियोंका अधिक उत्साह बढेगा और ज्ञान एव अनुभवका स्तरभी अूंचा होगा। कभी-कभी हमारे सामने पदवी प्राप्त अनेक व्यक्ति अैसेभी आते हैं जिनकी भाषा शुद्ध नहीं तथा जिनका ज्ञान अधूरा है। अब वह स्थिति आ गयी है जब कि शिक्षकोंका भाषा और विषय सबधी ज्ञान अच्छा होना चाहिअे, नहीं तो अशुद्ध एव अपूर्ण शिक्षाकी परपरा आगे बढ जाअेगी। प्रसगमें देशके विभिन्न क्षेत्रोंकी यात्राका कार्यक्रमभी शिक्षकों और प्रचारकोंके लिअे रखा जा सकता है।

## अनुवाद-परम्परासे भारतीय दृष्टिकोणका विकास

हिन्दीकी अनेक सम्थाअें प्रचार अेव परीक्षा व्यवस्थाके साथ साथ प्रकाशनका कार्यभी कर रही हैं, पर अिन सस्थाओंके सामने कोअी व्यवस्थित योजना या सुनिश्चित लक्ष्य नहीं है। अिस सबधमें मेरा सुझाव यह है कि वे भारतीय भाषाओंके साहित्योंके अितिहास, व्याकरण तथा अुत्कृष्ट सास्कृतिक तथा साहित्यिक रचनाओंके अनुवाद हिन्दीमे प्रकाशित करे। अिस कार्य-द्वारा हम अेक दूसरेके अधिक निकट पहुँच सकेंगे तथा अखिल भारतीय दृष्टिकोणका विकास होगा। हम विभिन्न भाषाओंके आवरणमें ढँकी हुअी भारतीय सस्कृति, भावना एव विचार-सबधी अेकताका प्रत्यक्ष दर्शन कर सकेंगे। अिसके द्वारा हम अनुभव कर सकेंगे कि विविधताकी सपन्नताको लेकर अेक होनेमें, हम समस्त देशवासी वास्तवमें कितने समृद्ध अेव वैभवशाली हैं। मेरा अपना मत है कि अैसी समृद्धि और वैभवका अनुभव ससारका अन्य कोअीभी देश करनेमे समर्थ नहीं है। अपने अुच्च विचारो

अेव सस्कृतिकी अुदात्त परपराको पहिचानकर हम कह सकते हैं कि भारत आजभी सस्कृति और भावना के क्षेत्रमें विश्वको कुछ दे सकता है और अुसकी यह देन आज वैज्ञानिक प्रभुताके अुन्मादमे विनाशके तटपर खडी मानवताके लिअे अेक महत्त्वपूर्ण सबल होगी जो अुसे सचेत और विवेकशील बना सकती है।]

## शिक्षाके माध्यमका प्रश्न

[अिस अवसरपर मै शिक्षासे सबधित दो एक समस्याओपर और अपने विचार प्रस्तुत करना चाहता हूँ। वह है–शिक्षाका माध्यम। हमने प्राथमिक और माध्यमिक अवस्थाओमे तो शिक्षाका माध्यम मातृभाषा और प्रादेशिक भाषाको स्वीकार कर लिया है, पर अुच्च शिक्षाके लिअे हम अग्रजीका माध्यमही बनाये रखना चाहते हैं। माध्यमिक स्तरसे प्रादेशिक भाषा या राष्ट्रभाषामें शिक्षा लेकर आनवाले छात्र केवल अग्रेजीके माध्यमसे ही शिक्षा परीक्षामे कैसे सफल हो सकते हैं? अत हमे अुच्च शिक्षाके लिअेभी प्रादेशिक भाषाओ और राष्ट्रभाषाके माध्यमको स्वीकार करना चाहिए। हाँ, अग्रजी माध्यमभी विकल्प रूपमें रहना चाहिअ यह बात मैं मानता हूँ। अिस सबधमे मुख्य कठिनाओ शिक्षकों और पाठचपुस्तकोंकी बतायी जाती है परन्तु यदि हम प्रत्यक विश्वविद्यालयमें अक अनुवाद विभाग स्थापित कर दें, तो यह काम सुगम हो जाएगा। अिस विभागके द्वारा न केवल हम पाठच-पुस्तकोकी रचना कर सकेंग, वरन् हम अैसे दुभाषियोकोभी तैयार कर सकेंगे जिनकी देश और विदेशमें आय दिन आवश्यकता बनी रहती है। अत विना विलम्ब प्रत्येक विश्व विद्यालयमें परीक्षाके लिए तीन वैकल्पिक माध्यमो—प्रादेशिक भाषा, राष्ट्र-भाषा और अग्रेजी—को स्वीकार कर लेना चाहिए। अिससे प्रत्येक क्षेत्रका विद्यार्थी किसीभी दूसरे क्षेत्रमें जाकर परीक्षा दे सकता है। अखिल भारतीय सेवाओंमें काय करनेवाले व्यक्तियोको अिस कठिनाओका अनुभव होता है। अतएव प्रथम डिग्री तक अग्रेजी और हिन्दीकी अनिवाय शिक्षा, विज्ञान अेव तात्रिक विषयोंकी शब्दा वलीकी अेकरूपता तथा तीन भाषाओके माध्यमका विकल्प स्वीकार कर लेनेसे शिक्षक अेव शिक्षार्थीके अेक प्रदेशसे दूसरे प्रदेशमें जानेपर कोओ विशेष कठि-नाओ न हागी और हम राष्ट्रभाषा और प्रादेशिक भाषाका विकासभी करते रहेंगे तथा अनुवाद द्वारा अुच्च स्तरका साहित्यभी प्राप्त करते रहग।

अिस प्रसगमें मेरा अेक सुझाव यहभी है कि हिन्दी सस्थाओकोभी हिन्दी माध्यमसे कुछ साहित्येतर तथा वैज्ञानिक अेव तात्रिक विषयोंकी शिक्षा देनेका प्रयत्न करना चाहिअे और अुनके लिअे मान्यता प्राप्त करनी चाहिअ। अैसा करनेसे हम तदनुरूप साहित्यका निमाण तथा हिन्दी माध्यमसे तात्रिक विषयोको पढानेवाले अध्यापक तयार कर सकेंगे, यह अिन सस्थाओंके लिअे नया कार्यक्षेत्र है।

## हिन्दीका काव्य-वैभव

अभी जो विचार मैंने प्रकट किये हैं वे राष्ट्रभाषा हिन्दीके प्रचार और प्रसारसे तथा अुस प्रसंगमें कृत अेवं अभिप्रेत प्रयत्नोंसे सम्बन्ध रखते हैं। परन्तु जिस भाषाको भारत जैसे राष्ट्रकी राष्ट्रभाषाका गौरव प्राप्त हो और जो गौरव चौदह-पन्द्रह भाषाओंके बीच अेक विशिष्ट स्थानके रूपमें सम्मानित हो अुस भाषाका साहित्यभी स्वयं अुतनाही गौरवान्वित होना चाहिये। अिसमें कोअी सन्देह नहीं कि हिन्दीका प्राचीन साहित्य विशाल, अुत्कृष्ट अेवं बहुविध गुण-सम्पन्न है। अिसमें न केवल अेक महाकवियोंकी लम्बी परंपरा है और अुत्कृष्ट काव्य-ग्रन्थोंका भाण्डार है; वरन् अिसका साहित्य विविधता-सम्पन्न है। जहाँतक मेरा सीमित ज्ञान है वहाँतक हिन्दी जैसे वीर-काव्य, भक्ति-काव्य, सूफी-काव्य, नीति-काव्य, गीति-काव्य रीति-काव्य, शृंगार-काव्य, राष्ट्रीय-काव्य आदि विविधता-सम्पन्न अन्य भाषाओंमेंभी मिलते हैं और किसी अेक धाराको लेकर अुत्कृष्टता-सम्पन्न अनेक साहित्यभी हैं;पर अेक सायसनग्र धाराओंकी सम्पन्नता हिन्दी साहित्यकी अपनी विशेषता है जो अुसे संस्कृतकी अुत्तराधिकारिणी सिद्ध करती है और अुसको राष्ट्रीय गौरव प्रदान करती है। अिसी प्राचीन काव्य-वैभवके आधारपर हिन्दीका व्यापक प्रचार हुआ। तुलसी, सूर, मीरां, बिहारी, भूषण जैसे कवि व्यापक प्रतिष्ठाको प्राप्त हुअे। आधुनिक युगके कवि और लेखक जैसे जयशंकर प्रसाद, प्रेमचन्द, रामचन्द्र शुक्ल आदि अिस गौरवके पात्र हैं; परन्तु फिरभी हिन्दी कवियों और लेखकोंका अपने अिस नअे अुत्तरदायित्वको निभाना एक परम कर्तव्य हो जाता है। आज हमें हिन्दीके अन्तर्गत अैसी रचनाअें चाहिअे जो अखिल भारतीय दृष्टिकोण और संस्कृतिको प्रकट करनेवाली हों, जिनके अन्तर्गत हमारे देशके प्रत्येक प्रदेशका व्यक्ति अपनी भावधारा और संस्कृतिमें अवगाहन कर सके। अुसके अन्तर्गत न केवल परम्परागत सांस्कृतिक आध्यात्मिक भावनाकाही चित्रण हो; वरन् आज की सामूहिक तथा राष्ट्रीय परिस्थितियोंकाभी यथावश्यक चित्रण होना चाहिअे।

## आधुनिक साहित्यकारका दायित्व

हिन्दी साहित्यके अन्तर्गत विश्वकी वैज्ञानिक प्रगतिका ज्ञानभी समाविष्ट होना चाहिअे और भारतीय आध्यात्मिक चेतनाका स्वरभी गूंजता हुआ सुनाअी पड़ना चाहिअे। हमारे साहित्यकी अखिल भारतीय आवश्यकता तब पूर्ण होगी जब हमारे साहित्यकार न केवल संस्कृत और भारतीय भाषाओंके साहित्योंको आत्मसात् करेंगे, वरन् जब वे विश्व-साहित्यकी गति-विधिसेभी पूर्ण परिचित रहेंगे और अुसकी आधुनिकतम प्रवृत्तियोंके साथ कदम मिलाकर चल सकेंगे। संस्कृत साहित्यकी

अक्षय निधिमें जिसकी गहरी जड़ें हों और विभिन्न भारतीय साहित्यका आतरिक्ष जिसके लिअे खुला हो, अैसा हमारा हिन्दी साहित्यका वटवृक्ष निश्चयही अक्षय वटका रूप धारण कर सकता है और मुझे विश्वास है कि यदि हमारे साहित्यका विकास ठीक ढगसे समुचित परिपोषणको ग्रहण करता हुआ हो सका तो वह विश्वको निश्चय ही अमर सन्देश देकर मानवताके कल्याणमें अग्रसर हो सकता है। अिसीलिअे मैं अपने राष्ट्र-कविके साथ साहित्यके विकासका आवाहन करता हुआ अिन शब्दोंमें अपना वक्तव्य समाप्त करता हूँ —

" जय देव मन्दिर देहली
सम भावसे जिसपर चढ़ी
नृप हेम मुद्रा और रक वराटिका।
मुनि सत्य सौरभकी कली,
कवि कल्पना जिसमें पली,
फूले फले हिन्दी साहित्यकी वह वाटिका।।"

आधुनिक साम्यभाव और मानव प्रेमकी सुरभि बिखेरनेवाली साहित्य वाटिका सचमुच हमारे लिअे कल्याणकारी हो सकती है।

---

तृतीय अध्याय

# राष्ट्रभाषाकी परिभाषा

( संविधान-परिषद तथा मान्य संस्थाओंके प्रस्ताव )

## ३३ : हिन्दी-साहित्य सम्मेलन-द्वारा राष्ट्रभाषा हिन्दीकी परिभाषा

[ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयागकी स्थापना १० अक्तूबर १९१० को हुअी। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनने हिन्दीको राष्ट्रभाषाके पदपर आसीन करनेके हेतु अथक प्रयत्न किये है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका अुद्देश्य रहा है कि "देशव्यापी व्यवहारो और कार्योंको सुलभ करनेके लिये राष्ट्रलिपि देवनागरी और राष्ट्रभाषा हिन्दीका प्रचार बढानेके प्रयत्न करना।"

सम्मेलनकी स्थापनासेही श्रद्धेय राजर्षि पुरुषोत्तमदासजी टंडन अुसके कर्णधार रहे है। अुनका दृष्टिकोण राष्ट्रीय और विशाल रहनेसे प्रारम्भकालसेही हिन्दीतर-भाषियो तथा हिन्दीतर प्रदेशोमे बसे हुअे विद्वानोका सहयोग अुन्होने प्राप्त किया है। स्व महात्मा गान्धीजी, स्व सयाजीराव गायकवाड, स्व बाबूराव पराडकर, श्री कन्हैयालालजी मुन्शी जैसे हिन्दीतर भाषियोंने सम्मेलनका सभापतित्व भी किया है।

राष्ट्रभाषाका नाम, अुसकी लिपि, अुसका स्वरूप आदिके सम्बन्धमे जो प्रस्ताव हिन्दी साहित्य सम्मेलनने किये है और जो आज भी उसे मान्य है वे यहाँ सग्रहीत किये है। अी स १९४१ मे सपन्न अबोहर-अधिवेशनका प्रस्ताव विशेष महत्त्व रखता है। अुसके ४ और ५ परिच्छेदोम बताया है कि हिन्दीका विकास भारतीय भाषाओंकी सहायतासे होना चाहिये और अुसका स्वागत हिन्दी-भाषी कर रहे है। भारतीय सविधानकी ३५१ वी धाराके और अिन परिच्छेदोके विचारोमे सैद्धान्तिक समानता दिखाअी देती है। ]

—१—

### हिन्दीकी परिभाषा

सम्मेलनके २५ वे अधिवेशनमे, जो शिमलामे सवत् १९९५ मे हुआ था, नीचे लिखा मतव्य स्वीकृत हुआ था —

अिस सम्मेलनके विचारमे हिन्दीके आधुनिक साहित्य निर्माणके लिये अैसी भाषा अुपयुक्त है जिसका परम्परागत सम्बन्ध सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रश भाषाओंसे है, जिसको शक्ति कबीर, तुलसी, सूर, मलिक मुहम्मद जायसी, रहीम, रसखान और हरिश्चन्द्रकी कृतियोंसे आयी है, जिसका मूलाधार देशी और तद्भव

शब्दोंका भण्डार है और जिसके पारिभाषिक शब्द प्राकृत अथवा संस्कृतके क्रमपर ढाले गये हैं; किन्तु जिसमे रूढ सुलभ और प्रचलित विदेशी शब्दोको भी स्थान है।

—२—

## राष्ट्रभाषाका स्वरूप

सम्मेलनके २६ वे अधिवेशनमे जो पूनामे, संवत् १९९८ मे हुआ था, नीचे लिखा मंतव्य स्वीकृत हुआ था —

अिस सम्मेलनको मालूम हुआ है कि राष्ट्रभाषाके स्वरूपके सम्बन्धमे हिन्दुस्तानके भिन्न-भिन्न प्रान्तोमे कुछ गलत-फहमी फैली हुअी है और लोग अुसके लिये अलग-अलग राय रखते हैं। अिसलिये यह सम्मेलन घोषित करता है कि राष्ट्रभाषाकी दृष्टिसे हिन्दीका वह स्वरूप मान्य समझा जाय, जो हिन्दू, मुसलमान आदि सब धर्मोंके ग्रामीण और नागरिक व्यवहार करते हैं, जिसमे रूढ सर्वसुलभ अरबी-फारसी या अंग्रेजी शब्दो या मुहावरोका बहिष्कार नहीं होता और जो साधारण रीतिसे राष्ट्रलिपि नागरीमें तथा कहीं-कहीं फारसी लिपिमे भी लिखा जाता है।

—३—

## 'हिन्दी'से आजकी अुर्दू पृथक् भाषा

सम्मेलनके ३० वें अधिवेशनमें जो संवत् १९९८ मे हुआ था नीचे लिखा मन्तव्य स्वीकृत हुआ था :—

हिन्दी और हिन्दुस्तानी शब्दोंके प्रयोगके बारेमे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और अुसकी समितियोंकी—विशेषकर अुसकी राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिकी—क्या नीति है, अिस विषयमें कुछ भ्रम अुपस्थित हुआ है और कथनोपकथन प्रकाशित हुअे हैं; अिसलिये अपनी नीतिका स्पष्टीकरण करनेके हेतु सम्मेलन निम्नलिखित घोषणा करता है :—

(१) प्रारम्भसेही सम्मेलनने अपनी भाषा और राष्ट्रभाषाको हिन्दी कहा है और अुस भाषा तथा नागरी लिपिकी अुन्नति और प्रचारही अुसका अुद्देश्य रहा है। द्वितीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनमे जो पहली नियमावली प्रयागमें स्वीकृत हुअी अुसमें तथा अुसके पश्चात् अबतक जितने भी संशोधन अुस नियमावलीमें हुअे हैं अुन सबसे यह प्रकट है कि सम्मेलनकी भाषाका नाम हिन्दी है—यद्यपि साहित्यिक अथवा प्रचारकी दृष्टिसे और स्थानोकी विभिन्नताके कारण, अुसके रूपमें शब्दावलीका कुछ अन्तर होना स्वाभाविक है।

(२) वास्तवमे अुर्दू भी हिन्दीसे अुत्पन्न अरबी-फारसी-मिश्रित अेक रूप है। हिन्दी शब्दके भीतर अैतिहासिक दृष्टिसे अुर्दूका समावेश है; किन्तु अुर्दूको

साहित्यिक शैली—जो थोड़से आदमियोंमें सीमित है—हिन्दीसे अिस समय अितनी विभिन्न हो गयी है कि असकी पृथक् स्थिति सम्मेलन स्वीकार करता है और हिन्दीकी शैलीसे भिन्न मानता है।

(३) "हिन्दुस्थानी" या "हिन्दुस्तानी" शब्दका प्रयोग मुख्यकर अिसलिये हुआ करता है कि यह देशी शब्द व्यवहारसे प्रभावित हिन्दी-शैली तथा अरबी-फारसी शब्द-व्यवहारसे प्रभावित अुर्दू-शैली, अिन दोनोंका अेक शब्दसे अेक समयमें निर्देश करे। कांग्रेस, हिन्दुस्तानी अेकेडेमी और कुछ गवर्नमेंट विभागोंमें अिस अर्थमें अिसका प्रयोग हुआ है और होता है। कुछ लोग अिस शब्दका प्रयोग अुस प्रकारकी भाषाके लिये भी करते हैं जिसमें हिन्दी और अुर्दू शैलियोंका मिश्रण हो।

अिस प्रकार निश्चित अर्थोंमें अुर्दू और हिन्दुस्तानी शब्दोंका प्रचलन है। अिस विषयमें सम्मेलनका कोअी विरोध नहीं है; किन्तु सम्मेलन साहित्यिक और राष्ट्रीय दृष्टियोंसे अपने और अपनी समितियोंके कामनें हिन्दी शैलीका और अुसके लिये हिन्दी शब्दकाही व्यवहार और प्रचार करता है।

प्रादेशिक भाषाओंके शब्दोंका स्वागत

(४) राष्ट्रीय सजगताके विस्तार और राष्ट्रीय भावनाके साथ-साथ हिन्दीका राष्ट्रीय रूप, दिन-दिन विकसित हो रहा है। भिन्न-भिन्न प्रान्तोंसे आये हुअे तथा भिन्न-भिन्न प्रभावोंसे अुत्पादित नये शब्दोंका भी अुसमें धीरे-धीरे स्वभावतः समावेश होगा। जीवित, क्रियाशील तथा हिन्दीकी सार्वभौमिक प्रतिनिधि-संस्थाके कर्तव्य-पालनमें सम्मेलन अिस विकासका आवाहन और स्वागत करता है।

(५) राष्ट्रभाषा होनेके कारण प्राचीन समयसे हिन्दी सब प्रान्तीय भाषाओंकी बड़ी बहन है। अुसके और अुसकी छोटी बहनोंके स्वरूपमें माताका अमर सौन्दर्य छलकता है। बहनेंअेक-दूसरेके रूपमें अपना रूपभी देखती हैं। अुनका आपसका प्रेम स्वाभाविक है। बडी बहन छोटी बहनोंके अधिकार सुरक्षित रखती है। अुसका अपना घर सब बहनोंके लिये खुला है और अुसके घरमेंही सब बहनोंको आपसमें मिलने और मिलकर राष्ट्रोपासनाकी सुविधा है।

सच्ची राष्ट्रीय भावनाओंसे प्रेरित सब देशभक्तोंसे सम्मेलन अनुरोध करता है कि राष्ट्रीय अुत्थान, संगठन और अेकीकरणमें भाषाकी शक्तिका अनुभव कर वे राष्ट्रभाषा हिन्दीके प्रचारमें निष्ठा और दृढ़तासे संलग्न हों।

—४—

राष्ट्रभाषाकी लिपि केवल नागरीही

सम्मेलनके ३३ वें अधिवेशनमें—जो अुदयपुरमें संवत् २००२ में हुआ था—नीचे लिखा मंतव्य स्वीकृत हुआ था :—

अबोहरके तीसवें अधिवेशनमे हिन्दी साहित्य-सम्मेलनने अपने निश्चयद्वारा हिन्दी और हिन्दुस्तानी शब्दोंके प्रयोगके सम्बन्धमे अपनी नीति स्पष्ट कर दी थी। हिन्दी और अुर्दूका क्या सम्बन्ध है अिसे भी सूत्ररूपसे सम्मेलनने स्पष्ट कर दिया था। सम्मेलन अपनी नीतिके सम्बन्धमे अिस समय भी अुसी निश्चयको पूर्णतया स्वीकार करता है।

हालमे सम्मेलनके पुराने सभापति महात्मा गाधीजीने स्वस्थापित हिन्दुस्तानी प्रचार-सभाके कामको प्रगति देनेके अभिप्रायसे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनसे अपना सम्बन्ध विच्छेद करनेकी बात अुठायी और अतमे अुन्होने अपना त्यागपत्र दे दिया, जो स्थायी समितिके सामने है। अिस विषयके अुनके कार्यवाहक अुपसभापति श्री पुरुषोत्तमदास टडनके बीच जो पत्रव्यवहार हुआ, अुसे महात्मा गाधीजीने प्रकाशित करा दिया है। अुससे हिन्दीके विद्वानो, लेखको और पत्रकारोमें तथा हिन्दीको राष्ट्रभाषा स्वीकार करनेवाले अहिन्दी-भाषी कार्यकर्ताओमें असाधारण हृदय-मथन हुआ है। अिस कारण सम्मेलन अिस पत्रव्यवहारके सैद्धान्तिक अशपर, अबोहर-अधिवेशनके निश्चयको सामने रखते हुये अपना मत प्रकट करना अुचित समझता है।

८ जून सन ४५ के पत्रमें सम्मेलनकी ओरसे श्री पुरुषोत्तमदास टडनने महात्मा गाधीको ये वाक्य लिखे थे —

"सम्मेलन हिन्दीको राष्ट्रभाषा मानता है। अुर्दूको वह हिन्दीकी अेक शैली मानता है जो विशिष्ट जनोमें प्रचलित है। स्वय वह हिन्दीकी साधारण शैलीका काम करता है, अुर्दू शैलीका नहीं।"

ये वाक्य सम्मेलनके सिद्धान्त और नीतिके सर्वथा अनुकूल हैं और सम्मेलन अुन्हे अपने मतके प्रकाशनार्थ स्वीकार करता है।

महात्मा गाधीके अिस मतसे कि प्रत्येक देशवासी नागरी और फारसी दोनो लिपियाँ सीखे, सम्मेलन सहमत नहीं हो सकता। राष्ट्रीय दृष्टिकोणसे सम्मेलन अिस मतको नितान्त अव्यावहारिक तथा अग्राह्य समझता है। केवल नागरी लिपिमें राष्ट्रलिपि होनेकी योग्यता है। अुसमें वैज्ञानिक पूर्णता है। देशकी बहुत बडी जनसख्या अैसी लिपियोका व्यवहार करती है जो नागरी लिपिके समीप हैं और अुसके लिये नागरी सीखना अति सुगम है। यह मानी हुआी बात है कि फारसी लिपिका आधार वैज्ञानिक नहीं है और सीखनेमे वह कष्ट साध्य है। हमारे देशमे साक्षरताकी कमी है। अपनी प्रान्तीय लिपिके साथ दो अन्य लिपियाँ सीखना साधारण जनताके लिये सम्भव नहीं।

सम्मेलनकी दृष्टि पूर्णरूपसे राष्ट्रीय है। देशकी राष्ट्रीय आवश्यकताओके साथ सम्मेलन चलता आया है और चलना चाहता है और वह भाषा और लिपिके

प्रश्नपर साम्प्रदायिक दृष्टिसे विचार करना अनुचित समझता है। भाषा और लिपिका, राष्ट्रीय अुत्थान और अेकीकरणमें बहुत बड़ा स्थान है। वास्तविकताको देखते हुअे राष्ट्रभाषा और लिपिके विकासमें सम्मेलन विचारयुक्त प्रगतियोंका पोषक है।

—५—

भारतीय संविधान-परिषदको धन्यवाद

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनके ३७ वे अधिवेशन, दिसम्बर १९४७ मे हैदराबादमें स्वीकृत प्रस्ताव —

यह सम्मेलन भारतीय संविधान-परिषदके अिस निर्णयपर कि, देवनागरी लिपिमें लिखी हिन्दी देशकी राष्ट्रभाषा स्वीकार की जाय, संतोष प्रकट करता है और परिषदके सदस्योंको बधाअी देता है। परंतु खेदके साथ सम्मेलनको अपना यह सच्चा मत प्रकट करना पड़ता है कि अंग्रेजी भाषाके पुराने प्रभावके कारण संविधान-परिषदने राष्ट्रभाषाके महत्त्वपूर्ण प्रश्नको सही दृष्टि-बिन्दुसे नहीं देखा। अंग्रेजी भाषाको केन्द्रीय शासन तथा व्यवस्थापिका-सभाओं और केन्द्रीय न्यायालय तथा प्रान्तीय हाअीकोर्टोंके कामोंमें कमसे-कम १५ वर्षतक प्रभुत्व देना और केन्द्रीय कामोंके लिये नागरी लिपिमें अंग्रेजी अंकोंका मिश्रण— ये दो संविधानमें भाषा और लिपिसम्बन्धी भारी दोष हैं।

जन भावनाकी रक्षा तथा देशके भविष्यको ध्यानमें रखकर सम्मेलन पूर्ण सद्भावनासे केन्द्रीय गवर्नमेंटको यह सुझाव देता है कि संविधानके अन्तर्गत जो अवसर, १५ वर्षके भीतर अंग्रेजीके साथ अथवा अंग्रेजीके स्थानपर, हिन्दीके प्रयोग तथा नागरी लिपिमें देवनागरी अंकोंके प्रयोगके सम्भव है, अुनका वह पूरा अुपयोग करे और हिन्दी भाषा तथा देवनागरी—अंकयुक्त देवनागरी लिपिके अधिकाधिक व्यवहारमें सहायक हो।

---

## ३४ : राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धाके द्वारा भाषा-नीतिके सम्बन्धमें स्वीकृत प्रस्ताव

संविधान-सभाको धन्यवाद :

[ राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धाकी वार्षिक बैठक ४–५ दिसम्बर १९४९ मे हुअी थी। अुसमें भारतीय संविधान-परिषदके राष्ट्रभाषा सम्बन्धी निर्णयपर अुस परिषदको धन्यवाद दिया गया। समितिका वह प्रस्ताव यहाँ दिया गया है। ]

—१—

"राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, हिन्दी-नगर, वर्धाकी यह वार्षिक बैठक भारतीय विधान-परिषद-द्वारा हिन्दीको राज्यभाषा और देवनागरीको राज्यलिपि स्वीकार किये जानेके निर्णयपर अपनी प्रसन्नता प्रकट करती है और जिन व्यक्तियों तथा संस्थाओंके प्रयत्न और सहयोगके परिणामस्वरूप भारतीय विधान-परिषदका यह निर्णय हुआ अुन सभीको हार्दिक बधाओी देती है और अुनका अभिनन्दन करती है।

२. "राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिको अिस सभाको अधिक संतोष होता यदि भारतीय विधान-परिषदने १५ वर्षकी लंबी अवधितक अंग्रेजीको किसी न किसी रूपमें बनाये रखना स्वीकार न किया होता। किन्तु अिससे आशा है कि देश पंद्रह वर्षसे बहुत पहलेही राज्य-भाषा हिन्दीको अंग्रेजी भाषाके स्थानपर प्रतिष्ठित करनेमें समर्थ होगा।

"यह सभा मानती है कि विधान-परिषदके लिये राज्य-लिपि देवनागरी स्वीकार करनेके साथ-साथ अुसके अन्तर्गत प्रचलित देवनागरी अंकोंकोही स्वीकार करना अुचित और स्वाभाविक होता। अिस सभाको आशा है कि जब कभी विधान-परिषदके भाषासम्बन्धी निर्णयके अिस अंकोसम्बन्धी हिस्सेपर पुनर्विचार होगा तो देश अिस सम्बन्धमें अुचित निर्णय कर सकेगा।

"यह सभा, राष्ट्रभाषा हिन्दी और राष्ट्रलिपि देवनागरीके प्रचारमें लगी हुओ संस्थाओं और आजकी अिस अनुकूल परिस्थितिमें हिन्दी और देवनागरीकेही प्रचारके अुद्देश्यसे बननेवाली भारतीय हिन्दी-परिषद-जैसी नयी संस्थाओंसे सहयोगकी आशा करती है और अुन्हें अपने सहयोगका विश्वास दिलाती है। अिस सभाको भरोसा है कि देशमें अब अैसा वायुमण्डल तैयार होगा कि राष्ट्रभाषा-प्रचार-क्षेत्रके सभी कार्यकर्ता तथा संस्थाअें अेक-दूसरेके सहयोगसे काम कर सकें।

३ "यह सभा मानती है कि पिछले तेरह वर्षसे राष्ट्रभाषा हिन्दी और देवनागरी लिपिकेही प्रचारमें लगी हुओ अिस समितिकी जिम्मेदारी विधान परिषद-द्वारा राष्ट्रभाषा हिन्दीकी स्वीकृतिके बाद विशेष रूपसे बढ़ गयी है। अिसलिये यह सभा अपनी सभी प्रान्तीय समितियाँ और अुनके अन्तर्गत काम करनेवाले सभी राष्ट्रभाषियोंसे विशेष आग्रह करती है कि राष्ट्रभाषा-शिक्षणके सामान्य कार्यके साथ-साथ वे अब साहित्य-निर्माणके ठोस कार्यमें अुत्साहके साथ लग जायें। साहित्य-निर्माणके अिस कार्यमें प्रान्तीय साहित्यिक संस्थाओंकी मदद अवश्य ली जाय।"

—२—

## राष्ट्रीय हिन्दी और प्रान्तीय हिन्दी अेक हैं।

[राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिकी वार्षिक बैठक दिनांक ३०–१२–५१ को राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडनजीकी अध्यक्षतामें वर्धामें हुअी। अुसमें समितिकी भाषासम्बन्धी स्वीकृत नीतिको स्पष्ट करनेवाला निम्नलिखित प्रस्ताव पास हुआ।]

"राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिकी यह घोषणा है कि आरम्भसे अुसकी यह नीति रही है कि राष्ट्रभाषा-हिन्दीका रूप दिन-दिन अिस रीतिसे विकसित हो कि अुसके निर्माणमें देशकी समस्त भाषाओंका योग हो और वह सच्चे अर्थमें भारतीय जनताका प्रतिनिधित्व करे।

अिस समितिकी धारणा है कि भारतीय संविधानने हिन्दीके अिसी रूपकी कल्पना की है। यह रूप किसी अप्राकृतिक रीतिसे पैदा नहीं किया जा सकता। जो हिन्दी पुराने समयमें देशभरमें फैली हुअी है, अुसीके क्रमिक विकाससे हिन्दीका भावी रूप निखरेगा। हालमें कुछ भाअियोंने यह दिखानेका यत्न किया है कि राष्ट्रीय हिन्दी और प्रान्तीय हिन्दीमें भेद है। अिस समितिके विचारमें अिस प्रकारका भेद सर्वथा निर्मूल है और अिससे हिन्दीके विकासमें कोअी लाभ नहीं हो सकता।

स्थानीय बोलियोंके अतिरिक्त हिन्दीका कोअी रूप राष्ट्रीय हिन्दीसे भिन्न नहीं है। साहित्यिक और सांस्कृतिक हिन्दी अेक है। वही सब प्रदेशोंमें प्रचलित है। अुसीके द्वारा राष्ट्रीय कार्य सम्पन्न हो सकेगा और अुसीसे क्रमिक विकासमें संविधानके अनुसार संस्कृत तथा देशकी अन्य भाषाओंका भाग होगा।

—३—

## किसी भाषाके अुपयुक्त शब्दोंका बहिष्कार नहीं है।

[दिनांक १५ जून १९५२ को राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिकी बैठक वर्धामें हुअी। अुसमें राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिकी भाषा-सम्बन्धी नीतिकी पुनः घोषणा करते हुअे सर्वसम्मतिसे निम्नलिखित प्रस्ताव पास हुआ।]

"३० दिसंबर १९५१ को जो बैठक वर्धामें हुअी थी, उसमें राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिने अपनी भाषा-सम्बन्धी नीतिको स्पष्ट किया था। फिर भी कुछ शंकाअें अुठायी गयी हैं। अिसलिये यह समिति आज पुनः घोषणा करती है कि राष्ट्र-भाषा हिन्दीके रूपके बारेमें अुसकी अेकही नीति आरम्भकालसे चली आयी है।

पूज्य गांधीजीकी प्रेरणासे अिस संस्थाकी नींव सन १९३५ में पड़ी और जिस प्रकारकी भाषाका प्रचार पूज्य बापूजीकी देखरेखमें समितिने शुरू किया था अुसी प्रकारकी भाषाका प्रचार-प्रसार वह आज भी कर रही है।

अिस भाषाकी लिपि नागरी है। अुसमें सब भाषाओंके अैसे शब्दोंका, जो चालू हैं, समावेश है और नये शब्दोंके निर्माणमें किसी भाषाके अुपयुक्त शब्दोंका बहिष्कार नहीं है।

विशेष वैज्ञानिक विषयोंकी शब्दावलीको छोड़कर यह भाषा सरल और जनताकी बोल-चालकी भाषासे मिलती हुअी होनी चाहिये।

अिस समितिकी धारणा है कि भारतीय संविधानने भी नागरी लिपिमें लिखित हिन्दीके अिसी रूपकी कल्पना की है और यह मानती है कि राष्ट्रभाषा *हिन्दीका जो रूप आगे विकसित होगा अुसके निर्माणमें देशकी समस्त भाषाओंका* सहयोग होगा।"

—४—

## ३५१ वीं धाराके अनुसारही समिति प्रचार करती है।

[ राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिकी कार्यकारिणीने सितम्बर १९५२ में निम्नलिखित प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे स्वीकार किया है। ]

राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिकी भाषा-नीतिके बारेमें कभी कभी यह प्रश्न अुठा है कि वह विधानमें स्वीकृत हिन्दीका प्रसार करती है या अुससे भिन्न किसी भाषाका? कार्य-समितिका विश्वास है कि समितिकी भाषानीति अितनी स्पष्ट रही है कि अुसके सम्बन्धमें अैसी कोअी शंका अुठनीही नहीं चाहिये। अितना होनेपर भी कार्य-समिति यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि विधानमें नागरी लिपि और हिन्दीका स्वीकार करानेमें समितिका भी कुछ प्रयत्न और हाथ रहा है। *अिसलिये हमारा तो यह कर्तव्य तथा निश्चय है कि हम संविधानकी ३५१ वीं* धाराके अनुरूप हिन्दीका प्रचार करें और केन्द्रीय सरकार तथा राज्यों (States) को भी हिन्दीके प्रचार और प्रसारके कार्यमें सहयोग और सहायता प्रदान करें।

आशा है, राष्ट्रभाषा-प्रचार-कार्यसे सम्बन्धित भाअी-बहनें अपने मनमें किसी प्रकारकी शंकाको स्थान न देंगे और राष्ट्रभाषाके प्रचार-कार्यमें दत्तचित्त और दृढ़ रहेंगे।

---

# ३५ : संघभाषा हिन्दी

['भारतका सविधान' नामक ग्रन्थ हिन्दीमें केन्द्रीय सरकार-द्वारा प्रकाशित हुआ है। अुसमें राजभाषासम्बन्धी भाग १७ वां है और अुसकी ३४३ से ३५१ तक धारायें हैं। ३४३, ३४४, ३५०, ३५१ ये महत्त्वकी धारायें (पृष्ठ २०० से २०५ तक) तथा अष्टम अनुसूची यहाँ दी गयी हैं।]

अध्याय १ :—संघकी भाषा

३४३ (१) संघकी राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। संघके राजकीय प्रयोजनोंके लिये होनेवाले अंकोंका रूप भारतीय अंकोंका आन्तरराष्ट्रीय रूप होगा।

(२) खंड (१) से किसी बातके होते हुयेभी अिस संविधानके प्रारम्भसे पन्द्रह वर्षकी कालावधिके लिये संघके अुन सब राजकीय प्रयोजनके लिये अंग्रेजी भाषा प्रयोग की जाती रहेगी, जिनके लिये अैसे प्रारम्भके ठीक पहले वह प्रयोग की जाती थी।

परन्तु राष्ट्रपति अुक्त कालावधिमें, आदेश-द्वारा संघके राजकीय प्रयोजनोंमेंसे किसीके लिये अंग्रेजी भाषाका तथा भारतीय अकोंके आन्तर-राष्ट्रीय रूपके साथ-साथ देवनागरी रूपका प्रयोग प्राधिकृत कर सकेगा।

(३) अिस अनुच्छेदमें किसी बातके होते हुअेभी संसद अुक्त पन्द्रह सालकी कालावधिके पश्चात् विधि-द्वारा :—

(क) अंग्रेजी भाषाका, अथवा

(ख) अंकोंके देवनागरी रूपका,

अैसे प्रयोजनोंकेलिये प्रयोग अुपबन्धित कर सकेगी जैसेकि अैसी विधिमें अुल्लिखित हो।

३४४ (१) राष्ट्रपति, अिस संविधानके प्रारम्भसे पांच वर्षकी समाप्तिपर तथा प्रारम्भसे दस वर्षकी समाप्तिपर, आदेश-द्वारा अेक आयोग गठित करेगा जो अेक सभापति और अष्टम अनुसूचीमें अुल्लिखित भिन्नभाषाओंका प्रतिनिधित्व करनेवाले अैसे अन्य सदस्योंसे मिलकर बनेगा जैसेकि राष्ट्रपति नियुक्त करे तथा आयोग-द्वारा अनुसरण की जानेवाली प्रक्रियाभी आदेश परिभाषित करेगा।

(२) राष्ट्रपतिको

(क) सघके राजकीय प्रयोजनोंके लिये हिन्दी भाषाके अुत्तरोत्तर अधिक प्रयोगके,

(ख) सघके राजकीय प्रयोजनोंमेंसे सब या किसीके लिये अग्रेजी भाषाके प्रयोगपर निबधनोंके,

(ग) अनुच्छेद ३४८ मे वर्णित प्रयोजनोंमेंसे सब या किसीके लिये प्रयोग किये जानेवाले अकोके रूपके;

(घ) सघके किसी अेक या अधिक अुल्लिखित प्रयोजनोंके लिये प्रयोग किये जानेवाले अकोके रूपके,

(ङ) सघकी राजभाषा तथा सघ और किसी राज्यके बीच अथवा अेक राज्य और दूसरे राज्यके बीच ससारकी भाषा तथा अुनके प्रयोगके बारेमें सिफारिश करनेका आयोगका कर्तव्य होगा।

(३) खड (२) के अधीन अपनी सिफारिशें करनेमें आयोग भारतकी औद्योगिक, सास्कृतिक और वैज्ञानिक अुन्नतिका तथा लोक-सेवाओके बारेमें अहिन्दी भाषा भाषी क्षेत्रोंके लोगोंके न्यायपूर्ण दावों और हितोका सम्यक् ध्यान रखेगा।

(४) तीस सदस्योकी अेक समिति गठित की जावेगी जिनमेंसे बीस लोकसभाके सदस्य होंगे तथा दस राज्य परिषदके सदस्य होंगे जो क्रमश लोकसभाके सदस्यो तथा राज्य परिषदके सदस्यों द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व पद्धतिके अनुसार अेकल सक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित होगें।

(५) खड (१) के अधीन गठित आयोगकी सिफारिशोकी परीक्षा करना तथा अुनपर अपनी रायका प्रतिवेदन राष्ट्रपतिको करना समितिका कर्तव्य होगा।

(६) अनुच्छेद ३४३ में किसी बातके होते हुअेभी राष्ट्रपति खड (५) मे निर्दिष्ट प्रतिवेदनपर विचार करनेके पश्चात् अुस सारे प्रतिवेदनके किसी भागके अनुसार निदेश निकाल सकेगा

## अध्याय ४ .—विशेष निदेश

३५० किसी व्यथाके निवारणके लिये सघ या राज्यके किसी पदाधिकारी या प्राधिकारीको यथास्थिति सघमें या राज्यमें प्रयोग होनेवाली किसी भाषामें अभिवेदन देनेका प्रत्येक व्यक्तिको हक होगा।

३५१ हिन्दी भाषाकी प्रसार-वृद्धि करना, अुसका विकास करना, ताकि वह भारतकी सामाजिक सस्कृतिके सब तत्त्वोकी अभिव्यक्तिका माध्यम हो सके, तथा अुसकी आत्मीयतामें हस्तक्षेप किये बिना हिदुस्तानी और अष्टम अनुसूचीमें

अुल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओंके रूप, शैली, पदावलीको आत्मसात् करते हुअे तया जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो, वहाँ अुसके शब्द-भाण्डारके लिये मुख्यत: संस्कृतसे तया गौणत: वैसी अुल्लिखित भाषाओंसे शब्द ग्रहण करते हुअे अुसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघका कर्तव्य होगा।

अष्टम अनुसूची

भाषाअें

( अनुच्छेद ३४४ (१) और ३५१ के संबंधमें )

असमिया, अुड़िया, अुर्दू, कन्नड़, कश्मीरी, गुजराती, तामिल, तेलुगू, पंजाबी, बंगला, मराठी, मलयालम, संस्कृत, हिन्दी

## ३६ : राजभाषा-सम्बन्धी संसदीय समितिकी सिफारिशोंपर राष्ट्रपतिका निर्णय

(१) भारतीय संविधानमें राजभाषाके सम्बन्धमें अेक पूर्ण योजना है, जिसमें अिस समस्याके प्रति लचीला दृष्टिकोण रखा गया है। अुस योजनाके ढाँचेके अन्दर रहते हुअे अुसमें आवश्यक परिवर्तनभी किये जा सकते हैं।

(२) विभिन्न राज्योंमें शिक्षाके माध्यम तथा सरकारी कामके लिये अंग्रेजीकी जगह प्रादेशिक भाषाओंका प्रयोग तेजीसे बढ़ रहा है। यह स्वाभाविक है कि प्रादेशिक भाषाअें अपना अुचित स्थान प्राप्त करें; अिसलिये केन्द्रीय सरकारमें किसी भारतीय भाषाका प्रयोग करना अेक व्यावहारिक आवश्यकता हो गयी है; परन्तु अिस परिवर्तनके लिये कोअी निश्चित तिथि रखनेकी आवश्यकता नहीं। परिवर्तन बिलकुल स्वाभाविक होना चाहिये और कुछ समयमें धीरे-धीरे अिस प्रकार होना चाहिये कि लोगोंको कम-से-कम असुविधा हो।

(३) १९६५ तक अंग्रेजी मुख्य राजभाषा रहेगी और हिन्दी गौण राजभाषा रहेगी। १९६५के बाद जब हिन्दी केन्द्रकी मुख्य राजभाषा बन जायेगी तो अंग्रेजी एक गौण राजभाषाके रूपमें जारी रहेगी।

(४) अिस समय केन्द्रीय सरकारके किसीभी कामके लिये अंग्रेजीके प्रयोग-पर कोअी रुकावट नहीं होनी चाहिये और संविधानके अनुच्छेद ३४३ के खंड ३ के अनुसार अैसी व्यवस्था होनी चाहिये कि संसद-द्वारा स्वीकृत कानूनके अनुसार निर्धारित कामोंके लिये, जबतक आवश्यक हो, अंग्रेजीका प्रयोग जारी रहे।

(५) सघानके अनुच्छेद ३५१ की अिस व्यवस्थाका बडा महत्त्व है, कि हिन्दीका विकास अिस प्रकार होना चाहिये कि वह भारतकी सयुक्त सस्कृतिके सभी तत्त्वोको प्रकट करनेका सावन बन सके। हर तरहसे अिस बातको प्रोत्साहन देना चाहिये कि सरल और सादे शब्दोंका प्रयोग किया जाय।

शब्दावली

समितिने राजभाषा-आयोगकी जो सिफारिशें मुख्यत स्वीकार की, वे ये हैं :— (१) शब्दावली तैयार करनेमें अिस बातका ध्यान रखना चाहिये कि शब्द स्पष्ट, सुनिश्चित और सरल हो, (२) जहाँ कहीं अुचित हो, अन्तर्राष्ट्रीय शब्द स्वीकार करने चाहिये, (३) नयी शब्दावली तैयार करनेमें जहांतक सभव हो, समस्त भारतीय भाषाओमें अेकरूपता रखनी चाहिये और (४) हिन्दी और दूसरी भारतीय भाषाओमें नयी शब्दावली तैयार करनेके लिये केन्द्रीय और राज्यसरकारें जो प्रयत्न कर रही हैं, अुनके समीकरणकी व्यवस्था होनी चाहिये। समितिने यहभी कहा है कि विज्ञान और प्राविधिक विज्ञानके सम्बन्धमें जहांतक हो सके, सभी भारतीय भाषाओमें अेकही शब्दावली होनी चाहिये और वह अग्रेजी या अतर्राष्ट्रीय शब्दोसे जहांतक हो, मिलती जुलती होनी चाहिये। समितिने सिफारिश की है कि वैज्ञानिको और प्राविधिकोका अेक स्थायी आयोग नियुक्त किया जाना चाहिये जो शब्दावली तैयार करनेके विभिन्न प्रयत्नोका समीकरण करे और समस्त भारतीय भाषाओमें प्रयोग करनेके लिये अधिकृत शब्दावलियां जारी करे।

अक

जैसा कि समितिने कहा है कि केन्द्रीय मत्रालयोके हिन्दी-प्रकाशनोमें विषय और पाठकोके अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय अकोके अलावा देवनागरी अकोंके व्यवहारके बारेमें अेक-सी बुनियादी नीति होनी चाहिये। अस्तु, वैज्ञानिक, टैकनिकल और अकसम्बन्धी प्रकाशनोमें, जिसमें केन्द्रीय बजट साहित्यभी शामिल है, सर्वत्र अन्तर्राष्ट्रीय अकोकाही व्यवहार होना चाहिये।

अधिनियमो और विधेयकोकी भाषा

(क) समितिने राय दी है कि ससदके कानून अग्रेजीमे बनाये जाते रहें, परतु अुनका हिन्दीमें अधिकृत अनुवाद भी किया जाना चाहिये।

विधि-मत्रालय यथा समय ससदमें स्वीकृत कानूनोका अधिकृत हिन्दी-अनुवाद प्रस्तुत करनेका प्रबध कर सकता है।

(ख) समितिने यह भी राय दी है कि जिन राज्य-विधान मडलोमें हिन्दीसे किसी भिन्न भाषामें कानून बनाया जाय उसका हिंदी अनुवादभी प्रकाशित किया जाय। अग्रेजी अनुवादके लिये सविधानके अनुच्छेद ३४८ के खड ३ में व्यवस्था है।

यथा-समय राज्योके विधेयको और कानूनो आदिके हिंदी अनुवाद करनेके लिये कानून बनाया जा सकता है।

---

## ३७ : संविधानकी हिन्दी

### –१– 'बम्बओी समिति' की धारणा

[ बम्बओकी हिन्दी-पाठ्यक्रम समितिकी (पोतदार-समितिकी) रिपोर्टमेंसे द्वितीय अध्यायकी अुपक्रमणिका (Addendum to Chapter II पृ. १५-१६) अनुवादित करके यहाँ दी है। इस रिपोर्टका प्रकाशन सन १९४९ में हुआ।

हिन्दीके दो रूपोंके सिद्धान्तको हम नहीं मानते। किन्तु पाठकोंके सामने भिन्न दृष्टिकोण रखनेकी दृष्टिसे रिपोर्टका यह अंश पुस्तकमें संग्रहीत किया गया है। अभ्यासी पाठकोंसे हमारी विनम्र प्रार्थना है कि वे मूल रूपमेंही यह अंश तथा पृष्ठ ४ से १४ तक अिससे सम्बन्धित विचार पढ़ें। यों, इस अनुवादमें हमने मूल अर्थको ठीक रखनेकी यथासाध्य चेष्टा की है,

अिसके अुत्तरमें श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, डॉक्टर सुनीतिकुमार चटर्जी, स्वर्गीय किशोरीलाल मशरूवाला आदिके विचार अिस पुस्तकमें संग्रहीत है। अिसके साथ-साथ भारतीय हिन्दी-परिषद, अिलाहाबादके द्वारा किया गया विवेचन (पृष्ठ १०० से १०२) भी पढ़ा जाय। ]

(१) भारतके संविधानके अनुसार जिसे 'हिन्दी' नामसे समझा जाता है तथा जिसे बम्बओ-प्रदेशकी सरकारके द्वारा स्वीकृत भाषा—जिसे अबतक हिन्दुस्तानी नामसे समझा जाता था; में क्या कोओ परिवर्तन होनेवाला है, यही अब देखना है।

(२) अिस समस्याकी तथा अिससे सम्बन्धित धाराओंकी पूरी जाँच करनेपर हमारा यह निश्चित मत है कि, जिसे अबतक हिन्दुस्तानी कहा जाता था—जिसे आगे चलकर हिन्दी कहा जायगा—अुस भाषाके स्वरूपमें कोओ फर्क नहीं है।

(३) भारतीय संविधानके १७ वे भागमें जिसे "संघराज्यकी भाषा" कहा गया है अुसे अब हम देखें। अिसके बारेमें हमें अत्यन्त निकटतासे धारा ३४३, ३५१ और आठवीं अनुसूचीकी परीक्षा करनी होगी।

(४) धारा ३४३ के अनुसार देवनागरीमें लिखी जानेवाली हिन्दी संघकी राजभाषा होगी।

(५) धारा ३४३, ३५० में हिन्दीका अुपयोग किस तरह किया जायेग अुसके विविध प्रकार, तथा अंग्रेजीका स्थान हिन्दी किस तरह ले लेगी आदि बातोंपर विचार किया गया है। अुससे हमारा कोअी सम्बन्ध नहीं है। अिसलिये अुसका विचार हम नहीं करेंगे।

(६) सबसे महत्त्वपूर्ण धारा ३५१ है, जो भारतकी केन्द्रीय सत्ताको तथा अुसके राज्योको*निदेश देती है कि :—

(अ) हिन्दीके प्रसारको अुच्च स्तरपर बढ़ावा देना।

(ब) अुसका विकास अिस प्रकार करना जिससे भारतके पृथक्-पृथक् भागोंकी संमिश्रित संस्कृति अभिव्यक्त करनेका माध्यम वह बन सके। और

(स) अुसकी संपदा बढ़ानेके लिये। (i) अुसकी आत्मीयतामें हस्तक्षेप किये बिना हिन्दुस्तानी और अष्टम अनुसूचीमें अुल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओंके रूप, शैली और पदावलीको आत्मसात् करते हुअे, (ii) जहाँ आवश्यक या वांछनीय हो वहाँ अुसके शब्द-भाण्डारके लिये मुख्यतः संस्कृतसे तथा गौणतः वैसी अुल्लिखित भाषाओंसे शब्द ग्रहण करना।

(७) अिससे यह स्पष्ट होता है कि भारतका संविधान यह स्वीकार करता है कि:—

(i) संविधानमें अुल्लिखित हिन्दीको अभी बनना है तथा विकसित होना है; वह कोअी अंग्रेजी-जैसी तैयार भाषा नहीं है, जो अंग्रेजीका स्थान ले ले। अिसीलिये १५ वर्षोंका समय भारतीय संविधानमें निश्चित किया गया है।

(ii) अिसकी समृद्धिका विधान सुनिश्चित किया गया है कि भारतके सब प्रकारके भाव, तत्त्व तथा सम्मिश्रित संस्कृति आदि व्यक्त करनेका माध्यम वह हो; अर्थात् हमारे देशके संमिश्र जीवन और संस्कृतिके सभी अंगोंका अुसमें समावेश हो और किसीका भी बहिष्कार न हो।

(iii) और आत्मसात् करनेका कार्य हिन्दुस्तानी तथा अष्टम अनुसूचीमें अुल्लिखित भाषाओंके रूप, शैली और पदावलीसे होगा।

(iv) शब्द-कोष तथा शब्द-सम्पदा, जहाँ आवश्यक और वांछनीय हो वहाँ मुख्यतः संस्कृतसे और गौणतः वैसी अुल्लिखित भाषाओंसे, ग्रहण की जाये —जिसका मतलब केवल भारतीय भाषाओंसेही नहीं है, तो यह शब्दग्रहण अितना व्यापक और अुदार होना चाहिये कि जितना व्यापक और अुदार भारतवर्षका अितिहास और भारतीय संस्कृति है। इस तरह किसी भाषापर कोई रोक नई लगायी गई है।

* धारामें केवल संघ-सरकारकाही अुल्लेख है, राज्यका अुल्लेख नहीं।

(८) अष्टम अनुसूचीमें १४ भाषाओंके नाम हैं। ये सब भाषायें तथा हिन्दुस्तानी मिलकर कुल पन्द्रह भाषायें होती हैं। अिस खजानेसे रूप, शैली, पदावली आदि लेकर हिन्दीको समृद्धि करनी है। अिन पन्द्रह भाषाओंके नाम देकर आजके भारतीय भाषाओंका मानचित्र, अिस निश्चित हेतुसे खडा किया गया है, कि अिनकी सहायतासे हिन्दीका विकास किया जाय, जिससे वह हमारी सार्वभारतीय मिश्रित संस्कृति और जीवन आदिकी अभिव्यक्तिका माध्यम बने।

(९) अब हमें यह देखना है कि ये पन्द्रह भाषायें कौन-सी हैं? "हिन्दुस्तानी" अुनमेंसे अेक है। यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि अुसे अष्टम अनुसूचीमें अुल्लिखित भाषाओंमें स्थान नहीं मिला है। अिससे यह बात भली भाँति स्पष्ट है कि "हिन्दुस्तानी"* शब्द अुस राष्ट्रभाषाका वाची है जो पहलेसेही सारे भारतमें अिस नामसे पहचानी जाती थी तथा जिसे बम्बअी सरकारने अुसी नामसे संविधान बननेके पहले मान्य किया था। जैसे कि हमें मालूम है कि हिन्दुस्तानीको हमारे राष्ट्र लोगोंकी राष्ट्रभाषा बनाना है तथा अुसे अभी विकसित होना है। धारा ३५१ हमारे अितिहासके अिस सत्य बातको स्पष्ट रूपसे मान्यता देती है और नागरी लिपिमें लिखी हिन्दी या हिन्दुस्तानीके प्रसार और वृद्धि का आदेश देती है। अिस तरह यह स्पष्ट है कि भाषाके बारेमें अैसा कोअी विशेष परिवर्तन♁ हमारी नजरमें नहीं हुआ है।

(१०) अब हम अष्टम अनुसूचीकी चौदह भाषाओंकी ओर देखेंगे।

(११) भारतकी सभी बडी-बडी साहित्यिक भाषायें हमारे पूर्वजों-द्वारा हमे दी हुअी अैतिहासिक व सांस्कृतिक विरासत हैं जिनपर हमें बडा गर्व है। संस्कृतको छोडकर¶ अन्य सभी भाषायें अुनके विभिन्न प्रदेशोंमें जो भारतके गणराज्यमें हैं वहाँ बोली और लिखी जाती हैं तथा कहीं-कहीं वे अलग अलग भागोंमें कम या अधिक रूपोंमें प्रचलित हैं। अिसलिये अुनको कभी-कभी प्रादेशिक भाषाओंके नामसे भी पहचाना जाता है। अष्टम अनुसूचीमें अुल्लिखित हिन्दी कौन-सी हिन्दी है? क्या यह संविधानमें अुल्लिखित वही हिन्दी है जिसका नाम धारा ३४१ या संविधानके १७ वे भागमें आया है? या अष्टम अनुसूचीमें अुल्लिखित हिन्दी कोअी अन्य भाषा है?

---

*पढिये श्री. घनश्यामसिंह गुप्तका अुत्तर—पृष्ठ ८६ ♁किन्तु यह हिन्दी अब फारसी लिपिमे नही लिखी जायगी! क्या यह परिवर्तन 'विशेष' नही है? ¶ और अुर्दू किस प्रदेशकी भाषा है? —सम्पादक

(१२) हमें यह ध्यानमें रखना चाहिये कि भारतीय संविधानकी ३५१ धारा हमें यह निदेश देती है कि हमारे लोगोंको हिन्दी भाषाकी प्रसारवृद्धि करना, अुसका विकास (अुसकी आत्मीयतामें हस्तक्षेप किये बिना) अष्टम अनुसूचीमें अुल्लिखित अन्य भारतीय भाषाओंके रूप, शैली और पदावलीको आत्मसात् करते हुअे करना है। ध्यान रहे कि अिन अुल्लिखित भाषाओंमेंसे हिन्दी भी अेक है। जिसका मतलब यह हुआ कि "हिन्दी भाषाकी प्रसार-वृद्धि और समृद्धि 'हिन्दी'के द्वारा करनी है। जबतक कि 'हिन्दी' यह शब्द अिस सदर्भमें दो विभिन्न अर्थ नहीं बतलाता है तबतक ३५१ धाराके निदेशका कोअी अर्थ नहीं है। किन्तु प्रत्यक्ष रूपसे अैसा नहीं है, न अैसा हो सकता है। हम देखते हैं कि हिन्दीका नाम बगाली, गुजराती, मराठी, कानड़ी, आदि भाषाओंके साथ है। अिसका अर्थ यह है कि यह हिन्दी अष्टम अनुसूचीमें अुल्लिखित अन्य भाषाओंके दर्जेकी है, तथा जिसे कुछ विद्वानोंने "अुच्च हिन्दी" कहा है और जो गत सौ वर्षोंमें सस्कृतसे पुष्ट होकर बनी वह साहित्यिक हिन्दी है जो अुत्तर-प्रदेशकी प्रादेशिक भाषा है।

(१३) अुसी प्रकारसे हिन्दीके साथ अष्टम अनुसूचीमें अुल्लिखित अुर्दू भी अुच्च दर्जेकी अुर्दू है, जो फ़ारसी-अरबीसे पुष्ट होकर गत सौ वर्षोंमें साहित्यिक रूप धारण कर चुकी है।

(१४) अतः हमारे कहनेका सारांश यह है कि बम्बअी सरकारकी अपनी पाठशालाओंमें जिस हिन्दीको पढ़ाना है अुसके स्वरूपके संबंधमें कोअी परिवर्तन नहीं करना है। यह हिन्दी अुत्तर-प्रदेशकी या अष्टम अनुसूचीमें अुल्लिखित हिन्दी* नहीं है। राजभाषा हिन्दीके विकासमें अिस हिन्दीकी सहायता निस्संदेह रूपसे होगी; किन्तु यह हिन्दी सविधानके हिन्दीके दर्जेकी हिन्दी नहीं है, तथा अिसे सविधानकी हिन्दी भी नहीं मानना चाहिये। सब लोगोंके द्वारा विविध तरहसे समृद्ध तथा अुनके समिश्र जीवन और संस्कृतिके वाहन और प्रकाशनके द्योतनके परिणाम-स्वरूप यह हिन्दी विकसित होगी। सघ-राज्यके स्कूलोंमें यही हिन्दी पढ़ानी है।

---

* देखिये डॉ चतर्जीका अुत्तर १३३ पृष्ठपर।

## -२- संविधानकी 'हिन्दी' प्रादेशिक हिन्दीही है ।

[ श्री. सुनीतिकुमार चतर्जी भाषा-विज्ञानके आन्तर-राष्ट्रीय कीर्ति-प्राप्त विद्वान् हैं। डॉ. सुनीतिकुमारजीके वचनोंका आधार लेकर बम्बअी-समितिने अपना सिद्धान्त स्पष्ट करनेकी कोशिश की है। श्री. चतर्जीका कहना है कि अुनके विचारोंको समिति ठीक तरहसे नहीं समझ सकी। भाषाके दो रूपोंका सिद्धान्त भी अुन्हें मान्य नहीं है। अुन्होंने अिसके सम्बन्धमें अंग्रेजीमें वंग-राष्ट्र-भाषा-प्रचार-समितिके पास जो पत्र लिखा था अुसका अनुवाद यहाँ दिया है।]

### बाजारू हिन्दी क्या है ?

बम्बअी-सरकारके द्वारा नियुक्त हिन्दी पाठ्‌क्रम समितिकी रिपोर्ट मैंने पढ़ी। अिस समितिने हिन्दीको प्रकृति अेवम् स्वरूपके बारेमें मेरे द्वारा प्रकाशित कुछ पुस्तकोंके मतोंको लेकर मुझे सम्मानित किया है। किन्तु अैसा प्रतीत होता है कि मेरे मतोंको समझनेमें तथा अिस समस्याकी विशद रूपसे अधिक लम्बी चर्चा करते हुअेभी समितिके सदस्य कअी स्थानोंपर अपने कथनमें स्पष्ट नहीं हो सके हैं। अुदाहरणार्थ, यद्यपि मैंने "बाजारू हिन्दीके" स्वरूपको बतलानेकी चेष्टा की है, ( या जिसे मैंने चालू या, "चलतू-हिन्दी" या "लघु हिन्दी" या "बेसिक हिन्दी" कहा है।) और जिसको राष्ट्रभाषा माना है, मुझे यह कहना पड़ता है कि हिन्दी-क्षेत्रके बहुसंख्यक लोग अुसका अुस रूपमें स्वीकार नहीं करते तथा हिन्दीतर-भाषी लोग ( जब किसी भाषाको अुन्हें सीखनाही है तो। ) अैसी अव्याकरणीय बाजारू भाषाके बदले व्याकरणशुद्ध हिन्दीकाही अध्ययन करना पसंद करते हैं। प्रादेशिक हिन्दी और संघभाषा हिन्दी या राष्ट्रभाषा हिन्दीको भिन्न बताते हुअे बम्बअी-समितिने अुसकी भिन्नतापर प्रकाश नहीं डाला है, और वह केवल "शब्द-संग्रह" की ओर ध्यान देती-सी जान पड़ती है। जैसे हम बाजारू हिन्दी (पूर्वी भारतकी, बंगालसहित) में अेकवचन या अनेकवचनका फर्क नहीं करते हैं, तथा कर्मणि प्रयोगका अुपयोग नहीं करते हैं; या भूतकालके वाक्योंमें सकर्मक कर्मणिका प्रयोग नहीं करते हैं। जैसे :—हम कहते हैं कि 'हम राजा देखा', 'मैंने रानी देखी' या रानीको देखा।' हम, "मैंने राजा देखा," मैंने रानी देखी' अैसा प्रयोग नहीं करते हैं। समितिने अिस मूलभूत व्याकरणके फर्कपर या आसानीपर कोअी विचार प्रकट नहीं किया है।

### जब व्याकरण भिन्न नहीं, तो भाषा भिन्न कैसे ?

प्रचलित परिस्थितिमें, और जबतक सरकार या कोअी अधिकृत संस्था "राष्ट्रभाषा हिन्दी" का—जिसे मित समितिने 'प्रादेशिक हिन्दीसे' विभिन्न कहा है, अुसका—व्याकरण निश्चित नहीं करती तबतक मेरी दृष्टिसे दोनों हिन्दी भाषाअें व्यवहारमें अेकही हैं। क्योंकि समान व्याकरण, समान शब्द, पारिभाषिक शब्दा-

यली आदिके लिये संस्कृतको अपनानेकी समान प्रवृत्तिके कारण तथाकथित 'प्रादेशिक हिन्दी' और बम्बओ-समितिकी 'राष्ट्रभाषा हिन्दी' अेकही है। वस्तुतः यही अुच्च हिन्दी या नागरी हिन्दी है और यही भारतकी सभी भाषाओंकी प्रकृतिकी तरह तथा आर्य, द्राविड, मुंडा, आस्ट्रिक, नवारी, मणिपुरी आदिकी तरह अुच्च सांस्कृतिक शब्दोंकी निर्मितिके लिये संस्कृतका आधार ढूंढती है। लिपिकी दृष्टिसे तो विधानने "प्रादेशिक हिन्दी" के समान जिसी 'राष्ट्र-भाषाके' लिये भी देवनागरी लिपिका स्वीकार किया है (यद्यपि व्यक्तिगत रूपसे वैकल्पिक रीतिसे मैं रोमन लिपिका स्वीकार पसंद करता हूँ।)

मेरी बेसिक हिन्दीकी कल्पना अिस प्रकारकी है।

(१) भारतीय (Bharatiya),

(२) आधुनिक (Adhunik) या आजकलकी याने नयी

(३) संस्कृतमूलक (Sanskrit-mulak) या संस्कृतपर आधारित,

(४) अिस्लामी (Islami) या अिस्लामी धर्म तथा संस्कृतके लिअे अरबी-फारसीके शब्द लेनेवाली, और

(५) चलतू (Chaltu) या चालू याने प्रचलित।

अिन हिन्दी शब्दोंके आरंभिक अंग्रेजी आद्याक्षरोंसे मेरी 'बेसिक' (Basic) हिन्दीकी कल्पना पूर्ण हो जाती है।

यह भाषा देवनागरी लिपिमेंही लिखी जायगी। अुर्दू भाषा जिस फारसी-अरबी लिपिमें लिखी जाती है अुसमें यह नहीं लिखी जावेगी (हाँ, मैं अिस विशाल हिन्दीको रोमन लिपिमें लिखनेके पक्षमें हूँ।) यदि व्याकरणकी दृष्टिसे—अनेक वचनमें संज्ञाओंके रूपोंमें, विभक्ति, प्रत्यय आदिका विशेषणों तथा क्रियाओंमेंभी लिंगकी दृष्टिसे कोअी परिवर्तन नहीं करना है (जैसे, अैसा कहना कि 'अच्छा बात,' 'नया पुस्तक,' और अैसा न कहना? कि 'अच्छी बात,' नयी पुस्तक,' तथा भूतकालमें सकर्मक क्रियाके कर्मणि प्रयोगका त्याग करना अित्यादि) तो अिस राष्ट्रभाषा हिन्दीको—जैसा कि बम्बओ-समितिने चाहा है—प्रादेशिक हिन्दीसे अलग नहीं कहा जा सकता।

## विधानकी हिन्दी प्रादेशिक हिन्दीही है।

अतः मेरी धारणा यही है कि प्रादेशिक हिन्दी और राष्ट्रभाषा हिन्दीके तथाकथित विभेदपर जोर देनेवाला कोअी अुपाय यदि आज अमलमें लाया जाय, जब कि व्याकरणकी आसानीके अतिरिक्त बाजारू हिन्दी और अिसमेंभी अंतर नहीं है, और जब यह व्याकरणकी आसानीकाभी सुझाव बम्बओ-समिति-द्वारा नहीं दिया गया है तो (अैसा अुपाय अमलमें लानेसे) राष्ट्र-भाषाको क्षति पहुँचेगी। मेरा निश्चित मत है कि विधानमें अुल्लिखित हिन्दी प्रादेशिक हिंदीही है।

### राष्ट्र-भाषा-प्रचार-समितिका कार्य राष्ट्रीय-कार्य है।

जबतक केन्द्रीय सत्ताकी ओरसे कोओ विशेष अधिकृत समिति राष्ट्रभाषाके व्याकरणमें परिवर्तन के लिये नियुक्त नहीं की जाती, और जबतक अुसके द्वारा व्याकरण आसान करनेकी सिफारिश नहीं की जाती तबतक अिस तरह भेद करनेका कोओ प्रश्नही नहीं अुठता।

मैं सोचता हूँ कि विभिन्न भारतीय राज्योंमें राष्ट्रभाषाका कार्य करनेवाली संस्थाअें जो राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति-वर्धासे सम्बद्ध हैं, या हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन अलाहाबादसे सम्बद्ध हैं, वे हिन्दीके प्रचारका कार्य राष्ट्रीय दृष्टिसे कर रही हैं। जो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, और अुनका कार्य राष्ट्रीय अेकताका ठोस कार्य है, अैसी मान्यता अुन्हें दी जाकर प्रोत्साहित किया जाना चाहिये। हमें अिस विषयपर बहुत स्पष्ट होना चाहिये।

### मन 'आधुनिक' बनाया जाय।

मेरी दृष्टिमें अेक बात अवश्य आ रही है कि केवल शब्दोंसे और पारिभाषिक शब्दावलीके संग्रहसे भाषाका आधुनिकीकरण नहीं हो सकता। अिसके लिये चाहिये कि जो अिस भाषाका अुपयोग करते हैं अुनके मनमें तार्किकता, नागरिकता तथा सार्वदेशिकता और प्रगतिशीलताका प्रवेश हो, अुसका मन किसी पन्थ, पक्ष, जाति या संप्रदायका पूर्वाग्रह लेकर अदूर-दृष्टिसे न देखकर सब बातोंको अुनके स्वाभाविक रूपमें देखनेके लिये अुत्सुक रहे। लोगोंके मनको आधुनिक बनाते समय अंग्रेजीका संपर्क टालनेसे हमारा हित नहीं होगा। अितनाही नहीं तो, हमारा यह कार्य हमारेही मार्गमें विलंब और रुकावटें खडी करेगा।

### हिन्दी भाषी और अेक 'भारतीय' भाषा पढ़ें।

सबसे कठिन समस्या है राष्ट्रभाषा हिन्दी और प्रान्तीय भाषाओंका परस्पर सम्बन्ध क्या हो? वे भाषाअें बंगाली, असमिया, अुडिया, मराठी, तेलुगु, तामिल आदि हैं। मैं सोचता हूँ कि हिन्दी भाषी लोगोंपर यह एक बड़ा भारी अुत्तरदायित्व है। यदि हिन्दीतर लोगोंको हिन्दी अनिवार्य-रूपसे पढ़नी पड़ेगी तो हिन्दी भाषियोंको भारतीय भाषाओंमेंसे कोओ अेक भाषा अनिवार्यरूपसे अध्ययन करनी चाहिये। अिस प्रकार हिन्दीका विरोध अपने आपही नष्ट होगा और हिन्दी भाषाभी सत्य रूपसे भारतकी प्रातिनिधिक भाषा होगी।

भारतके पार्लियामेंटमें हिन्दीको भारतकी संघभाषा बनानेकी धारा निश्चित करनेके पहले जो परिषद देहलीमें हुओ थी अुसमें सिद्धान्तके तौरपर यह बात मानी गयी थी।

पेन्सिल्वानिया युनिव्हर्सिटी
जनवरी १९५२

—सुनीतिकुमार चतर्जी

## –३– भारत-सरकार की नीति

### हिन्दीके विशिष्ट रूपका आग्रह नहीं।

लोकसभामें श्री अेन् अेल्. द्विवेदीके अेक प्रश्नके अुत्तरमें शिक्षामंत्रीने कहा, कि जहाँतक "राष्ट्रभाषाके विभिन्न रूपों" का प्रश्न है, केन्द्रीय सरकारके लिये सारे देशपर किसी खास किस्मकी भाषा लादना सम्भव नहीं है, और अिस समस्याको समयपर तथा भाषाके विकास-सम्बन्धी नियमोंपरही छोड देना चाहिये। सरकार केवल यही कर सकती है कि अुसके प्रकाशनो आदिमें जो राष्ट्रभाषा प्रयुक्त हो, वह संविधानमें दी हुआी अुसकी परिभाषाके अनुकूल चाहिये।"

[ "राष्ट्रभाषा' के वर्ष ११ संख्या ९ सन १९५२ से अुद्धृत ]

---

## ३८ : राजभाषा-आयोग : "संघराज्यकी भाषा हिंदीही"

[ भारत-सरकारने-स्व. ब. ग. खेरजीकी अध्यक्षतामें राजभाषा-आयोग जून १९५५ में नियुक्त किया था। १२ अगस्त १९५७ को आयोगकी सिफारिशें प्रकट की गयी हैं जिनमेंसे प्रमुख सिफारिशें इस प्रकार हैं। ]

### १. संविधानकी पुष्टि

भारतीय संघकी राजभाषा देवनागरी लिपिमें लिखी जानेवाली हिन्दीही हो सकती है; किन्तु १९६५ तक अंग्रेजीके स्थानमें हिन्दीको लागू करना व्यावहारिक हो सकेगा अथवा नहीं, अिसके बारेमें आयोगने अपनी ओरसे कुछ घोषित करना आवश्यक नहीं माना है। अंग्रेजीके स्थानपर हिन्दीको सरकारी कामकाजके लिये लागू करना अिस दिशामें किये गये प्रयत्नोंपर ही निर्भर करेगा।

प्रशासनके संचालनार्थ सम्प्रति अंग्रेजीके अुपयोगपर कोअी प्रतिबन्ध लागू नहीं किया जाना चाहिये; किन्तु कालान्तरमें भारतीय संघकी रेल्वे जैसी अेजेन्सियोंको दो भाषाओंका प्रयोग करना अनिवार्य हो जायगा। अिनमें अेक भाषा होगी हिन्दी और दूसरी क्षेत्रीय भाषा।

### २. भारतीय भाषाओंके लिये देवनागरी

अन्य भारतीय भाषाओंके लिये देवनागरी लिपिका प्रयोग वैकल्पिक करना चाहिये। क्योंकि अैसा करनेसे विभिन्न भारतीय भाषाअें अेक दूसरेके निकट आ सकेंगी।

## ३. सर्वोच्च न्यायालयके लिये केवल हिन्दी

अन्तत संसद अेव राज्य-विधान सभाओं तथा सर्वोच्च न्यायालयको केवल हिन्दीमें ही कार्य संचालन करना होगा। देशके लिये सम्पूर्ण विधि पुस्तिकाकी अेक ही भाषा अर्थात् हिन्दीमेंही संकलित करनेका कार्य ,सरकारको करना चाहिये।

निम्न न्यायालय क्षेत्रीय भाषाओंमेंही अपना कार्य चला सकेगा, किन्तु हाओकोर्टों (उच्च न्यायालयों) को दो भाषाओंका प्रयोग करना होगा, जिनमें अेक क्षेत्रीय और दूसरी राजभाषा होगी।

## ४. माध्यमिक स्कूलोंमें हिन्दीकी शिक्षा

हिन्दीकी शिक्षा प्राथमिक पाठ्यक्रमके पश्चात् प्रारम्भ कर स्कूल छोड़नेकी कक्षातक दी जा सकती है। सम्पूर्ण और विशेषतया अहिन्दी भाषाभाषी क्षेत्रमें माध्यमिक स्तरपर हिन्दीकी शिक्षाको अनिवार्य विषयके रूपमें लागू किया जाना चाहिये।

## ५. अुच्च शिक्षाका माध्यम हिन्दी

सभी विश्वविद्यालयोंको हिन्दीके माध्यमसे परीक्षाओंकी व्यवस्था करनी चाहिये। फिर, सम्बद्ध करनेवाले सभी विश्वविद्यालयोंके लिये यह आवश्यक हो कि अपने प्रादेशिक क्षेत्राधिकारमें किसी पाठ्यक्रमके लिये हिन्दीके माध्यमसे अध्ययन करनेवाले कालेजों अथवा संस्थाओंको समान नियमोंपर सम्बद्धता प्रदान करे।

वैज्ञानिक तथा तान्त्रिक शैक्षणिक संस्थाओंके मामलेमें जहांपर विभिन्न भाषी क्षेत्रोंके छात्र विद्याध्ययन करते हैं, हिन्दीके समान माध्यमको अपनाना होगा। लेकिन जहांपर केवल अेकभाषी क्षेत्रसेही विद्यार्थी शामिल हो, वहांपर प्रादेशिक भाषा माध्यम होनी चाहिये।

अिस बीच अखिल भारतीय सेवाओंकी प्रतियोगिता परीक्षाओंके लिये अंग्रेजीके स्थानमें वैकल्पिक रूपसे हिन्दीको अिस सम्बन्धमें अुचित सूचना देकर लागू करनेकी सिफारिशभी की गयी है।

अंग्रेजीको तबतक लागू किया जा सकता है जबतक अुसे लागू करना आवश्यक माना जाय और अुसे हटानेसे पूर्व पर्याप्त रूपसे सूचना देनी होगी।

## ६. नयी शब्दावली सरल हो।

नये शब्दोंका निर्माण करते समय आयोगने प्रमुखतया जिन बातोंको ध्यानमें रखनेकी सिफारिश की है वे हैं स्पष्टता, यथार्थता अेव सरल अभिव्यञ्जना।

## ७. अंकोंके रूप

सख्या अंकोंके रूपको लेकर १९६० तककी अवधिके दरमियान जब कि दूसरे राजभाषा-आयोगकी नियुक्ति की जायगी, आयोगने अपनी कोअी सिफारिश नहीं दी है।

## ८. राष्ट्रभाषा-अकादमी

आयोगने सिफारिश की है कि भाषाओंकी अेक राष्ट्रीय अकादमीकी स्थापना की जानी चाहिये। अकादमीका कार्य सघीय अेव क्षेत्रीय भाषाओंका विकास तथा पाठ्य पुस्तकोंका निर्माण करना रहेगा।

## ९. सहमति-सूचक विचार अयथार्थ अेव अप्रमाणिक

अपनी असहमतिमें डॉ चटर्जी तथा डॉ सुब्बारायनने हिन्दीके अुत्तरोत्तर अुपयोगके प्रश्नको सम्प्रति मुल्तवी रखनेकी राय दी है। आपने सुझाया है कि हिन्दीका प्रयोग केन्द्र तथा विभिन्न राज्योंके साथ कहाँतक किया जाना चाहिये, अिस प्रश्नका निर्णय विभिन्न राज्योंपर छोड दिया जाना चाहिये। डॉ चटर्जीके मतानुसार हिन्दीको राजभाषा बनानेका चुनाव जल्दबाजीमें किया गया है। आपके मतानुसार अंग्रेजीको भी विभिन्न भाषाओंके साथ रखा जाना चाहिये। डॉ सुब्बारायनने हिन्दीको अविकसित बताया है और अिसी लिये अंग्रेजीके प्रयोगको आवश्यक माना है।

आयोगके अध्यक्ष स्व बा ग अुपाख्य बाळासाहेब खेरने असहमतिसूचक विचारोंको अयथार्थ अेव अप्रमाणित बताया है।

---

चतुर्थ अध्याय

# राष्ट्रभाषाकी समस्याएँ

## २९ : हिन्दीका महत्त्व और उसकी आवश्यकताएँ

[ भारतीय हिन्दी परिषदका १७ वाँ अधिवेशन दिनांक २८–२९–३० मओ १९६० को दिल्ली में सुसम्पन्न हुआ। उसमें दिये गये सभापति आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ( अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, सागर विश्वविद्यालय) के भाषणका आवश्यक अंश यहाँपर दिया है।

आचार्य नंददुलारेजी वाजपेयी हिन्दी साहित्यके मौलिक चिंतक, अुच्च कोटिके समीक्षक तथा मूर्धन्य विद्वान् हैं। आपके विचारोंका हिन्दीके भविष्यकी दृष्टिसे बहुत महत्त्व है। ]

### (१) सभी विश्वविद्यालयोंमें कुछ पाठ्यक्रम समान तथा कुछ विशेषज्ञताकी भूमिपर चलाये जायँ।

मेरा अनुमान है कि हिन्दी साहित्यका जितना विवरणात्मक अंग है—प्राचीन काव्य, आधुनिक काव्य, गद्य और नाटक, भाषा विज्ञान-सम्बन्धी सामान्य जानकारी, साहित्यिक अितिहास, ये विषय विश्व विद्यालयोंमें समान रहें, परन्तु विशेष अध्ययनकी वस्तुअें—जैसे भारतीय काव्य-शास्त्र, पश्चिमी काव्य सिद्धान्त, आधुनिक या प्राचीन विशेष कवि या काव्यरूप, विशेष विषयोंपर प्रबन्धलेखन आदि—पृथक्-पृथक् स्थानोंपर विशेषज्ञोंद्वारा पढ़ाये जायँ। अिस पद्धतिको अपनानेपर अेम अे के अध्यापन-स्तरमें असंदिग्ध अुन्नति होगी और विद्याके क्षेत्रका सुनिश्चित विस्तार होगा।

### (२) सारा शोध-कार्य अद्यतन साहित्यिक ज्ञान और विचार-पद्धतिके अनुरूप होना चाहिये।

आजसे २५–३० वर्ष पूर्व आचार्य शुक्लने 'हिन्दी साहित्यके अितिहास' में जो साहित्यिक मूल्य और मान स्थिर किये थे तथा भाषा और साहित्यसम्बन्धी जो निष्कर्ष दिये थे, वे अुस समयतककी अन्यतम परिणतियाँ थीं। अिसी बीच हमारी साहित्यिक अभिज्ञता और आगे बढ़ी है। साहित्यिक अितिहास और कला विवेचनाके क्षेत्रमें नयी भूमिकाअें प्रस्तुत की गयी हैं। हमारा आजका साहित्यिक विवेचन अिन अुपलब्धियोंके कारण अधिक वैज्ञानिक हो चला है। समाजशास्त्र और मनोविज्ञानकी नयी जानकारियाँ हमारे साहित्यिक विवेचनको अधिकाधिक प्रभावित कर रही हैं—करनाभी चाहिअे, परन्तु हमारे शोध-प्रयोंमें अनेक बार अिस अधुनातन ज्ञानकी सम्पूर्ण अुपेक्षा दिखाओ पड़ती है। साहित्य शब्द अपनी मूल

परिभाषामेंही 'सहित' या 'समग्रता' का द्योतक है। अतअेव साहित्यिक क्षेत्रमें किसीभी असमग्र वस्तुका आना वाछनीय न होगा। हमारे शोधस्तरके असाहित्यिक और अवनत होनेका अेक मुख्य कारण यहभी है।

## (३) भाषाका प्रश्न

हिन्दी-भिन्न प्रदेशोंमें विश्व-विद्यालयीन अध्यापनका स्तर चाहे जितना अूंचा हो; पर विद्यार्थियोंकी पहुँच कुछ सीमितही रहेगी।

हिन्दी-भाषी और अहिन्दी-भाषी छात्र अेकही स्तरकी भाषा नहीं लिख सकते। यह अन्तर अभी कुछ वर्षोंतक बनाही रहेगा।

अिस विषयमें हमारा सुझाव यह है कि साहित्यके अध्यापनके साथ भाषाके अध्ययनकी व्यवस्था अिन हिन्दी-भिन्न विश्व-विद्यालयोंमें की जाय। अुच्च कक्षाओंमें अध्ययन करनेवाले छात्रोंके लिये हिन्दी अनिवार्य हो। अिसके अतिरिक्त हिन्दी-भिन्न प्रदेशोंके अहिन्दी-भाषी हिन्दी छात्रोंको अुत्तर-भारतके विश्व-विद्यालयोंमे कुछ समयके लिये लाकर रखा जाय। अिसी प्रकार हिन्दी प्रदेशोंके अुच्च स्तरीयछात्र और अध्यापकभी हिन्दी-भिन्न प्रदेशोंके विश्व-विद्यालयोंमें भेजे जायें। अिस आदान-प्रदानसे भाषाके स्तरमे निश्चयही अुन्नति होगी और अेक जटिल समस्याका क्रमिक समाधान मिलेगा।

## (४) हिन्दी भाषामें मिश्रित होनेवाले शब्दो, मुहावरों तथा अन्य प्रयोगोंके संग्रह-त्यागका विधान।

हिन्दी-भिन्न-भाषी हिन्दी भाषामें मिश्रित रूपसे शब्दो, मुहावरों तथा अन्य प्रयोगोंको डालते जा रहे हैं जिनका सहसा बहिष्कार नहीं किया जा सकता; पर अिनकी सीमा तो निर्धारित करनीही होगी। विकासशील भाषाके दो पक्ष होते हैं, अेक नये शब्दों और प्रयोगोंकी अभिवृद्धिका और दूसरा, अुसके नियमन और स्थिरीकरणका। हिन्दी-जैसी विकासशील भाषाके लिये ये दोनोंही पक्ष स्वाभाविक अेव आवश्यक हैं। स्वाभाविक यह है कि भिन्न भिन्न प्रदेशोंमें पृथक्-पृथक् प्रकारके प्रयोग हिन्दीके साथ जुड़ते रहें; और आवश्यक यह है कि समय-समयपर अुन प्रयोगोंकी जाँच की जाय। अुनमें संग्रह-त्यागका विधान किया जाय। अतअेव यदि प्रादेशिक और हिन्दी भाषी साहित्यिकोंके सम्मिलित प्रयत्नसे अैसे शब्दकोषोंका निर्माण किया जाय, जिसमें नये स्वीकृत प्रयोगोंको स्थान देनेके साथ अस्वीकृत प्रयोगोंका निषेधभी किया जाय तो यह हिन्दी-भाषाके विप्रगतिक विकासके लिये अेक आवश्यक कार्य होगा। विधि और निषेधसे सयुक्त यह शब्द-कोष हिन्दीकी वर्तमान स्थितिमें अैतिहासिक महत्वकी वस्तु कहा जायगा। भारतीय हिन्दी-परिषद अिस आवश्यक कार्यके प्रति अपनी तत्परता दिखाअे।

## (५) पारिभाषिक शब्दावली और माध्यम

पारिभाषिक शब्दावली बनती जा रही है। यह काम अेक दिनका नहीं है; निरन्तर निर्माण, परीक्षा और प्रयोगका है। आज कुछ शब्द बन गये हैं जिनका विविध विषयोंके अध्यापनमें प्रयोग हो रहा है। मूल विदेशी शब्द साथ-साथ चल रहे हैं। हमारे शब्दकोषोंमें अुपयोगिता और अुपयुक्तताके प्रमाणित हो जानेपर वे स्थायी रूपसे स्थान पा जाअेंगे। अिनमेंसे बहुतोंका संस्कार और परिष्कार होगा, कुछ छोड़भी दिये जायेंगे और कुछ नवनिर्मितभी होंगे।

हमारे राष्ट्रपतिने बहुत सोच-समझकर यह निर्णय किया कि भिन्न-भिन्न प्रान्तीय भाषाओंको अखिल भारतीय सेवा-निकायोंके लिये माध्यम बनाना अनेक कठिनाअियोंकी सृष्टि करेगा। अतअेव अुन्होंने (संसदीय) अुप-समितिके अिस प्रस्तावको अस्वीकार कर दिया है कि प्रादेशिक भाषाओंको अिन सेवा-निकायोंकी परीक्षामें माध्यम बनानेपर विचार किया जाय। राष्ट्रपतिके विचारमें हिन्दीही क्रमश: अखिल भारतीय माध्यम बना दी जानी चाहिये; यही हम प्रादेशिक शब्दावलीके लिये लागू कर सकते हैं। सारे देशका काम अेकही शब्दावलीसे चल सकता है।

## (६) शिक्षाके माध्यमके लिये समन्वयकी भूमि

अेक मत सभी प्रादेशिक विश्व-विद्यालयोंमें प्रादेशिक भाषाओंको प्रतिष्ठित करनेके पक्षमें है। दूसरा मत अंग्रेजी माध्यमको बदलनेकी जल्दीमें नहीं है। वे अिस पक्षमें हैं कि जबतक हिन्दीमें विभिन्न विषयोंके प्रामाणिक ग्रंथोंकी संख्या पर्याप्त नहीं हो जाती, तबतक अंग्रेजीको माध्यम बना रहने दें। वैकल्पिक रूपमें हिन्दीभी माध्यम बनी रहे। अिन दो मतोंके बीच अेक समन्वयकी भूमिभी दिखाअी देती है। अंग्रेजीको विद्यार्थियोंमें चलाना अब असंभव है। अिस समय तत्कालही प्रादेशिक भाषा अुसका स्थान ले सकती है। पूरी तैयारीके बिनाभी चाहे वह हो या न हो प्रादेशिक भाषाके माध्यमको स्वीकार करनाही पड़ता है। अिस समय हमारे सामने कोअी दूसरा रास्ता नहीं है। हमें विश्व-विद्यालयोंके अुच्च स्तरीय अध्ययनमें प्रादेशिक माध्यम स्वीकार कर लेना होगा। राष्ट्रकी व्यावहारिक माँगें हमपर दबाव डालेंगी, और सम्भव है कुछ समयके अन्तर्गत हम हिन्दीमें पर्याप्त ग्रंथ-प्रणयन भी करलें। वैसे अवसरपर अहिन्दी-भाषी प्रदेश उच्च शिक्षा-स्तरपर हिन्दीको सार्वदेशिक माध्यम बनानेका फैसला कर सकते हैं।

## (७) हिन्दीका केन्द्रीय मंत्रालय तथा हिन्दीकी स्वतंत्र अेकेडेमी हो

राजभाषाके रूपमें राष्ट्रपतिने कतिपय आदेश प्रसारित किये हैं जो हिन्दीके विकास और अुन्नयनके प्रश्नको हल करेंगे। ये आदेश भारतीय संविधानके अनुरूप हैं; पर अिनको कार्यान्वित करनेकी व्यवस्था नहीं है। केन्द्रीय शासनके कुछ अधिकारियोंके वक्तव्य अिस बातका सन्देह अुत्पन्न करते हैं कि अंग्रेजीको वे किसी प्रकार

छोड़ना नहीं चाहते और हिन्दीको अपनी सपत्नी समझते हैं। केन्द्रीय तथा प्रादेशिक शासन सत्ता-द्वारा हिन्दीके विकासकी योजनाअें कार्यान्वित हों अिस लिये आवश्यक है कि राजभाषा हिन्दी-सम्बन्धी सारा कार्य स्वयं राष्ट्रपतिके हाथमें सौंप दिया जाय, अथवा हिन्दीका अेक स्वतंत्र मंत्रालय बनाया जाय जो अिस सम्पूर्ण योजनाको रूप, आकार और गति प्रदान करे। विश्व-विद्यालय अनुदान-आयोग (यू. जी. सी.) की भाँति केन्द्रीय हिन्दी-अनुदान-आयोग निर्माण करना भी आवश्यक जान पड़ता है। मेरा यह भी प्रस्ताव है कि हिन्दीके साहित्यिकों, कवियों और लेखकोंकी स्वतंत्र अेकेडेमी निर्मित की जाय। क्योंकि १४ भाषाओंको साहित्य-अेकेडेमीमें हिन्दीको हिन्दी-भाषी-जनसमुदायकी संख्याका अनुपात नहीं दिया गया है। हमें हिन्दीकी अेक अैसी कर्मठ अेकेडेमीकी आवश्यकता है जो संकल्पवान, साकार और पार्थिव हो और वर्षभरमें कुछ ठोस काम करे।

---

## ४० : हिन्दीके प्रचारक ध्यान दें।

[दिनांक २८ मई १९६० को भारतीय हिन्दी परिषदके सत्रहवें (दिल्ली) अधिवेशनके स्वागताध्यक्ष डॉ. वि. क. रा. व. राव, अुपकुलपति दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा दिये गये स्वागत-भाषणके महत्त्वपूर्ण अंश यहाँ दिये गये हैं।

### (१) हिन्दीके दो स्थान

हिन्दीके अिस देशमें दो स्थान हैं। अेक स्थान यह है कि यह भारतकी मुख्य भाषा है और बहुतसे भारतीय लोगोंकी मातृभाषा है। यही स्थान दूसरी भारतीय भाषाओंकाभी है—अुदाहरणके तौरपर तमिलका तामिलनाडमें, तेलुगुका आंध्रमें, मराठीका महाराष्ट्रमें और कन्नड़का कर्नाटकमें। अिस प्रसंगमें भाषा-ज्ञान, साहित्य-ज्ञान जरूरी चीज है और हिन्दी बोलनेवाले लोगोंका मुख्य काम भाषाज्ञान और साहित्य-ज्ञानका अधिकसे अधिक अर्जन करना है'। अिस कामके लिये तो सभीकी पद्धति अेक-सी है—शिक्षण-यंत्रमें कोअी विशेषता नहीं है। अिसी शिक्षण-यंत्रसे अध्यापक अंग्रेजी लोगोंको पढ़ाते हैं। अिसी शिक्षण-यंत्रसे आप लोग हिन्दी बोलनेवालोंको हिन्दी पढ़ाअेंगे। अिस सम्बन्धमें मुझे कुछ खास बोलनेकी जरूरत नहीं है और हक भी नहीं है। हिन्दीका जो दूसरा स्थान है वह स्थान और किसी भारतीय भाषाका नहीं है। अिस रूपमें हिन्दी देशकी राजभाषा है और राज्य सिर्फ हिन्दी बोलनेवालोंका नहीं है। अिस देशमें बंगाली, तमिल,

आन्ध्र, मराठी और पंजाबी लोग रहते हैं। और हमारे ४० कोटि भारतीय लोगोंमें ५० प्रतिशतसे अधिक लोगोंकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है; लेकिन अुनकी राजभाषा तो हिन्दी है। जिसलिअे आप सब लोग याद रखें कि हिन्दी भाषा सिर्फ़ आपकी सम्पत्ति नहीं है। हम सब हिन्दी न बोलनेवालोंका भी हिन्दी-भाषामें हिस्सा है और वह हमारी भी सम्पत्ति है। जिस मतको तो आप मंजूर करेंगे। अेक सवाल में और पूछना चाहता हूँ कि आप सबने हिन्दीके राजभाषा रूपका विकास करनेके लिये क्या काम किया है? जिस बातको ध्यानमें रखते हुअे कि हिन्दी सिर्फ हिन्दी बोलनेवालोंकी नहीं है; बल्कि अखिल भारतीय लोगोंकी है—जिस महत्त्वपूर्ण तत्त्वको ध्यानमें रखते हुअे क्या आप हिन्दी न बोलनेवालोंको हिन्दी सीखनेके लिये मदद दे रहे हैं? आपने जिन लोगोंके लिअे हिन्दी सीखना कितना सुलभ किया है? आपको मालूम होगा कि दूसरे देशोंमें भाषा-शास्त्र कितना अुन्नत हुआ है। अिंग्लिशमें बेसिक अिंग्लिश होती है और अुसका सीखना-सिखाना कठिन नहीं है। भाषण करने, और भाषण पढ़नेके लिये मुझे मालूम नहीं कि क्या आप लोगोंने कुछ स्टॅन्डर्ड बेसिक हिन्दी बनाओ है? क्या आपने जिस चीजपर पूर्ण विचार किया है और यदि किया है तो क्या जिसमें दूसरी भारतीय भाषाओंके विशेषज्ञों और भाषा-शास्त्र विशेषज्ञोंकी मदद ली है? मेरे विचारमें तो यह विश्व-विद्यालयमें हिन्दी पढ़ानेवालोंका प्रथम कर्तव्य है।

## (२) हिन्दी पढ़ानेवाले अध्यापक अेक या दो अन्य भाषाओंका ज्ञान अर्जित करें।

जिस सम्बन्धमें मैं और अेक-दो विषयभी आपके सामने रखूंगा। अेक तो लिपिके विषयमें है। मुझे नहीं मालूम कि किस कारणसे हिन्दी और नागरी लिपिमें थोड़ा फ़र्क हो गया है। मराठी लिपि शुद्ध नागरी लिपि है। हिन्दी लिपिमें तीन-चार व्यंजन हैं—अिन व्यंजनोंके नागरी लिपिसे अलग होनेसे हिन्दी न बोलनेवालोंको हिन्दी पढ़नेमें तकलीफ़ होती है। अखिल भारतमें संस्कृतकी छाया है। हम हिन्दी न जाननेवाले बहुतसे लोग संस्कृत जानते हैं और हमें देवनागरी लिपिमें पढ़ना आता है। जिस विषयको ध्यानमें रखकर हिन्दी लिपिमें सुधार करना बहुत जरूरी है। मैं जानता हूँ आप लोग कहेंगे कि लिपि हमारी है और हमारी हिन्दी भाषा तो बहुत दिनसे है और लिपिभी बहुत दिनसे है। जिसलिये हम जिसमें परिवर्तन क्यों करें? मैंने पहलेही आपको बताया है कि हिन्दीके दो रूप हैं—अेक तो मातृभाषाका और दूसरा राजभाषाका। जिन दोनोंमें मुख्य है राजभाषा। हिन्दी जबरदस्ती और केन्द्रीय विधानके द्वारा राजभाषा नहीं हो सकती। हिन्दीका तो अैसा रूप होना चाहिये कि यह हिन्दी न बोलनेवालोंका हृदय स्पर्श करे और अुनके दिलमें अुत्साह

और प्रेम जगाअें। अिसका फल मिलना तो कठिन है। हिन्दी न बोलनेवालोको सुलभ हिन्दी पढाना तो ठीक है और अुससे फ़ायदा होगा; लेकिन सिर्फ हिन्दी सुलभ करनेसेही हिन्दी न बोलनेवालोके हृदयमें अुत्साह और प्रेम अिस कारणसे होगा कि हिन्दी भाषामें हिन्दी न बोलनेवालोंकी मातृभाषाका प्रतिबिम्ब, छाया और प्रभाव हो। अिसका अुपाय यह है कि हिन्दी भाषामें दृढ़ सकल्पके साथ और योजनासहित दूसरी भाषाओके शब्दबिम्ब और मुहावरे लाने चाहिअे। यह केवल हिन्दी पढ़ानेवाले लोग नहीं कर सकते, जिनको दूसरी भारतीय भाषाओका ज्ञान नहीं है। अिसलिये आपसे कहूँगा कि सभी हिन्दी पढानेवाले यूनिवर्सिटी तथा कॉलेजके अध्यापक अेक या दो दूसरी भारतीय भाषाओका ज्ञान प्राप्त करे—पढना, लिखना और बोलना। अिस सम्बन्धमें आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि दिल्ली विश्व-विद्यालयमें पिछले सालसे अेम. अे. में हमने अेक कम्पोज़िट कोर्स चालू किया है। अिसमें चार पेपर हिन्दीके, अेक पेपर भाषा-विज्ञानका, अेक पेपर सस्कृत या प्राकृतका और दो पेपर दूसरी भारतीय भाषाओके हैं। जैसे :—तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम और बगाली। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि जबतक यूनिवर्सिटी तथा कालेजोके हिन्दी-अध्यापक या प्रोफेसर कम-से-कम अेक या दो दूसरी भारतीय भाषाओक-ज्ञान नहीं अर्जित करते तबतक हिन्दी न बोलनेवाले लोगोमें प्रेम अुत्पन्न नहीं होगा और हिन्दीको अुन्नत स्थान नहीं मिलेगा। अिसलिये मेरा आपसे नम्रतम निवेदन है कि आप लोग अिस विषयपर विचार करें कि किस अुपायसे आप लोग हिन्दी भाषाको अैसा रूप दें जिससे हिन्दी न बोलनेवालोके हृदयमें अुसके प्रति उत्साह और प्रेम अुत्पन्न हो सके।

---

## ४१ : राष्ट्रभाषा हिन्दीका मूल्यांकन और अुसकी समस्याएँ

[डॉ रामलालसिंह अेम् अे.; पीएच्. डी ; हिन्दी भाषा और साहित्यके मर्मज्ञ विद्वान् है। अिसीके साथ-साथ वे भाषाशास्त्र और भाषा-विज्ञानके प्रख्यात लेखक भी हैं। सम्प्रति वे सागर विश्व-विद्यालयमे हिन्दीके प्राध्यापक हैं। राष्ट्रभाषाके मूल्याकनके सम्बन्धमें अुनके विचार द्रष्टव्य हैं।]

**राष्ट्रभाषाकी कसौटियां :—**

प्रोफेसर जेनिश के अनुसार राष्ट्रभाषाके पदपर आसीन होनेके लिये किसी भी भाषामे निम्नाकित विशेषताओका होना आवश्यकही नहीं, अनिवार्य है। उसकी

सर्व-प्रमुख विशेषता यह है कि वह उस राष्ट्रके बहुसंख्य लोगोंद्वारा बोली तथा समझी जाती हो। अुसका साहित्य ज्ञानकी विभिन्न शाखाओंमें अत्यन्त विस्तृत तथा अुच्च-कोटिका हो। उसका शब्द-भाण्डार तथा विचार-क्षेत्र अत्यन्त व्यापक कोटि का हो। अुस भाषाका व्याकरण अत्यन्त सरल हो। अुसमें व्याकरणके नियम-सम्बन्धी अपवादोंकी संख्या नियमोंकी तुलनामें बहुत ही कम हो, जिससे अुस भाषाको सीखनेमें सर्वसाधारणको सरलता हो। अुस भाषाकी पाचन-शक्ति बहुतही प्रौढ़ कोटि की हो जिससे वह आवश्यकतानुसार अुन सब देशी, विदेशी तथा आकर भाषाओंके अुपयुक्त शब्दों, सुन्दर अभिव्यक्तियों, चमत्कार-पूर्ण मुहावरों तथा कलात्मक प्रयोगोंको पचा सके, जिनके सम्पर्कमें आनेका अवसर अुसके बोलनेवालोंको प्राप्त हो सका है। अुसकी लिपि बहुतही सरल तथा (Phonetic) कोटिकी होनी चाहिये, जिससे जनसाधारण सरलतासे बहुत ही कम समयमें अुसे सीख सकें। अुसके साहित्यमें राष्ट्रीय संस्कृतिकी आत्मा मुखरित होना चाहिये जिससे अुसके साहित्यको पढ़, सुन अथवा देखकर अुस राष्ट्रके निवासी राष्ट्रीय अेकताके सूत्रमें आबद्ध होनेकी प्रेरणा प्राप्त कर सकें। अुस भाषाकी अैतिहासिक परम्परा सुदीर्घ कोटिकी हो। अुसकी आकर भाषाका साहित्य तथा अभिव्यंजना-शक्ति अत्यन्त समृद्ध-कोटिकी हो जिससे वह राष्ट्रभाषा समयानुसार अुससे प्रेरणा अेवं प्रभाव ग्रहण करने में समर्थ होकर अपने साहित्य अेवं अभिव्यंजना-शक्तिको सूक्ष्म तथा सुविस्तृत बना सके।

## राष्ट्रभाषाकी परख

राष्ट्रभाषाकी अुपर्युक्त कसौटी पर हिन्दीको परखनेसे यह ज्ञात होता है कि अिसमें राष्ट्रभाषाकी सर्व-प्रमुख विशेषता पाओ जाती है, अर्थात् वह भारत-वर्षके बहुसंख्यक लोगोंद्वारा समझी तथा बोली जाती है, कओ कारणोंसे भारत-वर्षकी अन्य विभाषाओंकी तुलनामें यह सरलतम सिद्ध हुओ है। अिसके सरलतम सिद्ध होनेके प्रमुख चार कारण हैं। प्रथमतः अिसका व्याकरण बहुतही सरल है। अिसमें अपवादोंकी संख्या नियमोंकी अपेक्षा बहुतही कम है और ये अपवाद भी आवश्यकतानुसार सरल किये जा रहे हैं। अुदाहरणार्थ, हिन्दी लिंगकी कठिनाअियोंको दूर करनेका प्रयत्न आज भी चल रहा है। द्वितीयतः अिसकी लिपि ध्वन्यात्मक होनेके कारण बहुतही सरल कोटिकी है। कओ प्रांतोंकी लिपियों जैसे मराठी, गुजराती, बंगाली आदि लिपियोंसे समानता रखनेके कारण अन्य प्रांतोंके निवासियोंद्वारा भी यह अपेक्षाकृत कम समयमें सीखी जा सकती है। अिसको सरलसे सरलतर करनेका प्रयत्न आज भी

चल रहा है। दक्षिणापथके लोग संस्कृत लिपिसे परिचित होनेके कारण जो देव-नागरी लिपि ही है, हिन्दीको बहुत कम समयमें सीख सकते हैं। हिन्दीका शब्दभण्डार संस्कृतके ही शब्दों (तत्सम अथवा तद्भव) से सर्वाधिक मात्रामें भरा है। संस्कृत शब्दोंकी बहुलता अुत्तरापथकी आर्य कुलकी भाषाओंमें ही नहीं, वरन् दक्षिणापथकी द्राविड कुलकी भाषाओंमें भी वर्तमान है। अिसलिये यह आर्य भाषाभाषी तथा द्रविड भाषा भाषी सबके द्वारा सरलतासे समझी, सीखी तथा बोली जा सकती है। अिस देशके मुसलमान भी अिसे सरलतासे समझ सकते हैं। क्योंकि अुनकी भाषा अुर्दू अथवा रेख्ता है। रेख्ती भी हिन्दीकी अेक शैली है जिसमें लिपिकी भिन्नता, कुछ सभापद अथवा विशेष शब्दकी भिन्नताको छोडकर शेष सब बातें प्राय हिन्दीसे मिलती-जुलती हैं। भारतवर्षमें अुत्तरसे दक्षिणतक हिन्दीका ही सिनेमा सर्वाधिक मात्रामें प्रचलित है। हिन्दीको सरस बोधगम्य तथा परिचित बनानेमें अिसका योगदान भुलाया नहीं जा सकता।

हिन्दीमें प्रौढ कोटिकी पाचनशक्ति है

हिन्दीकी पाचन-शक्ति बहुतही प्रौढ कोटिकी है, अिसका प्रमाण यह है कि वह हिन्दुस्थानकी दूसरी विभाषाओं तथा बोलियोंके ही अुपयुक्त शब्दों, सुन्दर प्रयोगों तथा चमत्कारपूर्ण मुहावरोंको ही पचानेमें समर्थ नहीं हो रही है, वरन् दूसरे देशकी भाषाओं—जैसे अंग्रेजी, अरबी, तुर्की, स्पेनिश, पोर्तुगीज आदिके पारिभाषिक शब्दोंको भी आत्मसात् करनेमें समर्थ हो रही है। द्राविड कुलकी भाषायें बिलकुल ही दूसरे कुलकी भाषायें हैं, किन्तु अुनके सुन्दर शब्दोंको भी पचानेमें हिन्दी समर्थ दिखाओ पडती है। हिन्दीका साहित्य सामान्य जनतामें अुत्तरसे दक्षिण-तक संत नामदेवके समयसे बोधगम्य होता आ रहा है। अिसी प्रकार कबीर, नानक, जायसी, सूर, मीरा, तुलसी, रहीम, प्रेमचंद, गुप्तजी आदि हिन्दीके कवि तथा लेखक सामान्य जनताके भीतर प्रचलित हो चुके हैं, जिनके लिये किसीने प्रचार नहीं किया। ये लेखक अपने साहित्यमें राष्ट्रीय संस्कृतिकी आत्मा सुरक्षित रखनेके कारण जनता के बीच पहुँचे और इनकी रचनाओंमें राष्ट्रीय संस्कृति की आत्माको प्रतिष्ठित करनेके कारण हिन्दी जन सम्पर्क स्थापित करनेमें समर्थ हुओ। जहांतक अिसके आधुनिक साहित्यका प्रश्न है वह अपने सम्मिलित रूपमें देशकी दूसरी विभाषाओंके साहित्योंसे किसी प्रकार पीछे नहीं है। आधुनिक हिन्दी साहित्य, रूप तथा विषय सामग्रीकी दृष्टिसे विस्तृत, सम्पन्न तथा विविध कोटिका दिखाओ पडता है। अिसके अुपन्यास, नाटक, कहानियां, आलोचना तथा निबन्ध सम्मिलित रूपमें देशके जन जीवनको सभी समस्याओं तथा प्रश्नों को स्पर्श करते हैं। जन जीवनकी अधिकाधिक अभिव्यक्ति आधुनिक हिन्दी-साहित्यकी प्रमुख विशेषता है। राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का संदेश आधुनिक हिन्दी साहित्यकी सभी प्रमुख कृतियोंमें वर्तमान है। अिस प्रकार आधुनिक हिन्दी-

साहित्य जनतासे निकटतम सम्बध स्थापित करनेमें समर्थ हो रहा है । हिन्दीमें सूक्ष्म तथा उत्तम विचाराकी अभिव्यक्ति क्षमता लानेके लिये उसके चिन्तनशील लेखक विभिन्न विषयोंमें मौलिक ग्रंथोंका प्रणयन कर रहे हैं । केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकारें उसकी उन्नतिके लिये उसे राजकीय व्यवहारकी भाषा का पद देकर प्रोत्साहन दे रही हैं। उत्तर भारतके अधिकांश प्रांतोंमें सभी प्रकारकी शिक्षण संस्थायें उसे शिक्षाकी माध्यम घोषित कर उसकी उन्नतिका वातावरण तैयार कर रही हैं। उत्तर भारतकी कुछ प्रादेशिक सरकारें तथा कुछ संस्थायें शब्द-कोषका निर्माण कराकर उसकी अभिव्यक्ति-क्षमताको बढानेका प्रयत्न कर रही हैं। वे हिन्दीकी उत्तम पुस्तकोंपर पुरस्कार घोषित कर राष्ट्र-भाषामें साहित्य-निर्माणकी प्रेरणा दे रही हैं । केन्द्रीय सरकार उत्तम पुस्तकोंकी प्रदर्शिनी नियोजित कर तथा पुरस्कार वितरण कर लेखकोंको प्रोत्साहन दे रही है। दक्षिणकी माध्यमिक शालाओंमें अनिवार्य विषयके रूपमें तथा कतिपय विश्व विद्यालयोंमें वैकल्पिक विषयके रूपमें प्रविष्ट होनेके कारण राष्ट्रभाषा का गौरव दिन प्रतिदिन बढ रहा है ।

निकट अथवा सुदूर सम्बन्ध रखनेवाली भाषायें ही पूर्वकालमें राष्ट्रभाषाका पद ग्रहण करती रही हैं।

## राष्ट्रभाषा हिन्दीकी अभिव्यक्तिक्षमता बढ़ानेके उपाय

अुपर्युक्त अनेक विशेषताओंके रहते हुअे भी राष्ट्रभाषाकी दृष्टिसे अभी हिन्दीमें बहुत कमी है। वह कमी विशेषतया आधुनिक विभिन्न विषयोंकी अभिव्यक्ति-क्षमताकी है। पारिभाषिक पदावलीकी दृष्टिसे हिन्दीका शब्दभाण्डार प्रगतिशील होते हुअे भी अुच्च कोटिका नहीं कहा जा सकता। हिन्दी भाषामें अभी आजके वैज्ञानिक विषयोंको अभिव्यक्त करनेकी क्षमता नहीं है। दर्शन, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, मानव-शास्त्र, जीव-शास्त्र, अर्थ-शास्त्र, राजनीति, भूगोल, वाणिज्य-शास्त्र, गणित, रसायन-शास्त्र, भूगर्भ-शास्त्र, भौतिक-शास्त्र, वनस्पति-शास्त्र तथा प्राणी विद्यामें अुच्चकोटिका साहित्य हिन्दीमें नहीं है, जो विश्व-विद्यालयोंके स्तरका हो और जिसका सहारा लेकर हिन्दी माध्यमसे विश्व-विद्यालयोंमें शिक्षा दी जा सके। राष्ट्रभाषाकी अिस कमीको हिन्दीमें दूर करनेके लिअे मेरे निम्नांकित सुझाव हैं:—

१ यद्यपि अंग्रेजी भाषा भारत-वर्षसे पूर्णत हटायी नहीं जा सकती, फिरभी स्वतंत्र भारतमें अिसका स्थान सीमित तथा निश्चित कोटिका होना चाहिअे। हिन्दी प्रान्तोंमें शिक्षा तथा शासन सम्बन्धी अिसका प्रयोग अनिवार्य-रूपसे हो। अन्त-प्रान्तीय शासनसम्बन्धी कार्य हिन्दीमें किये जायें।

२ व्याकरण तथा शब्द-कोषकी अुच्चकोटिकी पुस्तकें अच्छे लेखकों-द्वारा लिखाअी जायें। अंग्रेजी भाषाके पारिभाषिक शब्दोंके स्थानपर हिंदी शब्द प्रयुक्त करनेके लिअे यह आवश्यक है कि तबतक प्रतिवर्ष ३००० नये पारिभाषिक शब्द हिंदीमें बनाये जायें जब-तककि पारिभाषिक शब्द-भण्डारकी कमी हिंदीसे दूर न हो जाय। हिंदीमें गणित, वनस्पति-विज्ञान, भौतिक-विज्ञान, रसायन शास्त्र, जीवशास्त्र, प्रस्तर-विज्ञान, राजनीति, अर्थशास्त्र, समाज-शास्त्र आदि विश्व-विद्यालयोंन शिक्षाविषयक अुत्तमोत्तम ग्रंथ तैयार किये जायें।

३ कला, दर्शन, समाज-शास्त्र, मनोविज्ञान, शिक्षा-शास्त्र, मानव-विज्ञान राजनीति, अर्थशास्त्र तथा विज्ञानके अुक्त विभिन्न विषयोंकी अुच्चकोटिकी पुस्तकें केन्द्रीय सरकारद्वारा अुच्च-कोटिके विद्वानोंको नियुक्त करके लिखवाअी जायें। अुक्त विभिन्न विषयोंमें जहां मौलिक कोटिके ग्रंथोंको लिखवानेमें कठिनाअी प्रतीत हो, वहां अुत्तम कोटिके अंग्रेजी पुस्तकोंके अनुवाद कराये जायें। अिन पुस्तकोंके लिखनेमें आवश्यक पारिभाषिक शब्द प्राय संस्कृत भाषासे लिये जायें। वर्तमान समयमें जहां कठिनाअी प्रतीत हो, वहां अन्तर्राष्ट्रीय पदावलीका विशेष रूपसे प्रयोग हो।

४ देवनागरी लिपिका सुधार केवल सुधारके लिये न हो, अथवा अुसकी प्रकृतिको समूलरूपेण नष्ट करनेके लिये न हो। अुसका सुधार वैज्ञानिक तथा आधुनिक ढगका हो।

५ बुन्देली, राजस्थानी, भोजपुरी, मालवी, बघेली आदि विभाषाओं तथा बोलियोंके अच्छे कवि हिन्दी-साहित्यके अितिहासमे सम्मिलित कर दिये जायँ, जिससे हिन्दी साहित्यकी अभिव्यक्ति तथा साहित्य-भण्डारमे श्रीवृद्धि होगी।

६ देशमे अिधर-अुधर बिखरी हिन्दी साहित्य-सम्बन्धी हस्तलिखित सामग्रीको अनुसन्धानार्थ व्यवस्थित करनेका प्रयत्न किया जाय। राष्ट्रभाषाके साहित्यमे समग्र राष्ट्रकी सस्कृति, आत्मा, वाणी, रुचि, प्रवृत्ति, अिच्छा, आदर्श धारणा मुखरित हो, वह भी केवल अेक प्रान्त या अेक भूभागकी नहीं वरन् सारे भारतके सभी प्रान्तो और भाषाओमे से हो।

७ हिन्दी-अनुसन्धानका स्तर अुच्चकोटिका रखनेका प्रयत्न किया जाय।

८ हिंदी अध्यापनका स्तर शिक्षाकी प्रत्येक स्थितिमे अुच्च किया जाय।

९ अुर्दूका सारा साहित्य देवनागरी लिपिमे प्रकाशित किया जाय' जिससे हिन्दी भाषाकी अभिव्यजनाशक्तिके सवर्धनमे सहायता मिलेगी।

१० सर्जनात्मक साहित्यकी रचनाको अधिकाधिक प्रोत्साहित करनेकी व्यवस्था की जाय। हिन्दी पत्र-पत्रिकाओंका स्तर क्रमश अुच्चसे अुच्चतर किया जाय। हिन्दीमे सभी भाषाके साहित्योका अितिहास, दर्शन आदि सक्षेपमे अुपस्थित किया जाय। द्राविड भाषाओका समस्त वाङ्मय हिन्दीमे अनुवाद कर अहिन्दी प्रान्तोमे हिन्दी प्रचारके लिये केन्द्रीय सरकार अधिक काम करे।

११ हिन्दी भाषा तथा साहित्यकी प्रगतिमे शीघ्रता लाने तथा अुसमें पूर्वनियोजित कार्योंको ठीक समयपर सम्पादित करानेका दायित्व केन्द्रीय सरकार अपने हाथमे ले।

---

## ४२ : राष्ट्रभाषाकी समस्या

[डॉ कमलाकान्त पाठक एम् ए, पी एच्. डी नागपुर विश्वविद्यालयमे हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं। उन्होने राष्ट्रभाषा के सम्बन्धमें अपने तटस्थ विचार प्रस्तुत लेखमें रखे हैं, जो चिन्तना सापेक्ष हैं। ये विचार अनेक महत्वपूर्ण तत्वोका सकेत करते हैं।]

: १ :

राष्ट्रभाषाकी समस्याको जिस रूपमें ग्रहण किया जा रहा है, वह वस्तुतः भिन्न दो प्रश्नोंका अेकत्रीकरण है। भारत अेक राष्ट्र है, अतः अुसकी कोओी राष्ट्रभाषा होगीही। यदि यह निर्णय सर्वांशतः अबतक नहीं किया जा सका है तो अुसका दायित्व भी संभवतः हमींपर है। यह समझ पाना भी कठिन जान पड़ता है कि हम अपनोंसे अेतद्विषयक मतभेद ही नहीं रखते, वरन् अिस संबंधमें आग्रह, आंदोलन, संघर्ष, द्वेष आदिके मार्ग भी अपनाते हैं। पर यह अघटित व्यापार नहीं है। अिसका मूल कारण है व्यापक राष्ट्रभावनाका तिरोधान आरंभ होना और अुसीके साथ संकीर्ण मनोवृत्तियोंका उभार पाना। यह आजका ज्वलंत प्रश्न है; पर अिसीके साथ हिन्दी भाषाकी सम्पन्नता, शक्ति, सरलता आदिपर प्रश्नचिन्ह लगा कर राष्ट्रभाषाकी समस्या अनावश्यक रूपसे जटिल बना दी गयी है। वास्तवमें देश-भाषाओंके विकास और उनके साहित्यकी समृद्धिके रचनात्मक प्रश्नको राष्ट्रभाषाके सांस्कृतिक प्रश्नके साथ संयुक्त करके दोनोंका राजनीतिक हल खोजा जाता रहा है। यह स्वाभाविक है कि अिस परिस्थितिमें अतिरिक्त भावुकताका प्रदर्शन हो भाषा-भक्त अतिवादी दृष्टिकोण अपनायें तथा सामाजिक नेतृत्व साहित्यकारोंको कर्तव्य-बोध कराअे।

मैं किसी विवादमें पड़ना नहीं चाहता। यह न मेरा स्वभाव है, न व्यवसाय। मैं अिन्हीं दोनों विषयोंका वस्तुमुखी विश्लेषण मात्र प्रस्तुत करूँगा और निष्कर्ष-रूपमें कदाचित् कुछ सुझाव भी दे सकूँगा। दूसरे प्रश्न पर मैं पहले विचार करूँगा, जिससे पहले प्रश्नको तटस्थतापूर्वक समझनेमें सहायता प्राप्त हो। सम्भवतः विवादों और प्रवादोंकी गर्मीमें यह प्रशांत दृष्टि कुछ उपादेय जान पड़े।

: २ :

## हिन्दी

### (अ) समृद्धि

हिन्दी भाषामें ज्ञान-विज्ञानकी विपुल रचनायें हमें उपलब्ध नहीं हो पा रही हैं। यह बात प्रायः उन्हींके द्वारा कही और दोहराई जाती हैं, जिन्हें स्वतंत्र भारतमें किये रचना-कार्योंका सम्यक् परिचय नहीं है। यों यह सत्य है कि अंग्रेजीकी तुलनामें हमारी सभी देश-भाषाअें आधुनिक ज्ञान-राशिको प्रस्तुत कर पानेमें पश्चात्पद रही हैं। हम चाहे कितनीही कृतियोंका अनुवाद करते चले जायें, अंग्रेजी की बराबरी तब भी नहीं कर पायेंगे। विशिष्ट रचनाओंको अंग्रेजीके माध्यमसे सभी देश-भाषाओंमें रूपान्तरित करनेका सार्वत्रिक उद्योग अवश्य हो रहा है। सीमित साधनोंके द्वारा जो कुछ संभव है, वह तो किया ही जा रहा है और शासन भी उसके लिये थोड़ा-

बहुत उद्योग-रत है। पर भाषाकी संपन्नता केवल अनुवादोंसे परीक्षित नहीं की जा सकती। कोओी भी भाषा समृद्ध तभी होती है, जब अुसमें मौलिक कार्य किया जाय। यदि हमें किसी भी भारतीय भाषासे प्रेम है तो अुसे प्रकट करनेका स्पष्ट और सरल मार्ग यह है कि हम स्वभाषामें अपने विचार ही प्रकट न करें और साहित्य ही न रचें; बल्कि अुसीमें ज्ञान-विज्ञान-विषयक मौलिक ग्रंथोंकी रचना भी करें। भाषा-समृद्धि तबतक अपूर्ण रहेगी, जबतक व्यवहार, साहित्य और ज्ञानार्जनके माध्यम अेक नहीं हैं। द्विधावस्थामें न हिन्दीही समुचित अुत्कर्ष प्राप्त करेगी, न कोओी अन्य भारतीय भाषाही। तात्कालिक सुविधा तथा वैयक्तिक लाभालाभ अवश्यही विदेशी भाषासे सबद्ध हैं, पर क्या पिछड़े होनेकी भावना स्थायी वृत्ति बन जाये? मैं समझता हूँ कि यह वृत्ति गति-प्रेरक भी सिद्ध हो सकती है; पर अुसके लिये राष्ट्रको अपने दृष्टिकोणमें सुविधाही नहीं, आयासको भी स्थान देना होगा।

## (आ) शक्ति

हिन्दी भाषामें अभी अितनी शक्ति नहीं आ पाओी है कि वह पाश्चात्य ज्ञानके सूक्ष्मातिसूक्ष्म संकेतोंको भली-भांति व्यक्त कर पाये। यह मत प्राय. पारिभाषिक शब्दावलीके संदर्भमें प्रकट किया जाता है। प्रत्येक भाषा नओी-नओी अभिव्यक्तियाँ सतत करती जाती है, तभी वह जीवित रहती है और अपना युग-सापेक्ष विकास भी करती है। सामान्य व्यवहारमें प्रयुक्त होनेसे भाषाका आतरिक विकास होता ह; पर साहित्य-रचनामें व्यवहृत होनेसे उसकी अभिव्यंजना-शक्ति प्रवर्द्धित होती है, तथा ज्ञान-विज्ञानके कार्यों तथा ग्रंथोंमें व्यवहृत होते रहनेसे अुसकी अर्थवत्ता प्रकाशित होती है। बिना काममें लाअे तो शस्त्र भी भोथरा हो जाता है। अत भाषा अपने आप सशक्त नहीं हो पाती। वह प्रयोगमें आती रहे तो अुसकी अर्थव्यंजकताका विकास होगा। जिस विचार-सामग्रीको वह वहन करेगी, अुसे यथावत् व्यक्त करनेकी क्षमता भी अुसमें आयेगी। पारिभाषिक शब्दावलीका शासनने नव निर्माण किया ही है। अिसकी अुपयोगिता प्रयोग-सापेक्ष है। नये शब्द आये और पुराने शब्दोंमें नओी अर्थ-दीप्ति भरी गओी है, जिनमेंसे कुछ जीवित रहेंगे और कुछ लुप्त हो जायेंगे; पर भाषा-दौर्बल्यको देखते रहनेपर तो हमारा कोष रिक्त ही रहेगा और भाषाकी शक्तिका क्रमशः ह्रास भी होगा। आशय यह है कि भाषाकी शक्तिका विकास अथवा ह्रास प्रयोगाश्रित है। शासनने अंतर्राष्ट्रीय पारिभाषिक शब्दों और भारतीय भाषाओंके अभिधानोंको ध्यानमें रखकर तुलनात्मक आधारपर अर्थ-संकेतोंके नव्य रूप स्थिर किये हैं। संभवतः यह प्रयास

बुद्धिजीवियों को किंचित् तोषप्रद ज्ञात हो। आशंका यही है कि कहीं ये शब्द-रूप अप्रचलित ही न रह जायें।

## (इ) सरलता

हिन्दी भाषाका वर्तमान रूप क्लिष्ट और प्रयत्न-साध्य है। अतअेव अुसके सरलीकरणकी समस्या सर्वप्रधान अनुभव की जा रही है। यह प्रचारित कथा है, आविष्कृत तथ्य नहीं। भाषाका काम है अर्थ-व्यक्ति। हम अपने विचारोंको ठीक ठीक प्रकट कर सकें और दूसरोंको हमारा वक्तव्य ग्राह्य प्रतीत हो, यही भाषाका प्रयोजन है। अभिव्यक्तिका कार्य लेखक या वक्ताकी मानसिक स्थिति, विषय-ज्ञानकी स्पष्टता, भाषाधिकार, लेखनक्षमता अथवा अभ्यास आदिपर निर्भर होता है। अर्थ ग्रहण भी पाठक या श्रोताकी मन स्थिति, ज्ञान स्तर, अभ्यास, योग्यता सामर्थ्य, आदि उपकरणोंसे सम्बन्धित है। अतअेव भाषा कठिन है या सरल यह प्रश्न ही अवैज्ञानिक है। वास्तवमें अेक अर्थके लिये अेक ही शब्द होता है, या यों कहिये कि अेक कथ्यका अेकही कथन अथवा अेक आशयका अेकही वक्तव्य होता है। पर्यायवाची शब्द तो मिल सकते हैं पर प्रत्येक शब्दकी अपनी पृथक् पृथक् अर्थ-दीप्ति होती है। गिरा और अर्थ अथवा शब्द और विचारको भी क्या अलग-अलग किया जा सकता है? विचार जितने सूक्ष्म और जटिल होंगे, भाषा भी अुन्हींकी अनुवर्तिनी होगी। मानववाद और मानवतावाद अथवा प्रकृतवाद और प्रकृतिवादका अंतर अितना सुस्पष्ट है कि अुन्हें पर्यायवाचीके रूपमें प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। बादल, जलद, तोयद, घन, मेघ ये सभी पर्यायवाची शब्द हैं पर बादल बरसते हैं, जलद अुमडते हैं, तोयद तडकते हैं, घन घिरते हैं और मेघ गरजते घहराते हैं। क्या कोअी कलाकार अिन्हें पर्यायवाची समझेगा? नील, श्याम, स्याह भूरा, काला, कृष्ण, अित्यादि चाहे प्राचीन काव्यमें अेक जैसा अर्थ द्योतन करें, पर क्या किसी चित्रकार या मुद्रकके लिये ये अपृथक् हैं? मद मधुर और विलम्बित अिसी भाँति अभिन्न अर्थ-तत्व नहीं हैं। आशय यह है कि वस्तुत भाषा न सरल होती है न कठिन। वह प्रयोक्ता और ग्रहणकर्ताकी योग्यता और मतिके अनुरूप जटिल या सरल ज्ञात होती है। अवश्य ही अुसका ध्वनि-समूह या व्याकरणिक रूप-रचना अन्य भाषाओंकी तुलनामें कठोर या मधुर अथवा जटिल या स्वच्छ हो सकती है। पर प्रस्तुत प्रश्नका अुद्दिष्ट कुछ और है।

भाषा सार्वजनिक व्यवहारकी भी वस्तु है। अतअेव अुसका कोअी वस्तु मुखी मान भी होना चाहिये। साहित्यकी भाषा-शैली और ज्ञान-विज्ञानकी अभिधा-विशिष्ट अर्थ भँगिमाओंका तो निश्चय ही कोअी कोटिक्रम निर्धारित नहीं किया जा सकता, पर लोक-व्यवहार अथवा सूचना या प्रसार आदिके

प्रयोजनसे श्रोताकी बोधव्य शक्तिके सम स्तर पर वक्ताकी भावाभिव्यक्तिको रखा जा सकता है। सफल अध्यापक, पत्रकार, नेता, समाज-सेवी, व्यापारी, आदि सभी पात्र देखकरही भाषाका प्रयोग करते हैं। देहाती श्रोताओंके लिये रेडियोसे भी ग्रामीण कार्यक्रम प्रसारित किये जाते हैं। अखिल भारतीय स्तरपर जिस भाषाका प्रयोग किया जायेगा, वह साधु और परिनिष्ठित होगी। अुसमे स्वभावत विदेशी शब्दोका अत्यल्प व्यवहार होगा और अुसका झुकाव प्रवृत्तिवश मूलभाषाकी ओरही होगा। पर वर्तमान समाजमे यदि कहीं-कहीं सकर प्रवृत्तियाँ अुभर रही हैं तो अुन्हे सतुष्ट रखनेके लिये प्रजातन्त्र अधिकसे अधिक बच्चो या स्त्रियोके कार्यक्रम या पत्रिकाओकी भाँति नअी हिन्दुस्तानी या नअी अिंगलिस्तानी हिन्दीमे कतिपय नये आयोजन कर सकता है। मेरी धारणा यही है कि अिससे न हिन्दीका कोअी लाभ होगा, न कोअी हानि ही। अवश्य ही न्यस्त स्वार्थ सतुष्ट हो जायेंगे। अिस वर्गकी आवश्यकताका भी ध्यान रखना ही चाहिये।

नअी हिन्दुस्तानीसे मेरा आशय अुस शैलीसे है, जिसे अुर्दू-प्राय हिन्दी कहा जाता है और यह नअी अिसलिये है कि यह कम्पनी-सरकार और फोर्ट विलियम कालेजकी गिलक्राअिस्टी हिन्दोस्तानीका नवोन्मेष है। अन्तत न वह जी सकी न यही आयुष्मती होगी, और नअी अिंगलिस्तानीसे मेरा आशय उस भाषा के नवोद्धारसे है न जिसे गौराग प्रभुको प्रसन्न रखनेके लिये स्वदेशी नौकरशाही अपनाए हुअे थी। अिसका अब भी अभिजात, अधिकारी और बाबूवर्गोंमे प्रचलन है। अिसमें तो आज तक कोअी पुस्तक-रचना भी नहीं हुअी। क्यो न अिसी क्षेत्रमें करतब दिखाया जाये? ये दोनोही बोलियाँ हैं, भाषाअें नहीं। ये बोलियाँ भी कतिपय नगरोमे प्रचलित हैं और वहाँ भी सीमित समुदायमें। मैं नहीं समझताकि ये भाशाकी प्रकृतिको विकृत करने की अधिकारिणी हैं। अिसलिये मैने पृथक् वर्गोंके लिये पृथक्-पृथक् समाचार-पत्र, आकाशवाणी-कार्यक्रम, पुस्तक-रचना आदिके आयोजनोको अुपयुक्त समझा है। अैसे कार्योंके लिये हमारे पास कदाचित् धनाभाव नहीं होगा।

वास्तवमें न कोअी भाषा बोलियोके आधारपर कृत्रिम रूपसे रूपान्तरित की जा सकती है, या कतिपय सज्ञाओ या क्रिया रूपो आदि के प्रयोगोसे सरल या कठिन बनाअी जा सकती है। अप्रचलित प्रयोगोका आधिक्य अवश्यही अग्राह्य वस्तु है और वह त्याज्य भी है। भाषा विशेषकी अपनी प्रवृत्ति होती है और अुसका विकास प्राय अपने आप होता है। हम भाषा विकासके लिये केवल अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियाँ पैदा कर सकते हैं, भाषाको विकलाग नहीं बना सकते। आशय यही है कि हमारे प्रयत्न भाषाके विकासको बाधित कर सकते हैं या प्रवर्धित। अुसे नये रूपमें ढाल नहीं सकते। भाषा गढी नहीं

जाती। हमें अुसके अनुरूप अपने आपको गढ़ना होगा है। अतअेव भाषा कृत्रिम या स्वाभाविक ही होती है, जटिल या सरल नहीं। अुसका स्वाभाविक रूप विकासमान अवस्थाका द्योतक है और अुसकी कृत्रिम अंग-भंगिमा जीवन-शक्तिके ह्रासकी परिचायक। हम अुसे नअी शैली, नवीन अर्थवत्ता, नअी शक्ति और नया सौंदर्य ही तो दे सकेंगे। अुसकी प्लैस्टिक सर्जरी तो हो जायगी; पर प्राणवायी नहीं मिलेगी।

जिस भांति राजनीति मानव संस्कृतिका स्थानापन्न तत्त्व नहीं है, अुसी भांति हिन्दी विषयक सामयिक प्रश्न अुसके स्वरूप, प्रकृति, गठन, प्रवृत्ति आदिके विधायक अुपकरण नहीं हैं। सामयिक प्रश्नोंको हिन्दीकी प्रकृतिके अनुरूप होकरही अपना समाधान पाना होगा। यह निर्देश आवश्यक है कि सरलीकरणकी समस्यायें अतिरिक्त प्रायः शेष सभी प्रश्न भारतीय भाषाओंके सम्बन्धमें भी अुतनेही सार्थक हैं, जितने हिन्दीके विषयमें। सरलीकरणकी समस्यामें वस्तुतः राजनीतिका अन्दाज है, संस्कृतिका अुन्मेष नहीं। जहां नव्य प्रयोग होंगे वहां प्रेषणीयताकी समस्या भी रहेगीही, अिसे स्मरण रखना चाहिये।

: ३ :

## लिपि

हिन्दीका प्रश्न भाषातकही सीमित नहीं है, वह लिपिके क्षेत्रमें भी प्रसार पाता है। कुछ विचारक रोमन लिपिको ग्रहण कर लेनेका आदेश देते हैं और कुछ विद्वान् देवनागरी लिपिको यथावत् प्रचलित रखनेका परामर्श। यों तो शासनने निश्चित रूपसे नागरी लिपिके स्वरूपका तो निर्धारण कर ही लिया है और सभी साक्षर देशवासी किसी न किसी रूपमें उससे सुपरिचित हैं, पर कुछ विचारकोंको रोमन लिपि यान्त्रिक सुविधाकी दृष्टिसे उपादेय ज्ञात हो रही है। रोमन लिपिमें अुच्चारणकी असुविधायें अनुल्लंघ्य ज्ञात होती हैं, पर यह सरल लिपि है और अुसकी वर्णमालाका संयुक्तस्वरों, मात्राओं आदिके रूपसे विस्तार नहीं हुआ है। रोमन लिपि ध्वन्यात्मक लिपि है, (?) अिस कारण कतिपय विद्वान् अुसे स्वीकृत करवाना चाहते हैं और सभी भारतीय भाषाओंमें अुसे व्यवहृत करनेका सुझाव देते हैं। नागरी लिपिको भी भारतीय भाषाओंकी अेकमात्र लिपि निश्चित करनेके मूल्यवान् परामर्श दिये जाते रहे हैं। सम्प्रति दोनों लिपियोंको साथ-साथ चलानेकी बात कही और सुनी जा रही है। देवनागरी वैज्ञानिक लिपि है, उसकी प्रवृत्ति ध्वन्यात्मकताकी ओर है पर यह अक्षरात्मक अर्ध-ध्वन्यात्मक लिपि है। देवनागरी लिपि रोमन लिपिकी अपेक्षया थोड़ी जटिल है, पर अुसके पक्षमें भारतीय जीवनकी परम्परा और संस्कृत साहित्यका विशाल भांडार है। रोमन लिपि अंग्रेजी साहित्यके साथ भारतीय भाषाओंको चिरकालतक संयुक्त रख सकती है और वह अपेक्षाकृत सरल भी है। यह नअी प्रवृत्ति है, जो सरलता और प्रयत्न लाघवको लिये हुये है।

स्वदेशकी ही भाषाको जहाँ सर्वसम्मतिसे निश्चित-रूपेण राष्ट्रभाषा नहीं बनाया जा सका, वहाँ विदेशी लिपिको प्रचलित कर देना कौतुकही सिद्ध न हो जाये, यह आशंका है। संप्रति नागरी लिपि अपने स्थानपर सुदृढ़ है और वह भली भाँति प्रचलित है। कदाचित् वह निकट भविष्यमें अपने स्थानसे अपदस्थ नहीं हो पायेगी। रोमन लिपिकी चर्चा प्रायः संस्कृत और हिन्दीके प्रेमियोंको चकरानेके लिये अधिक की जाती है, अुसमें तत्त्व अपेक्षाकृत कम रहता है। पर प्रजातन्त्र यदि अेकान्ततः आधुनिक रूप अपना ले तो रोमन लिपि भी हमारी राष्ट्रलिपि कही जायेगी। तब नागरी लिपि प्रादेशिक या प्राचीन लिपिका स्थान पा सकती है; पर यह कार्य अभी दशाब्दियोंमें भी नहीं हो पायेगा। अवश्य ही रोमन लिपिको सहायक लिपिके रूपमें स्वीकार कर लेनेकी सम्भावनायें बढ़ गयी हैं।

: ४ :

राष्ट्रभाषा

राष्ट्रभाषाकी समस्याको अुपर्युक्त विवेचनके पश्चात् सम्भवतः अब समुचित परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकेगा। राष्ट्रभाषा राष्ट्रीय आशा-आकांक्षा, आदर्श, प्रेरणा, और प्रेमका प्रतीक है। प्रस्तुत समस्याकी स्थिति अिसलिये है कि हम सिद्धांततः राष्ट्र-प्रेमको अस्वीकार नहीं करते और प्रत्यक्षतः अुसे आचरित नहीं कर पाते। राष्ट्र-प्रेमका त्याग और बलिदानका युग समाप्तप्राय है। आज सफलता, सुविधा और सिद्धिका स्वस्ति-युग आया है। अतअेव हम अुदात्त भावनासे प्रेरित होकर काम नहीं कर पाते। आज आंकड़ोंका नाप-जोख करके सबको प्रसन्न कर देनेवाला हमें कोअी नया नुस्खा अीजाद करना है, राष्ट्रभाषा देशवासियोंके अैक्य तथा पारस्परिक सौहार्द्रको प्रकट करती है। अुसका भावनात्मक स्वरूप है; पर वह उपादेय वस्तु है तथा अुसकी प्रयोजनीयता भी स्पष्ट है। अब वह केवल राष्ट्रवाद की आवश्यक भूमिका नहीं है, अपने आपको सुसम्बद्ध रख पानेका तकाजा भी है। नव्य दृष्टि, देश-भक्ति और कर्तव्य-बुद्धिकी अपेक्षा सुविधा, आवश्यकता और वास्तविकताके प्रयोजन-निष्ठ ऊहापोहोंसे अधिक सुतम्पन्न है। कहा गया है कि राष्ट्रभाषा राष्ट्रीय अेकताका नियमन करके न अुसका विनाश कर सकती है। यह राजनीतिक आशंका है, जिसके कारण हम अन्ततः किसी भाषाको राष्ट्रभाषाके पदपर सम्पूर्णतः अभिषिक्त नहीं कर पा रहे हैं। इसका समाधान क्या है?

समस्या तो यही है कि किसी भाषाको सापेक्षिक रूपमें प्रमुख क्यों मान लिया जाय? यदि कोअी व्यक्ति किसी पद विशेषपर निर्वाचित हो सकता है, जैसे अध्यक्ष, प्रधान मंत्री, आदि तो कोअी भाषा भी सिद्धान्ततः राष्ट्रभाषा हो सकती है। पर प्रश्न यह है कि जब सभी बराबर हैं तो किसी अेकको क्यों

प्रमुखता प्राप्त हो जाओ ? अिस गुत्थीको दो प्रकारसे सुलझाया जा सकता था। प्रथमतः राष्ट्रभाषाके राजकीय महत्त्व और अुपयोगका स्पष्ट निर्देश करके तथा अुसकी सीमाओंका भी अुल्लेख करके कि वह कहाँ-कहाँ व्यवहृत नहीं होगी ? द्वितीयतः प्रजातन्त्रात्मक पद्धतिसे किस भाषाका व्यवहार लोगोंमें सर्वाधिक होता है ?

तीसरा विकल्प भी हो सकता है और वह है भाषा-समृद्धिका मानदंड। पर यह तुलनात्मक निकष देशके वक्षपर खींची गओी नओी लकीरोंको गहरी दरारें भी बना सकता है। अतअेव त्याज्य है। प्रथम दो विकल्पोंका आंशिक ग्रहण किया गया है; पर अेक मूलभूत त्रुटि हो गओी है। हम यह मानकर चले हैं कि भाषाकी समृद्धि ही राष्ट्रभाषाको अन्तिम रूपसे प्रतिष्ठित कर सकेगी। यहीं यह प्रश्न है, जिसका कोओी अुत्तर नहीं दिया जा सकता। महान् कार्य सदैव संकल्प-शक्तिसे सम्पन्न होते हैं और दृढ़ निश्चय ही सतत मार्गनिर्देशित करता है। यदि हम पन्द्रह वर्षकी अवधिमें अपनोही भाषाओंमें अपने आपको काम करनेलायक नहीं बना पाओे हैं, तो यह हमारे स्वदेश-प्रेमके गालपर करारा तमाचा है। वस्तुस्थिति यही है। भाषाको हमने कारखाना मान लिया है, जहां सभी अुपादेय वस्तुओंका उत्पादन कर लिया जाय। अस्तु अभी भाषाका कारखाना राष्ट्रीय अुत्पादनके योग्य बन नहीं पाया है। शिशु जैसे जन्म लेता ही है, चाहे अुस घडी अुसके माता-पिता अुसके लिये तैयार हो या न हों और मृत्यु भी होती ही है, चाहे अुस क्षण सभी काम पूरे हो जायें या अधूरे ही रह जायें, अुसी भांति एक न एक दिन अपने आपको राष्ट्रभाषा देनेके लिये हमें तैयार होनाही चाहिये। देर कर लें या सवेर, कुछ-न-कुछ मतभेद, थोड़ी-बहुत असुविधा और कम-ज्यादा आयास-अभ्यास तो सदा ही रहेगा। यदि हमारी पीढ़ी राष्ट्रभाषाकी प्रतिष्ठा कर पानेमें असमर्थ हो गओी तो आगामी पीढ़ियां हमारी त्रुटिको शत-शत रूपोंमें दोहराती जाअेंगी। हमें परिवर्तन कभी तो झेलना ही है। संप्रति आत्महीनताकी भावनासे हम ग्रस्त हैं और संकल्पका आधार छोड़कर समझौतेका मार्ग अपना रहे हैं। हमारी शक्तियां बिखर गओी हैं और अुसका कारण है लक्ष्यका बहुमुखी स्वरूप और समस्त विकास-कार्योंका शासनाधीन होना। सामान्य जन-समूहमें आलोचनाकी प्रवृत्ति, विरोध का स्वर और आंदोलनोंका अुत्साह मात्र शेष है। अुसके पास निर्माण का संकल्प, रचना की प्रवृत्ति और अुद्देश्य की निष्ठा अब नहीं रही। राष्ट्रीय पैमानेपर कोओी भी महत् कार्य संपादित कर पानेमें हम असमर्थ होते जा रहे हैं। स्पष्टतः हमारे नअे समाज और नव्य साहित्य में यह सांस्कृतिक विघटन प्रत्यक्ष हो अुठा है। अुसका पर्यवेक्षण करनेके लिये अब दूर-दर्शक या सूक्ष्म-दर्शक यंत्रोंकी आवश्यकता नहीं रही।

अिस स्थितिमे राष्ट्रभाषाकी समस्याका निदान खोज निकालना टेढ़ी खीर है। अिस सम्बन्धमें दो मत बड़े विश्वासके साथ प्रकट किअे जा रहे हैं। पहला मत-राष्ट्रीय एकताकी दृष्टि-अिस समस्याका समाधान करना आवश्यक नहीं मानता। अुसका कथन है कि यदि हिन्दीको राष्ट्रभाषा बना लिया गया अथवा अंग्रेजी हटा दी गई तो देश की एकता खंडित हो जायगी। भारतके हित विचारसे यह अनिवार्य है कि अंग्रेजीको अनिश्चित कालतक लाद रक्खा जाअे। अुसीके द्वारा भारतको अेक सूत्रमें आबद्ध रक्खा जा सकता है। दूसरा मत यह है कि अंग्रेजीका सबंध कतिपय बुद्धिजीवियोंसे है। अुसका जन-जीवन में गहरा प्रवेश नहीं है। लोक-मानस अुसे विजातीय और विदेशी आयात मानता है। अतः हमें अपने आपको अेक राष्ट्रभाषा तत्काल दे देनी चाहिअे। अंग्रेजीके पक्षधर वास्तवमें देशको अपने पाँवोंपर खड़े ही नहीं होने देना चाहते। हिन्दीका विरोध प्राय. राजनीतिक है और वह वर्ग विशेषमें सीमित है। हम चिरकालतक सांस्कृतिक पराभव वहन करते हुये आत्म-हीनताकी भावनासे ग्रस्त तथा परमुखापेक्षितासे त्रस्त होना नहीं चाहते। अेक मत समझौतावादी राजनीतिका स्वरूप लिये हुये है और दूसरा मत राष्ट्रवादी मनोवृत्तिकी अुपज है। पहला मत कामचलाअू पद्धतिपर आधारित है और दूसरा मत भावनात्मक है। अत यहाँ भावना और व्यवहारबुद्धि की प्रधानता है, सिद्धान्त, आदर्श अथवा सकल्पकी नहीं। दूसरे मतमें निश्चयही हिन्दी-प्रेमी भी सन्निहित हैं; पर अुसके समर्थक हिन्दीतर भाषा-भाषी भी हैं। दोनो मतोंमें सभवत आंशिक सत्य मौजूद है। दोनोका समाहार यह है कि हिन्दी ही राष्ट्रभाषा हो और सहायक भाषा अंग्रेजी विशिष्ट कार्य-कलापोंमे व्यवहृत होती रहे, यथा अुच्च स्तरीय शिक्षा, अतर्प्रान्तीय व्यवहार, राज-नीतिक रीतिनीति या वाणिज्य व्यवसाय, आदि।

हिन्दीके राष्ट्रभाषा पदपर प्रतिष्ठित हो पानेमें बाधा अन्य भाषा-भाषियोका स्वभाषा प्रेम और हिन्दीके विकासकी ढुलमुल नीति ही नहीं है; वरन् हिन्दी-प्रेमियोका कहीं कहीं अतिरिक्त आग्रह और अुनका पारस्परिक विरोध वैमनस्य भी है। हमें स्व-दोष दर्शन सर्वप्रथम करना चाहिअे और तत्पश्चात् हिन्दीतर भारतीय भाषाओंके वैभवका आकलन। अन्यान्य भाषाओंका ज्ञान अर्जित करनेमें हम किंचित् पश्चात्पद भी रहे हैं। हमने आपसी विरोधके शमनके लिये बाहरी सहायताओंकी अपेक्षा रक्खी है और अिसी आत्मघाती प्रवृत्तिका परिणाम है यह अंग्रेजीका अतिरिक्त अपराजेय प्रभुत्व। हमारी शिक्षा नीति भी अव्यवस्थित रही है, यहाँतक कि राष्ट्रीय शिक्षाका कोअी निश्चित स्वरूपही आजतक प्रवर्तित नहीं हो पाया। परिणामतः

राष्ट्रभाषाका अभ्युत्थान तो कहीं दूरस्थ वस्तु है अुसके स्थिरीकरणके सम्बंधमें भी हम कोअी निर्णय नहीं कर पाते हैं।

अिस समस्याका समाधान किस प्रकार किया जाय? मेरे मनमें कतिपय विकल्प* हैं। अुन्हें मै यहाँ प्रस्तुत करूँगा —

१. अंग्रेजीको राष्ट्रभाषा मान लिया जाये। संस्कृति-विहीन, ज्ञान-रहित और असभ्य हम नहीं हैं। अिस कारण यह मत हमें स्वीकृत नहीं होगा। यों, कअी देशोंमें जो हुआ है, अुसीका हम भी अनुकरण करेंगे। जैसे—अमेरिका केनेडा, आस्ट्रेलिया आदि।

२ रूस, जपान, आयर्लेंड, अिजराअिल, तुर्की आदि देशोंकी भाँति हम स्वभाषा हिन्दीको ही तत्काल राष्ट्रभाषा मान ले। अुसके प्रयोगमें धीरे-धीरे, हम सक्षम होते जावेंगे और उसकाकार्य-क्षेत्र क्रमश बढाया जा सकेगा। स्वदेशाभिमानी देशोंका यही अुदाहरण है।

३ राष्ट्रभाषाके प्रश्नको समाप्त कर दिया जाय। आशय यह है कि हम यही निश्चय कर ले कि हमारी राष्ट्रभाषा नहीं है। जो चाहे जिस भाषा का प्रयोग करे, और जिसे समझना हो, अुसे समझे, न समझना हो, न समझे। यह भाषायी अराजकताकी स्थिति है—नवपाना व्यवहार। यह नासमझी किसी को पसद नहीं आयेगी।

४ दो या तीन प्रमुख भारतीय भाषाओंको राष्ट्रभाषा मान लिया जाय और यह कार्य मतगणनाके आधारपर हो। यह प्रस्ताव आंशिक रूपसे तमिल, बगला और हिन्दी भाषा-भाषी सम्भवत स्वीकार कर पायेंगे, पर अन्य भाषाभाषी अिसे अत्याचार तक समझेंगे। यह स्विटजरलैंड आदर्श होगा, पर तब असन्तुष्ट लोगोंके लिये हमारा कोअी प्रदेय शेष नहीं होगा।

५ सभी भाषाओंको राष्ट्रभाषाका पद-गौरव सप्राप्त हो जाय। परिणाम यही होगा, जिसका निर्देश विकल्प सख्या तीन में किया गया है।

६ हिन्दीका आग्रहही छोड दिया जाय। देशवासियोंको लाभ और सुविधा होगी, सो अन्तत सभी तर्क-जाल अपने आप खडित हो जायेंगे। एक सहस्र वर्षपर्यन्त हिन्दी लोकभाषाके पदपर स्वत समासीन रही है। वह राज-भाषा कभी नहीं रही। अिसी रूपमें अुसकी वास्तविक महत्ता है। राष्ट्र-भाषा जो हो, हो। यदि हिन्दी अुपादेय जान पडे तो अुसे रक्खें, न जान पडे न रक्खें। वह लोकमानसकी यदि राजहंसिनी है, तो अुसकी गरिमा शत-शत राष्ट्रभाषाओंसे कहीं अधिक है। पर हमारा देश एक प्रजातन्त्र है और वह हिन्दीके श्मशान पर अपना राजमहल खड़ा करनेका दुस्साहस कर नहीं सकता।

*सम्पादकोंका इन विकल्पोंसे सहमत होना अनिवार्य नही है।

७. मेरा मत कहिये या परामर्श, अिस दुर्दान्त अवस्थामें यही है कि किसी भी स्वाभिमानी देशके मनमें अुसकी राष्ट्रभाषाके लिये सहज अनुराग होना चाहिअे। वह प्रेम नहीं, सम्मानकी भी अधिकारिणी है। जबतक हम राष्ट्रभाषाका समादर कर पाना सीख नहीं लेते और राष्ट्रभाषाकी मांग हिन्दीतर क्षेत्रोंसे प्रस्तुत नहीं की जाती, तबतक अिस प्रश्नको स्थगित रखना चाहिए। जिस भांति और जैसा भी काम हो रहा है, होता रहेगा। यही तो शासनकी नीति है। अन्तर यही है कि शासन अपनी नीतिका आरोप करता है और मैं चाहूंगा कि हिन्दी जनमानसमें प्रतिष्ठित हो। हम अुसे भीतरसे पाना चाहें, वह अूपरसे न लादी जाय। अंग्रेजी हमने लाद रक्खी है और अुसका भार हिन्दीकी अपेक्षा कुछ लोग हलका भी अनुभव कर रहे हैं। धीरे-धीरे हमारा अंग्रेजीपर क्या विशेषाधिकार न हो जायगा? ज्ञान-विज्ञान और साहित्यके क्षेत्रमें क्या हम अंग्रेजीके माध्यमसे विश्व-प्रतिष्ठा भी अर्जित न कर लेंगे? हिन्दी तो सीमित क्षेत्रकी भाषा है। संक्षेपमें, संकीर्णता और अनुदारताका अुन्मूलन हमारे राष्ट्रीय जीवनकी प्राथमिक आवश्यकता है। हिन्दीकी मांग भीतरसे हो, बाहरसे अुसे आरोपित न किया जाय।

## समाधान

अेक बात और सभी देशोंमें राष्ट्रभाषाकी पुरानी परंपराने विकसित होकर प्रायः आधुनिक भाषाओंके रूपमें परिणति पायी है। हमारे यहां प्राकृत-अपभ्रंश भाषाओंके पश्चात् फारसी, अुर्दू, अंग्रेजी, आदिका राजकाजमें प्रयोग होता रहा है। अतअेव हिन्दीको प्रतिष्ठित करनेमें स्वभावतः कठिनाअी हो रही है। पर आपद्धर्म समझकरही हमें अब अुपयुक्त निर्णय कर लेना चाहियें।

निष्कर्ष यह है कि हिन्दीको अेक समस्याका रूप देकर राष्ट्रभाषाके प्रश्नकी पक्की गांठ बांध दी गयी है। अब अंग्रेजीको सहायक या सखी भाषा कहकर हम जो कुछ थे, वही बने रहनेका आधार खोज रहे हैं। निष्क्रियताके वातावरणमें और तात्कालिक विरोध-शमनके प्रयोजनसे प्रतिकार कुछ किया भी क्या जा सकता है? राष्ट्रभाषाकी गांठको या तो अेक झटकेके आघातसे काट दिया जाय या समाज धीरे-धीरे अपने आप अुसकी कसकका अनुभव करे। और कोअी अुपाय नहीं है।

वस्तुतः भाषायी विवाद जातीय, साम्प्रदायिक अथवा प्रांतीय मनोभावोंकी भांति मध्ययुगीन अतः प्रकृतिकी अुपज है। भाषा विचार-विनिमयका

साधन है, और अुसके लिये अितना आवेश, अितना विवाद और यह अशोभन संघर्ष निष्प्रयोजन है। जहाँ राष्ट्रभाषाके प्रश्नके कारण राष्ट्रीय अेकता खतरेमें पड़ जाय, वहाँ अुस राष्ट्रकी नींव कितनी खोखली है, और अुसका भविष्य कितना अनिश्चित है? अिसका अनुमान भी क्या किया नहीं जायेगा? भाषा सांस्कृतिक सम्पत्ति है और अुसका राजनीतिक अस्तित्व तभी तक सुरक्षित है, जबतक अुसका जन-जीवनसे अविच्छेद्य संबंध विद्यमान है। हिन्दीके राष्ट्रवाणी कहलानेका राजपथ आज असिद्ध-प्राय है। अतअेव अुसके लोकवाणी बन जानेका जनपथही प्रशस्त समझना चाहिये।

---

## ४३ : राष्ट्रभाषाकी समस्यापर पूर्णवादी दृष्टिकोणसे कुछ विचार।

[ अिस लेखके लेखक विद्वद्वर डॉ. रामचन्द्र प्रह्लाद पारनेरकर, पीअेच् डी. अेक महान् दार्शनिक, कवि, लेखक और विचारक हैं। आध्यात्मिक क्षेत्रमें वे अेक पहुँचे हुअे सिद्ध पुरुष और प्रख्यात पंडित हैं। "पूर्णवाद-दर्शन"पर अुन्हें संस्कृत महाविद्यालय, वाराणसीसे पीअेच् डी. की अुपाधि मिली है। अुन्होंने अपने पूर्णवादी दृष्टि-कोणसे राष्ट्रभाषाकी समस्यापर जो विचार दिये हैं, वे द्रष्टव्य हैं। ]

### राष्ट्रभाषाकी समस्या

जीवनके प्रत्येक अंगपर तर्कसम्मत युग-सापेक्ष विचार करना आजके युगकी अेक विशेषता है। अिस दृष्टिसे पूर्णवाद मानव-जीवनको अीश्वरकी अेक अनमोल देन मानता है और चूंकि जीवनसे कोअी चीज छूट नहीं सकती, अतः राष्ट्र-भाषाकी समस्याभी पूर्णवादकी विचार-सरणिके अन्तर्गत आ जाती है। राष्ट्रभाषाकी समस्या राष्ट्रकी समस्या है। भारत अेक राष्ट्र है, अतः भारतकी राष्ट्रभाषाकी समस्या भारतीय जन-जीवनकीही समस्या मानी जायेगी, और अुसपर जीवन और काल-सापेक्ष विचार करना सर्वथा औचित्यपूर्ण होगा। हमारे मतसे राष्ट्रकी सामाजिक भावनात्मक अेकताको प्रस्थापित कर अुसे सुदृढ़ आधार प्रदान करनेवाला सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण साधन और माध्यम राष्ट्रभाषाही हो सकती है।

## राष्ट्रभाषाकी सक्षमता

यों संस्कृतिके माध्यमके रूपमें भी राष्ट्रभाषाका महत्त्व बतलाया जाता है, और अिसी सन्दर्भमें राष्ट्रभाषाकी कओी परिभाषाअें हमारे सामने आयी हैं। यथा—जिसे सबसे अधिक लोग सरलतासे समझते हैं, अथवा जो आमफ़हम भाषा है, वही राष्ट्रभाषा बन सकती है; किन्तु सही अर्थमें राष्ट्रभाषाकी सक्षमता अुसके भावनात्मक अेकता निर्माण करनेके सामर्थ्यसे सिद्ध होती है। जिस भाषामें यह शक्ति होगी, वही राष्ट्रभाषा हो सकती है।

## केवल प्रचार निरर्थक है

हमारे सामने आज यह प्रश्न कदापि नहीं है कि राष्ट्रभाषा कौनसी हो। क्योंकि भारतीय संविधानके द्वारा राजभाषाके नाते देवनागरी-लिपिमें लिखी जानेवाली हिन्दी राष्ट्रभाषा घोषित की गयी है। अतः हमारा यह प्रयत्न होना चाहिये कि हिन्दी हमारी राष्ट्रीय भावनात्मक अेकता निर्माण कर सकनेमें सक्षम बने। पन्द्रह-बीस वर्षोंके अरसेके बाद भी यदि हम वास्तविक परिस्थितिका निरीक्षण करते हैं तो यह प्रतीत होता है कि यह अेकता अपने असली अर्थमें निर्माण नहीं हुअी है।

"भावनात्मक अेकता होनी चाहिये" अिस मंत्रका प्रचार तो बहुत होता है; पर केवल घोषणा और प्रचारसे अुसका निर्माण असंभव है। घोषणा और प्रचारके साथ-साथ देशव्यापी पैमानेपर जमकर कार्य होना चाहिये और वहीं विशेष सतर्कताकी आवश्यकता है।

## प्राचीन कालमें संस्कृतने भावनात्मक अेकताका कार्य सम्पन्न किया

प्राचीन कालमें संस्कृतको राष्ट्रभाषा घोषित नहीं किया गया था; किन्तु आसेतु हिमाचल तथा द्वारकासे जगन्नाथपुरीतक आर्य और द्रविड़भाषा-परिवारके भाषा-भाषी लोग गीर्वाण लिखते-पढ़ते थे और राज्य-व्यवहार, आज्ञा, आदेश आदिके लिये अुसकाही अुपयोग करते थे। अिसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि दक्षिण पथकी भाषाओंमें संस्कृतके शब्द पाये जाते हैं। अिसी परम्परामें आनेवाली प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओंने भी किसी युगमें अिसी सर्वांगीण अेवम् सामाजिक अेकताका कार्य सम्पन्न किया था। सम्राट अशोकके शिलालेख व आज्ञापत्रादि अिसके प्रमाण प्रस्तुत करते हैं; किन्तु जब संस्कृत व्याकरणके जटिल नियमोंसे लद गयी, तबसे "संस्कृत भाषा कूपजल, भाषा बहता नीर" को सार्थक करते हुअे संस्कृत मृत भाषा बन गयी।

राजभाषा हिन्दीको यदि राष्ट्रभाषा हिन्दीके नाते भावनात्मक सामाजिक अैक्यकी भावनाका परिपोष करना है, तो अुसमें पार्थक्य निर्माण करनेवाले

जितने दोष आज दिखाओ देते हैं, अुनसे अुसे मुक्त होना पड़ेगा। तात्पर्य यह है कि हिन्दीके प्रचारक हिन्दीतर भाषा भाषियोंकी भावनाओंको समझकर अेवम् अुनका आदर और प्रतिष्ठासहित कद्र कर, अुनमें बलपूर्वक प्रचार न करते हुअे प्रत्युत प्रेम-पूर्वक मैत्री भावनासे कार्य करें तो अधिक अच्छा होगा। अिससे हिन्दी निश्चयपूर्वक भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीय भावनाओंका स्वयंसिद्ध माध्यम बन जायेगी।

## प्रचारके बदले विचारकी आवश्यकता

'अेक हृदय हो भारत-जननी" 'समाना हृदयानि व', "राष्ट्रभाषाकी सेवा मानवताकी सेवा है" तथा 'राष्ट्रभाषाके बिना राष्ट्र गूंगा है' जैसे घोष वाक्य प्रचारके लिये बड़े बढ़ियासे प्रतीत होते हैं परन्तु प्रचारके अभिनिवेशमें आकर हम मानवका हृदय पक्ष और अुसकी भावनाओंकी कद्र करना भूल जाते हैं। प्रचार जब करना आवश्यक था, तब बहुत अच्छे ढंगसे और जोर-जोरके साथ यह किया गया। अिसका प्रमाण राष्ट्रभाषा-प्रचार करनेवाली अनेक संस्थाअें और अुनकी प्रचार-परीक्षाअें तथा अुनके परीक्षोत्तीर्ण स्नातक देंगे। अैसी संस्थाओंमें हिन्दी-साहित्य सम्मेलन प्रयाग दक्षिण-भारत हिन्दी प्रचार-सभा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा-सभा पूना तथा अैसी अन्य कओ संस्थाअें आती हैं।

[स्वातन्त्र्य प्राप्तिके पूर्व राष्ट्रभाषा सीखना अेक विधायक कार्य माना जाता था परन्तु अब तो संविधानके द्वारा हिन्दी राजभाषा मान ली गयी है अतः अुसके पठन-पाठनकी व्यवस्था कम से कम माध्यमिक कक्षाओंके स्तरतक अनिवार्य रूपसे की गयी है। अतः अब अुसे सीखना अेक राष्ट्रीय कार्य न होकर अेक अनिवार्य आवश्यकता सी हो गयी है।] राष्ट्रभाषाके नाते भावना और हृदयके प्रेम सम्बन्धके स्थानपर अब हिन्दी प्रचार करते समय लोगोंपर दबाव डाला जाता है, जिससे आतंक और भय अुत्पन्न हो जाता है। अिसके लिये दोषी कौन है?

## क्या हिन्दी-प्रचारकोंका यह अुत्तरदायित्व नहीं है?

अेक तरफ तो दक्षिणके लोग कालगत आवश्यकताकी अनिवार्यतासे हिन्दीका विशेष अध्ययन कर हिन्दीमें नैपुण्य प्राप्त करनेमें अधिक संख्यामें लगे हुअे हैं और दूसरी ओर वे प्राणपणसे हिन्दीका विरोध भी कर रहे हैं। अिसका रहस्य क्या है?

राजनीतिक और आर्थिक समस्याअें अिसके पीछे लगी हुओ हैं और कुछ निजी स्वार्थोंके कारण भी अिस परिस्थितिका निर्माण हो गया है। फलतः विदेशी

भाषा अंग्रेजोका पक्ष लेकर अुसका महत्त्व बढाया जा रहा है। 'द्रविड मुनेत्र कझगम' तथा अुसका साथ देनेवाले लोग तो पार्थक्यकी भावनासे द्रविडस्तानकी माँग करने लगे हैं।

"यह केवल राजनीतिक स्वार्थ है।" अैसा कहकर हिन्दी प्रचारक क्या अिस आपत्तिको टाल सकते हैं? क्या वे अैसे लोगोको राष्ट्रद्रोही कहकर छुट्टी पा लेंगे? अत प्रचार-मात्र हमारा कार्य नहीं है। यदि राष्ट्रभाषा भावनात्मक अेकता निर्माण करनेवाली है, तो समय-सापेक्ष, परिस्थिति निर्मित अथवा स्वार्थ मूलक राजनीतिके कारण पार्थक्यकी भावना रखनेवालोंकी बातें सुनकर प्रेमपूर्वक अुन्हें समझाकर, अुनका हृदय-परिवर्तन कर तथा अुनकी भाषा सीखकर क्या यह कार्य नहीं किया जा सकता?

## राष्ट्रभाषाके लिये राष्ट्रीय भावना और त्याग आवश्यक

जिनकी मातृभाषा हिन्दी है, अुन्हें मातृभाषाके नाते हिन्दीकी जानकारी होनेसे राष्ट्रभाषा सीखनेके लिये कोओ विशेष श्रम और त्याग नहीं करना पडता; किन्तु हिन्दीतर भाषा-भाषीको राष्ट्रभाषा सीखनेके लिये मातृभाषाका अतिरिक्त मोह छोडकर हिन्दी सीखना पडता है और मातृभाषा हिन्दी न होनेके कारण हिन्दीकी अुच्च-से अुच्च परीक्षा अुत्तीर्ण होनेपर भी अुसमे 'हिन्दीपन' नहीं आता। अत व्यावसायिक दृष्टिसे हिन्दी भाषी अुच्चतम परीक्षा पास किये हुअे या हिन्दी भाषी अधिकारी विद्वान् अपने प्रान्तके अतिरिक्त अन्य प्रान्तोमे भी स्थान पा जाते हैं; पर विशेष योग्यता प्राप्त हिन्दी भाषामे निष्णात् हिन्दीतर भाषा भाषी अिस सुविधासे वंचित रह जाते हैं।

हिन्दी भाषाकी शिक्षाकी दृष्टिसे हिन्दी भाषीको अन्य भाषा-भाषी प्रदेशोमे अध्यापनके लिये स्थान मिलना आवश्यक और अुपादेयही नहीं अपितु अनिवार्य भी है; परन्तु भावनात्मक अेकताकी दृष्टिसे और राष्ट्रभाषा राष्ट्रकी भाषा है, अिस नाते अन्य भाषा-भाषी राष्ट्रभाषा-निष्णात् अुससे वंचित रह जाअें, या अुपेक्षित रह जाअें, यह लोक-तन्त्रात्मक गणराज्यकी दृष्टिसे अुचित नहीं है। अिस प्रकारकी भावना यदि हिन्दीतर भाषा भाषीके मनमें आती है और वह हिन्दी भाषियोके आतंकसे कुछ कहता है तो अुसे हिन्दी भाषी लोग "अराष्ट्रीय" कहकर अुसकी अुपेक्षा करते हैं। अिससे भावनात्मक अेकाओ बनाये रखनेका राष्ट्रभाषाका जो मूल कार्य है, वह नष्ट हो जाता है और पार्थक्यकी भावनाको बल मिलता है।

अब, अेक प्रकारसे पूरे भारतमे, माध्यमिक कक्षाओंतक हिन्दी अनिवार्य कर दी गयी है। अत प्रचारात्मक अभिनिवेशसे युक्त होकर प्रचार न करते हुअे अन्य भाषा-भाषियोकी राष्ट्रभाषा सम्बन्धी कल्पनाओंको ध्यानमे रखकर

राष्ट्रभाषाकी समस्याका हल खोजा जाय। अैसा करते समय हृदय और बुद्धि-पक्षके समन्वय और सन्तुलनपर अधिक बल दिया जाय।

## समन्वित प्रयासकी अनिवार्यता

अैसा न होनेसे विदेशी भाषा अंग्रेजीका व्यामोह बढ़ता जा रहा है तथा राजभाषा और राष्ट्रभाषाका सेहरा प्राप्त जन-जनकी हिन्दी अुपेक्षिता और बनवासिनी बनकर रह गयी है। राष्ट्रीय दृष्टिसे यह स्थिति अभिनंदनीय नहीं मानी जायेगी। शान्ति और संयमसे विचार करनेपर अेक अुपाय सामने आता है। जिस प्रकार अन्य भाषा-भाषियोंके लिये भारत-भरमें राष्ट्रभाषाके नाते हिन्दी अनिवार्य कर दी गयी है, अुसी प्रकार विशेष रूपसे द्रविड़-परिवारकी कन्नड, तमिल, मलयालम और तेलुगुमेंसे अेक हिन्दी-भाषियोंके लिये अनिवार्य कर दी जाय, जिससे पार्थक्यकी भावना कम हो जायेगी और भावनात्मक अैक्य संवर्धन होगा। फिर यदि किसी हिन्दीतर भाषाभाषी पारंगत विद्वानमें हिन्दीपन न हो, या किसी हिन्दीभाषी तमिल, तेलुगु, मलयालम-ज्ञातामें 'तमिलपन', 'तेलुगुपन' या 'मलयालमपन' न भी हो तो कोअी अेतराज न होगा।

आज राष्ट्रभाषाको समृद्ध करना केवल हजारीप्रसाद द्विवेदी, नन्ददुलारे वाजपेयी तथा डॉ. नगेन्द्र आदि लोगोंकाही कार्य नहीं है, वरन वह प्रभाकर माचवे, रांगेय राघव, नायडू, नागप्पा आदिका भी कार्य है। जिस दिन यह तथ्य लोगोंकी समझमें आ जायगा, अुस दिन राष्ट्रभाषा-सम्बन्धी सारे विवादोंका अन्त हो जायगा। तात्पर्य यह है कि राष्ट्रभाषाकी प्रगतिके लिये सारे भारत-वासियोंका समन्वित प्रयास अनिवार्य है।

## हिन्दी-भाषी द्रविड़-कुलकी भाषाअें सीखें।

हिन्दी केवल अिसलिये राष्ट्रभाषा नहीं है कि अुसे बहुसंख्य भारतीय जानते हैं और न वह अिसलिये राष्ट्रभाषा बनी है कि वह सरल और आम-फहम भाषा है, प्रत्युत वह अिसलिये राष्ट्रभाषा है कि अुसे केवल हिन्दी भाषियोंने ही नहीं अपितु सारे भारतवासियोंने, अर्थात् हिन्दी और हिन्दीतर भाषा भाषियोंने भारतीय संविधानमें अपनी मान्यता प्रदान की है। अितना समझ लेनेपर भी अिस तथ्यकी अुपेक्षा नहीं की जा सकती कि हिन्दी भाषा-भाषी और हिन्दी पढ़ने-लिखने और समझनेवालोंकी तुलनामें हिन्दीतर भारतीय भाषाओंके जाननेवालोंकी संख्या और अनुपात अधिक है। अतः केवल अधिक-से-अधिक संख्यामें लोग हिन्दी जानते हैं यह तर्क असंगत होगा।

राष्ट्रभाषाकी वास्तविक प्रतिष्ठाके लिये जब हिन्दी-भाषियोंसे अेक अन्य-भाषा सीखनेके लिये कहा जाता है तो वे प्रायः आर्य-परिवारकी ही भाषाअें (जैसे—

गुजराती, बंगाली या मराठी) सीखते हैं, किन्तु द्रविड-कुलकी भाषाओं नहीं सीखते। क्योंकि आर्य-परिवारकी भाषाओं हिन्दीवालोंके लिये द्रविड कुलकी भाषाओंसे आसान जान पड़ती हैं। अस्तु, भावनात्मक अेकताकी दृष्टिसे यदि हर हिन्दी भाषा-भाषी दक्षिणकी अेक भाषा सीखे तो आतंकके स्थानपर प्रेमकी निर्मिति हो जायेगी तथा पारस्परिक सौहार्द्र अेव विश्वास बढ़ेगा और राष्ट्रभाषाकी समस्या सुलझ जाअगी।

आज जो राष्ट्रभाषाका प्रचार-कार्य चल रहा है या प्रयत्न हो रहे हैं, वे हमारे देशवासियोंमें भावनात्मक अेकताकी वृद्धि करनेके बदले पृथगात्मकता अेवम् विघटनात्मक कार्यकी ओर अधिक अग्रसर दिखाओी दे रहे हैं। अत भावनात्मक अेकताके लिये विचारपूर्वक प्रयत्न होना चाहिये, जिससे राष्ट्रीय जीवनमें भाषा-समस्याका निरसन हो सके।

---

## ४४ : हमारी अुच्च शिक्षा और अुसका माध्यम।

[यह लेख स्व आचार्य ललिताप्रसादजी सुकुल, अध्यक्ष हिन्दी-विभाग, कलकत्ता विश्व-विद्यालय, कलकत्ता-द्वारा पूना विश्व-विद्यालयमें दिये गये अंग्रेजी भाषणका हिन्दी अनुवाद है। आचार्य सुकुल भारतीय साहित्यके मर्मज्ञ तथा हिन्दी-भाषाके प्रख्यात विद्वान थे। वे भारतकी वर्तमान भाषावादी अराजकताके कट्टर विरोधी थे, तथा राष्ट्रीय भावनात्मक अैक्य और सांस्कृतिक समन्वयके लिये भारतीयविश्व विद्यालयोंमें राष्ट्रभाषाको ही शिक्षाका माध्यम देखनेके अिच्छुक थे। शिक्षा-शास्त्र और व्यावहारिक दृष्टिसे अुन्होंने अिस लेखमें जो तर्क दिये हैं, वे विचारणीय हैं।]

### प्रान्तीयता और भाषावाद

हमारे दैनन्दिन जीवनसे अँग्रेजीके प्रभुत्वको हटानेके लिये गान्धीजीकी जोरदार दलीलें और लगातार चेतावनीके बाद भी हमारे सामने यह समस्या बड़े जटिल रूपमें आ खड़ी हुआी है कि हमारी अुच्च शिक्षाका माध्यम क्या हो ? यों तो भारतीय गणराज्यमें सम्मिलित सभी प्रान्तोंको अिकाअियोंका महत्त्व दिया गया है। अत स्वाभाविक रूपसे ये अिकाअियाँ प्रत्येक क्षेत्रमें अपनी

वैयक्तिकताके महत्त्वका अनुभव करने लगी हैं। वस्तुतः तालीमी-संघ वर्धा-द्वारा प्रचारित और प्रसारित शिक्षा-योजनाको भारत-सरकारने सभी प्रान्तोंमें शिक्षाके प्रचारका निर्देशक-आधार स्वीकार कर लिया है; किन्तु मूलतः यह योजना केवल प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षाके लिये ही आँकी गयी थी और अनेक कारणोंसे अुच्च शिक्षाका प्रश्न अुक्त योजनाके सूत्रधारोंद्वारा छोड़ दिया गया था, परन्तु आजकल विविध प्रान्तोंके शिक्षणाधिकारियों-द्वारा अुक्त योजना न्यूनाधिक मात्रामें स्वीकार की जा चुकी है। अुदाहरणार्थ :—वर्धा-योजनामें यह बात स्वीकार कर ली गयी है कि सभी प्रान्तोंमें प्राथमिक शिक्षाका माध्यम मातृभाषाही हो। यह तथ्य सर्वथा अुचित है। क्योंकि प्रारंभमें स्वभावतः बच्चा अपनी मातृभाषा सरलतासे सीख लेता है; फिर माध्यमिक शिक्षाके स्तरतक पहुँचते-पहुँचते अुसके बौद्धिक विकासका स्तर अितना बढ़ जाता है कि वह देशकी सामान्य भाषाको सीखनेके लिये प्रेरित किया जा सकता है। अिससे हमारे देशका कोअी भी नागरिक अपनेही देशके विभिन्न प्रदेशोंमें यात्रा करते समय 'अजनबी' और 'विदेशीपन'की हीन-भावनाका शिकार नहीं होगा। अूपर अुठाये गये कदमके समर्थनमें और भी कअी व्यावसायिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक कारण न्यायसंगत हो सकते हैं; किन्तु दुर्भाग्यसे आजकल विभिन्न प्रान्त अपने-अपने कार्य-संचालनके लिये भाषाके माध्यमका निर्वाचन करनेमें बड़ी अुतावली कर रहे हैं, जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय शिक्षा-योजनामें भारी व्यवधान होगा।

## प्रान्तीय सरकारोंकी रीति-नीति

प्रायः प्रत्येक प्रान्तीय सरकारने अपनी राज्यभाषाको कार्यालयीन भाषा (दफ्तरी काम-काजकी भाषा) घोषित कर दी है। यदि यह नीति प्रादेशिक सरकारोंके दिन-प्रतिदिनके राज्य-कार्य-संचालनतकही सीमित होती, तो अिसके विरोधमें कुछ अधिक करनेकी गुंजाअिश नहीं रहती; किन्तु जैसा कि देखा जा रहा है, अिस नीतिने सभी प्रादेशिक भाषाओंको अुच्च शिक्षाके माध्यमकी अधिकारिणी होनेका स्वत्वाधिकार दे दिया है, जिसका परिणाम आगे चलकर बहुत अहितकर हो सकता है।

## प्रान्तीय भाषाओंके अति मोहका दुष्परिणाम

भावुकतासे परे निरपेक्ष बुद्धिसे यदि अिस समस्यापर विचार किया जाय तो पता चलेगा कि अुच्च शिक्षाके लिये जिस प्रकारके शास्त्रीय-साहित्यकी आवश्यकता है, अुसे बहुत विशाल पैमानेपर प्रस्तुत करनेकी सर्वांगीण सामर्थ्य बड़ी मुश्किलसे भारतकी दो या तीन प्रादेशिक भाषाओंमें है। हमारी किसी भी भाषा-भगिनीकी महत्ताको आघात पहुँचाये बिना यह कहा जा सकता है कि

प्रान्तीय भाषाओंके प्रति यह अवांछनीय अबाध प्रेम व्यर्थही प्रान्तीय सरकारोंको येन केन प्रकारेण अपनी-अपनी भाषाओंमें आवश्यक शास्त्रीय-साहित्य और वैज्ञानिक शब्दावली जुटानेके लिये अुकसाअेगा। परिणाम यह होगा कि अधिकांश प्रान्तीय भाषाअें, जिनमें शक्ति और सामर्थ्यका अभाव है, अेक या दो सशक्त भाषाओंमें अनुवादद्वारा अपनी शब्द और साहित्य-सम्पदा बढ़ानेका प्रयास करेंगी; किन्तु जिन भाषाओंसे यह अनुवाद किया जायगा, अुनकी शक्ति-सम्पन्नताके अभावोंके फलस्वरूप जो भी अनुवाद होगा, वह बहुत सस्ता और बेडौल होगा। अतः अिस कार्यके लिये जितनी शक्ति, सम्पत्ति और समयका व्यय होगा, अुसकी अुपयुक्तता न्याय-संगत सिद्ध करना कठिन होगा।

दूसरे, प्रान्तीय भाषाके प्रति अवांछनीय मोह अन्ततः प्रान्तीयताके विभाजक तत्त्वोंको जन्म देगा, जिससे राष्ट्रीयताके संगठन-सूत्र छिन्न-भिन्न हो जायँगे।

तीसरे, अिस प्रकारकी भावनाके पथका अनुसरण आगे चलकर देशकी प्रतिभाको अेक दुर्भाग्यपूर्ण क्षेत्रीय सीमामें बाँध देगा। दूसरी भाषाओंसे अनभिज्ञ और आद्यन्त प्रान्तीय भाषामें शिक्षा प्राप्त करनेवाला कोअी भी विद्वान्—चाहे वह कितना ही महान् क्यों न हो—सारे देशके लिये लगभग अनुपयोगी ही सिद्ध होगा। क्योंकि किसी भी देशकी सामान्य भाषा ही एक अैसा माध्यम है, जो क्षेत्रीयताकी संकीर्णतासे परे प्रतिभाके विकासमें सहायक हो सकती है। अिस तरहका नुकसान भी देशके लिये दुर्भाग्यसे कुछ कम नहीं होगा।

## सांस्कृतिक अैक्यका आधार

विश्वव्यापी सभ्यतामें सर्वत्र अेक देशकी सांस्कृतिक अेकता विरल वरदान है और यह तभी संभव है जब कि हर देशके निवासी अपनी बुद्धि और आत्माके क्षेत्रमें अेक सामान्य-सम्बन्ध-सूत्रका अनुभव करते हों। अिस देशमें समान भाषा या विशेषकर सामान्य भाषा अेक बड़ा प्रभावशाली तत्त्व है। अतः जहाँतक अुच्च शिक्षाके माध्यम [और तत्सम्बन्धी नीतिका प्रश्न है, बड़ी गंभीरतापूर्वक और तटस्थतासे विचार करनेपर यही निष्कर्ष निकलता है कि अुच्च शिक्षाके माध्यम और सांस्कृतिक अैक्यके लिये अेक और अेकही सामान्य भाषा होनी चाहिये।

## अुच्च शिक्षाके माध्यमके रूपमें अनेक भाषाओंका प्रयोग बाधक होगा

विशेषकर जब सभी प्रान्तोंमें शिक्षाके माध्यमिक स्तरपर अेक सामान्य भाषा अनिवार्य रूपसे पढ़ायी जानेकी नीति स्वीकार कर ली गयी है, अुच्च शिक्षाके माध्यमकी कठिनाअी अपने आप हल हो जाती है। क्योंकि माध्यमिक

शिक्षाकी सीढ़ीको पार करते-करते यह अनुमान किया जा सकता है कि प्रत्येक छात्र देशकी सामान्य भाषासे भली भाँति परिचित है और वह अुसके माध्यमसे अच्छी गतिसे अपने आगामी अध्ययनमे भावी प्रगति कर सकता है। आजकल हमारी सभी प्रान्तीय भाषाओंमे वैज्ञानिक अेवम् शास्त्रीय शब्दावलीके परिनिष्ठीकरण और प्रयोगके लिये बडा पसीना बहाया जा रहा है और यह कार्य हमारी अपेक्षासे भी अधिक तीव्र गतिसे हो रहा है। अतअेव अैसी स्थितिमे अुच्च शिक्षाके लिये अक से अधिक भाषाओंको माध्यमके रूपमे स्वीकारा गया तो वे अनिवार्यत सहायक नहीं, बाधक ही होंगी।*

## ४५ : आधुनिक भारतीय भाषाओंमें अँग्रेजीका स्थान और राष्ट्रभाषाकी समस्या।

[प्राध्यापक डॉ भगवानदास तिवारी अेम् अे, पीअेच् डी अेक कुशल कवि, कहानीकार, अुपन्यासकार तथा शोध-कर्ता है। अभिव्यजना उल्कापात, श्री समर्थरामदास जीवनी और तत्त्वज्ञान, देवनागरी लिपि स्वरूप, विकास और समस्याएँ, आदि आपकी सुप्रसिद्ध रचनाएँ हैं। "मीराकी भक्ति और अुनकी काव्य साधनाका अनुशीलन" शोध प्रबन्धपर आपको सागर विश्व विद्यालयसे पीअेच् डी की अुपाधि प्राप्त हुअी है। सम्प्रति आप कला और वाणिज्य महाविद्यालय, भुसावलमें हिन्दी विभागके अध्यक्ष हैं तथा "हिन्दी-साहित्यके कृष्ण-काव्यमे रास," विषय पर डी लिट् के लिये शोध काय कर रहे हैं।]

*सविधानकी मान्यता*

भारतीय सविधानकी ३४३ वीं धारामे जिस बातका अुल्लेख किया गया है कि सघकी राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। सघके राजकीय प्रयोजनोंके लिये प्रयुक्त होनेवाले अकोंका रूप भारतीय अकोका आन्तर-राष्ट्रीय

* भारतीय सविधान-द्वारा मान्य हिन्दीही अुच्च शिक्षाका माध्यम हो सकती है। —सपादक

रूप होगा। अिस संविधानके प्रारम्भसे पन्द्रह वर्षकी कालावधिके लिये संघके अुन सभी राजकीय प्रयोजनोंके लिये अंग्रेजी भाषा प्रयोग की जाती रहेगी, जिनके लिये अुसे प्रारम्भके ठीक पहले वह प्रयोगकी जाती थी।

अिसके अुपरान्त हमारे भूतपूर्व राष्ट्रपतिजीने राजभाषासम्बन्धी संसदीय समितिकी सिफारिशोंपर जो निर्णय दिये थे, अुनमें निर्णय-क्रमांक ३ में कहा गया था कि १९६५ तक अँग्रेजी मुख्य राजभाषा रहेगी और हिन्दी गौण राजभाषा रहेगी। १९६५ के बाद जब हिन्दी केन्द्रकी राजभाषा बन जाअेगी तो अँग्रेजी अेक गौण राजभाषाके रूपमें जारी रहेगी।

## क्या १९६५ के बाद हिन्दी प्रमुख और अँग्रेजी गौण राजभाषा होगी?

संविधानकी अुक्त मान्यताओंको निर्धारित हुअे वर्षों बीत गये हैं, किन्तु सही अर्थोंमें हिन्दीके केन्द्रकी राजभाषा बननेके कोअी आसार नजर नहीं आ रहे हैं। आजभी भारतीय साहित्य और शिक्षित समाजमें अँग्रेजीका स्थान सर्वोपरि है। अँग्रेजीही हमारी राजभाषा, अँग्रेजीही हमारी आराध्य भाषा और अँग्रेजीही हमारी ज्ञान गंगाका मूल उत्स है। राष्ट्रभाषाका सेहरा धारण करनेवाली हिन्दी तो केवल नामकी राष्ट्रभाषा है, राष्ट्रीय भावनाके प्रदर्शन और मन-बहलावका साधन है। राजभाषा बननेकी मान्यता-प्राप्त अधिकारिणी होनेपरभी वह असहाय और परमुखापेक्षी है और यदि अुसके विकासका रवैया ऐसा ही रहा, जैसा कि पिछले बारह वर्षोंमें रहा है, [तो १९६५ तो क्या २०६५ तक भी अँग्रेजी प्रमुख राजभाषा और हिन्दी गौण राजभाषा रहेगी, इसमें सन्देह नहीं है। यदि विश्वास न हो तो वर्तमान भारतीय साहित्यमें अँग्रेजी, हिन्दी तथा अन्य प्रादेशिक भाषाओंकी साहित्यिक सम्पदा और उनकी नूतन उपलब्धियोंकी स्थिति देखिये।

## प्रकाशित भारतीय साहित्य, सन् १९६१–६२

[भारत सरकारके पुस्तक-प्रदान नियम सन् १९५४ के अनुसार प्रत्येक प्रकाशकको अपने द्वारा प्रकाशित ग्रन्थकी अेक प्रति बम्बअी, कलकत्ता और मद्रासके राष्ट्रीय ग्रंथालयोंमें भेजना आनिवार्य है। अिस नियमसे सबसे बडा फायदा यह है कि हमें सभी प्रकाशित भारतीय साहित्य अेक साथ, अेकही समयमें, अेकही स्थानपर मिल जाता है।]

सन् १९६१–६२ में कलकत्ताके राष्ट्रीय ग्रंथालयमें आये हुअे कुल प्रकाशित ग्रंथोंकी संख्या २१,०७६ थी, जिनमें समाचार-पत्र, सामयिक तथा धारावाहिक प्रकाशनोंका समावेश नहीं था। अिस आगत प्रकाशनका राज्यानुसार ब्यौरा निम्न प्रकारसे है —

| क्रमांक | राज्यका नाम | प्राप्त ग्रंथोंकी संख्या | क्रमांक | राज्यका नाम | प्राप्त ग्रंथोंकी संख्या |
|---|---|---|---|---|---|
| १ | अंदमान निकोबार द्वीपसमूह | १ | ११ | मद्रास | २८६१ |
| २ | आन्ध्र प्रदेश | १०८४ | १२ | महाराष्ट्र | ३१५१ |
| ३ | आसाम | ३२० | १३ | मणिपूर | ३ |
| ४ | बिहार | १६४ | १४ | म्हैसूर | ६३२ |
| ५ | दिल्ली | ३८२८ | १५ | उड़ीसा | ३५६ |
| ६ | गुजरात | १०६६ | १६ | पंजाब | ९६२ |
| ७ | हिमाचल प्रदेश | ३३ | १७ | राजस्तान | १३९ |
| ८ | कश्मीर | ३ | १८ | त्रिपुरा | ४७ |
| ९ | केरल | ८८८ | १९ | उत्तर प्रदेश | २०५५ |
| १० | मध्य-प्रदेश | ४६२ | २० | पश्चिम-बंगाल | ३०२१ |
| | | | | | कुलयोग = २१,०७६ |

प्रकाशित ग्रन्थोंकी संख्याके उक्त आधारपर दिल्ली (३८२८,) महाराष्ट्र (३१५१) और पश्चिम बंगाल (३०२१) को क्रमशः प्रथम, द्वितीय और तृतीय स्थान प्राप्त होता है। इनमेंभी दिल्लीके प्रथम आनेका एक महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि हिन्दीका प्रमुख प्रकाशन-केन्द्र होनेके अतिरिक्त, केन्द्रीय सरकारके अधिकांश प्रकाशन वहींसे होते हैं।

## अँग्रेजीका अधिकारी वर्चस्व

उक्त प्रकाशित ग्रंथोंका जब भाषावार वर्गीकरण किया गया तो पता चला कि भारतकी बहुचर्चित राष्ट्रभाषा हिन्दीसे लगभग चौगुनी पुस्तकें अँग्रेजीमें प्रकाशित हुई हैं। १९६१ के भारतीय प्रकाशनका भाषावार विवरण देखिये —

| क्रमांक | भाषा | प्रकाशित ग्रंथ | क्रमांक | भाषा | प्रकाशित ग्रंथ |
|---|---|---|---|---|---|
| १. | असमिया | १७३ | ९ | मराठी | १०३८ |
| २ | बंगाली | २०४३ | १० | उड़िया | १८९ |
| ३ | अँग्रेजी | ९३६१ | ११ | संस्कृत | १६८ |
| ४ | गुजराती | ९६६ | १२ | तमिल | ८८६ |
| ५ | पंजाबी | ७६४ | १३ | तेलुगू | ९२४ |
| ६ | हिन्दी | २८०५ | १४ | उर्दू | ४३२ |
| ७ | कन्नड | ४११ | १५ | अन्य भाषायें | २२० |
| ८. | मलयालम | ६९६ | | | |
| | | | | | कुलयोग = २१,०७६ |

अुपरोक्त विवरणसे पता चलता है कि सन् १९६१–६२ में भारतमें जितनेभी ग्रन्थ प्रकाशित हुअे, अुनमें अँग्रेजोके ग्रन्थोंकी सख्या (९३६१) सबसे अधिक है। हिन्दीका स्थान दूसरा (२८०५) और बगालीका स्थान तीसरा (२०४३) है। हिन्दी (राष्ट्रभाषा?) की अपेक्षा स्वतन्त्र भारतमें प्रकाशित अँग्रेजी ग्रन्थोंकी संख्या ६,५५६ अधिक है। जिससे हिन्दीपर अँग्रेजोका वर्चस्व स्वयसिद्ध है ।

अिसी प्रकार द्रविड़-कुलकी चारो भाषाओं यथा तामिल, तेलुगू, मलयालम' कन्नड़में प्रकाशित ग्रन्थोका कुलयोग २९१७ है, जो अकेली हिन्दीसे ११२ अधिक है; पर अिन चारो भाषाओंके प्रकाशित ग्रंथ भी अँग्रेजीके प्रकाशित ग्रन्थोंके अेक-चौथाओ ग्रन्थोसे कुछही अधिक हैं। अिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतकी प्रत्येक आर्य और अनार्य-परिवारकी भाषासे भारतमें अँग्रेजीका स्थान निश्चित रूपसे अूँचा है।

## सन् १९६१ के भारतीय साहित्यका विषयगत वर्गीकरण

सन् १९६१में राष्ट्रीय ग्रंथालयमें आये हुअे कुल ग्रंथोमेसे निश्चित विषय मूल्य-वाले ८,९२२ ग्रंथ अलग निकालकर उनका भाषागत और विषयगत वर्गीकरण किया गया, जो पृष्ठ १७४ पर दिया गया है ।

भारतीय साहित्यकी अुक्त भाषागत और विषयगत तालिकासे पता चलता है कि सन् १९६१ के प्रकाशनोमें सर्वसाधारण विषयोपर ८६, तत्त्वज्ञान और मानसशास्त्रपर ३०, धर्मपर ८२६, सामाजिक शास्त्रोपर २९५५, भाषा-शास्त्र-पर १८७, विज्ञानपर ४२६, तान्त्रिक और अुपयुक्त विज्ञानपर ६७, ललितकला अेवं मनोरंजनपर ९८, ललितवाङ्मयमें ३६४४ तथा अितिहास, भूगोल, जीवनी आदिपर ६०३ ग्रंथ प्रकाशित हुअे । जिनमेंभी ललित साहित्यपर ४०% विज्ञान-सम्बन्धी विषयोपर ४ ५% तथा तान्त्रिक व अुपयुक्त विज्ञानपर १%सेभी कम ग्रंथोका प्रणयन हुआ । यहाँभी सारी भारतीय भाषाअें अँग्रेजीसे पिछड़ी हैं।

## राजभाषा और राष्ट्रभाषाकी तुलनात्मक स्थिति —

सन् १९६५के बाद राजभाषा बननेवाली हमारी राष्ट्रभाषा हिन्दी और वर्तमान राजभाषा अँग्रेजीमें सन् १९६१ में (सविधानमें राष्ट्रपति-द्वारा निर्धारित और घोषित अवधिसे ४ वर्ष पूर्व) ज़मीन और आसमानका अन्तर है । देखिये—

सर्वसाधारण विषयपर हिन्दीमें ७, अँग्रेजीमें ३९, (पांच गुनेसेभी अधिक); तत्त्वज्ञानपर हिन्दीमें २, अँग्रेजीमें ८ (चार गुने), धर्मपर हिन्दीमें ९६, अँग्रेजीमे १५५ (डेढ़ गुनेसेभी अधिक), सामाजिक शास्त्रोंपर हिन्दीमे ३३९, अँग्रेजीमें २०३९ (छः गुने), भाषाशास्त्रपर हिन्दीमें २७, अँग्रेजीमें ७६ (लगभग तीन गुने); विज्ञानपर हिन्दीमें ११, अँग्रेजीमें ३४ (लगभग तीन गुने), ललित कला

| भाषा | सर्वसाधारण | तत्वज्ञान | धर्म | सामाजिक शास्त्र | भाषा शास्त्र | विज्ञान | तांत्रिक अप्रयुक्त विज्ञान | ललितकला व मनोरंजन | ललित साहित्य | इतिहास भूगोल जीवनी | कुलयोग |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| असमिया | — | — | ८ | ३ | २ | १ | — | १ | ५६ | १२ | ८३ |
| बंगाली | ११ | ६ | ७६ | ११० | ११ | ४४ | ४ | २८ | ६४९ | ९७ | १०३६ |
| अँग्रेजी | ३९ | ८ | १५५ | २०३७ | ७६ | ११७ | ३४ | २७ | ३१८ | ११८ | ३००९ |
| गुजराती | ४ | १ | ४६ | ९६ | ४ | २४ | ५ | ८ | २१५ | ५८ | ४६१ |
| पंजाबी | ४ | १ | २० | ५६ | १७ | ८ | २ | ७ | १८० | १२ | ३०७ |
| हिन्दी | ७ | २ | ९६ | ३३९ | २७ | ५५ | ११ | ६ | ५८५ | ४१ | ११७७ |
| कन्नड़ | २ | २ | ३६ | २१ | — | ७ | — | १ | १०० | २७ | १९६ |
| मलयालम | १ | १ | २२ | २३ | ४ | ३ | — | १ | २८२ | ३९ | ३७६ |
| मराठी | ६ | ६ | ७० | १२९ | १७ | २६ | ४ | ६ | २९१ | ७१ | ६२६ |
| उडिया | — | १ | ९ | २१ | — | १२ | २ | १ | ६७ | ३ | ११६ |
| संस्कृत | — | — | ४० | ५ | १० | — | — | — | ४० | २ | ९७ |
| तमिल | ४ | — | ७२ | ४६ | ८ | २८ | ३ | ५ | २९५ | ४५ | ५०६ |
| तेलुगू | ७ | २ | ८६ | ४८ | ११ | १३ | — | ७ | ३८८ | ४१ | ६०३ |
| उर्दू | १ | — | ५३ | २० | — | ३ | २ | — | १५७ | २० | २५६ |
| अन्य भाषाएँ | — | — | ३७ | १ | — | ५ | — | — | २१ | ९ | ७३ |
| कुलयोग → | ८६ | ३० | ८२६ | २९५५ | १८७ | ४२६ | ६७ | ९८ | ३६४४ | ६०१ | ८९२२ |

और मनोरंजनपर हिन्दीमें ६, अँग्रेजीमें २७ (साढ़ेचार गुने); ललित साहित्यपर हिन्दीमें ५८५, अँग्रेजीमें ३१८ (यहाँ हिन्दीमें अँग्रेजीसे पौने दो गुने ग्रंथ हैं, जिनसे हिन्दीके लेखकों और हिन्दी भाषा जाननेवालोंकी ललित-साहित्य प्रियताका पता चलता है, जब कि दुनियाके साथ होनेवाली विज्ञान और वैज्ञानिक साहित्यकी तुलनामें हिंदुस्थान और हिन्दी साहित्यकी स्थिति सन्तोषप्रद नहीं कही जा सकती।); अितिहास, भूगोल, जीवनीपर हिन्दीमें ४९, अँग्रेजीमें ११८ (लगभग साढ़ेतीन गुने) ग्रंथ रचे गये हैं। कुल योगकी दृष्टिसेभी हिन्दीके ग्रंथ अँग्रेजी ग्रंथोंके एक तिहाअीके लगभग हैं।

प्रश्न है कि क्या अिसी रवैयेको लेकर सन् १९६५ के बाद हमारी तथाकथित राष्ट्रभाषा हिन्दी राजभाषा बन सकेगी ? क्या यह संभव हो सकता है ?

## अनुवाद और साहित्यिक समृद्धि

आअिअे। अनूदित भारतीय साहित्यपरभी अेक दृष्टि डाल लें। सन् १९६१ में कुल अनुवादित ग्रंथोंका योग ७७१ था। अिनमें अरबीसे ५, असमियासे १, बंगलासे १०६, चीनीसे ८, अँग्रेजीसे २७८, फरेंचसे २९, जर्मनसे २८, गुजरातीसे २६, हिन्दीसे ३८, अिण्डोनेशियनसे १, अिटालियनसे ३, जापानीसे २, कन्नड़से ३, मलयालमसे २, मराठीसे १८, नार्वेजियनसे ६, अुड़ियासे १, पंजाबीसे ८, पर्शियनसे ८, रशियनसे ३३, संस्कृतसे १०८, तमिलसे १०, तेलुगूसे ६, अुर्दूसे २० और अन्य भाषाओंसे २३, ग्रंथोंके अनुवाद हुअे। अिन अनुवादित ग्रंथोंमेंभी अँग्रेजीकी महिमा असंदिग्ध है। अँग्रेजीके २७८, संस्कृतके १०८, बंगलाके १०६, तथा हिन्दीके ३८, (?) ग्रंथोंका अन्य भाषाओंमें अनुवाद होना हिन्दी-साहित्यकी लोकप्रियता और महत्ताका बड़ा दीन-हीन प्रदर्शन है। अिसके लिये कौन अुत्तरदायी है ?

## साक्षरता, प्रकाशन और आयातके ग्रंथोंका मूल्य

पिछले सत्तर वर्षोंमें साक्षरता ४ गुनी हो गयी है, अर्थात् आजसे लगभग ७० वर्ष पूर्व भारतमें ६% व्यक्ति पढ़े-लिखे थे, और अब साक्षर व्यक्ति २३·७% हो गये हैं। अिन साक्षरोंमें प्रौढ़वर्गके साक्षरता-प्रचारसे लाभान्वित, हिन्दी तथा प्रादेशिक भाषाओंकी प्रचारक संस्थाओंसे प्रमाणपत्र प्राप्त, अँगूठा लगानेवालेसे बढ़कर अपने हस्ताक्षर कर सकनेवाले विविध भाषा-भाषी साक्षर, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयोंके पदवीधारी विद्वान, सभी प्रकारकी शिक्षण-संस्थाओंमें शिक्षा पानेवाले तरुण, देशी और विदेशी अुपधियोंसे विभूषित पारंगत आदि सभी सम्मिलित हैं।

अिनके लिये सन् १९६१ में २१०७६ ग्रन्थ प्रकाशित हुअे, अर्थात् हर दस लाख भारतीयोंके लिये ४८ ग्रन्थ प्रकाशित हुअे। जनसंख्या और प्रकाशित ग्रन्थोंका यह अनुपातभी कोअी विशेष सन्तोषप्रद नहीं है।*

अिंग्लैंड और अमेरिकामें आज लगभग अेकअेक लाख पुस्तकें बाज़ारोंमें क्रयके लिये अुपलब्ध हैं। जबकि भारतकी सभी प्रमुख भारतीय भाषाओंकी कुल पुस्तकें ३५ हज़ारके आसपास पड़ेंगी। अतअेव सभी भारतीय भाषाओंको अँग्रेजीके सक्षम बनानेके लिये १५ लाख ग्रंथोंका भारतमें प्रणयन और प्रकाशन आवश्यक है। यह कब होगा ?

साहित्य-सृजनकी अिस कमीके साथ-साथ हमारे देशमें विदेशी-ग्रन्थोंका आयात निरन्तर बढ़ता जा रहा है और अुसी अनुपातमें विदेशोंसे मँगायी जानेवाली पुस्तकोंका मूल्य भी बढ़ता जा रहा है। ये आँकड़े देखिये :—

| वर्ष | आयात-ग्रन्थोंका मूल्य |
|---|---|
| सन १८६९–७० | रु० १०,५९,८१२ |
| सन १८८९–९० | २१,५०,२६६ |
| सन १९२०–२१ | ६५,९९,९८९ |
| सन १९३०–३१ | ६०,९१,४०५ |
| सन १९४६–४७ | ४८,४२,४९५ |
| सन १९६१–६२ | २,३४,२८,४७९ |

अिससे सिद्ध होता है कि अिस देशमें पढ़े-लिखे विद्वान अभी भी अपनी ज्ञान-पिपासाके शमनके लिये विदेशी ग्रन्थोंपर आधारित हैं। अिन आयात-ग्रन्थोंमें भी अँग्रेजीका मूल्य सबसे अधिक है। अिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि आधुनिक भारतीय भाषाओं और अुनके साहित्यमें अँग्रेजीका स्थान सर्वोपरि है।

### अँग्रेजीके वर्चस्वके कारण

(अ) भाषावार प्रान्त-रचना :—भाषावार प्रान्त-रचनाके सिद्धान्तसे भारतवर्षकी सारी भावनात्मक अेकता और राष्ट्रीय भावनाकी जड़ें खोखली हो गयी हैं और सारे देशमें भाषावादी अराजकता फैल गयी है। 'द्रविड़स्तान'की माँग अिसका ज्वलन्त प्रमाण है। अेक ओरसे हिन्दीके समर्थक 'राष्ट्रभाषा'का प्रचार कर रहे हैं, और दूसरी ओर 'अपनी भाषा अपनी लिपि'के मोहसे

*विशेष जानकारीके लिये देखिये—भारतीय ग्रथ प्रकाशन : अेक चित्र, मूल लेखक : श्री चित्तरंजन बंद्योपाध्याय. अनुवादक : श्री बा. जोशी; सत्यकथा जुलाअी १९६३, पृष्ठ-क्रमांक २१ से २७.

प्रेरित हो कर हिन्दीतर भाषा-भाषी अुसका विरोध कर रहे हैं। नतीजा यह हुआ है कि सन १९६४ तकका जो समय हिन्दीको भारतकी राजभाषाके योग्य बननेके लिये दिया गया था, अुसका अधिकांश समय प्रचार और विरोधमें ही बीत गया और अिस तनातनीमें अँग्रेजीकी जड़ें और मजबूत हो गयीं।

(आ) अँग्रेजीका शासकीय और व्यावहारिक व्यापक प्रयोग:— सन १९६४ तकके लिये अँग्रेजी संविधान-द्वारा मान्य भारतीय गणराज्यकी राजभाषा है, अत शासकीय कार्योंके लिये सभी प्रदेशोंमें अँग्रेजी और प्रादेशिक भाषा, केन्द्रमें मुख्यतः अँग्रेजी, तथा हिन्दी-भाषी राज्योंमें भी पहले अँग्रेजी और फिर हिन्दीका प्रयोग होता है। क्या प्रान्त? क्या केन्द्र? सभी जगह हिन्दीके बिना तो कार्य चल जाता है; पर अँग्रेजीके बिना काम चलही नहीं सकता। फिर अुद्योग, वाणिज्य, विधान, विज्ञान आदिके बारेमे भी हिन्दीका अुतना मूल्य नहीं है, जितना अँग्रेजीका है। अतः प्रादेशिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सभी मामलोंमें अँग्रेजीकाही बोलबाला है।

(अि) संविधान भी अँग्रेजीके पक्षमें:—देवनागरी लिपिमें लिखी जानेवाली हिन्दीको राष्ट्रभाषा माननेपर भी विधानमें अुसे सन १९६५ के बाद निश्चित रूपसे राजभाषा बनानेके सम्बन्धमें कोअी ठोस निर्णय नहीं दिया गया है। अिसीलिये राजभाषा संसदीय समितिकी सिफारिशोंपर राष्ट्रपतिजीका जो निर्णय है, अुसमें कहा गया है कि—(१) भारतीय संविधानमें राजभाषाके सम्बन्धमें अेक पूर्ण योजना है, जिसमें अिस समस्याके प्रति लचीला दृष्टिकोण रखा गया है।

पता नहीं, केन्द्रीय सरकारकी राजभाषा-सम्बन्धी पूर्ण योजना कब पूर्ण होगी? किन्तु लचीला दृष्टिकोण अनन्त कालतक अँग्रेजीके प्रयोगका समर्थक है। राष्ट्रपतिके चतुर्थ निर्णयमें कहा गया है कि—जिस समय केन्द्रीय सरकारके किसी भी कामके लिये अँग्रेजीके प्रयोगपर कोअी रुकावट नहीं होनी चाहिये और संविधानके अनुच्छेद ३४३ के खण्ड ३ के अनुसार अैसी व्यवस्था होनी चाहिये कि संसद-द्वारा स्वीकृत कानूनके अनुसार निर्धारित कामोंके लिये जबतक आवश्यक हो, अँग्रेजीका प्रयोग जारी रहे।

हमारा विश्वास है कि जबतक अँग्रेजीदां लोग शासन चलाते रहेंगे, अँग्रेजीकी आवश्यकता हमेशा बनी रहेगी और राजकीय कार्योंके लिये हिन्दीका प्रयोग घोषणा-पत्रोंतकही सीमित रहेगा। वह सही अर्थोंमें राजभाषा नहीं बन सकेगी। अुसके लिये निश्चित दृष्टिकोण, ठोस योजना और जमकर कार्य होना चाहिये।

(ओ) **राष्ट्रभाषापर प्रादेशिकताका आरोप** :—आज स्वार्थोके संघर्षको खुराक देनेवाली राजनीतिक चालोंने भारतके हिन्दीतर भाषा-भाषियोंके दिमागमें यह बात अच्छी तरह जमा दी है कि हिन्दी अुत्तर-भारतीयोंकी भाषा है और वही राजभाषा बनाकर हमपर लादी जा रही है। जब हम हमारे प्रादेशिक, राष्ट्रीय और *अन्तर्राष्ट्रीय, प्रशासनके अेवं व्यावहारिक सभी कार्य* अंग्रेजोमें या अपनी प्रादेशिक भाषामें सुविधापूर्वक कर सकते हैं, तो फिर हिन्दीकी आवश्यकताही क्या है? क्यों अेक प्रादेशिक भाषा अन्य सभी प्रदेशोंपर थोपी जा रही है? *यह हिन्दीके विरोधका अेक मुख्य कारण है।* संविधानके लचीले दृष्टिकोणने अंग्रेजीदाँ लोगोंको अपनी सत्ता बनाये रखनेका मार्ग खोल दिया है। अतः ये पढ़े-लिखे राजनीतिज्ञ और विद्वान न तो अपनी प्रादेशिक भाषाओंको पनपा रहे हैं, न हिन्दीको भी पनपने दे रहे हैं। अुन्हें भय है कि यदि हिन्दी राजभाषा हो गयी तो हिन्दी भाषियोंका वर्चस्व स्थापित हो जायगा और हिन्दीतर भाषा-भाषियोंकी कुर्सियाँ छिन जायगीं, या अुनको सन्तानोंको कुर्सी पानेके लाले पड़ जायेंगे। यही दृष्टिकोण अंग्रेजीकी रीढ़को पक्की बना रहा है और हिन्दीकी जड़ें काट रहा है।

(अ) **शासक वर्गकी फूटनीति** —तमाम प्रादेशिक और केन्द्रीय सरकारके कार्यकर्ता और शासकवर्ग अंग्रेजीमेंही प्रमुखतः लेखन, वाचन और *शासकीय कार्य करते हैं और राष्ट्रभाषाके ज्ञाता बननेके लिये हिन्दीकी मेराथ* परीक्षा देकर 'हिन्दी महारथी' होनेका भी गौरव पा जाते हैं। अिस तरहसे प्रचारके लिये हिन्दी और व्यवहारके लिये अंग्रेजीका प्रयोग कर ये लोग अंग्रेजीकी प्रतिष्ठाके प्रच्छन्न समर्थक बने बैठे हैं।

(अू) **हिन्दी-भाषा-भाषियोंकी संकीर्णता और निष्क्रियता** :—हिन्दी भाषा-भाषी विद्वान हिन्दी और अंग्रेजीके अतिरिक्त सामान्यतः अन्य भाषाअें सीखनेके लिये तत्पर नहीं दिखाअी पड़ते और न हिन्दीतर प्रदेशोंमें जाकर वे हिन्दीके लिये कार्यही करते हुअे नजर आते हैं। राष्ट्रभाषाके प्रचार प्रसारके लिये जो लगन, त्याग और कार्यक्षमता चाहिये अुसका हिन्दी भाषा-भाषियोंमें बहुत अभाव है। अिसका दुष्परिणाम यह हुआ है कि करोड़ों रुपयोंके ग्रंथ बाहरसे आनेपर भी हिन्दी-साहित्यका दायरा बहुत संकुचित है। आज केवल कबीर, सूर, तुलसी, मीरा, देव, बिहारी, प्रसाद, पन्त, निराला और महादेवीके नामपर हिन्दीके साहित्यिक गौरवकी दुहाअी दी जाती है; किन्तु वर्तमान वैज्ञानिक और यान्त्रिक युगके अनुरूप हिन्दीमें साहित्यका सृजन जिस अनुपातमें हो रहा है, वह हिन्दीके साहित्यकारोंकी निष्क्रियताका प्रमाण देता है। हिन्दीके राष्ट्रभाषा घोषित होनेके बाद क्या हिन्दीमें अेक भी अैसा ग्रंथ लिखा गया है, जिसे राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुअी

है ? हिन्दी भाषा-भाषियोंकी जिस संकीर्णता और निष्क्रियताका फुफल 'राष्ट्र-भाषा'को भोगना होगा।

## हिन्दी राष्ट्रभाषा कैसे होगी ?

पूर्व-विवेचित तथ्योंसे पता चलता है कि भाषागत स्वार्थ, राजनीतिक चाल और हिन्दी-भाषा-भाषियों तथा हिन्दीके विद्वानोंका कछुआ-धर्म राष्ट्र-भाषाकी वास्तविक अप्रतिष्ठाके मूलभूत कारण हैं। अैसी स्थितिमें हिन्दीको वास्तवमें राष्ट्रभाषाका स्थान देनेके लिये मेरे विनम्र सुझाव जिस प्रकार हैं —

१. भारतवर्षके समस्त प्रादेशिक और केन्द्रीय कार्य अेवम् व्यवहारके लिये अंग्रेजीकी जगह हिन्दीको दी जाय।

२ एक निश्चित अवधि देकर हिन्दीको भारतकी राजभाषा घोषित कर दी जाय और जिस विषयमें केवल घोषणा ही नहीं, घोषणाको कृतिमें बदलनेके लिये जमकर देशव्यापी पैमानेपर काम हो। केन्द्रीय शासनका लचीला दृष्टिकोण जिसके लिये घातक है। केन्द्रीयशासनके निश्चित दृष्टि-कोणकाही यह परिणाम हुआ है कि हमारे देखते-देखते सारे देशमें रुपये, आने, पाओीकी जगह, रुपये और नये पैसे आ गये, मन, सेर, छटाककी जगह किलोमीटर और ग्रामोंने ली, तथा मील गज, फुट, अिंचकी जगह मीटर जम गये। सिक्के, वजन और लम्बाओीकी नाप जैसे देशभरमें केन्द्रकी सतर्कता और सचेष्टतासे बदली, और निश्चित समयमें बदली, अुसी तरह अंग्रेजी भी हिन्दीसे बदली जा सकती है। यद्यपि यह भाषाका प्रश्न है और अिसमें कुछ अधिक समय भी लग सकता है, फिर भी यह असंभव नहीं है।

३. अुच्च शिक्षाका माध्यम हिन्दी हो :—सिक्के, वजन, और लम्बाओीकी नापकी तरह सारे देशमें भाषाकी अेकरूपताकी स्थापनाका कार्य सरल नहीं है। यह भाषा और भावनाका प्रश्न है। अतः जिसके लिये केन्द्रीय सरकार अेक निश्चित योजना बनाये। यों, शिक्षा सम्बन्धी कुछ महत्त्वपूर्ण सुझाव जिस प्रकारके हो सकते हैं :—

(क) सारे देशमें, सभी विश्वविद्यालयोंमें, अुच्च शिक्षाका माध्यम हिन्दी हो। जिस तरह भारतमें स्वतन्त्रता-प्राप्तिके पूर्व अुच्च शिक्षाका माध्यम अंग्रेजी थी, और अुससे सारे देशमें भाषा और ज्ञानके अुच्चस्तरीय अध्ययनमें अेक-रूपता थी, अुसी तरह सभी भारतीय विश्वविद्यालयोंमें अुच्च शिक्षाका माध्यम हिन्दी हो। तभी हिन्दी भारतकी संयुक्त संस्कृतिके सभी तत्त्वोंको प्रकट करनेका साधन बनेगी, अन्यथा नहीं।

(ख) हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेशोंकी शिक्षण संस्थाओंमें अनार्य परिवारकी अेक न अेक भाषा अनिवार्य कर दी जाय, जिससे आगे आनेवाली हिन्दी-भाषा

भाषी पीढ़ी अनार्य भाषाओंको पढ़कर हिन्दीमें भारतीय संस्कृतिके संयुक्त तत्त्वोंका समावेश कर सके।

(ग) हाअीस्कूलकी कक्षाओंतक सारे देशमें प्रादेशिक भाषाओंके माध्यमसे शिक्षा दी जाय और अुन कक्षाओंमें हिन्दी अेक अनिवार्य विषय हो। अिसी तरह अंग्रेजीको भी अेक अनिवार्य विषय रखा जा सकता है।

(घ) महाविद्यालयीन अेवं विश्वविद्यालयीन शिक्षण हिन्दीमें हो।

४. राष्ट्रभाषाकी शिक्षाकी देशव्यापी योजना —हमारे देशके वयोवृद्ध नेता, प्राचीन कार्यकर्त्ता, अनुभवी शासक-वर्ग और शासकीय यंत्रके प्राचीन अंग हिन्दीको भारतकी राजभाषाके रूपमें काममें नहीं ला सकते, क्योंकि अुनकी शिक्षा-दीक्षा सब अंग्रेजीमें हुई है। दूसरे अपनी आयुके अनुसार वे नये सिरेसे हिन्दी सीखकर राष्ट्रभाषामें शासकीय कार्य कर सकेंगे इसकी भी कोअी संभावना नहीं है। और यह समयभी नहीं है। यदि हमें हिन्दीको राष्ट्रभाषाही बनाना है, तो हमें देशकी तरुण-पीढ़ी और नयी पौधको हिन्दीका अितना ज्ञान करा देना है कि वह हिन्दीमें केवल सोच, समझ और लिख-पढ़ही न सके, प्रत्युत् तमाम प्रादेशिक और केन्द्रीय शासकीय कार्य हिन्दीमें ही कर सके। अिसके लिअे केन्द्रीय सरकार अेक देशव्यापी योजना बनाअे। अिस योजनाके लिये कुछ आवश्यक बातें अिस प्रकारकी होः—

१ सभी प्रादेशिक भाषाओंको अपने-अपने क्षेत्रोंमे अपने-अपने साहित्यिक और सांस्कृतिक विकासकी स्वतंत्रता रहे। प्रादेशिक सीमाके अन्तर्गत प्रत्येक विश्वविद्यालयमें अुस प्रदेशकी भाषाकी अेम् अे तक पढने-पढानेकी व्यवस्था हो तथा अुस भाषाके विषयमें शोध आदिके लिये पूर्ण स्वतन्त्रता हो। भाषा और साहित्यके अतिरिक्त अन्य विषय हिन्दी माध्यमसे (अंग्रेजी माध्यमके स्थानपर) पढ़ाये जाअें।

२ हिन्दी-साहित्यके ग्रन्थ सभी विश्वविद्यालयोंमें बड़े पैमानेपर संग्रहीत किये जाअें और विश्वविद्यालयीन स्तरपर हिन्दीके पाठ्यक्रमका रूप सर्वत्र लगभग अेकसा हो।

३ बिना राजभाषा हुअे हिन्दी राष्ट्रभाषा नहीं होगी, अतः हिन्दीको राजभाषाके पदपर अधिष्ठित करनेकी तिथि निश्चित रूपसे घोषित कर दी जाअे। अिससे हिन्दीतर भाषा-भाषी जैसे अंग्रेजी शासन कालमें अंग्रेजीमे निष्णात् हो गये, *अुसी तरह वे हिन्दीभी अवश्य सीख जाअेंगे और हिन्दी-विरोधी स्वर दब जाअेंगे।*

४ हिन्दीके विद्यालयों और विश्वविद्यालयोंमें हिन्दीतर भाषाओंकी शिक्षा देकर कुछ अैसे अुत्साही तरुण व्यक्तियोंको तैयार किया जाय, जो अलग-अलग प्रदेशोंकी भाषाअें सीख वहाँजाकर हिन्दीकी शिक्षा दें। अिसे वे हिन्दीतर भाषा-भाषियोंका अुपकार नहीं अपना राष्ट्रीय कर्तव्य समझें। 'मिशनरी स्पिरिट'

लेकर यदि हिन्दीकी शिक्षाके लिये देशव्यापी प्रचार हुआ, और हिन्दीके राजभाषाके रूपमें प्रयोगकी तिथि घोषित हो गयी, तो बडी आसानीसे हिन्दी अँग्रेजीकी जगह पा जाओगी और हिन्दीके विरोधी हिन्दी सीख जायेंगे, अन्यथा हिन्दी राजभाषा नहीं होगी।

५ हिन्दीवाले हिन्दीका कठिन और क्लिष्ट साहित्य प्रचारके काममें न लायें। हिन्दीतर भाषा-भाषियोंको सबसे पहले सरल, सरस और आकर्षक रचनायें पढायी जायें और धीरे-धीरे हिन्दीके अुच्च साहित्यके प्रति अुनमें अभिरुचि पैदा की जाय। अर्थात हिन्दीतर भाषा-भाषियोंके लिये हिन्दीका पाठ्यक्रम अिस प्रकारका हो कि अुसमें वे रुचि ले सकें और अुसे पढने पढानेमें अुन्हें अुबाअी न आये। कुल मिलाकर हिन्दीतर प्रदेशोंमें हिन्दी अैसी पढायी जाये कि वहाँके निवासी हिन्दीसे परिचय पानेके बाद अुससे घनिष्ठता स्थापित करनेके अिच्छुक हों।

६ हिन्दीतर प्रदेशोंमे गाँव गाँवमें वाचनालय खुले, जहाँ हिन्दीका साहित्य, थोडी किन्तु अच्छी मात्रामें पढनेके लिये अुपलब्ध हो। हिन्दीकी कथा कहानियाँ अुपन्यास आदि जिसमें बडे महत्त्वके हैं।

७ हिन्दी तथा प्रादेशिक भाषाओंके साहित्यके प्रतिनिधि ग्रंथोंका परस्पर अनुवाद हो।

८ वाचनालय, अनुवाद, और हिन्दी की शिक्षाकी व्यवस्थाके लिये केन्द्रीय सरकार, प्रादेशिक सरकारें, और हिन्दी प्रचारक संस्थायें बोझा अुठायें।

९ सभी प्रदेशोंकी वतमान शिक्षण संस्थाओंमे सभी कक्षाओंके लिये हिन्दी अेक अनिवाय विषय कर दिया जाय ताकि अिस देशका प्रत्येक साक्षर राष्ट्रभाषासे अनभिज्ञ न रहे।

१० हिन्दीका अेक स्वतंत्र मंत्रालय हो और साहित्य अेकेडेमी, हिन्दी-प्रचारक संस्थायें और सभी विश्व विद्यालयोंके हिन्दीके विद्वान तथा अितर हिन्दी भाषा-भाषी समन्वित रूपसे वैज्ञानिक, तकनीकी और प्राविधिक विषयोंपर हिन्दीमे ग्रंथोंके प्रणयन, संकलन, सम्पादन और अनुवाद करायें। प्रारंभमें अनुवादका कार्य सुनियोजित, सीमित तथा चुने हुअे ज्ञान विज्ञानसम्बंधी ग्रंथोंतकही सीमित हो और फिर भाषा और साहित्यकी महत्ताके अनुसार अिसे बढाया जाय।

११ राजनीति, तर्कशास्त्र, गणित, दर्शन शास्त्र, भौतिक शास्त्र, रसायन-शास्त्र प्राणी-शास्त्र, समाजशास्त्र कानून ग्रंथ-रचना और अुनकी कार्य प्रणाली आदिके सम्बन्धमें अिन विषयोंके विशेषज्ञोंद्वारा संयुक्त रूपसे ग्रंथोंकी रचना हो। विषय और अुसके अंग अुपांगोंका विभाजन कर य विद्वान अपने-अपने विषयमें हिन्दीमें ग्रंथ-रचना करें। अिसके लिये जिस शब्दावलीकी आवश्यकता होगी अुसका स्वरूप अिस प्रकार हो —

हिन्दी-शब्दावलीका स्वरूप

१. केन्द्रीय राजभाषा-आयोगकी सिफारिशोंके अनुरूप शब्दावली तैयार करनेमें अिस बातका ध्यान रखा जाय कि प्रत्येक शब्द स्पष्ट, सुनिश्चित और सरल हो।

२ अन्तर्राष्ट्रीय शब्दोंको, हिन्दीमें अुनके प्रयोगके अनुसार तत्सम या तद्भव रूपमें स्वीकार कर लिया जाय।

३ विज्ञान, तक्नीकी और प्राविधिक विज्ञानके सम्बन्धमें जिन शब्दोंका सामान्यतः प्रयोग होता है और जो बोलचालकी भाषामें घुल-मिल गये हैं, वे अुसी रूपमें हिन्दीमें ले लिये जायें।

४ हिन्दी-शब्दावलीका स्वरूप निर्धारण करते समय अन्य विदेशी भाषा या भाषाओंके स्पष्ट, सरल, सुबोध शब्दोंकी जगहपर संस्कृतके क्लिष्ट और, दुर्बोध, अप्रचलित शब्द गढ़कर या अुपयोग कर हिन्दीको दुर्बोध न बनाया जाय, क्योंकि मृत भाषाके शब्द जीवन्त भाषामें जबरदस्ती ठूंसना हिन्दीके लिये घातक होगा। अुससे हिन्दी क्लिष्ट और दूरारूढ होगी, अुसका विरोध होगा, व्यापकता घटेगी और एक दिन हिन्दीकी यही क्लिष्टता अुसे संस्कृतके समान ले डूबेगी।

५. वैज्ञानिक और तक्नीकी शब्दोंको चाहे वे किसीभी भाषाके हों, जैसेके तैसेही हिन्दीमें ले लेना चाहिये, क्योंकि अनुसन्धान, यंत्र और अुनकी प्रक्रियाओंकी शोध विदेशोंमें हो रही है और हिन्दीवाले लोग केवल अुनके पर्यायवाची शब्दोंकी शोधमें घडों पसीना बहा रहे हैं। यह व्यर्थ है। क्योंकि ये हिन्दीमें बनाये गये नये शब्द या संस्कृतसे अुधार लिये गये शब्द केवल हिन्दी और हिन्दुस्थान तकही सीमित रहेंगे, संसारके विशाल क्षेत्रमें अुनका कोअी मूल्य नहीं होगा, अतः जो शोध करता है, यन्त्र बनाता है और अुसकी विभिन्न प्रक्रियाओंको नाम देता है, वही शब्द संसार-भरकी भाषाओंमें प्रयुक्त होना चाहिये। यह मानव ज्ञानके लिये अधिक लाभप्रद नियम हो सकता है। प्राविधिक साहित्यके लियेभी यही नियम लागू किया जा सकता है।

६. केन्द्रीय मन्त्रालयके तत्त्वावधानमें तैयार की गयी अखिल भारतीय शब्दावलीही सभी विषयोंकी पाठ्यपुस्तकों तथा शासकीय और जनजीवनके कार्योंमें प्रयुक्त हो। अिसके लिये पाठ्यपुस्तकोंके प्रयोगपर अेक अैसा प्रतिबन्ध लगा दिया जाना चाहिये कि अखिल भारतीय हिन्दी शब्दावलीके अतिरिक्त अन्य शब्दावली प्रयुक्त ग्रंथ पाठ्य-पुस्तकोंमें सम्मिलित नहीं किये जायेंगे। साहित्य, विज्ञान तथा अन्य सभी विषयोंपर यह नियम अेक-साथ लागू हो, जिससे लेखक, प्रकाशक और पाठक सब अेक-सूत्रमें बँध जायेंगे।

७ केन्द्रीय हिन्दी मंत्रालय, हिन्दी भाषा-भाषी विद्वान और हिन्दी प्रचारक संस्थायें वैज्ञानिक, तकनीकी और प्राविधिक शब्दकोष अितने व्यापक और सशक्त बनायें कि सारे देशमें हिन्दीके प्रयोगमें कहीं कोअी अड़चन न हो। यहाँतक कि प्रादेशिक और केन्द्रीय सरकारके परिपत्र तथा कानून हिन्दीमेंही बनें और आवश्यकतानुसार अुनका अंग्रेजी या अन्य प्रादेशिक भाषाओंमें अनुवाद हो।

८. यदि देवनागरी लिपिमें लिखी जानेवाली हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा है, तो हमें अपने प्रादेशिक, केन्द्रीय, सामाजिक और शासकीय, व्यक्तिगत और राष्ट्रीय, कार्योंमें अँग्रेजी अंकोंका मोह छोड़ देवनागरी अंकोंकाही प्रयोग करना चाहिये। देवनागरीके अंक पूर्णत. स्पष्ट और बिल्कुल निर्दोष हैं। हाँ, अन्तर्राष्ट्रीय कार्यों और व्यवहारोंमें यदि आन्तर्राष्ट्रीय अंकोंका प्रयोग हो, तो अिसमें कोअी बुराअी नहीं है; पर राष्ट्रभाषा हिन्दी, राष्ट्रलिपि देवनागरी और राजकीय कार्योंके लिये विलायती (अँग्रेजी) अंकोंके प्रयोगमें कोअी तुक नहीं है।

भारतवर्षकी सम्पूर्ण प्रादेशिक भाषाओंके साहित्यकी गतिविधिपर हमने जो आकड़े दिये हैं, अुनसे यह स्पष्टतः सिद्ध हो जाता है कि भाषावार प्रान्त रचना करनेपरभी यदि हमने प्रत्येक प्रान्तमें प्रादेशिक भाषाओंकोही अुच्च शिक्षाका माध्यम बना दिया, तो विश्व-विद्यालयोंमें पढ़ाये जानेवाले सभी विषयोंके लिये, सब प्रकारके ग्रंथ, सभी भाषाओंमें तैयार करना, अिन प्रादेशिक भाषा-भाषियोंके लिये असंभव है। अत. प्रादेशिकताकी ज़िद छोड़कर हमें राष्ट्रीय संगठन और भावनात्मक अेकताके लिये राष्ट्रभाषाके स्नेह-सम्बन्धोंको सुदृढ़ बनाना चाहिये, अन्यथा हमारी यह भाषावादी अराजकता हमारेही देशवासियोंमें पारस्परिक कलह और फूटका बीज वपन कर हमें अंग्रेजीकी बौद्धिक गुलामीसे कभी मुक्त नहीं होने देगी।

---

## ४६ : राष्ट्रभाषा हिन्दी : उसका प्रचार एवम् साधन

[ डॉ. नरहरि चिन्तामणि जोगलेकर, एम्. ए.; पीएच्. डी. विगत २५-२६ वर्षोंसे महाराष्ट्रमें हिन्दीका प्रचार-प्रसार और अध्यापन कर रहे हैं। मराठीका वर्णनात्मक व्याकरण, देवनागरी लिपि : स्वरूप, विकास और समस्याएँ आपकी महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं। सागर विश्व-विद्यालयमें अभी-अभी आपको "हिन्दी और मराठीका वैष्णव साहित्य और उसका तुलनात्मक अध्ययन" विषयपर पीएच्. डी. की उपाधि मिली है। सम्प्रति आप पूना-विश्व-विद्यालयमें हिन्दीके प्राध्यापक हैं। ]

विचारोका माध्यम भाषा है।

अपनी भावनाओ एवम् विचारोको अत्यन्त उत्कटता तथा श्रेष्ठताके साथ अभिव्यक्त करनेवाले माध्यम व साधनको भाषा कहते हैं। ये भाव कई प्रकारके विचारोंको अपनेमे निहित कर उन्हें प्रकट करते हैं। मनुस्मृतिमें यह उल्लेख मिलता है :—

" वाच्यर्था नियता सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिसृतः।

मानवके सारे व्यवहार वाणीसे सपन्न होते हैं। यह वाणी उत्कटता, यथार्थता और सहजतासे सबकुछ अभिव्यक्त कर देती है। यह अभिव्यक्ति शब्दोके साधनसे बोलचाल और प्राथिक एवम् लिखित रूपमें हमारे सामने आती है। इसेही हम भाषा कहते हैं। सर्वप्रथम जो भाषा हम सीखते हैं वह अपनी मातृभाषाही होती है। जैसे-जैसे हमारा ज्ञान विकसित होता है और हम एक व्यापक और सर्वांगीण राष्ट्रके भी एक अग हैं यह भावना दृढ और पक्की हो जाती है, वैसे-वैसे हम राष्ट्रकी भाषा एवम् राष्ट्रभाषाको भी सीखने-समझने और उसमे अपने विचारोको अभिव्यक्त करने लग जाते हैं। किसी भी राष्ट्रका श्रेष्ठत्व, उसकी बौद्धिक सक्षमता, उसकी चिंतन-प्रवणता एवम् उसकी अस्मिता उसकी राष्ट्रभाषाके समृद्ध साहित्यमें देखनेको मिलती है। राष्ट्रभाषा, राष्ट्रभाषाके सभी प्रदेशोके निवासियोंकी होती है। उनके तत्त्वोमेसे यह भी एक मूल तत्त्व माना जाता है। अपने देशमे, अपनी भाषामे अपना राजकाज भी चलाते आना चाहिये। स्वदेश, स्वभाषा और स्वराज्य ये परस्पर अन्योन्याश्रित हैं, और ये एक अभिन्न अग बनकर ही अपनी उज्ज्वल अस्मिता प्रकट करते हैं।

राष्ट्रभाषा भावनात्मक एकताका सबसे प्रबल लक्षण है।

किसीभी भाषामे उसके सस्कार विद्यमान रहते हैं, फलतः राष्ट्रभाषामे उसके सास्कृतिक पक्षकी अमूल्य निधि सचित और सुरक्षित रहती है। इस तथ्यकी जानकारी राष्ट्रके प्रत्येक नागरिकको रहनी चाहिये।

राष्ट्रभाषाकी पुनीतता भावनात्मक एकतापर निर्भर है।

यह एक ध्रुव सत्य है कि राष्ट्रभाषामें राष्ट्रीय सस्कार और भावनात्मक इकाई सन्निहित है। इसीलिए राष्ट्रभाषाके साहित्यको पढकर हम राष्ट्रीय पावित्र्यसे भर जाते हैं। जैसे हम गगामे स्नान कर पावन और गदगद् हो जाते हैं वैसेही राष्ट्रीय साहित्यकी मन्दाकिनीमें स्नान कर हम राष्ट्रीय भावनात्मक एकताकी पुनीत दशाको संप्राप्त कर लेते हैं। भारत एक बहुत बड़ा राष्ट्र है। उसकी भी अपनी एक राष्ट्रभाषा है जिसे हम "हिन्दी" कहते हैं। भारतीय सविधानके द्वारा देवनागरी लिपिमे लिखी-पढ़ी और बोली जानेवाली राष्ट्र-

भाषाका नाम हिन्दी ही घोषित किया गया है। "यथा नाम तथा गुण" जिस अभिधानके द्वारा यथार्थ स्वरूपमें प्रकट हो जायें वह सार्थ अभिधान कहलाता है। इस नाते राष्ट्रभाषा हिन्दीको इसी रूपमे देखनेसे हमारे सामने भारत-माताका पूरा सगुण चित्र साकार हो जाता है। हमारा राष्ट्र हिन्दुस्थान अर्थात् भारतवर्ष है। हमारे राष्ट्रकी राष्ट्रभाषा हिन्दी है और राष्ट्रलिपि देवनागरी। इस नाममे सार्थकता और यथार्थता राष्ट्रीय एकात्मताके नाते विशेष रूपेण प्रकट होनेसे हिन्दी यह नाम उसके गौरवको वर्धिष्णु करता है।

**भावनात्मक एकताका सम्बन्ध प्रान्तीय भाषाएँ और राष्ट्रभाषाके पारस्परिक सम्बन्धपर आधारित है।**

जब हम शान्त चित्तसे विचार करते हैं तो यह भली भाँति मालूम हो जाता है कि आजकल जिस भावनात्मक एकताकी आवश्यकता और अनिवार्यताका महत्व प्रतिपादित किया जाता है वह प्राय यह समझकर किया जाता है कि यह एक नयी चीजके रूपमें हमारे सम्मुख आयी हुई स्थिति है। पर वस्तुत ऐसी कोई बात नहीं है। जब भारतका कोई सविधान नहीं बना था तबभी सहज और अनिवार्यत हिन्दीमेंही भारतीय स्तरका साहित्य सर्जन होता था। इनमें विशेषत महाराष्ट्र, गुजरात और आन्ध्र एवम् मैसूर जैसे जनपद आते हैं। भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी अपनी साधना और उसकी अभिव्यक्ति प्रथम अपनी प्रान्तीय एवम् मातृभाषाओंमें करते थे। इसीके साथ जब वे पूरे भारत भ्रमणार्थ निकलते अथवा किसी सदर्भमें कहींभी आन्तर-प्रान्तीय रूपमें व्यवहार करते थे तो वे सिवाय हिन्दीके और किसी भाषाकी शरण नहीं लेते थे। इसी कारण ऐसे साहित्यकारों, कवियों और सन्तोंको जन-मानसमें एक सम्मानपूर्ण स्थान मिला है। यो राजसत्ताओंसे जिनका सीधा सम्बन्ध था उनको हिन्दीमें रचनाएँ करनेके कारण सम्मान मिला था। इसके कई प्रमाणभी उपलब्ध हैं, और कियेभी जा सकते हैं। नामदेव, नरसीमेहता, गोरखनाथ, शकरदेव जैसे सन्त अपनी मातृभाषा और राष्ट्रभाषामें रचना कर जनताके हृदय-पटलपर प्रतिष्ठासे आसीन हो गये थे। जयराम पिंडे, भूषण जैसे कविराज सम्मान प्राप्त करनेके बावजूद भी हमारी राष्ट्रीय, सास्कृतिक और भावनात्मक इकाईको दृढ करते रहे हैं। इससे दोनो भाषाओंका समान हित हुआ है। दोनो भाषाएँ फली और फूली है। मातृभाषा एवम् प्रान्तभाषाका राष्ट्रभाषा हिन्दीसे सम्बन्ध स्नेह, सौहार्द्र और प्रेमका था। परस्पर वैचारिक, सास्कृतिक और दार्शनिक आदान प्रदान पर्याप्त मात्रामें इस प्रकार हुआ। आज यह भय पता नहीं क्यों मनमें उत्पन्न हो जाता है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रान्तीय भाषाओंपर हावी होकर उनके विकासको रोक देगी। भारतमें अंग्रेजी राज्यके आगमनके पूर्वकी

यह स्थिति भावनात्मक एकताके महत्त्वको प्रमाणित कर देती है। आज अंग्रेजीका व्यामोह हममें एकताके स्थानपर विरोध और पार्थक्यकी भावना सचरण कर फूटके बीज वपन कर रहा है। इससे आज राष्ट्रभाषाके-प्रेमी और प्रचारकोको सजग और सतर्क रहना अत्यावश्यक है।

राष्ट्रभाषाके प्रचारक और उसके पुराने तथा नये साधनोंपर एक विहगम दृष्टि डाल लेना भी उपादेय होगा।

पुराने प्रचारकके नाते राष्ट्रभाषा हिन्दीका प्रयोग सताने किया है। वे इसका महत्त्व जानते थे। नामदेव जैसे महाराष्ट्रीय सत पजाब गये और उन्होने भागवत धर्म तथा भक्तिका प्रचार अपनी हिन्दी रचनाओ द्वारा किया था। कबीर, गोरखनाथ और चैतन्य महाप्रभु दक्षिण भारतमे भ्रमण कर चुके थे। अपनी यात्राओंमे बोलचालके माध्यमके रूपमे उन्होने हिन्दीमेंही बातचीत की होगी। इस तरहसे यह सिद्ध हो जाता है कि हमारे सत, यात्री, व्यापारी और सास्कृतिक एवम राजनैतिक सदर्भोमे भ्रमण या प्रचार करनवाले लोग हमारी राष्ट्रभाषाके पुराने और प्रथम प्रचारक माने जाने चाहिये। उनके साहित्यको पढ़कर इसका प्रमाण हमे मिल जाता है। निस्सदेह यह मानना पड़ेगा कि भावनात्मक एकताका उस समय विशेष दृढ़ीकरण हुआ। इसमें पूर्व पीढ़ियोकी मनोभूमि मूलत धार्मिक थी, पर उसकी एकता भावनात्मक ही मानी जाएगी। पुराने युगोसेही भारतका आन्तर राष्ट्रीय व्यापार कई देशोसे होता रहा है। उस समयभी हमारे एसे व्यवहारोंकी भाषा बोलचालकी ही रही होगी। यह भाषा हमारी आजकी राष्ट्रभाषाका आदिम रूप और पुश्तैनी आधार अवश्य मानी जा सकती है। इन लोगोंने वाणिज्य व्यवसायके साथ साथ कौशल सम्बन्धी दार्शनिक, धार्मिक और सास्कृतिक धारणाओका आदान प्रदान मानवीय स्तरपर किया था। इसे राष्ट्रभाषा प्रचारके साधनोंके पुराने स्वरूपोमें सन्निहित किया जाय। भावनात्मक एकताको इससे बल और पुष्टिही मिलेगी। क्रिश्चियन मिशनरियोने अपने धर्म प्रचारार्थ यहाकी प्रान्तीय भाषाओमे प्रान्तोमें जाकर और समूचे भारतमें प्रचारार्थ भ्रमण कर हिन्दीमे अपने ग्रथ लिखे। इस तरह बोलचालके रूपमे हिन्दीको आत्मसात कर अपना मत लोगोंमें प्रचारित किया। इसके विरोधमें आर्य समाजने भी हिन्दीमें ही अपना सार्वदेशिक और सास्कृतिक प्रचार किया। भाषा किसीभी तरहके प्रचारका कितना ठोस साधन है यह इनसे भली भाँति प्रकट हो जाता है।

## देशकी आज़ादीके प्रयत्नोंमें राष्ट्रभाषाका सहयोग

स्वराज्य-प्राप्तिके प्रयत्नोंमें अर्थात् आजादी प्राप्त करनेवाली सभी संस्थाओंके द्वारा अपने विधायक कार्योंमें राष्ट्रभाषा हिन्दीमें सारे व्यवहार किये गये और राष्ट्रभाषाका अध्ययन और प्रचारको भावनात्मक एकताका एक प्रमुख साधन भी माना गया। इस तरहसे यदि देखा जाय तो हमारे देशमें कांग्रेस जैसी संस्थाके लोकमान्य टिलक और महात्मा गांधी जैसे नेताओंने राष्ट्रभाषाको स्वदेश और स्वराज्यका मूल मंत्र माना व उसको कार्यान्वित किया। केसरी जैसे मराठीके समाचार-पत्र हिन्दीमें भी निकलने लगे थे। समूची भारतीय भाषाओंको देवनागरी लिपिमें लिखकर राष्ट्रीय एकतापर बल देनेके प्रयत्न तिलक, शारदाचरण मित्र, नागरी प्रचारिणी सभा आदिके द्वारा अथकरूपमें किये गये। इन्हीं प्रयत्नोंमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी द्वारा किये गये प्रयत्नोंको हमें नहीं भूलना चाहिये। देशके बाहर जाकर भी क्रान्तिकारकोंने गदर पार्टीका संगठन और संचालन किया।

"अभिनव भारत" जैसी संस्थाओंने राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य प्राप्तिके लिये सभी प्रकारके प्रयत्न किये। इन प्रयत्नोंमें राष्ट्रभाषाको वे कदापि नहीं भूले थे। राष्ट्र-भाषा हिन्दीका यह आन्तरराष्ट्रीय महत्त्व माना जावेगा। कैलिफोर्निया, लंदन, पेरिस, जापान, मलाया आदि स्थानोंमें रहनेवाले पंजाबियों, सिक्खों तथा भारतके सभी प्रान्तीय और भिन्न भाषी क्रान्तिकारकोंने अपने स्वदेशका झण्डा और एक राष्ट्रभाषाके महत्त्वको समझा था। उन्होंने प्रचारके एक प्रमुख साधनके नाते हिन्दीमें समाचार-पत्र प्रकाशित किये थे। लाला हरदयाल, मॅडम कामा, स्वातंत्र्यवीर सावरकर, भाई परमानंद, डॉ खानखोजे, मदनलाल धिंग्रा, रासबिहारी घोष, नेताजी सुभाषचन्द्र, और आजाद हिन्द फौजके सिपाहियोंने राष्ट्रभाषाको देशकी भावनात्मक एकताका प्रमुख सूत्र मानकरही उसे आत्मसात् कर लिया था। सन् १८५७ का प्रथम भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम हमारे लिये एक महान गौरवका विषय है। उस समय सारे कागज पत्र चिट्ठी पत्रियाँ, परिपत्रक, नानासाहब, बहादुरशाह, मौलवी अहमदशाह, झांसीकी रानी आदिने हिन्दीमेंही निकाले थे। ये सारी बातें तथा उसके पूर्वकी महादजी सिंधिया, यशवन्तराव होलकर, तथा पेशवाओंका उत्तरी भारत तथा देहलीके शासनसबंधी सारा पत्रव्यवहार एवम् बाजीराव और छत्र-सालका राजनैतिक सम्बन्ध उस समयकी राष्ट्रभाषाकी व्यापक शक्तिके ठोस प्रमाण उपलब्ध कर देते हैं। देशको पारतन्त्र्यसे मुक्त करनेमें राष्ट्रभाषाने देशव्यापी शक्ति और ऐक्य तो प्रदान कियाही है। किन्तु विदेशोंमें और संसार भरमें हिन्दीने अपने आपको भारत जैसे राष्ट्रकी राष्ट्र-भाषाके रूपमें आन्तर राष्ट्रीय स्तरपर अपनी प्रतिष्ठा प्रमाणित करनेमें प्रधान और सक्रिय सहयोग दिया है।

यह स्थिति भावनात्मक एकताके महत्त्वको प्रमाणित कर देती है। आज अंग्रेजीका व्यामोह हममें एकताके स्थानपर विरोध और पार्थक्यकी भावना सचरण कर फूटके बीज वपन कर रहा है। इससे आज राष्ट्रभाषाके-प्रेमी और प्रचारकोको सजग और सतर्क रहना अत्यावश्यक है।

राष्ट्रभाषाके प्रचारक और उसके पुराने तथा नये साधनोपर एक विहगम दृष्टि डाल लेना भी उपादेय होगा।

पुराने प्रचारकके नाते राष्ट्रभाषा हिन्दीका प्रयोग सताने किया है। वे इसका महत्त्व जानते थे। नामदेव जैसे महाराष्ट्रीय सत पजाब गये और उन्होंने भागवत धर्म तथा भक्तिका प्रचार अपनी हिन्दी रचनाओ द्वारा किया था। कबीर, गोरखनाथ और चैतन्य महाप्रभु दक्षिण भारतमे भ्रमण कर चुके थ। अपनी यात्राओंमे बोलचालके माध्यमके रूपमे उन्होंने हिदीमेंही बातचीत की होगी। इस तरहसे यह सिद्ध हो जाता है कि हमारे सत, यात्री, व्यापारी और सास्कृतिक एवम राजनैतिक सदर्भोंम भ्रमण या प्रचार करनवाले लोग हमारी राष्ट्रभाषाके पुराने और प्रथम प्रचारक माने जाने चाहिये। उनके साहित्यको पढकर इसका प्रमाण हमे मिल जाता है। निस्सदेह यह मानना पडेगा कि भावनात्मक एकताका उस समय विशेष दढ़ीकरण हुआ। इसमें पूर्व-पीठिकाकी मनोभूमि मूलत धार्मिक थी, पर उसकी एकता भावनात्मक हो मानी जाएगी। पुराने युगोसेही भारतका आन्तर राष्ट्रीय व्यापार कई देशोसे होता रहा है। उस समयभी हमारे ऐसे व्यवहारोंकी भाषा बोलचालकी ही रही होगी। यह भाषा हमारी आजकी राष्ट्रभाषाका आदिम रूप और पुख्तैनी आधार अवश्य मानी जा सकती है। इन लोगोने वाणिज्य व्यवसायके साथ साथ कौशल सम्बन्धी दार्शनिक, धार्मिक और सास्कृतिक धारणाओका आदान प्रदान मानवीय स्तरपर किया था। इसे राष्ट्रभाषा प्रचारके साधनोके पुराने स्वरूपोमें सन्निहित किया जाय। भावनात्मक एकताको इससे बल और पुष्टिही मिलेगी। क्रिश्चियन मिशनरियोने अपने धर्म प्रचारार्थ यहाँकी प्रान्तीय भाषाओमे प्रान्तोमें जाकर और समूचे भारतमें प्रचारार्थ भ्रमण कर हिन्दीम अनेक ग्रथ लिखे। इस तरह बोलचालके रूपमे हिन्दीको आत्मसात् कर अपना मत लोगोमें प्रचारित किया। इसके विरोधमें आर्य समाजने भी हिन्दीमें ही अपना सार्वदेशिक और सास्कृतिक प्रचार किया। भाषा किसीभी तरहके प्रचारका कितना ठोस साधन है यह इससे भली भाँति प्रकट हो जाता है।

## देशकी आज़ादीके प्रयत्नोंमें राष्ट्रभाषाका सहयोग

स्वराज्य-प्राप्तिके प्रयत्नोंमें अर्थात् आज़ादी प्राप्त करनेवाली सभी संस्थाओंके द्वारा अपने विधायक कार्योंमें राष्ट्रभाषा हिन्दीमें सारे व्यवहार किये गये और राष्ट्रभाषाका अध्ययन और प्रचारको भावनात्मक एकताका एक प्रमुख साधन भी माना गया। इस तरहसे यदि देखा जाय तो हमारे देशमें कांग्रेस जैसी संस्थाके लोकमान्य टिलक और महात्मा गांधी जैसे नेताओंने राष्ट्रभाषाको स्वदेश और स्वराज्यका मूल मंत्र माना व उसको कार्यान्वित किया। केसरी जैसे मराठीके समाचार-पत्र हिन्दीमें भी निकलने लगे थे। समूची भारतीय भाषाओंको देवनागरी लिपिमें लिखकर राष्ट्रीय एकतापर बल देनेके प्रयत्न तिलक, शारदाचरण मित्र, नागरी प्रचारिणी सभा आदिके द्वारा अथकरूपमें किये गये। इन्हीं प्रयत्नोंमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजी द्वारा किये गये प्रयत्नोंको हमें नहीं भूलना चाहिये। देशके बाहर जाकर भी क्रान्तिकारकोंने गदर पार्टीका संगठन और संचालन किया।

"अभिनव भारत" जैसी संस्थाओंने राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य-प्राप्तिके लिये सभी प्रकारके प्रयत्न किये। इन प्रयत्नोंमें राष्ट्रभाषाको वे कदापि नहीं भूले थे। राष्ट्र-भाषा हिन्दीका यह आन्तरराष्ट्रीय महत्त्व माना जायेगा। केलि-फोर्निया, लंदन, पेरिस, जापान, मलाया आदि स्थानोंमें रहनेवाले पंजाबियों, सिक्खों तथा भारतके सभी प्रान्तीय और भिन्न भाषी क्रान्तिकारकोंने अपने स्वदेशका झण्डा और एक राष्ट्रभाषाके महत्त्वको समझा था। उन्होंने प्रचारके एक प्रमुख साधनके नाते हिन्दीमें समाचार-पत्र प्रकाशित किये थे। लाला हरदयाल, मॅडम कामा, स्वातंत्र्यवीर सावरकर, भाई परमानंद, डॉ. खानखोजे, मदनलाल धिंग्रा, रासबिहारी घोष, नेताजी सुभाषचन्द्र, और आज़ाद हिन्द फौज़के सिपाहियोंने राष्ट्रभाषाको देशकी भावनात्मक एकताका प्रमुख सूत्र मानकरही उसे आत्मसात् कर लिया था। सन् १८५७ का प्रथम भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम हमारे लिये एक महान गौरवका विषय है। उस समय सारे कागज़-पत्र चिट्ठी-पत्रियाँ, परिपत्रक, नानासाहब, बहादुरशाह, मौलवी अहमदशाह, झांसीकी रानी आदिने हिन्दीमेंही निकाले थे। ये सारी बातें तथा उसके पूर्वभी महादजी शिंदिया, यशवंतराव होलकर, तथा पेशवाओंका उत्तरी भारत तथा देहलीके शासनसंबंधी सारा पत्रव्यवहार एवम् बाजीराव और छत्र-सालका राजनैतिक सम्बन्ध उस समयकी राष्ट्रभाषाकी व्यापक शक्तिके ठोस प्रमाण उपलब्ध कर देते हैं। देशको पारतंत्र्यसे मुक्त करनेमें राष्ट्रभाषाने देशव्यापी शक्ति और ऐक्य तो प्रदान कियाही है। किन्तु विदेशोंमें और संसार-भरमें हिन्दीने अपने आपको भारत जैसे राष्ट्रकी राष्ट्र-भाषाके रूपमें आन्तर-राष्ट्रीय स्तरपर अपनी प्रतिष्ठा प्रमाणित करनेमें प्रधान और सक्रिय सहयोग दिया है।

आजकी समस्या कुछ निराले ढगकी है।

पराधीनताके पाशोंसे मुक्त हो जानेपर अनेक सरगर्मियाँ सामने आयीं, पर फिरभी भारतका एक सविधान स्वतंत्र भारतीय गणराज्यने बनाया। उसकी घोषणा हुई। घटना और सविधानके अनुसार हिन्दी राष्ट्रभाषा और देवनागरी राष्ट्रलिपि स्वीकार की गयी। जिसके पूर्व राष्ट्रभाषाके स्वरूप, राष्ट्रभाषाका चुनाव आदि विषयोंपर कई बहसे हुईं, चर्चाएँ की गयीं और साधक-बाधक तर्कोंको पुष्ट करते हुए दलीले भी पेश की गयीं तब कहीं जाकर एक निश्चयसे हमने यह मान लिया कि हमारे देशकी एक राष्ट्रभाषा है जिसे हम गौरवसे 'हिन्दी' कहते हैं। पर कुछ अपने स्वार्थ तथा पराधीन मनोवृत्तिके बधनोंने अँग्रेजीके मायापाशसे हमें अभीतक मुक्ति नहीं दी। देशके स्वातन्त्र्यके लिये पचीसों वर्षों तक हिन्दीका प्रचार करनेपर तथा उसकी उपलब्धि हो जानेपरभी आश्चर्यजनक बात सामने आयी। हिन्दी भाषियों द्वारा अन्य भाषा भाषियोंपर हिन्दी लादी जा रही है, यह घोषणा तथाकथित देशहितैषियों द्वारा बार बार दुहरायी जाने लगी। पर वास्तवमें इसके पीछे अँग्रेजी-प्रेम और दास-मनोवृत्ति ही मँडराती हुई दिखाई पडती है। इसलिये आज हिन्दी प्रेमियों हिन्दी भाषियों तथा हिन्दीतर भाषियोंमें परस्पर प्रेम, सौहार्द तथा भावनात्मक एकतासे हिन्दीका कार्य आत्मसात कर लेना होगा। अँग्रेजीमें यदि ज्ञानकी राशि है तो उसे सीखा जा सकता है पर उसका अतिरिक्त मोह त्यागकरही यह किया जाय। राष्ट्रभाषा गौरवकी वस्तु है। अहिन्दी-भाषी उसे अनिवार्य रूपमें सीखें। परन्तु इसके साथ साथ हिन्दी भाषियोंका यह आद्य कर्तव्य हो जाता है कि वे दक्षिणकी द्राविड परिवारकी कोई भाषा अनिवार्य रूपमें सीख ले। इससे राष्ट्रीय ऐक्यकी वृद्धि होगी तथा भावनात्मक ऐक्य बढ़ेगा।

ससारकी व्यावहारिक भाषाओंमें हिन्दीका महत्त्व न्यूनतम नहीं है। उसका महत्त्व जागतिक हो चला है।

भारतके आजाद हो जानेपर जहाँ जहाँ हमारे राजदूत नियुक्त किये जाते हैं वहाँ उन्हें स्वाभाविक रूपसे हिन्दीमें अपने परिचय पत्र उन देशोंके कर्मचारियोंको देने पडते हैं। यदि कोई अँग्रेजीमें अपने क्रेडेन्शियल्स प्रदान करभी देते है, तो उन्हें आश्चर्यसे स्तंभित हो जाना पडता है। उन देशोंके कर्मचारी हमारे अँग्रेजीदाँ लोगोंसे हिन्दीमें बोलते हैं और प्रश्न करते हैं कि क्या आपके देशकी कोई राष्ट्रभाषा नहीं है? तब हमारे राजदूत क्षोभित न होकर लज्जाका अनुभव करते है और यह अनुभव करनाही पडता है। भलाई इसीमें है कि हम अब कुछ शान्तिपूर्वक और विवेकके साथ विचार करनाभी सीखें। आज सारे विश्वमें भारत जैसे देशकी एक परराष्ट्र नीति है, जिसका

नाम है नॉन अलाइनमेण्ट पालिसी अर्थात् तटस्थता। संसारमें शान्तिकी स्थापना हो, परस्पर मैत्रीभाव, बंधुता एवम् मानव-प्रेम बढ़े, इसीलिये आज इसकी अतीव आवश्यकता है। इसीलिये रशियामें, अमरीकामें, जापानमें तथा यूरोपके सारे देशोंमें और स्थानपर स्थित विश्वविद्यालयोंमें हिन्दीका अध्ययन वैज्ञानिक ढंगपर होने लगा है। और हम भारतवासी अँग्रेजीको सखी भाषा बनाकर हिन्दीको राजभाषा और राष्ट्रभाषाके पदपर आसीन करनेके बदले प्रतिवर्ष पन्द्रह वर्षकी बतलाकर उसके राष्ट्रव्यापी प्रयोगकी अवधि निरन्तर बढ़ाते रहे हैं। यह क्रम बराबर चला है, पर हम इसे गौरवपूर्ण और गरिमास्पद स्थिति नहीं मान सकते। जैसे किसी समय विश्व तथा समूचे भारतमें और उसके सुदूर पूर्वी समस्त सांस्कृतिक पड़ोसियोंमें संस्कृतकी प्रतिष्ठा वर्तमान थी; वैसेही आज वही प्रतिष्ठा हिन्दीको मिल चुकी है। दूर दूर देशके हिन्दीतर भाषी लोग यहाँ आकर हिन्दीमें बोलते हैं, और यदि हम उनका अँग्रेजीमें स्वागत करें तो यह स्थिति विशेष शोभादायी और गरिमाकी नहीं सिद्ध होगी। अब तो हमें सतर्क और सजग होनेकी विशेष आवश्यकतासी उत्पन्न हो गयी है।

राष्ट्रभाषा हिन्दी विश्वभाषा बन सकती है।

कुछ लोगोंके अनुसार विश्वकी भाषाओंमें अँग्रेजीका स्थान सर्वोपरि है; पर निकट भविष्यमें ही वह स्थान हिन्दीको मिल सकता है। हिन्दी भाषा कदापि भी सर्वत्र अँग्रेजीका स्थान जबरदस्तीसे ग्रहण कर लेगी ऐसी बात नहीं है, परन्तु उसका दायित्व और उसका स्वत्व तो उसे मिलना ही चाहिये। यह कार्य सारे भारतवासियोंका है। हिन्दी भाषियोंको प्रेम, संयम और सौहार्दसे इसे विशेष रूपसे अपनाकर एवम् अन्य भाषा-भाषियोंकी बातें सुनकर तथा उनकी भाषाएँ सीखकर भावनात्मक एकताका आदर्श उपस्थित करना चाहिये। इसीमें सबका कल्याण है। तब एक ऐसे विराट सत्यके दर्शन हो जायँगे, जिससे यह प्रतीत होगा कि हिन्दीमें भी विश्वभाषा बननेकी सक्षमता और पात्रता है। अतः हमें यह अवसर न चूकना चाहिये। यदि हम ऐसा नहीं करते हैं तो हम हिन्दीसे अपना और राष्ट्रका हित कभी नहीं साध सकेंगे।

---

## ४७ : भारतीय हिन्दी परिषद्-द्वारा वर्तनीकी एकरूपताके लिए प्रस्तावित नियमोंका प्रारूप

प्रस्तावना—अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघने लेखन-मुद्रणमें एकरूपताके लिये वर्तनीसम्बन्धी नियमोंका एक प्रारूप प्रचारित किया है।

भारतीय हिन्दी परिषद्का ध्यान भाषाकी एकरूपता तथा स्थिरीकरणकी व्यापक समस्यापर आजसे दस वर्ष पहलेही गया था। उसके पटना अधिवेशनमें इस विषयकी विभिन्न समस्याओंपर विस्तारसे विचार भी किया गया था। हिन्दी अनुशीलनका भाषा-अंक भाषा और लेखन-शैलीके स्थिरीकरणके उद्देश्यसेही निकाला गया था। परन्तु इस विषयमें भारतीय हिन्दी परिषद्ने अब तक अपना कोई निश्चय नहीं प्रकट किया है। प्रकाशक-संघके उपर्युक्त प्रारूपके प्रचारित होनेपर परिषद्की कार्यकारिणीका ध्यान इस ओर विशेष रूपसे गया कि कम-से-कम उन समस्याओंपर भारतीय हिन्दी परिषद्को अपना मत निर्धारित करही लेना चाहिये, जिनके बारेमें प्रकाशक संघ निर्णय कर लेना चाहता है। और इस उद्देश्यसे उसने एक प्रारूप तैयार करनेका कार्य एक समितिको सौंपा, जिसके सदस्य डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, प० विश्वनाथ-प्रसाद मिश्र, डॉ. माताप्रसाद गुप्त, डॉ० हरदेव बाहरी और डॉ० रघुवंश (संयोजक) रक्खे गये। समितिने कुछ बैठके कर निम्नलिखित प्रारूप परिषद्के विचारार्थ निश्चित किया है।

**उद्देश्य**—वस्तुतः वर्तनीके प्रश्नपर केवल यांत्रिक सुविधा तथा उपयोगिताकी दृष्टियोंसे विचार करना उचित नहीं माना जा सकता। वर्तनी भाषासे घनिष्ठ रूपसे सम्बद्ध होती है और भाषाकी शैली तथा प्रवाहपर भी उसका प्रभाव पड़ता है। वर्तनीके नियमोंका निर्धारण करनेमें इस कारण भाषाकी मौलिक प्रकृतिको ध्यानमें रखना अत्यन्त आवश्यक है। इधर कुछ साहित्यिक प्रकाशन संस्थाएँ छपाईकी सुविधाके नामपर वर्तनीकी जिस पद्धतिका अनुसरण कर रही है, वह भाषाकी प्रकृतिके सर्वथा अनुकूल नहीं है और उससे भाषाकी शैली बोझिल होती है तथा गति रुद्ध होती है। लेखन शैली अथवा वर्तनीमें संशोधन करनेका एकमात्र उद्देश्य यह होना चाहिये कि वह भाषाकी मूल प्रकृतिको अक्षरों तथा अंकोंके माध्यमसे व्यक्त करनेमें अधिकसे अधिक सहायक हो सके।

**नियमोंका आधार**—भाषाकी मूल प्रकृतिकी रक्षा करते हुए इस सम्बन्धमें नियमोंका निर्धारण १–भाषा वैज्ञानिक प्रमाण २–स्पष्टता: वर्तनीके सार्थ अर्थकी ३–परम्परा, तथा ४–सुविधाके आधारपर किया जाना अपेक्षित है। यहाँ यह ध्यान रखनेकी बात है कि भाषाका मूलरूप उसके प्रयोग करनेवाले लेखकों, विचारकों, साहित्यकोंके द्वारा निरूपित होता है, नियमोंको बनानेवाले वैयाकरणोंसे नहीं, वे उनके निरूपक मात्र होते हैं। ऐसी स्थितिमें उपयुक्त आधारोंका निरूपण भाषाका प्रयोग करनेवालोंकी दृष्टिसेही होना चाहिये।

## नियमावली

### १. वियुक्त शब्द, संयुक्त शब्द या हाइफनका प्रयोग

१—हिन्दीकी मूल प्रकृति विश्लेषणात्मक है, संस्कृतके समान संश्लिष्ट नहीं। समासयुक्त शब्दोंका प्रयोग भी संस्कृतकी शैली है, हिन्दीकी नहीं। हिन्दीमें संज्ञा शब्दोंका विशेषण रूपमें प्रयोग सर्व प्रचलित है। इस कारण संस्कृतके समान दो संज्ञा शब्दोंमें विभक्ति-चिन्होंका प्रयोग हुए बिना भी उनका समासयुक्त होना उसमें आवश्यक नहीं है। ऐसी स्थितिमें इस सम्बन्धमें हिन्दीमें प्रयोगके आधारपर संस्कृतसे भिन्न नियमोंका अनुसरण आवश्यक है।

(क) हिन्दीकी परम्परा कर्मधारय-समासमें शब्दोंको पृथक्-पृथक् रखनेकी है। जैसे—कृष्ण सर्प, गम्भीर पुरुष, शुद्ध जल। यह हिन्दीकी विश्लेषणात्मक प्रकृतिके अनुकूल है, साथ ही विशेषण तथा विशेष्यकी स्पष्ट अलग स्थितिको भी व्यक्त करती है। अतः इसे ही मान्य माना जाय।

(ख) हिन्दीकी इसी प्रकृतिके अनुसार द्वन्द्व-समासकी स्थितिमें भी शब्दोंको अलग अलग (कामा देकर) रखना उचित है, जैसे—राम, कृष्ण, बुद्ध आदि।

(ग) तत्पुरुष समासकी वर्तनी प्रयोगके अनुसार विविध रहनी चाहिये। यथा—

अ दो छोटे छोटे शब्दोंको जोड़ देना अपेक्षित होगा जैसे—भूदेव, नरपति आदि।

आ पहला तत्व यदि विकृत है या अपने मूलरूपमें है तोभी दोनों शब्दोंको जोड़कर लिखना उचित है जैसे—वाक्कलह, द्विजार्थ, राजपुरुष, पितृसम आदि। वास्तवमें ऐसे शब्द संस्कृतके नियमानुसार ही सिद्ध हैं, अतः इनका प्रयोग उसी रूपमें करना चाहिये।

इ दो बड़े-बड़े शब्दोंको अलग रखना ही उचित होगा—जैसे, साहित्य समारोह, शब्द चमत्कार आदि। जिन्हें मिलाकर लिखनेसे भाषा बोझिल होगी। (कर्मधारय)

ई दोसे अधिक शब्दोंके समासयुक्त शब्द पृथक् ही रखे जाएँ। जैसे—हिन्दी साहित्य सम्मेलन, नागरी प्रचारिणी सभा।

(घ) द्विगु समास जोड़कर लिखना उचित होगा—जैसे, पचजन्य, त्रिभुवन आदि। ये शब्द भी संस्कृतसेही सिद्ध हैं, हिन्दीमें भी इस प्रकार समास जुड़कर एक शब्द बन गये हैं, जैसे दुचिता चौराहा, छपेटी—सतनजा आदि।

(ङ) बहुव्रीहि समास तो वास्तवमें संस्कृतमें भी अर्थकी दृष्टिसे एक ही शब्द हो जाता है हिन्दीमें तो वह इस रूपमें माना ही जाना चाहिये जैसे, मेघनाद, महाबाहु, जलजात, अपुत्र, सपत्नीक आदि।

(च) अव्ययीभाव समासकी स्थितिमें भी शब्दोंको जुड़ा ही रखना चाहिये—जैसे, यथास्थान, यथासंभव आदि।

२—(क) हिन्दीके अपने शब्दोंमें इस प्रकारका समास करना उसकी अपनी प्रकृतिके विरुद्ध होगा। हिन्दीमें ऐसे शब्द अलग-अलग रहेंगे अथवा हाइफनसे जोड़े जाएँगे, जैसे सिगरेट-केस, देख-भाल।

(ख) प्रति (अलग)—प्रति दिन, हर रोज

वाला (अलग)—बाँसुरी वाला, दौड़ने वाला

अपवाद—किन्तु जब 'वाला' लगाकर एक वस्तु या व्यक्तिका अर्थ द्योतित होता हो, तो उसे मिलाकर लिखना चाहिये, जैसे झुनझुनवाला, शोरेवाला अगरवाला।

(ग) 'जी' का प्रयोग अलग होना चाहिये, जैसे हिन्दीमें 'श्री' का हो रहा है।

३—(क) परसर्ग अलग रहने चाहिये। वास्तवमें इनको विभक्ति कहना गलत है। हिन्दीमें कारकोंको गलत ढंगसे कहा जाता रहा है। वस्तुतः ये अन्य परसर्गोंके समानही हैं। अन्य परसर्गोंको अलग रखनेके बारेमें कोई समस्या नहीं है। जैसे—समान, नीचे, ऊपर, तले, भर आदि। अतः ने, को, से, के लिये, का, की, के, में, पर आदिको संज्ञा और सर्वनाम दोनोंमें अलग रखा जाना चाहिये।

(ख) पूर्वकालिक क्रियाओंका 'कर' अलग रहना चाहिये। ऐसा करनेसे अधिक स्पष्टता रहेगी। क्योंकि इस प्रकारके अन्य शब्द भी बनते हैं, इनमें भ्रम हो सकता है। साथ ही, उच्चारणमें आघातका अन्तर पड़ता है। पूर्वकालिक क्रियाओंके रूपमें 'कर' का उच्चारण क्रियाके अक्षरके बाद अलग, स्वतंत्र हो जाता है। जैसे—सी कर और सीकरके उच्चारणमें अन्तर है, यहाँ अर्थमें भी अन्तर है। मिला देनेसे उच्चारण स्पष्ट नहीं होगा। मिला देनेसे 'कर' के 'क' का उच्चारण हिन्दीकी प्रकृतिके अनुसार स्वरहीन हो जायगा और यहाँ 'कर' का स्पष्ट उच्चारण आवश्यक है। जैसे—जा कर, खा कर, पी कर, सो कर।

(ग) संयुक्त क्रियाओंमें दोनों क्रियाएँ अलग होती हैं, उनको अलग रखना चाहिये। वस्तुतः ऐसाही होता है, यहाँ कोई समस्या नहीं है।

II या, ये, अथवा आ, ए, ई अन्त्य ध्वनियोंके रखनेकी समस्या

इस विषयमें पहले हिन्दीमें लगभग सर्वमान्य मत था कि इनका वर्तनीमें प्रयोग उच्चारणके अनुसार किया जाये। अर्थात् बिना इस बातको ध्यान दिये शब्द संज्ञा, विशेषण अथवा भूतकालिक कृदन्त आदिका पुलिंग या एकवचन रूप केवल स्वरमें अन्त होता है अथवा 'य' के साथ इसकी बहुवचन तथा स्त्रीलिंग वर्तनीमें उच्चारणके अनुसार स्वरका प्रयोग किया जाता था—अर्थात् गाय गाएँ, नया-नई, गया-गए। इधर वर्तनीकी एकरूपताकी दृष्टिसे यह नियम

प्रतिपादित किया गया कि जो शब्द पुल्लिग एकवचनमें केवल स्वरान्त हो वे बहुवचन और स्त्रीलिंग रूपोंमें भी स्वरान्त रहने चाहिये, किन्तु जिनके पुल्लिग एकवचन रूपमें अतमें 'य' अथवा 'या' आता हो उनके बहुवचन और स्त्रीलिंग रूपोंमें 'ये'-'यो' होना चाहिये। यह नियम अपनी स्पष्टताके कारण इधर कुछ स्वीकृति भी पा रहा है।

परन्तु ध्वनियोके नियम तथा उच्चारणकी स्पष्टताकी दृष्टिसे उच्चारणके अनुसार वर्तनीमें अन्त्य स्वरोकाही प्रयोग अधिक सगत जान पडता है। अन्तत यह नियम अधिक सुगम सिद्ध होगा। क्योकि वर्तनीका सम्बन्ध उच्चारणसे भी मानना पडेगा। वर्तनीके आधारमें सुविधा हो यह भी एक विचारणीय बात है। साथ ही य-याके स्थानपर-ई,-ए का परिवर्तन समझना भी कठिन नहीं है। क्योकि अर्धस्वर 'य' और 'इ'में निकटताका सबध है।

(इस सम्बन्धमें अखिल भारतीय प्रकाशक सघके प्रस्ताव तो और भी अधिक भ्रम उत्पन्न करनेवाले हैं।)

## III. हिन्दीमें प्रयुक्त सस्कृत शब्दोका प्रयोग

१—हिन्दीमें सस्कृत मूलके तद्भव शब्दोका प्रयोग होना तो स्वाभाविक ही है, और इस प्रवृत्तिपर बल देना चाहिये।

२—सस्कृत तत्सम रूपोका प्रयोग शुद्ध रूपमेंही होना चाहिये। इससे शब्दरूपोको भाषा वैज्ञानिक दृष्टिसे समझनेमें आसानी होगी। सपूर्ण भारतीय भाषाओमें प्रयुक्त तत्सम शब्दोमें एकरूपता रहेगी, तथा शब्दोकी व्याख्या करना आसान होगा—यथा

महत् + त्व प्रत्यय = महत्त्व न कि महत्व
उत् + ज्वल प्रत्यय = उज्ज्वल न कि उज्वल
तत् + त्व ,, = तत्त्व, न कि तत्व

३—हलन्त शब्दोमें रखना भी उपर्युक्त दृष्टिसे आवश्यक होगा। यथा—विद्वान्, महान्, आदि।

## IV. विदेशी ध्वनियोकी समस्या

१—फारसी अरबीकी कुछ ध्वनियाँ हिन्दीमें आ गयी हैं। विशेषकर उत्तर-भारतके पश्चिमी क्षेत्रोमें उनका प्रयोग बहुत होता है। यो फारसी अरबी सारी ध्वनियाँ उर्दूमें भी तद्वत नहीं रही हैं। जैसे—'क' ध्वनिका उच्चारण उर्दूमे भी शुद्धतावादी ही बोलते हैं। ऐसी स्थितिमें ख, ज, ग, फ ध्वनियोको हिन्दीमें स्वीकार कर लेना चाहिये। इनके विरोधी जोडे भी हिन्दीमें हैं। ज, फ अँग्रेजीसे भी प्राप्त हैं। अत. शुद्धताके नाते इन ध्वनियोको हिन्दीमें रखना चाहिये।

२—अन्य भाषाओंके अनेक शब्द जिनके उच्चारणमें बीचके अक्षरकी अर्धध्वनि और पूर्ण ध्वनि संदेहास्पद हो, उन्हें पूरे अक्षरसेही लिखना चाहिये। जैसे—गरमी, सरदी, शरम, बरफ, गरदन, बरतन, फुरसत।

३—शुद्धताकी दृष्टिसे अँग्रेजी शब्दोंके उच्चारणकी आवश्यकताके अनुसार वर्तनीमें अर्धचन्द्रका प्रयोग करना अपेक्षित है। जैसे—डॉक्टर, नॉर्मल, ऑपरेशन आदि।

## V अनुस्वार और चन्द्रबिन्दु

१—संस्कृतमें अनुस्वार तथा पंचम वर्णका विकल्पसे प्रयोग होता है। हिन्दीमें भी यही पद्धति प्रचलित है। परन्तु लेखन तथा छपाईमें अनुस्वारकी बिन्दी छूट जाने, मिट जाने तथा गिर जानेकी बहुत सम्भावना रहती है। हिन्दीमें अनुनासिक ध्वनियोंके प्रयोगकी वैसे भी बहुत प्रवृत्ति है। इस कारण भी यदि वर्तनीमें बिन्दुओंका प्रयोग कम किया जा सके तो सुविधाजनक होगा।

(क) पंचवर्गीय व्यंजनोंकी अनुनासिक ध्वनियोंमें ङ तथा ञका यों भी ह्रास हो चुका है। ऐसी स्थितिमें इनके स्थानपर अनुस्वारका प्रयोग किया जाना चाहिये। जैसे—अकिंचन, पंगु आदि।

(ख) अन्य पंचम वर्गीय व्यंजनोंकी अनुनासिक ध्वनियोंका ण, न, तथा मका प्रयोग इसी (पंचम वर्ण)में किया जाना चाहिए। जैसे—सम्बन्ध, अंत, कुण्ठन।

(ग) अन्यत्र (ऊष्म तथा अन्तस्थ व्यंजनोंके पूर्व) अनुस्वारके रूपमें अनुनासिक ध्वनिका प्रयोग होना चाहिए। जैसे—संबंधी संयम, संरक्षण आदि।

(घ) अँग्रेजी तथा अन्य विदेशी शब्दोंमें उच्चारणके अनुसार वर्गोंके पंचम वर्णका प्रयोग किया जा सकता है। जैसे—सेन्ट पेटर आदि।

२—अनुस्वार तथा चन्द्रबिन्दुका अन्तर उच्चारणके कारण है और वह रहना चाहिये। अर्थकी स्पष्टताकी दृष्टिसे भी यह आवश्यक है। जैसे—सवार सँवार हंस हँस आदि।

परन्तु सुविधाकी दृष्टिसे स्वरोंमें अ, आ, उ, ऊ, के साथ, इनकी मात्राएँ ऊपर नहीं लगती हैं, चन्द्रबिन्दु आना चाहिये, परन्तु अन्य स्वरोंमें बिन्दुसे चन्द्रबिन्दुका काम लिया जा सकता है। स्वरोंमें अनुनासिकताकी समस्या हिन्दीकी अपनी है। इस कारण विषयमें भ्रमकी गुंजाइश नहीं होगी। जैसे—हँस काँस, कुँअर, सूँस, जायेंगी, नहीं, साईं आदि।

---

पंचम अध्याय

# हिन्दीका भावी रूप

## ४८ : हिन्दी क्षेत्रीय भाषाओंमें एकात्मता निर्माण करनेवाली भाषा है।

[पंडित जवाहरलाल नेहरूके मतानुसार हिन्दी एक ऐसी भाषा है जो भारतकी क्षेत्रीय भाषाओंके साथ एकात्मताका संबंध जोड़नेवाली एक बीचकी कड़ी है। मद्रासमें भारतके प्रधानमन्त्रीने द्रविड मुनेत्र कझगमके द्वारा भारतीय संविधानको जलानेकी भर्त्सना करते हुए कुछ मननीय एवम् महत्त्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किये थे। लोगोंकी यह धारणा है कि पंडित जवाहरलाल अँग्रेजीके महत्त्वकोही नित्य आँकते रहते है। मद्रासमें नवम्बर ३०, १९६३ को हिन्दीके महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्वको समझाते हुए बड़ी सारगर्भित बात पंडित नेहरूजीने कही। उसका अंश यहाँपर उद्धृत किया जा रहा है। राष्ट्रभाषा प्रचारको और प्रेमियोंके लिये उसका महत्त्व स्वयंसिद्ध है।]

### अँग्रेजीको अपदस्थ करनेवाली हिन्दी नहीं वरन् राज्यभाषाएँ हैं।

भारतकी सभी भाषाएँ तमिलसहित बड़ी महान् भाषाएँ हैं। भारतीय संविधानमें उनको भारतीय भाषाएँ बतलाया गया है। अपने-अपने प्रदेशोंमें तो हर एकका अपना अपना विकास भी हो रहा है। संविधानकी मान्यताके अनुसार इन सब भाषाओंको परस्पर जोड़नेवाली कड़ीके रूपमें अँग्रेजीके स्थानपर हिन्दीका उपयोग किया जायगा। वास्तवमें अँग्रेजीको अपदस्थ करनेवाली हिन्दी नहीं है; वरन् ये सारी राज्यभाषाएँ हैं।

### हिन्दी एक ठोस कड़ी है, जो सबको एकात्मतामें गूँथेगी।

यो अँग्रेजी विश्वकी एक बड़ी भाषा है। यह भी हमारे लिये उपादेय और आवश्यक है कि हम उसका अध्ययन करें और उसका ज्ञान प्राप्त करें। किन्तु यह एक और बात है और राष्ट्रकी सारी जनताको शिक्षाके माध्यमके रूपमें अँग्रेजी भाषाके द्वारा अर्थात् एक विदेशी भाषाके द्वारा शिक्षा देना और समझाना एक दूसरी बात है। यह विदेशी भाषा चाहे जितनी महान् एवम् शक्तिशाली क्यों न हो, हम कदापि राष्ट्रकी जनताके शिक्षाका माध्यम उसे नहीं बना सकते। यो मैं चाहता हूँ कि भारतमें अँग्रेजी फूले-फले, उसकी प्रगति हो। संसारसे हमारा संबंध बिना अँग्रेजी भाषाके ज्ञानके टूट जाय, यह मैं कदापि नहीं चाहूँगा क्योंकि संसार बड़ी तीव्र गतिसे आगे बढ़ रहा है। पर

इस कथनके बावजूद भी मैं यह भी कभी नहीं चाहता कि सदाके लिये अँग्रेजी ही हमारी शिक्षाका माध्यम बना रहे। यदि हम राष्ट्रकी जनताकी बात सोचते हैं तथा उस दृष्टिसे विचार करते हैं तो एक ऐसी कड़ी या जोड़नेवाली भाषाका हमें स्मरण हो आता है जो भारतकी तमाम राज्यभाषाओंसे अपना संबंध बनाये रख सकती है। हमारे संविधानने इसका हल ढूँढ़ निकाला है। यह कड़ी हिन्दी भाषा ही होगी। क्षेत्रीय भाषाओंके विकाससे अँग्रेजीको अपना उचित स्थान मिलेगा तथा क्षेत्रीय भाषाएँ भी अपना उचित स्थान ग्रहण करेंगी। इस समस्याको सही रूपसे समझकर यदि सब सहमत हो जायें तो इन भिन्न भिन्न भाषाओंको जोड़नेवाली कड़ीकी भाषाका सवाल सामने आएगा। सभी व्यक्ति यही अनुभव करेंगे कि जोड़नेवाली कड़ी भाषाकी अनिवार्य आवश्यकता है।

हमें एक-दूसरेकी भाषा सीखनी चाहिये। हमारी साहित्य अकादमी-जैसी संस्था इस दिशामें कार्यरत है तथा सभी भाषाओंको साथ मिलानेके लिये प्रयत्नशील है। एक-दूसरेसे संघर्ष कर भाषाका विकास नहीं होगा। भाषाका विकास होता है प्रगतिसे, एक भाषाके विकासमे दूसरेके योगदान करनेसे। पंद्रह वर्षोंतक अँग्रेजी इस कड़ीका कार्य भले ही करे; परन्तु हिन्दी ही वह कड़ी होगी जो क्षेत्रीय भाषाओंके साथ अपना संबंध जोड़कर एकात्मताको कायम करेगी।

केन्द्रीय सरकारकी नौकरी पानेके लिये हिन्दीका ज्ञान अपेक्षित नहीं होगा, ऐसा आश्वासन देकर पंडित नेहरूने आगे कहा कि एक बार केन्द्रीय नौकरीमें प्रवेश मिल जानेपर हिन्दीकी कोई परीक्षा उत्तीर्ण करना आवश्यक उसी प्रकारसे होगा जसे [तमिलनाड-प्रदेशकी नौकरी करनेके लिये कोई तमिल परीक्षा उत्तीर्ण करना आवश्यक होता है। यह सही है कि एकाएक ऐसी क्रान्ति नहीं लायी जा सकती। जैसे—कोई जादू कर दिया जाय। भाषा बड़ी नाजुक चीज होती है और इसका विकास धीरे-धीरेही होता है। आज सबसे अच्छी बात यह हो रही है कि क्षेत्रीय भाषाएँ विकसित हो रही हैं।

## भाषाकी समस्या एक कठिन समस्या है।

यह समस्या बड़ी जटिल समस्या है। इसका समाधान झटसे नहीं किया जा सकता। क्योंकि इसका संबंध वृहत् जन-समूह और उसकी शिक्षासे है। इसका संबंध अन्य भाषाओंकी जानकारीसे भी है। यह समस्या और कठिन इसलिये हो गयी है कि हिन्दीके कट्टर समर्थक उग्र रुख अपनाये हुए हैं। उसी प्रकार दक्षिणके लोग भी उग्र रुख अपनाये हुए हैं। कट्टर रुख अपनानेसे कठिन समस्याएँ नहीं सुलझायी जा सकतीं। इसका समाधान तो धीरे-धीरेही हो

सकता है। [1] (स्पष्ट ही है कि क्षेत्रीय भाषाओंको जोड़नेवाली कड़ी भाषाके रूपमें पंडितजीका अभिप्राय हिन्दी भाषासे ही है।)

---

## ४९ : राष्ट्रभाषाका लक्ष्य

[ बम्बई हिन्दी-विद्यापीठ द्वारा रजत जयन्तीनिमित्त आयोजित महोत्सवका उद्‌घाटन करते हुए भारतके उपराष्ट्रपति डॉ० जाकिर हुसेनने राष्ट्रभाषापर अपने विचार इस प्रकार प्रकट किये हैं। [2] ]

### हिन्दी : एकता-सूत्र

हिन्दीका प्रचार करनेवाली यह संस्था महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही है। हिन्दीको राजभाषा बनानेका निर्णय एक राष्ट्रीय निर्णय है। इस देशमें भिन्न भिन्न भाषा बोलनेवाले और भिन्न भिन्न धर्मोंको माननेवाले लोग बसते हैं और हिन्दी उन सबको जोड़नेवाली एक कड़ी है। गणतंत्रमें सबको परस्पर सहयोगसे कार्य करना पड़ता है। अतः उन्हें एकता सूत्रमें बाँधनेके लिये एक भाषाका होना जरूरी है। जब लोगोंमें शिक्षाका प्रचार नहींके बराबर था तब फारसी और अँग्रेजीसे यह काम लिया गया। आज जब शिक्षाका प्रसार तीव्र गतिसे हो रहा है, तब हम विदेशी भाषाको करोड़ों लोगोंपर नहीं लाद सकते। हमें एकता कायम करनेके लिये हिन्दीको अपनाना होगा।

### मातृभाषारूपी पुष्पोंको पिरोकर सुन्दर हार बनानाही हिन्दीका लक्ष्य है।

अहिन्दी भाषी लोगोंकी गलत फहमियोंको मिटानेपर बल देते हुए उन्होंने कहा — "भारत विभिन्न भाषारूपी फूलोंसे सजा हुआ बाग है, हिन्दीका लक्ष्य इसके सौन्दर्यको निखारना है। उसका काम फूलोंकी शोभाको नष्टकर बागको वीरान बना देना नहीं है। वह प्रादेशिक भाषाओंको बल देना चाहती है, उनके विकासमें बाधक नहीं बनना चाहती। अहिन्दी भाषियोंके सन्देहको

---

१ दि संडे स्टैंडर्ड, दिसम्बर १, १९६३ संख्या २५ नं ४७ तथा नवभारत टाइम्स वर्ष १४ संख्या १५५ १ दिसम्बर १९६३

पंडित जवाहरलाल नेहरूने हिन्दीको एक जोड़नेवाली कड़ी कहकर बहुत बड़ी दूरदर्शिताका कार्य किया है। — सम्पादक

२ देखिये —नवभारत टाइम्स, वर्ष १४ संख्या १३४, १० नवंबर ६३

मिटाकर हिन्दी प्रचारकोंको उन्हें स्पष्ट रूपसे कहना होगा कि हिन्दी राजनीतिके बलसे दूसरी भाषाओंको दबाना नहीं चाहती; वरन् उनके विकासमें सहायक बनना चाहती है।

[केन्द्रीय हिन्दी निदेशालयके प्रमुख डॉ० विश्वनाथ-प्रसादने इसी प्रसंगपर अपने कुछ विचार प्रकट किये जो महत्त्वपूर्ण हैं।]

## हिन्दी अनेक प्रदेशोंकी भाषा है[1] :

हिन्दीके विकासपर प्रकाश डालते हुए आपने कहा — "हिंदी किसी एक प्रदेशकी भाषा न होकर अनेक प्रदेशोंकी भाषा है। इसके गौरवमें सभी प्रादेशिक भाषाओंका गौरव निहित है। हिन्दी समस्त देशकी प्रतिनिधि-भाषा है। हमारे संविधानने स्वीकार करके इसके इस रूपको बहुमान प्रदान किया है। आजका मुख्य प्रश्न यह है कि संविधानमें हिन्दीके जिस व्यापक रूपकी कल्पना की गयी है, उसका विकास शीघ्रातिशीघ्र किस प्रकार हो? भाषाके व्यापक रूपका निर्माण तो प्राचीन परम्पराओंके अनुसार विकासकी प्रक्रियासेही सम्भव है।

## हिन्दीका विरोध क्यों ?

कुछ राज्योंमें हिन्दीके प्रति जो विरोध-भावना है, वह कुछ राजनीतिक वर्गोंतकही सीमित है। हिन्दी-विरोधको केवल अहिन्दी-भाषियोंपर लादना सरासर अन्याय है। हिन्दीके सबसे प्रबल विरोधी तो उत्तर-भारतके वे प्रदेश हैं, जो हिन्दी-भाषी कहे जाते हैं। इनके मनमें भय भर गया है कि कहीं उन्होंने हिन्दीपर अधिक ध्यान दिया, इसे माध्यम बनाया, तो अँग्रेजीका स्तर गिर जायगा और फिर उनके यहांके लोगोंको ऊँचे पद नहीं मिल सकेंगे। इसी तरहका भय दक्षिण-भारतमें है कि माध्यममें अँग्रेजी नहीं रही तो हिन्दी क्षेत्रके लोगोंको अधिक लाभ पहुँचेगा।

समस्त राष्ट्रकी समान भाषा अथवा राजभाषाके रूपमें हिन्दीका भविष्य हिन्दीतर लोगोंके हाथमें है। मातृभाषामें शिक्षण होनेपर छात्र तेजीसे आगे बढ़ते हैं। केन्द्रीय सरकार पारिभाषिक शब्दावलीमें एकरूपता अथवा समरूपता लानेका प्रयत्न कर रही है। भौतिक-रसायन, गणित, प्राण-विज्ञान, भूगर्भ-विज्ञान, भूगोल और वनस्पति-विज्ञानमें बी. एससी. तककी पढ़ाईके लिये शब्दावलीको अन्तिम रूप दे दिया जा चुका है। इनमें देशी और विदेशी भाषाओंके शब्द लिये जा सकते हैं।

---

१ देखिये —नवभारत टाइम्स, वर्ष १४ · संख्या १३५ · ११ नवम्बर, १९६३।

[भारत, भाषाके प्रश्नपर पूज्य आचार्य विनोबाजीके कुछ विचार इस प्रकार हैं।[1]]

## मातृभाषा आत्मज्ञानके प्रसारका साधन है।

आत्मज्ञान अपने देशकी चीज़ है। वह सारा संस्कृतमेंही पड़ा रहता, यदि मातृभाषामें उसका प्रचार न हुआ होता। संतोंने आत्मज्ञानका उपयोग और प्रचार मातृभाषाके माध्यमसे किया। ऊँचे ज्ञानकी खोजके लिये संस्कृतका अध्ययन किया गया; परन्तु उसका प्रचार और फैलाव मातृभाषाके माध्यमसेही हुआ। आज विज्ञानका युग है। ऊँचे विज्ञानके लिये हम अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, रशियन भलेही सीखें; किन्तु उसके उपयोग और प्रसारके लिये मातृभाषाके बिना अन्य किसी भाषामें गति नहीं है। अंग्रेजीको लादकर क्या होगा? यह तो एक बोझ है। संयुक्त राष्ट्र संघमें हमें अंग्रेजीमें नहीं हिन्दीमें बोलना चाहिये। अपने देशका कारोबार अंग्रेजीमें चलाकर हम दुनियाके सामने दिखा सकते हैं; पर हम इसे अपनेही देशके किसानोंके सामने नहीं रख सकते। यह एक बड़ी भारी गलती है। इस तरह अपने देशका कारोबार दूसरे लोगोंके सामने खुला रखना मूर्खता है। दुनिया इंग्लिशसे बड़ी है। अतः अंग्रेजीको धीरे धीरे हटनाही है।

## १४ सितम्बर : हिन्दी दिवसपर श्री. पं. मु. डांगरेजीका एक सन्देश :

भारतीय संविधान सभाने इस दिन हिन्दीको राष्ट्रभाषा और देवनागरीको राष्ट्रलिपि घोषित किया। इसी गौरवपूर्ण तिथिपर राष्ट्रीय एकताकी भावनाको सुदृढ़ करनेके लिये भारतकी समस्त जनता तथा उसके जन-नायकोंने देवनागरीमें लिखित हिन्दीको राजभाषाके पदपर आसीन घोषित किया। इसी महान् सांस्कृतिक पर्वपर विभिन्न प्रादेशिक साहित्य-संस्कृतियोंको एकही राष्ट्रलिपि देवनागरीमें पिरोने और उनके द्वारा उन्हें सर्व-सुबोधिनी बनानेका शुभ संकल्प हुआ था। इसमें राष्ट्रीय एकताहीपर लक्ष्य था।

## भारतीय जीवनका परम लक्ष्य एकत्व :

हमारे जीवनका परम लक्ष्य एकत्व है। शोक और मोहकी निवृत्तिके लिये एकत्वके सुदर्शन परम आवश्यक होते हैं। एकत्वके सुदर्शनके बराबर घूमते रहनेसेही इकस्तंभ द्वारिका अचल रहती है। और चाहे कोई व्यक्ति हो या परिवार हो, समाज हो या संस्था-संगठन हो, राष्ट्र हो या विश्व हो, यदि वे एकत्वके गुरुत्वाकर्षणमें नियमित नहीं घूमते हैं तो पलक झपतेही वे सब चकनाचूर

१. देखिये, भाषाका प्रश्न अ. भा. सर्व सेवा संघ प्रकाशन

समझियेगा । एकत्व, जीवन-व्यापिनी मूलाधार शक्ति है । बिना उसके न व्यक्ति अपना विकास कर सकता है, न परिवार अपनी प्रगति कर सकता है, न समाज या संस्था संगठन अपने उद्दिष्टोंकी पूर्ति कर सकता है । न राष्ट्र राष्ट्रसंघमें सबकी आँखोंका तारा बन सकता है, न विश्व-शान्ति तथा आनन्द-निकेतन बन सकता है । बिना इस जीवन-व्यापिनी भावनाके कोई भी संगठन कितनाभी प्रबल तथा विशाल क्यों न हो, उसके सिद्धान्त कितनेभी गंभीर तथा गगनोत्तुंग हों, प्रचार-प्रसार-विकासादि अपने कार्योंमें वह यथार्थमें कदापि सफल होनेवाला नहीं है । इसी एकत्वके सुदर्शन तथा राष्ट्रीयताकी संसिद्धिके लिये इस १४ सितंबरकी तिथिपर नागरी हिन्दी राजभाषा तथा राजलिपि घोषित हुई । उस तिथिपर महा सांस्कृतिक पर्व समझकर समारोह कैसे न मनाया जाये ?

## हिन्दी-प्रचार-विकाससे हमारा अभिप्राय भारत-भारतीकी एकता है ।

हिन्दीको लोग अपने प्रादेशिक संकोचसे एक प्रदेश-विशेषकी भाषाही लेकर चलते हैं, और उसके सामने अपनी-अपनी मातृभाषाके भवितव्यकी चिन्ता खडी हो जाती है । अपनी प्रादेशिक भाषा-साहित्य-संस्कृतिकी सुरक्षाके लिये चिन्तित होना स्वाभाविक है; पर सुरक्षाके हेतु इर्द-गिर्द खाई-खंदक खोदना या कोट-किले खडे करना घर ही-घरमें अच्छा सा उपाय नहीं है। प्रयागमें गंगा यमुनाकी शुक्ल-कृष्ण धाराएँ कुछ हदतक बाहरसे भलेही अलग बहती दिखाई दें, भीतरसे तो दोनो सम्मिलितही हैं । "भारत भारतीके" हिन्दी महासागरमें सबको सम्मिलित होना है । राष्ट्र-भारतीको लक्ष्य करही जय-भारतीका नारा बुलंद कर हमे असम-भारती, बंग-भारती, उत्कल-भारती, कश्मीर-भारती, गुर्जर-भारती, महाराष्ट्र-भारती, कन्नड-भारती, तमिल भारती, मलयालम-भारती, तेलुगू-भारती, पचनद-भारती, सिंधु-भारती, उर्दू-भारती, संस्कृत-भारती प्रभृति सभीका साथ साथ विकास कर ऊपर उठना है, आगे बढ़ना है । संविधानमें सम्पूजित सभी भाषाएँ अन्तमें हिन्दकी हैं—हिन्दी हैं । विशुद्ध एवम् व्यापक राष्ट्रीय दृष्टि-कोणसे और विशाल तथा विधायक स्नेह सेवा भावसे हमें एकताको, मानवताको, सत्य-अहिंसाको, प्रेम-मूलक सहजीवनको, चतुर्दिक् फैलाना है । और हिन्दी प्रचार विकाससे हमारा अभिप्राय भी यही है ।

१४ सितम्बर, १९४९ के शुभ दिवसपर इसी सुमंगल अभिप्रायको लेकर राष्ट्रभाषा हिन्दी राजभाषा, संघभाषा घोषित हुई थी—राष्ट्रीय एकताके लिये, भारत जननीको एक देखनेके लिये । राष्ट्रीय एकताके अनुरागी इस दिनको धूमधामसे मनाते हैं तथा उन्हें चाहिये कि वे इस महान्

पर्वपर अन्तर्मुखतासे अपने किये-करायोंका लेखा-जोखा करें और "राष्ट्र-भारती" के आदेश-आशीर्वादसे भारत-भारतीका, राष्ट्रीय एकता, स्नेह-सहयोग, सत्य-अहिंसादि दैवी सम्पदा, प्रेम, मानवता तथा सहजीवन, विश्व-शान्तिका सन्देश "एक हृदय हो भारत-जननी" के सुरमें सुर मिलाकर घर घर पहुँचाएँ।

---

## ५० : भारतीय राजभाषा : समस्या और समाधान

[प्रा कृष्णाजी गंगाधर दिवाकर एम ए. आजकल ना. दा ठाकरसी कॉलेज पूना–४ में हिन्दीके प्राध्यापक हैं। आप १९५८ से ५९ तक एम ई एम् कॉलेजमें प्राध्यापक रहे तथा आजकल डॉ भगीरथ मिश्रजीके निर्देशनमें महाराष्ट्रके राजकीय हिन्दी कवियोंपर अनुशीलन कर रहे हैं। आपकी एक अनुसंधानात्मक पुस्तक हिन्दी साहित्य भण्डार लखनऊसे "महाराष्ट्रका हिन्दी लोककाव्य" नामसे प्रसिद्ध हुई है। अपने अनुसंधानके संदर्भमें आपने भारतके विभिन्न स्थानोंमें जो भ्रमण किया, उस यात्रामें राजभाषाविषयक स्वरूप एवं समस्याओंका विशेष रूपसे निरीक्षण किया है। प्रस्तुत लेख उसीका फल है।]

### राजभाषा विधेयकका लक्ष्य

भारतकी स्वाधीनताके पश्चात् उसके सम्मुख जो अनेक समस्याएँ थीं उनमें भारतकी राष्ट्रभाषा और राजभाषाकी समस्याएँ भी महत्त्वपूर्ण थीं। प्राचीन परंपरा, महात्मा गांधी, पुरुषोत्तमदास टंडन आदि विभूतियोंकी प्रेरणा, राष्ट्रभाषाका आन्दोलन आदिके फलस्वरूप राष्ट्रभाषाके रूपमें हिंदी भाषापर मुहर लगानेमें कोई कठिनाइयाँ उपस्थित न हुई। १४ सितंबर १९४८ में हिंदीको भारतकी राष्ट्रभाषा घोषित किया गया और तत्कालीन कठिनाइयोंको देखकर यह भी निश्चित किया गया कि हिंदीको राजभाषाके रूपमें सन १९६५ के पश्चात् स्थान दिया जायगा। वास्तवमें १५ वर्षोंका यह समय इसीलिये दिया गया था कि इस बीच सरकार धीरे धीरे ऐसी व्यवस्था करे, जिससे सन १९६५ के पश्चात् सरकारी कामकाजोंमें हिंदीका उपयोग सहजतासे किया जा सके। परंतु दुर्भाग्यसे सरकार द्वारा यह बात न हो पायी-जिसके परिणाम-स्वरूप मई १९६३ में संसदको राजभाषा-विषयक ऐसा विधेयक पास करना पडा, जिससे हिंदीके साथ अँग्रेजीको सहायक भाषाके रूपमें रखा गया।

## देशमें विभिन्न प्रतिक्रियाएँ

राजभाषाका यह विधेयक स्वीकृत होनेके पश्चात् भारतके विभिन्न प्रदेशोंमें मुख्यतः तीन प्रकारकी प्रतिक्रियाएँ दृष्टिगोचर हुई। प्रथम पक्षमें वे हिंदी-प्रेमी लोग आते हैं जो हिंदीको राजभाषाके सिंहासनपर सन् १९६५ के बाद देखना चाहते थे। भारतकी अधिकांश जनता इस सपनेको साकार देखना चाहती थी, परंतु विधेयकके अनुसार हिंदीके साथ अँग्रेजीको सखी भाषाके रूपमें देखकर उन्हें उतना संतोष नहीं हुआ जो स्वाभाविक है। सखीको रानीके अधिकार देनेसे यह आशंका स्वाभाविक है कि सखी भाषा रानी-भाषाका तो स्थान नहीं लेगी? विशेषतः हिंदीभाषाके समर्थकोंको अधिक दुःख तब हुआ जब राजाजी जैसे नेता जिन्होंने दक्षिणमें हिंदीका प्रचार किया था, हिंदीको हटानेके पक्षमें रहे। यदि विधेयकमें अँग्रेजीको सखी भाषाके रूपमें व्यवहृत करनेका काल निश्चित किया जाता तो भी हिंदी भाषाके समर्थकोंको एक प्रकारसे सन्तोष हो जाता। परंतु अनिश्चित कालतक अँग्रेजीका हिंदीके साथ सहयोगी भाषाके रूपमें रहनेसे सशंक रहना अस्वाभाविक भी नहीं है। द्वितीय पक्षमें ऐसे लोग हैं जो दोनों ओरसे उदासीन दिखायी देते हैं। दिन-ब-दिन नैमित्तिक जीवनमें उठनेवाली गुत्थियाँ तथा कठिनाइयोंसे संत्रस्त हो जानेसे उन्हें ऐसी बातोंमें किसी प्रकारका आकर्षण तथा औत्सुक्य नजर नहीं आता। 'कोऊ भाषा होई हमें का हानि' जैसी वृत्ति उनमें दिखायी देती है। तीसरे पक्षमें वे लोग हैं जो हिंदीका तीव्र विरोध कर अँग्रेजीका समर्थन करते हैं। यद्यपि ऐसे लोगोंकी संख्या बहुत कम है फिर भी भारत जैसे जनतंत्रीय राष्ट्रमें उनका बहुत महत्त्व है। यदि वे हिंदीका विरोध कठिनाइयोंके कारण करते हैं तो उनकी समस्त कठिनाइयोंको समझ लिया जा सकता है; परंतु उनके द्वारा जिस मार्गका अवलंब किया जा रहा है उसे देखकर ज्ञात होता है कि हिंदी-विरोधकी आड़में और भी कुछ होगा।

## राजभाषा हिन्दीके विरोधका स्वरूप

पिछले तीन-चार वर्ष विश्व-विद्यालय-अनुदान-मंडलकी कृपासे अनुसंधान-कार्यके सिलसिलेमें मुझे समस्त भारतके लगभग सभी प्रमुख शहरों तथा प्रान्तोंमें जानेका अवसर प्राप्त हुआ। इस यात्रामें हिंदी-भाषी तथा अहिंदी-भाषी प्रान्तोंके अनेक विद्वानों, नेताओं तथा समाज-सेवकोंसे मिलने तथा विचारोंका आदान-प्रदान करनेका अवसर मिला। मैं स्वयम् अहिंदी-भाषी हूँ, फिरभी हिंदीके प्रति मुझे नितान्त प्रेम है। हिंदीके विरोधमें जब कभी बातें उठाई जातीं तो मुझे बड़ा आश्चर्य होता था और इस बातकी उत्सुकता सदैव बनी रहती कि हिंदीका विरोध क्यों किया जाता है? इस यात्रामें भी यह उत्सुकता थी, जिसके फलस्वरूप कुछ सीमातक मैं हिंदीके विरोधकी भूमिकाको समझ सका। मई १९६३ में जब संसदमें राजभाषा विधेयकपर चर्चा हो रही थी उस समय सौभाग्यसे मैं मद्रास-राज्यहीमें था, जो राजभाषा हिंदीके

विरोधका प्रमुख केन्द्र था। इसलिये वहाँकी वास्तविक स्थितिको मैंने अपनी आँखोंसे देखा था और बडी प्रसन्नता हुई कि जैसा तीव्र विरोध समाचार-पत्रोंमें बताया जाता है, वह वास्तविक नहीं है। कुछ इनेगिने लोगोंके हाथमें समाचार-पत्र होनेसे वे प्रतिनिधि-रूपमें हिंदीके विरोधकी अवास्तविकताको वास्तविक मानकर छाप देते हैं?

दक्षिणके अतिरिक्त अन्य प्रान्तोंमें भी कुछ लोग ऐसे हैं जो अँग्रेजीका समर्थन करते हैं। यद्यपि हिंदीके विरोधमें कुछ नहीं कहते तो भी जब हिंदीके स्थानपर अँग्रेजीका समर्थन करते हैं तब तो उनका विरोध स्पष्टही हो जाता है। चाहे वह दूसरे ढंगका भी क्यों न हो? हिंदीके संबंधमें उदासीन रहनेवालों अथवा उसका विरोध करनेवालोंके प्रति हमें क्षुब्ध न होना चाहिये, बल्कि उनके विचारोंको सहानुभूतिपूर्वक समझ लेना चाहिये। हिंदी भाषाके समर्थकोंको भी चाहिये कि वे एक बार आत्मनिरीक्षण कर देखें कि इस विरोधमें अप्रत्यक्ष रीतिसे वे तो सहयोग नहीं दे रहे हैं? हिंदी-भाषी जनतामें भी दो पक्ष पाये जाते हैं। एक पक्षमें वे लोग हैं जो अहिंदी-भाषियोंके प्रति उदारताकी दृष्टिसे देखते हैं। समस्त भारतकी राष्ट्रभाषा तथा राजभाषाके भावी स्वरूपको संकुचित सीमामें न रखकर अन्य अहिंदी-भाषाओंमें प्राप्त अच्छे-अच्छे शब्दों तथा प्रवृत्तियोंको ग्रहण करना चाहते हैं। दूसरे पक्षमें वे कट्टर तथा सांप्रदायिक वृत्तिके लोग आते हैं, जिनमें हिंदीके वर्तमान रूपके प्रति विशेष आग्रह दिखाई देता है। और साथ-साथ अहिंदी-भाषियोंके प्रति असहिष्णुताके भाव भी। अहिंदी-भाषी व्यक्तिके द्वारा प्रयुक्त हिंदीपर उसकी मातृभाषाका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव स्वाभाविक रीतिसे रहता है। हिंदीके प्रति सद्भाव तथा प्रेम होनेके कारण जब ऐसे व्यक्ति हिंदी बोलते हैं तब उनके इस प्रयत्न की प्रशंसा करना तो दूर ही रहा; परंतु उनकी ओर हीनताकी दृष्टिसे देखा जाता है। इतना ही नहीं अहिंदी-भाषियोंके प्रति सहानुभूति दिखानेवाले हिंदी-भाषियोंके प्रति भी उनके दृष्टिकोणको देखकर अहिंदी-भाषियोंके मनमें संदेह उत्पन्न होता होगा। और हिंदी भाषाके प्रति प्रेम होनेपर भी उसके साम्राज्यवादका भय उन्हें रहता है। उनकी इस शंकाको निराधार भी कैसे कहा जायगा? इसलिये हिंदी-भाषियोंपर भी यह उत्तरदायित्व आ जाता है कि वे अपने संतुलित एवम् सहिष्णु व्यवहारसे अहिंदी-भाषियोंके मनमें यह विश्वास पैदा करें कि राजभाषा हिंदी होनेपर भी अहिंदी भाषियोंपर अन्याय न होगा।

अहिंदी-भाषियोंमें भी दो वर्ग दिखायी देते हैं। गुजरात, बंगाल, महाराष्ट्र, आंध्र, केरल, मैसूर, मद्रास आदि लगभग सभी अहिंदी-भाषी प्रदेशोंमें ये दो वर्ग पाये जाते हैं। प्रथम वर्गमें वे लोग आते हैं जो राजभाषाके स्थानपर अँग्रेजीकी अपेक्षा हिंदीकोही स्वीकारार्ह समझते हैं। इनमेंसे कुछ लोग सरकारके द्वारा इस बातकी अपेक्षा करते हैं कि वह अहिंदी-भाषियोंकी कठिनाइयोंको समझकर उनको आवश्यकतानुसार सुविधा-सहूलियतें देती रहे, जिससे उन्हें न्याय मिलेगा। परतु दूसरे वर्गके

लोग हिंदीके प्रति इतना अनुदार दृष्टि रखते हैं कि उसे हटाकर उसके स्थानपर अँग्रजीकी स्थापना करना चाहते हैं, जिसे भारतमें अत्यत कम लोग जानते हैं। ये लोग अपने पक्षके समर्थनमें सतुलन तोडकर अवैधानिक मार्गका अवलब भी करते रहते ह। राजभाषा विधेयककी प्रति जलाना, हिंदीकी बेइज्जती करना नहीं ह, अपितु प्रत्यक्ष सरकारकी बेइज्जती करना है। यदि ये लोग अपनी विरोधकी भूमिका वैधानिक रीतिसे समझा देंग तो उसपर सहानुभूतिपूर्वक विचार किया जा सकता है। सख्यामें कम होनेपरभी वास्तवमें भारत सरकारने उन्ह असतुष्ट न रखनेके लिये ही हिंदीके साथ अँग्रजी सहभाषाके रूपमें स्वीकृत की और हिंदीके राजभाषाके निर्णयका भाग्य सदाके लिये अहिंदी भाषियोंके हाथमें दे दिया। इतना होनेपर भी यदि अँग्रजीके कट्टर समर्थकोको सतोष नहीं ह तो दूसरी बात है। इस पक्षके व्यक्तियोके प्रति जो असहिष्णु एवं कटु व्यवहार होते ह उनसे यदि हिंदी-प्रेमियोंके मनमें घृणा उत्पन्न हो जाय तो क्या आश्चर्य है?

## राजभाषा हिन्दीका विरोध क्यों है?

राजभाषाके रूपमें हिंदीका विरोध करनेवालोने अपने पक्षके समर्थनमें अनेक विचार समय-समयपर व्यक्त किये है, जिनमेंसे कुछ प्रमुख विचारोंको यहाँ बताना अवाञ्छनीय न होगा। कुछ अर्थशास्त्रज्ञोका कथन है कि सद्य परिस्थितिमें जबकि भारतपर अनेक आर्थिक जिम्मेदारियाँ है राजभाषा हिंदी होनेपर सरकारको बहुत खर्च करना पडेगा, जो आज वाञ्छनीय न होगा। अनुवादक, टकलेखन, शिक्षा दीक्षा, परिवर्तित पद्धति आदिके लिये बहुत खर्च होगा जो अँग्रजीके लिए न आयेगा। क्योंकि अुसका ढाँचा बनाबनाया ही ह। कुछ वैज्ञानिक विचार धारासे प्रेरित होकर कहते है कि तान्त्रिक तथा वैज्ञानिक शब्दोंके लिये हिंदीमें अद्यावत तथा यथावत शब्दोकी अत्यत कमी है। अत जबतक हिंदीकी शास्त्रीय तथा तान्त्रिक शब्द सपत्तिकी अभिवृद्धि नहीं होती तबतक अुसे राजभाषा बनाना ठीक न होगा। कतिपय लोगोंने ज्ञान तथा विज्ञानकी शिक्षा देनेके लिये आवश्यक हिंदी पुस्तकोके अभावका कारण बताया। कुछ प्रगतिवादी विचारोके लोगोका कहना है कि यदि हमने सविधानकी पद्धति, कपडे लत्ते, आचार विचार आदि अनेक बातें अँग्रजोसे ली ह तो उनकी भाषा लेनमें लज्जा क्यो लगती है? अविकसित देशके लिये दूसरे विकसित देशोसे अनेक बातें लेनी पडती ह। अत यदि हम अँग्रजी भाषाको राजभाषाके रूपमें स्वीकार कर ले तो उसमें अस्वाभाविकता नहीं ह। कुछ चतुर लोग यही बात सौम्य शब्दोंमें व्यक्त करते हुए कहते ह कि भारतकी राजभाषा हिंदी तभी हो सकती ह जब भारतके सभी लोग हिंदीपर अच्छा अधिकार प्राप्त कर ले। कुछ ज्येष्ठ अधिकारी नेता, जिनकी शिक्षा अँग्रजीमें हुई है हिंदीको राजभाषाके रूपमें शीघ्र स्वीकार करना सभवत इसलिये नहीं चाहते होंगे कि उन्ह नये सिरेसे हिंदी पढनी पडेगी। साथ

साथ यह भी भय हो सकता है कि हिंदीपर उनका प्रभुत्व होगा और अहिंदी भाषाओंपर अन्याय होगा। कुछ लोग यह धारणा लिये बैठे हैं कि हिंदी उनपर लादी जा रही है। हिंदीके राजभाषा होनेपर हिंदी भाषियोंके साम्राज्यवादकी भयावह कल्पना कुछ विरोधियोंने सामान्य जनतामें निर्माण करनेका प्रयत्न किया है। यह भी कहा जाता है कि अहिंदी-भाषियोंको हिंदीका अध्ययन नये सिरेसे करना पडेगा, परतु हिंदी भाषियोंको यह भाषा पढनेकी नौबत न आएगी। अत कुछ लोगोंने यहाँतक भी सुझाव दिये हैं कि हिंदी भाषियोंके लिये भी किसी एक अहिंदी भाषाका अध्ययन अनिवार्य किया जाय। इन लोगोंकी वैचारिक सतह एवम् सकुचित विचार-धारा देखकर खेद होता है। इस प्रकार अनेक कारणोंसे राजभाषा हिंदीका विरोध किया जाता है।

## क्या अहिन्दी-भाषी प्रदेशोंमें राजभाषा हिन्दीके लिये वास्तविक विरोध है?

अहिंदी-भाषी प्रदेशोंमें, जिनकी मातृभाषा आर्य-परिवारकी है हिंदीका जो विरोध है वह न के बराबर है। विशेषत मद्रास, केरल, मैसूर और आंध्र इन चार प्रदेशोंमें, जहाँकी भाषाएँ आर्य-परिवारकी नहीं है विरोध दिखाया जाता है। समाचार-पत्रोंमें हिंदीके विरोधका जो भयानक चित्र दिखाया जाता है वह वास्तविक चित्र नहीं है। इतिहास इस बातका साक्षी है कि सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दीसे दक्षिणमें हिंदीके प्रति बडा प्रेम दिखाया है। केरल तथा मद्रासके राजा-महाराजाओंने स्वयम् हिंदीमें रचनाएँ की हैं और कई सस्कृत तथा अन्य भाषाओंके ग्रंथोंका हिंदीमें अनुवाद करा लिया है। आंध्र-प्रदेशमें दक्खिनी हिंदीका रूप जनताके सामान्य व्यवहारोंमें भी पाया जाता है। मैसूर राज्यका और मराठीका प्राचीन सबंध है। मराठीका सबसे प्राचीन शिलालेख मैसूर-राज्यमें पाया जाता है। सत्रहवीं शताब्दीमें हिंदीके प्रसिद्ध कवियों तथा पडितोंका मैसूर-राज्यान्तगत बगलोर राजधानीमें बडा सम्मान होता था। आध्रकी राजधानी हैद्राबादकी स्टेट लायब्रेरी और सालारजग म्युझियममें हिंदीके प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथोंकी सख्या बहुत बडी है। दक्षिणके विश्व विद्यालयोंमें हिदीमें पीएच् डी तकको उच्च शिक्षा दी जाती है। वहाँके अधिकाश हिंदी प्राध्यापक दक्षिणके ही हैं, जिनकी मातृभाषा हिंदी नहीं है। कई दक्षिण कवियों तथा लेखकोंने हिंदीमें उच्च कोटिकी ग्रथरचना भी की है।

मद्रासमें दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा सन १९१८ से बडी सफलतासे कार्य कर रही है। कर्नाटक, आंध्र, केरल तथा मद्रास राज्योंसे इसके द्वारा चलायी गयी परीक्षाओंमें असख्य लोग सम्मिलित होते हैं और वह भी स्वेच्छासे। अशिक्षित लोगोंमेंसे अधिकाश लोग हिंदीमें बोल सकते हैं, कुछ हिंदी भाषा समझ सकते हैं। मद्रास राज्यान्तर्गत तंजौर नामक शहरमें एक विशाल एवम समृद्ध पुस्तकालय है। वहाँके ग्रथपाल साफ हिंदीमें बात कर सकते हैं। यही स्थिति मैसूर, केरल तथा

हैद्राबादके संघमें भी पायी जाती है। हिंदी सीखनेवालोंकी संख्या दक्षिणमें दिन-ब दिन बढ रही है। इन सभी बातोंको देखकर ज्ञात होता है कि दक्षिणमें वास्तवमें हिंदीका विरोध नहीं है। कुछ कट्टर साम्प्रदायिक वृत्तिके लोग हिंदीका विरोध अवश्य करते हैं, परंतु दक्षिणकी जनसंख्याकी तुलनामें इनकी संख्या अत्यल्प है। अत इन लोगोंका मत दक्षिणकी जनताका प्रतिनिधि मत नहीं हो सकता।

शंकाओंका समाधान

हिंदीके विरोधियोंसे जो शंकाएँ उठायी गयी है उन सबका संपूर्णत समाधान तो सम्भव नहीं है, परन्तु उनमेंसे अधिकांश समस्याओंपर विचार किया जा सकता है, जिससे समस्याओंका समाधान अंशत हो जायगा। पूर्वग्रह दूषित और विरोधके लिये विरोध करनेवालोंका समाधान होना तो असंभव है, परंतु सामान्य जनता, जो इनके द्वारा दिखाये गये भयसे भयभीत होकर इनका साथ देती है, उसका समाधान हो सकता है। यह देखा गया है कि बहुतसे लोग राष्ट्रभाषा और राज्यभाषाका अन्तर ही नहीं समझते और इसीसे उनके द्वारा ऐसी शंकाएँ उठायी जाती हैं जो राजभाषाकी दृष्टिसे निरर्थक तथा अयोग्य हो जाती है। अँग्रेजी विदेशी भाषा है, इसलिये केवल उसका राजभाषाके रूपमें विरोध नहीं किया जाता, बल्कि वह भारतकी जनताकी भाषा नहीं है इसलिये उसका समर्थन नहीं हो सकता। लगभग सभी भारतकी जनता जिस भाषाको जानती है वह भाषा हिंदी ही है। इस लिये भारतकी प्रादेशिक भाषाओंकी प्रतिनिधि भाषाके रूपमें देशने उसको स्वीकृत किया है। भारतमें अँग्रेजी जाननेवालोंकी संख्या हिंदीकी तुलनामें अत्यल्प है।

आज भारतमें जो नयी पीढ़ीके शिक्षित लोग विभिन्न क्षेत्रोंमें जिम्मेवारीके स्थानपर प्रवेश कर रहे है अथवा जो उपाधिधारी व्यक्ति है उनका अँग्रेजीका स्तर क्या है, यह उतनीही विचारणीय बात है। जबसे शिक्षाका माध्यम मातृभाषाओंमें हुआ तबसे लगभग समस्त देशका अँग्रेजीका औसत स्तर दिन ब-दिन गिरता हुआ दिखाई देता है। इन सुशिक्षित लोगोंका अँग्रेजीपर उतना प्रभुत्व नहीं है, जितना पुरानी पीढीके लोगोंका था, जिनकी शिक्षा अँग्रेजीके माध्यमसे हुओ थी। प्रत्येक क्षेत्रमें इस बातका अनुभव पाया जाता है। अत अधिक विस्तारकी आवश्यकता नहीं है। इस गिरते हुए स्तरको उन्नत बनानेके लिये माध्यमिक शिक्षाकी प्रारंभिक कक्षाओंसे अँग्रेजीको अनिवार्य विषयके रूपमें रखनेके प्रयत्न हो रहे हैं। भारतमें अँग्रेजीकी ऐसी स्थिति होनेपर भी अंग्रेजीको हिंदीके स्थानपर राजभाषाके रूपमें रखनेका जो आग्रह किया जाता है वह देखकर आश्चर्य होता है। रूस, अमरीका, इग्लैण्ड, जर्मनी, जापान आदि भारतेतर देशोंके लोग भी जब हिंदी स्वेच्छासे सीखकर उसपर प्रभुत्व पा सकते हैं तब हमारेही देशके भारतीय भाषा जाननेवालोंके लिये क्या वह उतनी कठिन बात है, जितनी विदेशियोंके लिये है? हिंदीको पढनेवाले

विदेशी अक्सर भारतमें आते रहते हैं। उनकी हिंदी लिखने तथा बोलनेकी क्षमता, हिंदीके अध्ययन की गहराई देखकर आशातीत आश्चर्य होता है और दु ख तब होता है कि वे यह जानकर जब आश्चर्य करते हैं कि भारतमें भी ऐसे लोग हैं जो हिंदी जानना नहीं चाहते। किसी भी स्वतत्र देशके लिये स्वदेशी राजभाषाका होना गर्वकी वस्तु है। यदि भारतीय भाषाओंमेंसे इस पदके योग्य कोई भाषाही न होती तो अँग्रेजीका समर्थन ठीक था, परतु राजभाषाके योग्य भाषा होनेपर भी कुछ सकुचितता तथा स्वार्थकी दृष्टिसे जब विरोध किया जाता है तब खेद हो जाता है। जो शक्ति तथा सपत्ति अँग्रेजीको उन्नत बनानेमें खर्च होगी वही यदि हिंदीको उन्नत बनानेमें लगायी जाय तो देशका कल्याण होगा।

उच्च शिक्षा लेने परदेश जानेवालोंकी सख्या तुलनामें अत्यत कम होती है। ज्ञान विज्ञानकी कुछ विशेष शाखाओंमें जो अध्ययन करना चाहते हैं और जिसके अध्ययनके लिये अँग्रेजीका ज्ञान आवश्यक है उन इनेगिने लोगोंकी सुविधाके लिये अधिकाश जनताकी ओर ध्यान न देना तर्क गत नहीं है। इस देशमें जिस प्रकार रूसी, जर्मनी जापानी आदि विदेशी भाषाओंको ऐच्छिक रूपमें सीखा जाता है उसी प्रकार ऐच्छिक रूपमें रखनेसे उन लोगोंकी सुविधा हो सकेगी जिनको उसके अध्ययन की आवश्यकता होगी। रही बात वैज्ञानिक उन्नतिकी। सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक श्रीमान् कोठारी तथा डॉ रघुवीर दोनोंका यह मत है कि भारतमें वैज्ञानिक प्रगति शीघ्रतासे इसलिये नहीं हो पाती कि उसकी शिक्षा अँग्रेजी में होती है स्वदेशी भाषामें नहीं। यदि स्वदेशी भाषामें उसकी शिक्षा दी जाय तो समझनेमें उतनी कठिनाइयाँ न आयेंगी जितनी आज आती है। उसपर कतिपय लोगोंको शका होती है कि स्वदेशकी भाषाओंमें यह कैसे सभव है? वास्तवमें स्वदेशकी भाषामें शिक्षा देना उतना असम्भव नहीं है जितना कि लोग समझते हैं। रूस, चीन, जापान आदि देशोंमें जो वैज्ञानिक उन्नति हम देखते हैं, क्या वह अँग्रेजीके कारण हुई है? जब वे देश अपनी भाषाओंमें वैज्ञानिक शिक्षा पाकर ससारमें इतनी प्रगति कर पाते हैं तो हमारे लिये यह असभव क्यों है? स्वदेशकी भाषामें आत्मीयताके साथ शक्ति और स्फूर्ति होती है।

हिंदीके राजभाषा होनेपर मातृभाषाका विकास रुकेगा, यह तो कोरी कल्पना मात्र है। यह तो विचारणीय बात है कि मातृभाषाका विकास राजभाषा भारतीय रहनेसे होगा या विदेशी भाषा होनेपर? विदेशी राजभाषा रहनेसे मातृभाषाओंका विकास कैसे सभव है? उलटे राजभाषाके स्थानपर जो विदेशी अँग्रेजी राजभाषा आएगी उसका स्वदेशी रूप होना असभव नहीं है। दोनों स्थितियाँ पूर्णत भिन्न हैं। हिंदीके साम्राज्यवादका जो भय अहिंदी-भाषियोंको लगता है या दिखाया जाता है

उसे सरकारकी सहायतासे रोका जा सकता है। सरकारी नौकरियोंमें भी—विशेषत केंद्रीय सरकारकी नौकरियोंमें कुछ वर्षोंतक प्रान्तोंकी जनसंख्याके अनुपातमें नौकरोंकी संख्या निश्चित कर अन्यायके भयको दूर किया जा सकता है। यदि सरकार एक पक्की नीतिको स्वीकार कर उस दिशामें हिंदीके विकासका कार्य करे तो दस वर्षोंमें हिंदीमें राजकाजके सभी व्यवहार चल सकते हैं। सरकारकी अनिश्चित नीतिका ही लाभ कुछ लोग ले रहे हैं।

स्वाधीनताके पूर्व आजकी भाँति गणराज्यके रूपमें संपूर्ण भारत कभी एकत्र न हुआ था। यह भारतका गणराज्य सभीके लिये नयी एवम् स्वागतार्ह व्यवस्था है। किसी भी नयी व्यवस्थाको सुस्थिर तथा सुदृढ बनाते समय अनेक कठिन समस्याओंको सुलझाना पडता है। भारतने पिछले १५ वर्षोंमें इसी प्रकारकी अनेक समस्याओंको सुलझानेके प्रयत्न किये हैं। ऐसे प्रयत्नोंमें समय तथा संपत्ति दोनोंका खर्च अनिवार्य हो जाता है। भविष्यत्‌की उज्ज्वलता एवम् उन्नतिका विचार कर कभी कभी वर्तमान परिस्थितिमें विशेष लाभ न दीखनेपर भी अधिक खर्च कर अनेक बातें की जाती हैं। भाषावार प्रांत-रचनाकाही उदाहरण देखिये। यदि अँग्रेजोंकी पद्धतिके अनुसारही देशके प्रांत रखे जाते तो बहुतही खर्च बच जाता और तत्कालीन असुविधा भी न हो जाती। पर हमने उन सभीके बावजूद भी भाषावार प्रांतरचना की। इस प्रकार गणराज्यको सुस्थिर तथा सुव्यवस्थित बनानेके लिये अनेक बातें भारतको करनी है। उनमें भारतकी राजभाषा हिंदीकी भी महत्त्वपूर्ण समस्या हैं। आज भारत संक्रमणावस्थामें हैं। ऐसी स्थितिमें उसे एक निश्चित नीतिका अवलंब करना चाहिये, जो दूरगामी भारतीयोंके लिये हितकर सिद्ध होगी। सरकारकी ऐसी कल्याणकारी नीतियोंको सफल बनाना अंततोगत्वा भारतीय जनतापरही निर्भर हैं। उसे ऐसी महत्त्वपूर्ण बातोंके प्रति उदास न रहना चाहिये, अपितु रचनात्मक कार्यमें बाधा डालनेवालोंका प्रतिकार कर सरकारको सहायता देना चाहिये।

राजभाषाका संबंध विशेषत शिक्षित जनतासे अधिक आता है। अत भारतके शिक्षित लोगोंको हिंदी जानना अत्यावश्यक होगा। आज लगभग सभी प्रान्तोंमें शालान्त परीक्षातक अनेक अनिवार्य विषयोंमेंसे हिंदी भी एक है। शिक्षित लोगोंमें अधिकांश लोग शालान्त (Matric) परीक्षा उत्तीर्ण कर जीवन क्षेत्रमें प्रवेश करते हैं। कॉलेजों तथा विश्व-विद्यालयोंमें उपाधिके लिये पढाई करनेवालोंकी संख्या सुशिक्षितोंकी तुलनामें बहुत कम होती है। यह सत्य है कि इन्हीं उपाधिधारियोंमें देशके नेता तथा विभिन्न क्षेत्रोंके अधिकारी निर्माण होते हैं। इसलिये यदि मॅट्रिक बाद उपाधि परीक्षाओंमें अँग्रेजीके समान एक अनिवार्य हिंदीका प्रश्नपत्र रखा जाय तो देशके सुशिक्षितोंके लिये हिंदी ज्ञानकी समस्या सुलझ सकती है। यदि देशकी शिक्षि

जनतामें हिंदीका अच्छी तरहसे प्रचार हो तो राजकाजकी समस्त कठिनाइयाँ दूर होंगी और हिंदीमें सारा कारोबार सुचारु रूपसे चल सकेगा। अतः सरकारको चाहिये कि शिक्षाके क्षेत्रमें—विशेषतः शालान्त परीक्षाके बाद भी विश्व-विद्यालयमें हिंदी अेक अनिवार्य विषयके रूपमें अंग्रेजीकी भांति रखा जाय जिससे भविष्यत्‌में कठिनाइयाँ न हो सकेंगी। इस प्रयत्नमें सहयोग देना भारतकी जनताका एक कर्तव्य होगा। यह ठीक है कि हम किसीको नाराज़ करना या दुखाना नहीं चाहते। परंतु अत्यल्प विरोधकोंके लिये अधिकांश जनताकी भावनाओंको कुचल देना भी तो उचित नहीं है। सभीका एकसाथ समाधान तो कभी संभव ही नहीं होता। अतः अधिकाश लोगोंकी रायको यदि वह हितकर है तो स्वीकार कर एक निश्चित नीति अपनानेसे अनेक समस्याएँ सुलझ सकती है। यद्यपि कार्यसे तात्कालिक प्रतिक्रियाएँ होगी फिर भी अन्ततोगत्वा यह कार्य स्पृहणीयही सिद्ध होगा।

---

## ५१ : अखिल देशीय हिन्दीका वाञ्छनीय स्वरूप

[डॉ. भगीरथ मिश्र, अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, पूना विश्वविद्यालय, पूना–७ द्वारा लिखित यह लेख विचारोत्तेजक गंभीर विवेचनाको लिये हुए है।]

### हिन्दीकी विकासशीलता पर आघात न पहुँचे।

इधर कुछ दिनोंसे राष्ट्रभाषाके रूपमें हिंदीके भावी स्वरूपपर काफी चर्चा हुई है, और कुछ लोग ऐसा प्रयत्न करते हैं कि जिससे हिंदी भाषाका एक निश्चित परिनिष्ठित रूप सामने आ जाय। आंशिक रूपसे हिंदीके निश्चित परिनिष्ठित स्वरूपकी आवश्यकता अवश्य है और उस दिशामें हमें थोड़ा व्यापक दृष्टिकोणसेही प्रयास करना चाहिये। हिंदी एक विकासशील भाषा है, और अभी हालमें प्रकाशित रूसी रिपोर्टके आधारपर यह स्पष्ट हुआ है कि पिछले वर्षोंमें राष्ट्रभाषा हिंदीकी प्रगति अत्यन्त तीव्र गतिसे हुई है। अंग्रेजीके समानही उसका व्यापक व्यवहार, स्वतंत्र प्रयोग और उदार दृष्टिकोण उसकी जीवन्त विशेषताओंको स्पष्ट करनेवाला है। अतएव हम किसी क्षेत्र या प्रदेश-विशेषमें व्यवहृत और व्यापक विकासशीलतासे असंबद्ध रूपकोही स्वीकार करनेकी हठधर्मी यदि करेंगे तो वह उसके सार्वदेशिक स्वरूपके लिये हानिकारक होगा। हमें स्मरण रखना चाहिये कि समस्त आर्य-भाषाओंकी जननी समर्थ और विशाल भाषा संस्कृतका व्यवहार भी

इसी प्रकारकी परिनिष्ठिता (Standardisation) एवम् अतिशय व्याकरण-बद्धताके कारण सदाके लिये समाप्त हो गया और वह एक अव्यहृत या मृत भाषाके रूपमें हमारे सामने है। इस दृष्टिसे हिंदीकी स्थिति इससे भिन्न है। वह निरतर विकासशील है। ऐसा हमें कोई प्रयत्न नहीं करना है जिससे उसकी इस विकास-शीलतापर आघात पहुँचे।

## व्यवहारमें सतर्कता और व्यापकता

उपर्युक्त बातका ध्यान रखते हुए हिंदीके सार्वदेशिक स्वरूपके सम्बन्धमें विचार करना चाहिये और हमारा प्रयत्न होना चाहिये कि हम उसके व्यापक व्यवहारमें आनेवाली अडचनें जो शब्दो या व्याकरणिक रूपोके कारण पडती है, उनको हिन्दीका मूल सुरक्षित रखते हुअे दूर करें। हिन्दीके सार्वदेशिक प्रयागकी बडी पुरानी और व्यापक परम्परा है, अंग्रेजीके आगमनके पूव हिंदीही सार्वदेशिक भाषाके रूपमें व्यवहार की जाती थी। बद्रीनाथसे रामेश्वरम्तक्को और पुरीसे लेकर द्वारकातकको यात्रा करनेवाले तीर्थ यात्री, उत्तर-दक्षिण पूर्व-पश्चिमके विभिन्न नगरो और ग्रामोंमें छोटे बडे पैमानेपर वस्तुओका क्रय विक्रय करनेवाले व्यापारी तथा भ्रमण करनेवाले और अध्यात्मिक चेतनाका प्रसार करनेवाले साधु सन्यासी और सत जिस भाषाका प्रयोग करते थे वह हिन्दीका सार्वदेशिक रूप था और अिसी परपराके कारण अंग्रेजी शासकोंने भी अपने भारतीय शासनके पदा धिकारियोके हिन्दी शिक्षणकी व्यवस्था की। ईसाई धर्म फैलानेवाले मिशनरियोने अपने धर्म-प्रचारार्थ हिन्दीके कोश, व्याकरण, पाठच पुस्तके आदि तैयार की और अपने प्रचारकोको हिन्दी सिखाई। आगे चलकर राजनैतिक चेतनाका सार्वदेशिक प्रचार करनेके हेतु हिन्दीकोही स्वीकार कर लिया गया। इन विभिन्न प्रसगोमें विभिन्न क्षेत्रोमें कार्य करते हुए हिंदीका प्रयोग जिन लोगोने किया है उनमें सत ज्ञानेश्वर, नामदेव, नरसी मेहता, भालन, नानक, कबीर, शकरदेव और तेलुगू भाषी पुरुषोत्तम कवि जैसे नाम उल्लेखनीय है। इन लोगोने जनताको उपदेश देनेके लिये और मनोरजन करनेके लिये हिंदी भाषाका प्रयोग किया। इन सबकी रचनाओपर दृष्टिपात करनेसे हमें अुसके सार्वदेशिक स्वरूपके सम्बन्धमें एक दृष्टि प्राप्त होती है। इसी दृष्टिसे गोस्वामी तुलसीदासजीने अपनी रामचरित मानस जैसी व्यापक रचनाके अवधी भाषाको मूलाधार बनाकर सस्कृत, अरबी, फारसी, बगला, मराठी आदि प्रादेशिक भाषाओसे यथावत् शब्दावली ग्रहण कर अखिल देशीय हिंदीका रूप खडा किया है। आज भी हम अवधीके स्थानपर खडी बोलीको आधार बनाकर यथावश्यक सुन्दर और उपयुक्त शब्द विभिन्न भाषाओंसे ग्रहण करते हुए तथा वेदो, पुराणो आदि सस्कृतके ग्रन्थोसे आयी परम्परागत सस्कृत और

प्राकृत शब्दावलीका प्रमुखतया प्रयोग करते हुअे हिंदीका अखिल देशीय रूप बना सकते हैं। इस दृष्टिसे इसके स्वरूपके विकासका प्रयत्न करना चाहिये।

आज हमारे सम्मुख अखिल देशीय स्वरूप रचनाके प्रसगमें उठी हुई समस्याओके तीन रूप आये हैं।

प्रथम रूप वर्तनीसम्बन्धी, द्वितीय रूप व्याकरणसम्बन्धी और तृतीय रूप शब्दावलीसम्बन्धी है। उनमेंसे हम प्रत्येकपर अलग-अलग विचार करेंगे।

## वर्तनीसम्बन्धी समस्याका रूप

वर्तनीके प्रसगमें हमें, विशेष रूपसे हिंदी-भाषी लेखकोंको, निश्चित वर्ण-विन्यासकी ओर ध्यान देना चाहिये। इस प्रसगके लोगोंमें प्राय अति स्वच्छन्दता दिखाई देती है, जो कि अहिंदी-भाषी या विदेशियोंके लिये हिंदी सीखनेमें बाधा-स्वरूप है। उदाहरणार्थ, "लिए" लिये, दिए, दिये, चाहिअे चाहिये, जाएँगे जाएगे, जायेंगे आदि। इनमें एकरूपता होना आवश्यक है। जहाँपर एकवचन भूतकालका रूप स्वरान्त होता है "वहाँ", पर उसका बहुवचन रूप भी स्वरान्त होना चाहिये और जहाँपर व्यजनान्त होता है वहाँपर बहुवचनमें भी व्यजनान्त होना ठीक है। इसी प्रकार हमारे सामने कुछ वर्णोंके नीचे बिंदु या युक्ता करके उसी वर्णकी विशेष ध्वनिका द्योतन करनेकी परिपाटी हिंदीमें है। मैं समझता हूँ कि इसे हिंदीमें हमें चालू रखना चाहिये। हिंदीकी विशेषता इस बातमें देखी जा सकती है कि उसने जो भी विदेशी शब्द लिये हैं उनको प्राय मौलिक अर्थ और ध्वनिमें ग्रहण किया है। ऐसी दशामें हमें अ ज क ख ग फ आदि ध्वनियाँ जो अरबी-फारसी स्रोतोंसे आयी हैं उनको बनाये रखनी चाहियें और सस्कृतके नये शब्दोंके तत्सम और शुद्ध रूप हमें स्वीकार करना चाहिये। इस प्रसगमें मराठी, तमिल और तेलुगूकी नवीन ध्वनियोंको ग्रहण करनेके लिये नवीन वर्ण, सकेत बनानेकी आवश्यकता है। मराठीका लुण्ठित "क" हमने स्वीकारही किया है। इसी प्रकारसे तमिलका मूर्धन्य और ऊष्म ळ भी हमें मूर्धन्य "ष" के नीचे बिन्दी देकर ग्रहण करना चाहिये और इसी प्रकार तेलुगूकी जो कतिपय नवीन ध्वनियाँ हैं अुनको भी नये ध्वनि-सकेतोंके साथ ग्रहण करनेकी आवश्यकता है, अिसी प्रकार कुछ ध्वनियाँ फ्रेंच, अँग्रेजी और रूसी भाषाओसे हमें प्राप्त होती हैं, जैसे "अॅ," "ए" "ओ" आदि अुनको भी हमें देवनागरी लिपिके ध्वनि-वर्गको पूर्ण करनेके लिये ग्रहण करना चाहियें और यथावश्यक उनका प्रयोग करना चाहिये। अिन ध्वनियोंको ग्रहण करनेपर और वर्ण विन्यासके निश्चित प्रयोगके द्वारा हम हिन्दी वर्तनीको एक अखिल देशीय रूप प्रदान कर सकते हैं। वास्तवमें हमारा उद्देश्य देवनागरी लिपि और हिंदी ध्वनियोंको विश्वव्यापी बनाना है। यदि हम उल्लिखित बातोंका व्यवहार कर सकेंगे तो उसके इस स्वरूपके विकासमें कोई कठिनाई नहीं रहेगी।

## व्याकरण सम्बन्धी समस्याका रूप

व्याकरणसबधी समस्या और उसका रूप हिंदीतर भाषियोको हिन्दी सीखनेमें कठिनाई उपस्थित करता है। इस प्रसगमें एक शका यह उठायी जाती है कि यदि हम हिंदीके व्याकरणमें एक स्वच्छद प्रयोगको स्थान देंगे तो वह हिंदी भाषा न रहकर कोई नयी भाषा बन जाएगी। मेरा विचार इससे थोडा भिन्न है। हिंदी व्याकरणके मूल ढाँचेके विकासको स्वीकार करनेमें कोई हानि नहीं है। हिंदीके परम्परागत रूपको देखनेसे व्याकरणसबधी इस प्रकारके विकासका पता भी लगता है। जहाँ भी विभिन्न प्रदेशोमें व्यवहार भिन्नता हुई वहाँ कोई भी रूप स्वीकार किया गया है तथा जहाँ कठिनाई उपस्थित हुई उसको हटाया भी गया। व्याकरणके प्रसगमें हिंदीतर भाषियोके सामने जो मुख्य कठिनाई है वह लिंगसबधी है। हिंदीमें सज्ञाएँ पुल्लिग और स्त्रीलिग इन दो लिंगोमें विभिन्न होती है। यह अच्छा है कि हिंदीमें नपुसकता नहीं है। फिर भी बहुतसे ऐसे शब्द है कि जो पुल्लिग और स्त्रीलिगमें प्रयुक्त होते है। एक प्रदेशमें स्त्रीलिग और दूसरे प्रदेशमें पुल्लिगमें प्रयुक्त देखकर भ्रम उत्पन्न होता है। जैसे—दही, हाथी, चादर, कौयल, मजा आदि। कुछ ऐसे प्रयोग है कि जो पुरुषका चिह्न होते हुए भी स्त्रीलिग है। जैसे—मूँछ। यह समस्या कुछ कठिन अवश्य है और इसमें थोडा स्वच्छन्द प्रयोग भी हमें स्वीकार करना चाहिये। इस समस्याके सुलझावके लिये मेरा एक सुझाव है कि हमें पुल्लिग और स्त्रीलिगके साथ एक उभय लिग स्वीकार करना चाहिये और ऐसे शब्दोकी सूची देनी चाहिये जो दोनो लिगो प्रयुक्त होते हो। ऐसा करनेसे लिगसबधी कठिनाई काफी हल हो जाएगी। लिग सबधी कठिनाई और जटिलता धारण करती है जब कि सज्ञाओके साथ साथ क्रिया भी स्त्रीलिग रूपमें प्रयुक्त होती है। यदि हम सज्ञाका लिग निश्चित करते है त क्रियाके लिग निश्चित करनेमे कोई कठिनाई नहीं है। जिस रूपमे हम सज्ञाक लिग स्वीकार करते है उसी रूपमे क्रियाके लिग प्रयोगको भी हमे स्वीकार करन चाहिये। पर कुछ प्रयोगोमे मतभेद है। हिंदीमे ये प्रयोग चलते है। जैसे—मैंने रो लायी है। मैंने गाय ली है। मैंने कलम उठायी है। पर मैंने गाय लायी है इस प्रयोगक देखकर हमे हँसी आती है और उसका कारण यह है कि "लाना" के साथ मैंनेक प्रयोग न होकर "मैं" का प्रयोग रूढिबद्ध हो गया है। मै समझता हूँ कि ऐसे प्रयोगोको हमे स्वीकार करना चाहिये जिसमे कर्मके आधारपर लिग निश्चित होता है। इसी प्रकार कतिपय कारक चिह्नोके प्रयोगमें भी भिन्नता दिखला पडती है। एसे प्रयोगोपर भी हमे उदार दृष्टिसे विचार करना चाहिये, जिससे दोनो प्रयोगोमे आगे चलकर अर्थभेद स्पष्ट हो सकेगा और दोनोका प्रचलन मान्य होगा। जैसे—मुझको कहना, मुझसे कहना, किसीसे प्यार करना, किसीको प्यार करना आदि।

## शब्दावलीसे सम्बन्धित समस्याका रूप

हिंदीके अखिल देशीय रूपसंबंधित समस्याका तीसरा पक्ष शब्दावलीके संबंधमें दो प्रकारके विचार देखनेंको मिलते हैं। एक संस्कृत शब्दावलीका रूप—यह बाहुल्यका पक्षपाती है, और दूसरा प्रचलित बोलचालकी शब्दावलीका। इस प्रसंगमें भी हमें पूर्वोल्लिखित दृष्टि-कोणसेही विचार करना अधिक समीचीन लगता है और गोस्वामी तुलसीदास-द्वारा सुझाये समन्वयवादी मार्गपर चलना अधिक लाभकारी प्रतीत होता है। शब्दावलीसे संबंधित मुख्य समस्या पारिभाषिक शब्दावलीकी और यह पारिभाषिक शब्दावली न केवल अखिल देशीय भाषा हिन्दीकी वरन् भारतकी अन्य भाषाओंके लिये भी समान होनी चाहिये। पारिभाषिक शब्दावलीके कई पक्ष हैं और उन पक्षोंमें सुविधाएँ, परंपरा और उपयोगिता तथा व्यवहार-क्षमताकी दृष्टिसे शब्दावलीका ग्रहण और निर्माण होना चाहिये। इसके इन पक्षोंपर हम अलग अलग विचार करेंगे।

## पारिभाषिक शब्दावलीका आधार संस्कृत है

पारिभाषिक शब्दावलीके प्रसंगमें सबसे पहले हमारी अखिल देशीय भाषाके अन्तर्गत सांस्कृतिक एवम् दार्शनिक शब्दावली आती है। निश्चित है कि भारतीय संस्कृति और भारतीय दर्शनके प्रसंगमें हमारी परंपरागत संस्कृत शब्दावलीही महत्त्वपूर्ण है। यह शब्दावली वेद-उपनिषद्, ब्राह्मण, पुराण, दर्शन और साहित्यके भाण्डारसे चली आती है और न केवल संस्कृत ग्रंथोंमें वरन् अपभ्रंश ग्रंथोंसे होती हुई हमारी वर्तमान भारतीय भाषाओंके साहित्यमें भी प्रचलित हो गयी है। विभिन्न भाषाओंके साहित्योंमें इस शब्दावलीके अन्तर्गत थोड़ा-बहुत अर्थ-भेद चाहे जो हो; परन्तु अधिकांश प्रचलन प्रायः एकही शब्दावलीका है। अतः इस क्षेत्रके लिये हम विभिन्न भाषाओंमें प्रचलित और संस्कृत स्रोतसे प्राप्त शब्दावलीकोही अखिल एकदेशीय भाषाके लिये स्वीकार करें तो अच्छा होगा। इसी प्रकारसे पारिभाषिक शब्दावलीके प्रसंगमें नये शब्दोंके निर्माणका प्रश्न उठता है। यह शब्द-निर्माणका कार्य संस्कृत शब्दावलीके आधारपर हो तो अधिक उपयुक्त होगा।

## सामान्य साहित्य और बोलचालकी शब्दावली

पारिभाषिक शब्दावलीका एक तीसरा रूप वैज्ञानिक शब्दावलीका है। इसमें भी हमे कुछ कठिनाईका अनुभव होता है। कुछ शब्द तो ऐसे हैं जो हमें संस्कृत स्रोतसे प्राप्त हो जाते हैं। और वे आधुनिक तत्त्वों और भावनाओंका सम्यक् द्योतन कर सकते हैं। उनका व्यवहार करनेमें कोई संदेह नहीं होना चाहिये। परन्तु कुछ ऐसे नवीन वैज्ञानिक शब्द हैं जो नितान्त आधुनिक युगमें हैं और जिनकी कोई प्राचीन परंपरा नहीं है उनके संबंधमें मेरा विचार औरोंसे भिन्न है। जिस प्रकार हमने संस्कृत

एवं दर्शनके क्षेत्रमें संस्कृत और प्राचीन भारतीय भाषाओंमें प्राप्त शब्दावलीको ग्रहण किया है उसी प्रकार विज्ञानके क्षेत्रमे अँग्रेजी, रूसी, जर्मन आदि भाषाओंके आन्तरराष्ट्रीय प्रतिष्ठा-प्राप्त शब्दोंको ग्रहण करनेमे संकोच नहीं होना चाहिये। उनका मौलिक भाव-द्योतक-शब्द लेकर हम हिंदीके व्याकरणानुसार उसका रूप बना सकते हैं। उदाहरणके लिए ऐसे कुछ शब्द ये हैं--पेन्सिलीन, राडर, जेट, स्पुतनिक--इंजेक्शन, मलेरिया, एंजिन, पायलट आदि। ये शब्द अपने मूल अर्थमें आंतरराष्ट्रीय रूप प्राप्त कर चुके हैं और उनको लेनेमें कोई हानि नहीं है।

## सामान्य साहित्य और बोलचालकी शब्दावलीमें व्यावहारिकता

शब्दावलीकी समस्याका दूसरा पक्ष सामान्य साहित्य और बोलचालकी शब्दावलीका है। इस प्रसंगमें हमें जो व्यापक प्रचलन प्राप्त शब्दावली है उसके साथ ऐसी भी शब्दावलीको ग्रहण करते रहना चाहिये जो अनेक भाषाओंमें समान रूपसे व्यवहृत है। मराठी, गुजराती, बंगला और हिंदीमें पाँच-छः हजार शब्द समान हैं। उनके व्यवहार और प्रयोगको हम प्राथमिकता दे सकते हैं। इसी प्रकारसे कुछ शब्द हिंदीतर भाषाओंमे हैं जो उन्हीं अर्थोंमे प्रचलित हिंदी शब्दोंकी अपेक्षा अधिक अच्छे हैं। उन्हें हमें पर्याय रूपमे ग्रहण कर उनका प्रयोग करना चाहिये उदाहरणके लिये मराठीका 'स्वाक्षरी' शब्द हिंदीके 'हस्ताक्षर' की अपेक्षा अधिक अच्छा है। इसी प्रकार "कुलगुरु" व्हाइस चान्सलर के लिये 'उप-कुलपति' की अपेक्षा अधिक स्वतंत्र और उपयुक्त शब्द है। ऐसेही अन्य अनेक शब्द हैं, जिनको हम हिंदीमें स्वीकार कर सकते हैं। मराठी और हिंदीमें बहुतसी धातुएँ भी एक हैं। जैसे—खनना, समझना, बोलना, पीना, खाना, जाना, उठना, चलना, पड़ना आदि। इनसे बने हुए शब्द आसानीसे दूसरी भाषामे समझे जा सकते हैं। अतः ऐसे समान धातुओंसे बने हुए शब्दोंके व्यवहारपर अधिक बल देना उपयोगी होगा। नयी शब्दावलीके अनुसंधानमे भी अन्य भारतीय भाषावलीके शब्द-भण्डारकी खोज करनी चाहिये, और बहुभाषा व्यवहृत शब्दोंका अधिक व्यवहार करना चाहिये। दैनिक व्यवहारकी वस्तुओंमे भी जैसे, भोजन, वस्त्र, फल, साक-भाजी आदिके शब्द हैं उनमें जो अधिक भाषाओंमें समान रूपसे व्यवहारमें आएँ उनका प्रयोग अपनाना चाहिये। इसके अतिरिक्त बहुतसे ऐसे शब्द हो सकते हैं, जो कि हिंदीमें प्रचलित नहीं हैं; किन्तु अन्य भाषाओंमे समान रूपसे उनका प्रचलन है, ऐसे शब्दोंको भी हमें हिंदीके समानार्थी शब्दोके पर्याय रूपमे ग्रहण करनेमे संकोच नहीं करना चाहिये। जैसे –भाजी, लोणी, तूप आदि। ऐसे शब्दोके अनुसंधानकी जरूरत है। धीरे धीरे प्रचलनके बाद इन शब्दोमे थोड़ा अर्थभेद स्वतः हो जाता है। कहनेका अभिप्राय यह है कि हमे उदार दृष्टिकोण शब्दावलीके व्यवहारमे अपनाना चाहिये। क्योंकि

हमें 'आवश्यकता' की जरूरत है और 'जरूरत' की भी आवश्यकता है। हिन्दीके अखिल देशीय स्वरूपके निर्माणमें उपर्युक्त बातोंपर ध्यान देनेसे उसका एक सर्व-स्वीकृत रूप अपने आप विकसित होता जायगा, और वह विकसित हो रहा है।

---

## ५२ : हिन्दीका सार्वभारतीय संभावित एवं संकेतित रूप

[डॉ. न. चि. जोगलेकर, एम्. ए, पीएच्. डी; हिन्दी विभाग,
पूना विश्वविद्यालय, पूना ७.]

### मूल समस्याएँ

सोलह प्रदेशोकी (नागा लेंडको लेकर) संविधान द्वारा मान्यता प्राप्त हिंदी राजभाषाके रूपमे मान्य है। राजभाषाके अतिरिक्त उसको राष्ट्रभाषाके रूपमे प्रचलित रहनेका महान् सौभाग्य प्राप्त हो चुका है। भावी रूपको लेकर जो समस्याएँ उठ खडी होती रही है वे एक तो उसकी लिपिको लेकर है। दूसरे उनमे कौनसी भाषावाला स्वरूप कुछ विशिष्ट परिष्कारो साथ प्रगत होता रहे आदि विचारोको लेकर है। यहाँ लिपिसम्बन्धी विचारोपर अधिक चर्चा नहीं करनी है; अपितु असके अखिल देशीय रूपकी प्रगतिमे कौनसी बातें लोगोके सामने रही हैं इसीपर हमे एक दृष्टिपात कर लेना है।

### भिन्न भिन्न प्रयोगो की आवश्यकता यही सिद्ध करती है कि भाषाके परिवर्तन अचानक नहीं होते।

सोलह प्रदेशोकी भिन्न-भिन्न भाषाओके अपने-अपने गुण-विशेष, तथा बोल-चाल और साहित्यमें बरती जानेवाली भाषामें भिन्न-भिन्न प्रयोगोका स्वरूप अवश्य विद्यमान रहेगा। शब्दोके पारस्परिक आदान-प्रदानमें कहीं समझौतेकी भावना है तो वहीं कहीं सघर्ष और आग्रह भी वर्तमान है। हिन्दी भाषाको सरलतासे सब सीख ले इस दृष्टिसे भी अिसे व्याकरणकी जटिल नियमावलीसे बाँधा जाय। क्या उसमें सभी भारतीय प्रदेशोकी भाषाओके शब्द आते रहें? सरल बनानेके लिये उर्दूके निकट उसे स्वरूप दिया जाय या सस्कृत शब्दोसे उसे पुष्ट किया जाय अथवा अंग्रेजी और हिन्दी शब्दोके मिले जुले स्वरूपमें असे व्यवहृत किया जाय आदि समस्याएँ मुख्य रूपसे सामने आती रही है। वैज्ञानिक दृष्टिसे देखनेपर यह सर्वमान्य तथ्य सामने आ जाता है कि भाषाके परिवर्तनका स्वरूप अचानक नहीं बदलता है; न उसे ऐसा बदलाही जा सकता है। किसी भी संसारकी भाषाको उठाकर देखनेसे

यही तथ्य प्रतीत होता है। अतः हमारी राजभाषाके लिये भी यही बात चरितार्थ होगी।

## भाषाको पराभिमुख नहीं होना चाहिये

संस्कृति और सभ्यताके साथ साथ तथा चिंतन, मनन और दैनंदिन जीवनकी आवश्यकताओं और बौद्धिक उन्नयनके स्तरपर सभी भाषाओंमें साहित्यकी सृष्टि हुआ करती है। पराधीनतासे मुक्त देशोंकी यह स्थिति है। किन्तु जहाँ पराधीनता रही है वहाँके शासकीय लोगोंकी भाषाका अक्षुण्ण प्रभाव स्वाधीन हो जानेपर भी बना रहता है। कुछ यही स्थिति भारतकी है और अुसकी प्रादेशिक भाषाओं की भी। किन्तु हमें अपनी भाषाओंकी क्षमताको पहचानकर विश्वासके साथ मार्ग करते जाना चाहिये। इस पराभिमुखतासे छुटकारा हो जानेपर निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नतिको मूलका रहस्य समझमें भली भाँति आ जायेगा। भाषाका विकास उसके प्रयोग और व्यवहारपर निर्भर रहता है। अतएव हम हिन्दीका राजभाषा और राष्ट्रभाषा जिन दोनों रूपोंमें यदि लगातार व्यवहार सार्वजनीन रीतिसे करते रहें तो अुसका निखिल भारतीय रूप भी निखर अुठेगा।

## प्रयोगों की व्याप्ति और क्षेत्रोंकी विशालता पर भावी रूप निर्भर है।

भाषाको कृत्रिमतासे और मनचाहा गढ़नेसे उसका प्रचलन खोटे सिक्केकी नाँईं बन्द हो जाता है। अतः हमें चाहिये यह कि हम अपनी आवश्यकताओंके अनुसार और विषयोंकी सरलता और गंभीरतापर विचार करते हुए अपनी भाषा साहित्य की सृष्टि करें। इस प्रकार सभी भारतीय भाषाएँ पुष्ट और संपन्न तथा भावाभिव्यंजक और विकासशील बन जावेंगी। जब इन तथ्योंके आधार पर तथा अपने निजी बलपर हिन्दीका भी सार्वदेशीय रूप विकसित हो उठेगा तब यह एक बहुत बड़ी बात होगी। नदीके प्रवाहको रोककर हम मनमाने ढंगपर उसे बहा या मोड़ सकते हैं। फूलकी तरह खिलनेवाली अपितु स्वच्छन्द और निर्बन्ध गतिसे बहनेवाली भाषा-गंगाको हम चाहे जिधर नहीं मोड़ सकते और न बाँध सकते हैं। भाषा तो अखण्ड प्रवाहित होनेवाली जलवाहिनी जैसी है। भाषाको प्रवाहित करनेवाले लेखक होते हैं। अतः उसे प्रस्तावों और नियमोंसे हम परिवेशित नहीं कर सकते। उसका नागरी और सुचारु रूप उसके भिन्न भिन्न प्रकारके विषयोंको साहित्य सृष्टिमें तथा ज्ञान विज्ञानकी पुस्तकोंकी निर्मितिके प्रयोगोंमें अपने आप सँवरता जाओगा। प्रयोगकी व्याप्ति और क्षेत्रों की विशालता पर ही उसका भावी रूप सदा निर्भर रहता आया है इस तथ्यको हमें समझना चाहिये। संभव है कि इस कार्यके करने में कुछ समय लग जाय परन्तु हमें इससे निराश नहीं होना चाहिये।

## हिन्दीके परिनिष्ठित रूपमें संस्कार

भारतीय प्रदेशकी समूची परिधिमें जितनी भी भाषाएं हैं उन सबको स्पर्श करनेवाली या उनको एक बाहरी आवृत्तमें लेकर अपनेमें समेट सकनेकी क्षमता जिसमें है ऐसी आज हमारी हिन्दी राष्ट्रभाषा है। इन भारतीय भाषाओंमें आर्य परिवारकी और द्राविड़ परिवारकी भाषाएँ और उनके व्यवहारको अपनानेवाले प्रदेश आते हैं। इन सबका इस राजभाषाके साथ किसी न किसी प्रकारका व्यावहारिक, राजनैतिक तथा राष्ट्रीय सम्बन्ध होनेसे हिन्दीके भविष्यकालीन सार्वदेशीय स्वरूपकी जांच पड़ताल करते समय इसेभी विचारमें रखना होगा। हिन्दीको पुष्ट करनेवाली जैसी आकर भाषा संस्कृत है वैसेही द्राविड़ तथा हिन्दी प्रदेशकी सभी बोलियाँ जैसे, अवधी, व्रज, खड़ी बोली, भोजपुरी राजस्थानी आदिने हिन्दीका आजका परिनिष्ठित रूप बनाया है। परन्तु अब उसका व्यवहार सार्वभारतीय और आगे चलकर विश्वकी प्रमुख सार्वभौम भाषाओंके साथभी होने लगा है। अतएव उसके भावीरूपको बनानेमें भारतकी हिन्दीतर भाषाएँ तथा अँग्रेजी रूसी, चीनी, जापानी आदि भाषाओंके संस्कार भी उसमें सहायक और हितकर सिद्ध होंगे। हिन्दी केवल हिन्दी प्रदेशकी भाषा न होकर अखिल भारतीय भाषा बन जाय, इसे ध्यानमें रखते हुए यदि कार्य चलता रहे तो भी इसका भावी रूप जैसा चाहिए वह उसी स्वरूपमें सामने आवेगा। इसको निश्चित करनेवाले तथा इस रूपके जन्मदाता केवल हिन्दी भाषी न होकर हिन्दीतर भाषी हिन्दी-पटु लेखक भी होंगे।

## अखिल भारतीय रूपके दो पक्ष

हिन्दीके भावी अखिल सार्वभारतीय रूपके दो अन्य पक्ष भी ध्यानमें रखने पड़ेंगे। एक उसका सामाजिक पक्ष है तो दूसरा उसका सांस्कृतिक पक्ष है। भारतके विभिन्न प्रादेशिक भाषाओंके लोगोंके अपने प्रश्न हैं तथा अपनी समस्यएँभी इन। समस्याओंके सुलझाव जिस रूपमें उन भाषाओंमें समृद्ध और अभिव्यक्त होंगे उसी रूप और मात्रामें प्रादेशिक भाषाओंके साहित्यकी श्रीवृद्धि होगी। इसका सार्वदेशीय परिणाम भी होगा। हिन्दी-भाषी प्रदेशोंको अपनी समस्याओंके साथ साथ इनपर भी विचार सांस्कृतिक एकताकी दृष्टिसे करना पड़ेगा। प्राचीन संस्कृतिका स्वरूप भारतीय प्रादेशिक भाषाओंके साहित्यमें बिखरा पड़ा है। हिन्दी भाषी प्रदेशमें भी यही स्थिति है। अखिल भारतकी सार्वदेशीय संस्कृति इन सबके समन्वित और सहयोगी पारस्परिक आदान-प्रदानसे अपना भावी रूप राष्ट्रभाषामें अभिव्यक्त कर उसेभी उसी रंगमें परिवेष्टित करेगी। राष्ट्रका हित उसकी सर्व संपन्नता और सारे

प्रादेशिक साहित्योंमें अभिव्यक्त भावनात्मक एकतासे दृढ़तर होता रहता है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि सारी भारतीय भाषाएँ समानस्तरकी और समान रूपसें राष्ट्रकी अधिकारिणी है। अतः कोई भाषा किसी अन्य भाषासे श्रेष्ठ या निकृष्ट कोटि की नहीं है। मानव-समाज भाषाओंके माध्यमसे भावनात्मक इकाई सिद्ध करता रहता है। अतः राष्ट्रभाषा और राजभाषा हिन्दीको अित विस्तृत भूखण्डकी अनेक भाषा-भाषी जन-समूहकी सामाजिक इकाअियोंको एकसूत्रमे गूंथते हुए अपना भावी स्वरूप बनाते रहना होगा। इस कार्यमें सारे भाषा-भाषियोंका अुसे सहयोग प्राप्त होगा। भारतीय संस्कृतिका सुगठित और राष्ट्रीय अभ्युदय श्रेयस, प्रेयस और निःश्रेयसकी अभिव्यंजना हिन्दी भाषा कर सकेगी। अिसीमे उसका सार्वभारतीयरूप झलक उठेगा।

## वैज्ञानिक प्रगतिमें परिनिष्ठित रूप न बिगड़े

आज सारा विश्व वैज्ञानिक प्रगतिसे गतिमानहो उठा है। परन्तु उसका सारा केन्द्र पश्चिममे होनेसे पूर्वके देशोमे भारत जैसा अभी अभी स्वतंत्रता प्राप्त देश उसकी चकाचौंधसे इतना व्यामोहितहो उठा है कि विदेशी सत्ताकी सत्ता नष्टहो जानेपरभी उसकी भाषाके चंगुलसे यह अपने आपको मुक्त नहीं कर पा रहा है। शायद इस देशकी अखिल देशीय धारणा यही बन गयी है कि हमारे भीतरकी सारी भावनात्मक एकता बिना अँग्रेजीके प्रायः असंभवही है। किन्तु यह भ्रान्त धारणा है। अँग्रेजीका पिछलग्गूपन हमें अपनी सास्कृतिक विचार-धाराओं अेवम हमारी सामूहिक तथा राष्ट्रीय चेतनाओंसे दूर ले जाकर रख देगा। यह हमारा घोर आत्म-पतन होगा। इस भ्रान्त आत्मतुष्टिसे जागृत होकर हमे अपनी जन-भाषाओकी उर्वर शक्तिको समझकर प्रथम उसमे ग्रंथ-निष्पत्ति तथा ज्ञान-विज्ञानकी शिक्षा लेनी चाहिये। आन्तर-प्रादेशिक व्यवहारोंमे तथा सार्वदेशीय ज्ञान-विज्ञानकी शिक्षा प्राप्त करनेमें अपनी संघभाषा एवं राष्ट्रभाषा हिन्दीके माध्यमसे अपने अपने निजी सामर्थ्य और गौरवको आत्मसात् करना चाहिये। वैज्ञानिक शब्दोंके केवल यांत्रिक निर्माणसे कोश और शब्द निर्माण तो हम कर लेंगे परन्तु, उनका व्यवहार हमारी वास्तविक राष्ट्रीय वैज्ञानिक चेतनाके उन्नतिपर निर्भर रहेगा। भाषाके आन्तर प्रान्तीय विनिमयमें परस्पर सद्भाव और सहिष्णुतासेही राष्ट्रभाषाका भावी रूप स्पष्टतः सामने आता जाएगा। संस्कृत और द्राविड़ परिवारकी भाषाओंसे हमारी आर्य-भाषाएँ सदियोंसे पुष्ट होती रही है। अतः उनसे एकदम सम्पर्क त्याग हानिकर और आत्मघातकी सिद्ध होगा। भारतीय भाषाओकी समन्वय-वादिता तो संस्कृतसे और द्राविड़से सम्पर्क बनायें रखनेमेही निहित है। यो हम विश्वकी ज्ञान-प्रदायिनी व ज्ञान-वर्द्धिनी अन्य भाषाओंके शब्दोका आदान-प्रदान अपनी संघभाषामे रोक भी नहीं सकेंगे, न उसकी रोकथामका कोई अुपायही हमे खोजना चाहिये। क्योंकि

वसुधैव कुटुम्बकम् -को सास्कृतिक चेतना जगानेवाली राष्ट्रभाषा अपने भविष्यकालीन स्वरूपका तभी आकलन कर सकेगी जब हम उसकी सर्वसंग्राहकताको चलने दें। हमे केवल यह ध्यान रखना होगा कि उसका परिनिष्ठित रूप न बिगडे। मैं तो यह कहूँगा कि हिन्दी, अँग्रेजोके स्थानपर आन्तर-राष्ट्रीय भाषा बन जाय। वैसा अब होने भी लगा है।

## सांस्कृतिक और भावनात्मक एकताके साथ आत्मीयता रहे।

राष्ट्रीय हिन्दी और प्रान्तीय हिन्दी ये दो अलग अलग भाषाएँ नहीं होगी। देशकी परपरामे जो भाषा अपना स्वरूप बनाती आयी है उसीका विकास होता रहेगा उसके परिनिष्ठित रूपको बनाये रखनेका उत्तरदायित्व हिन्दीके कवि, साहित्यकार आदिपरही निर्भर रहेगा। हिन्दीके अपने प्रादेशिक भेदोके बावजूद तथा अन्य हिन्दीतर भाषियोके हिन्दीपर किये गये संस्कारोके साथ-साथ उसकी मूलभूत एकता तो बनीही रहेगी। इसमे वैविध्य हो सकता है पर हम उसे प्रायः शैलीगतही मानेंगे। राष्ट्रीय, सामाजिक और सास्कृतिक एकताको बनाये रखते हुए उसकी आत्मीयतामे अन्तर न आ जाय इस सावधानीके साथ हिन्दीका भविष्यकालीन रूप सपन्न होगा। हिन्दी भाषाने आर्य-सस्कृति और द्राविड़ सस्कृतिके बीचकी खाईको पाटकर उसे एकरूप बना दिया है।

हिन्दीके भावी रूपमे तेलुगु, तमिल, बगला, मराठी आदि सभी भारतीय भाषा-भाषियोका सहयोग इस निखिल देशीय रूपको बनानेमे अपेक्षित होगा। विशाल भारतवर्षकी सास्कृतिक एकताकी एकमात्र प्रतिनिधि स्रोतस्विनि हिन्दी होनेसे उसपर भारतीय आर्य-परिवारके, द्राविड़ परिवारकी तथा अँग्रेजी, रूसी, आदि पश्चिमीय भाषाओके संस्कार तो होतेही रहेगे। इसीमे उसकी सर्वसंग्राहकता तथा सर्व समन्वयापकता निहित है। इसीसे भावनात्मक एकता और सास्कृतिक एकताका सामजस्य स्थापित होकर हिन्दीका सकेतित और संभावित रूप सुनिश्चित हो सकेगा। प्रत्येक भाषा-भाषीको चाहिये कि वह अपने पडोसकी प्रान्तीय भाषा सीखे और स्वेच्छासे सीखे, बोले और समझे। इस पारस्परिक सहकारितासे समन्वयवादिता और भावनात्मक एकताका सम्बन्ध दृढ होकर हिन्दीके भावी रूपके सस्कार निरतर आत्मीयताके साथ होते रहेगे। इसीके साथ-साथ अन्य भाषा-भाषी हिन्दी लेखकोकी कृतियोका हिन्दी साहित्यकारो द्वारा स्वागत होना चाहिये। इससे उसके भावी परिनिष्ठित रूपको बनानेमे सबका सहयोग प्राप्त होगा।

---

## ५३ : हिन्दीका भावी रूप

[ प्रस्तुत लेखके लेखक डॉ. राजनारायण मौर्य पूना विश्वविद्यालयके हिन्दी विभागमें हिन्दीके व्याख्याता हैं। "नामदेवके हिन्दी पदोंका भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन" प्रबंधपर आपको डेक्कन कॉलेजमें भाषाविज्ञान तथा पूना विश्वविद्यालयके भाषाशास्त्र विभागके अध्यक्ष डॉ घाटगेजीके निदर्शनमें पीएच डी की उपाधि सन १९६३ में मिली है। यह लेख आपने विशेष रूपसे इस पुस्तकके लिये लिखकर प्रदान किया है। ]

### वादविवाद न कर इसे समझें

हिन्दीके भावी रूपपर दो दृष्टियोंसे विचार करना आवश्यक है। प्रथम भाषा-विकासके सिद्धान्तके अनुसार हिन्दीका भावी रूप क्या होगा और द्वितीय हिन्दीका भावी रूप क्या हो सकता है? सर्व प्रथम हम भाषा विकासके सिद्धान्तोंके आधारपर विचार करेंगे।

भाषा निरन्तर परिवर्तनशील है और उसमे अपने आप परिवर्तन होते रहते हैं। किन्तु यह परिवर्तन न तो एकाएक होता है और न कृत्रिम ढगसे सहसा कियाही जा सकता है। परिवर्तनकी यह प्रक्रिया स्वाभाविक ढगसे धीरेधीरे होती है। भाषा-शैलीके रूपके लिए कोई नियम बनाकर उसमे क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं लाया जा सकता। इतना अवश्य किया जा सकता है कि उसके विकासके लिये सहायक सामग्री प्रस्तुत की जा सकती है और विकासमे आनेवाली बाधाओंको हटाया जा सकता है। अत हिन्दीके भावी रूपको हम पूर्णत अपने मनसे नहीं गढ सकते। ऐसी स्थितिमे हिन्दीका भावी रूप क्या होना चाहिए इसपर विवाद न करके हम यह समझें कि क्या होनेकी सम्भावना है?

### अधिक प्रायोगिक अवसर प्रदान करनेसे प्रगति सभव

हिन्दी अपने आप विकसित होगी और अपने चारो ओरके वातावरणसे सामग्री लेकर अपनेको पुष्ट बनाएगी। इस वातावरणके निर्माणमे हमे जो करना है वह भावी रूपपर निश्चयही बहुत बडा प्रभाव डालेगा। पहली बात यह है कि भाषाका विकास आवश्यकताओंके आधारपर होता है। मुगलोंके शासनकालमे फारसी और अंग्रेजोंके शासनकालमे अंग्रेजी इसी आधारपर विकसित हुई। हमे भी आज ज्ञान, विज्ञान, शिक्षा तथा सरकारी क्षेत्रोमे हिन्दी भाषा और शब्दावलीकी आवश्यकता है। अत हम इस शब्दावलीका निर्माणकरे और उनको प्रयोगमे ले आए। हिन्दीको जितना शीघ्र तथा अधिक अवसर प्रदान किया जायगा उतनीही तीव्र गतिसे यह पुष्ट और सपन्न होगी।

## पारिभाषिक शब्दावलीका तत्परतासे प्रयोग

दूसरी बात यह है कि किसी भाषाको प्रौढ़ बनानेके लिये एक दिनमें गढ़कर शब्दावली नहीं दी जा सकती। पारिभाषिक शब्द भलेही बनेंपर जबतक उनका ज्ञान, विज्ञान और साहित्यमें प्रयोग नहीं होगा तब वे भाषाके अंग नहीं बन सकते। अतः नयी शब्दावलीका निर्माणही प्रमुख कार्य नहीं है। प्रमुख कार्य है उसका प्रयोग। नये लेखक, विद्वान् तथा साहित्यकार जितनी तत्परतासे पारिभाषिक शब्दावलीका प्रयोग करेंगे, हिन्दी उतनी जल्दी विकसित होगी।

## प्रत्येक प्रान्तकी हिन्दीमें भिन्नता होगी।

भाषाकी प्रवहमान अवस्थाको देखते हुए यह कहा जा सकता है कि हिन्दीका सम्पूर्ण देशमें और सभी स्तरोंपर एकही रूप नहीं होगा। देश और स्तरके अनुरूप हिन्दीके कई रूप होंगे। प्रत्येक प्रान्तकी हिन्दीपर वहांकी स्थानीय भाषाका प्रभाव अवश्य पड़ेगा। अतः प्रत्येक प्रान्तकी हिन्दीमें स्थानीय भाषाके कुछ शब्द होंगे और साथही साथ उसकी रचना प्रक्रियाके अनुसार हिन्दीकी रचनाभी होगी। इसके अतिरिक्त उच्चारणपर भी प्रभाव पड़ेगा। जिस लहजेमें वे अपनी मातृभाषा बोलते हैं उसका कुछ भाग हिन्दीमेंभी आ जायगा। इस तरह प्रत्येक प्रान्तकी हिन्दीमें किंचित् भिन्नता होगी।

## हिन्दीके तीन स्तर

स्तरके अनुसार हिन्दीमें कम-से-कम तीन स्तर होंगे। प्रथम विद्वानों, लेखकोंकी हिन्दी होगी, जिसमें ज्ञान, दर्शन तथा साहित्यकी उच्चकोटिकी पुस्तकें लिखी जाएँगी। और जिसके माध्यमसे विश्वविद्यालयोंमें साहित्य एवं दर्शनका अध्ययन एवं अध्यापन कार्य होगा। इस हिन्दीमे संस्कृत शब्दावलीकी बहुलता होगी।

द्वितीय स्तरकी हिन्दी होगी सामान्य पढ़े-लिखे लोगोंकीतीर्थोंकी और साधारण कहानी-उपन्यासोंकी जो मध्यम वर्गके लोगोंमे प्रचलित होगी। इस हिन्दीमे उर्दू शब्दोंकी अधिकताके साथ साथ प्रत्येक प्रान्त या शहरकी स्थानीय भाषाके शब्द भी होंगे। तीसरे प्रकारकी हिन्दी वह होगी जो पूरे प्रांतमे तांगेवाले, टॅक्सीवाले, कुली तथा साधारण दूकानदार प्रयोगमें लाएंगे। प्रान्तके प्रत्येक बड़े शहरोंके बाजारमें रेल्वे स्टेशनपर इसका प्रचार होगा। इसमें हिन्दी, उर्दू तथा स्थानीय भाषाके शब्दोंके साथ अंग्रेजी और ग्राम्य भाषाके शब्द भी मिलेंगे। इसकी विशेषता शब्दावलीमें कम और रचना-पद्धतिमे अधिक होगी। एक प्रकारसे इसे बाजारू भाषा कहा जा सकेगा।

## हिन्दीके भावी रूपके निर्माता

जहाँतक हिंदीके भावी रूप का प्रश्न है हिंदीके विद्वान्, लेखक, कवि, तथा सरकारी नीति उसके मोड़में सहायक हो सकते हैं। एक प्रकारसे हम कह सकते हैं कि इन सबलोगोंके सहायतासे हिंदीके भावी रूपका निर्माण किया जा सकता है।

हिंदीके भावी रूपका निर्माण करना समूचे देशके बच्चोंकी अगली पीढ़ीका निर्माण करना है, जिनकी कोई भाषा नहीं होती। भाषा केवल यान्त्रिक पद्धति नहीं बल्कि यह राष्ट्र एवं समाज-मानस भी है। भाषा किसी भी राष्ट्रके जीवनकी सर्वांगीण अभिव्यक्ति तथा सामाजिक सामूहिक चेतनाका संयोजन-सूत्र है। भाषाका संबध केवल संपन्न शब्दावली और अभिव्यक्तिकी क्षमतासेही नहीं है, प्रत्युत उसका संबध राष्ट्रकी सांस्कृतिक परम्पराओं उसके जीवन दर्शन और उसके विकासके इतिहाससे होता है। अतः जब हम हिंदीके भावी रूपकी चर्चा करते हैं, तो हमें ऊपरके तथ्योंको भुला नहीं देना चाहिये।

## राष्ट्रभाषा हिन्दीके भावी रूपकी प्रवृत्तियाँ

राष्ट्रभाषा हिंदीके भावी रूपको निर्माण करनेके लिये सद्य- दो प्रवृत्तियाँ या प्रयत्न स्पष्ट लक्षित हो रहे हैं। पहली प्रवृत्तिके अनुसार हिंदीमें संस्कृत शब्दोंकी अधिकता होनी चाहिये। संस्कृत भाषाओंकी आधार-भूमि है और भारतकी हर भाषा इससे सम्बद्ध है। अतः संस्कृत शब्दावलीकी प्रधानता होनेसे हिंदी सबके लिये सरल और सुबोध होगी।

दूसरीके अनुसार लोगोंका कहना है कि हिंदी जितनी आसान बन सके उतनी आसान बनानी चाहिये। इस आसानीके नामपर उर्दूके शब्दोंका अधिकाधिक प्रयोग हिंदीमें करनेका आग्रह किया जाता है। इसके पक्षमें यह तर्क उपस्थित किया जाता है कि उर्दूके शब्द जो बहुत दिनोंसे हिन्दीमें रम गये हैं उनको निकालकर संस्कृत कठिन शब्दोंको भरना ठीक नहीं। इस संबधमें एक विद्वानका तर्क द्रष्टव्य है—"हिंदीको ज्यादासे ज्यादा आसान रखना और चालू बनानेकी ज़रूरत है। अगर इसमें ऐसे नये लफ्ज़ोंकी भरमार की गयी जिनको बोलनेके लिये ज़बानको मरोड़नेकी ज़रूरत है तो इससे न सिर्फ़ ज़बानकी सुन्दरतापर कुछ असर पड़ेगा बल्कि उसकी तरक्की भी रुक जायेगी और आखिरमें नतीजा यह निकलेगा कि या तो रोज़ मर्राके इस्तेमालसे दस-बीस-पचास सालके बाद वह नामानुस लफ्ज़ फिर हलके हलके सलीम लफ्ज़ बन जाएँगे या जनताकी ज़बानपर चढ भी न सकेंगे।"

## उर्दू शब्दोंके प्रयोगोंका सावधानीके साथ विचार हो

इस प्रकारके विचारों-द्वारा हिंदीमें उर्दू शब्दोंके अधिकाधिक प्रयोगकी वकालत की जाती है। मैं इसके विरोधमें नहीं हूँ कि हिंदीमें उर्दूके शब्द बिल्कुलही न

हो। मैं तो कहता हूँ कि उर्दू क्यों अरबी, फारसी, अँग्रेजी, आदिके भी शब्द हों लेकिन वे शब्द जो जन सामान्यमें प्रचलित हो गये हों और जिन्हें भारतकी अधिकाधिक जनता आसानीसे समझ सके। इस प्रत्यक्ष सत्यको भुलाया नहीं जा सकता कि द्रविड परिवारकी भाषाओंको छोडकर भारतकी सभी भाषायें एकही मूल स्रोतसे निकली हैं। अत. सभी भाषाओंकी शब्दावलीमें पर्याप्त समानता है। उर्दूके शब्द उत्तर-भारतवालोंके लिये भलेही प्रचलित और आसान लगें परन्तु शेष अन्य प्रदेशोंके लिये वह अपरिचित ही हैं। उनके लिये संस्कृतके शब्द अधिक प्रचलित हैं। ऊपरके विद्वानके कथनमें रवाँ और 'सलीस' शब्द हिंदी भाषी भी नहीं समझ सकता। यदि इसके स्थानपर प्रवाहपूर्ण और सरल शब्द रखे जाते तो अन्य प्रान्तवाले भी उन्हें आसानीसे समझ लेते। क्योंकि उनके पास आधारके रूपमें संस्कृतकी शब्दावली है। संस्कृतका एकही रूप इन विभिन्न भाषाओंमें थोडे बहुत परिवर्तनके साथ मिलता है। यथा —

| १ संस्कृत–भ्रमर | २ प्रवाल |
|---|---|
| हिंदी–भौंरा | प्रवाल |
| पजाबी –" | |
| काश्मीरी – बोम्बर | |
| सिन्धी – भौंरो | |
| मराठी – भुंगा | पोवळें |
| गुजराती – भमरो | परवाल |
| बगाली – भ्रमर | प्रोवाल |
| असामिया – भोमोरा – पोवाल | |
| उडिया – भओर | प्रवाळ |
| तेलुगू – – – | पगडम |
| तमिल – | पवळम |
| मलयालम् – | पविळम् |

तमिल, तेलुगू, कन्नड और मलयालम्में तो किंचित् परिवर्तनके साथ संस्कृतके ही शब्द मिलते हैं, जब कि उर्दूके शब्द एकदम नये और भिन्न होते हैं। उदाहरणार्थ, रत्न शब्द सभी भारतीय भाषाओंमें है। साथही तेलुगूमें रत्नमु, तामिलमें इरत्तिनम्, मलयालम में रत्नम् तथा कन्नडमें रत्न मिलता है। आज इनके स्थानपर बहु प्रचलितके नामपर जवाहर शब्द रखा जाय तो यह एकदम अव्यवहार्य है। जवाहर शब्द नया है और अन्य भाषाओंके क्षेत्रोंमें प्रचलित नहीं है। द्रविड भाषाओंके क्षेत्रमें तो एकदम ही नहीं। सूर्य शब्द सभी भारतीय आर्य भाषाओंमें है साथही तेलुगूमें सूर्यडु, तमिलमें सूरियन, मलयालममें सूर्यन और कन्नडमें सूर्य है। इसके स्थानपर उर्दूका 'आफताब' रखा जाय तो भलेही कुछ लोगोंको यह रवाँ और सलीस लगे, किन्तु व्यावहारिकताकी दृष्टिसे अेकदम गलत है। इसी तरह मन्त्रि, अनुवाद, विद्यार्थी

गद्य, विषय आदि शब्द भारतीय आम भाषाओंके अतिरिक्त द्रविड भाषाओंमें भी प्रचलित हैं पर उर्दूके वजीर, तर्जुमा, तालिबिल्म, नसर तथा मजमून आदि शब्द यहाँ भी प्रचलित नहीं हैं। विज्ञान, शब्द बोध, व्याकरण जैसे शब्द भी द्रविड भाषाओंमें हैं पर उर्दूके इल्महिक्मत, लुगात और कवायदे जुबान आदि शब्द यहाँ भी प्रचलित नहीं हैं।

## संस्कृत शब्दोंको प्रमुखता देनेके कारण

हिंदीकी शब्दावलीमें संस्कृत शब्दोंको प्रमुखता देनेका एक कारण और है। ये संस्कृतके शब्द लगभग वेदकालसेही भारतीय भाषाओंमें उसी रूपमें चले आ रहे हैं। नीचे कुछ शब्द दिये जा रहे हैं जो तीन-चार हजार वर्षोंसे हमारी भाषाओंमें अविकल रूपमें प्रयुक्त होते रहे हैं।

यजुर्वेदसे :—कक्षा, कण्ठ, कथा, कन्या, कपोत, कर्म, कलश, कवि, कुक्कुट, कुंभ, कुलाल कृषि, केश, क्रीडा, क्रोध।

ऐतरेय ब्राह्मणसे :—अराल, अवयर, अंगुली, अक्ष, अतिथि, अधर, अनुचित, अनुरूप, अनुवाद, अन्तरिक्ष अन्न, अपराह्न, अभिप्रेत, अभिषेक, अभीष्ट, अर्चन, अलंकार, अविद्या, अश्लील, अहिंसा, वायु, अग्नि, वर्षा, पवन, विद्युत्, सूर्य, चन्द्रमा, पृथिवी, आकाश, नक्षत्र, गिरि, नदी, धारा, गुहा, समुद्र, दिन, रात्रि, साय, प्रात, उषा, मुहूर्त, ऋतु, मास, पक्ष, वेला, वसन्त, ग्रीष्म, दुग्ध, मधु, घृत, दधि, रस, पुष्प, फल, वर्ण, गोत्र, जाति, सुवर्ण, रजत, रत्न, हल, रथ, चक्र, जीवन, मृत्यु, धैर्य, पाप, पुण्य, ज्ञान, विज्ञान, उपासना, समाधि, कूर्म, सर्प, सत्र, पति, पत्नी, माता, पिता, पुत्रवधू, सम्राट्, मंत्री, परिषद्, सेना, प्रजा, मानव, पुरुष, स्त्री, मित्र, शत्रु, हृदय, हस्त, चरण, शिर, जिह्वा, चक्षु, त्वचा, रक्त, मास, अस्थि, मन, प्राण, बुद्धि, चित्त, अहंकार, सत्य, विद्या, गन्ध, स्पर्श, शब्द, गम्भीर, घोर, ज्येष्ठ, प्रत्यक्ष, प्रिय, नूतन, सनातन आदि।

## संस्कृत शब्दावलीसे व्यावहारिक लाभ

अत यह स्पष्ट है कि हिंदीके भावी रूपमें यदि संस्कृतकी शब्दावलीको प्रमुखता दी गयी तो इससे दो बहुत बडे व्यावहारिक लाभ होंगे। एक तो यह कि आर्य-भाषाओंके अतिरिक्त द्रविड भाषाओंमें भी संस्कृतके जो शब्द मिलते हैं यदि वेही हिंदीमें हुए तो उन्हें नये शब्द सिखनेकी आवश्यकता नहीं पडेगी और वे हिंदीको आसानीसे सीख जाएँगे। ये संस्कृतके शब्द सूतके रूपमें सभी भाषाओंके पुष्पोंमें प्रविष्ट होकर अेक हार तैयार कर देंगे, जिनमें विच्छिन्नता नहीं, एकता होगी, अलगाव नहीं, समग्रता होगी। दूसरा लाभ यह होगा कि हम अपने तीन-चार हजार वर्ष अतीतसे सहजही जुड जाएँगे। हमारा सारा अतीत हमारे सामने मुखर हो जायगा और सारा देश अपनेको संस्कृतिके एक सूत्रमें बँधा पाएगा।

षष्ठम अध्याय

# हिन्दी प्रचारक संस्थाएँ

और

# राष्ट्रभाषा प्रचार आन्दोलनका इतिहास

[प्रस्तुत लेख श्री शान्तिभाई जोवनपुत्रा द्वारा लिखा गया है। श्री. जोवनपुत्राजी राष्ट्रभाषाके प्राचीन प्रचारक हैं तथा हिन्दी भाषा और साहित्यके विशेष जानकर होनेके कारण उन्होंने यह सुदर ऐतिहासिक लेख लिखा है जो हिन्दी प्रचार-सस्थाओके स्वरूप, विकास और कार्य प्रणालीपर अधिकृत प्रकाश डालता है।]

## प्रास्ताविक

जन-भाषा हिंदीके सच्चे प्रचारक तो हमारे साधु-सत तीर्थ यात्री, व्यापारी एवं प्रवासीही रहे हैं, जिन्होंने सहजतासेही इस देशकी भाषा हिंदीको अपना माध्यम बनाकर उसको एक राष्ट्र-व्यापी, अतर-प्रातीय व्यवहारकी भाषा अर्थात् 'राष्ट्र-भाषा' का गौरव-पूर्ण स्थान प्रदान किया ।

विगत पाँच सौ वर्षोंमे हिंदीका क्रमश विकास होता रहा है और आज वह ससारकी एक समृद्ध-भाषाका स्थान प्राप्त कर चुकी है। इतनाही नहीं, वह अब भारत जैसे विशाल देशकी 'राजभाषा' के पदपर भी आसीन हो चुकी है। भारतकी लगभग ३५ करोड़ जनता, हिंदीको बोल और समझ लेती है। बोलनेवालोंकी सख्याकी दृष्टिसे ससारकी भाषाओंमे हिंदीका दूसरा क्रम आता है। अनेको साहित्यकारोंने इसकी श्री-वृद्धि की है और आजभी कर रहे हैं।

देशकी पराधीन अवस्थामे भी हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओने बिना किसी राज्याश्रयके अपना विकास जारी रखा और जनताके सहयोगके बलपरही हमारी भारतीय भाषाएँ जीवित रहीं—पनपीं।

देशकी आजादीके लिऐ अनेक आदोलन किये गये और गुलामीकी शृंखलाको तोड-फेंकनेके लिये अनेको साधन जुटाये गये। सन् १८५७के प्रथम स्वतत्रता-आन्दोलनके पश्चात् जन-साधारणमे जागृति ऐव राष्ट्रीय भावनाको फैलानेकेलिए एक भाषा अर्थात् जनभाषाकी आवश्यकता तीव्र-रूपसे अनुभव की जाने लगी और जन-नायकोंने राष्ट्रभाषा हिंदीको राष्ट्रीय ऐकताका सबसे बडा साधन मानकर उसके देशव्यापी प्रचारकी योजनाएँ बनायीं। महात्मा गाधीजीने राष्ट्रभाषा-प्रचार-कार्यको राष्ट्र-निर्माणका रचनात्मक विधायक कार्य माना एव उसके व्यापक प्रचारके लिये कई सस्थाओंकी स्थापना की। महर्षि दयानद-सरस्वतीने आर्य-समाजके कार्यके लिये हिंदीको ही अपनाया। इस प्रकार राष्ट्रभाषा हिंदीके प्रचारका कार्य सुव्यवस्थित रूपमे चलने लगा। अनेक सस्थाओ, व्यक्तियों तथा प्रवृत्तियोंका इस कार्यमे

अनमोल सहयोग प्राप्त हुआ। राष्ट्रभाषा-प्रचार-आंदोलनमें देशकी हिंदी-प्रचार-संस्थाओंका महत्त्वपूर्ण स्थान एवं योगदान रहा है। हिंदी प्रचारका सेवाकार्य करनेवाली इन छोटी-बड़ी संस्थाओंका संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

## नागरी प्रचारिणी सभा, काशी वाराणसी (उत्तर-प्रदेश)

राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपिका ठोस प्रचार करनेके हेतु स्थापित इस सर्वप्रथम प्रचार-संस्थाका जन्म, वाराणसीके क्वीन्स कॉलेजिएट स्कूलकी पाँचवीं कक्षाके कुछ उत्साही छात्रोंकी ता. १० मार्च, १८९३ (संवत् १९५०) की एक सभामें हुआ। पं. रामनारायण मिश्र, श्री ठाकुर शिवकुमार सिंह, श्री. गोपाल-प्रसाद खत्री, श्री. रामसूरत मिश्र, श्री उमराव सिंह तथा श्री. बाबू श्यामसुन्दरदासजी आदि उसके संस्थापक रहे। बादमें श्री राधाकृष्णदास, महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदी, रायबहादुर प लक्ष्मीशंकर मिश्र, डॉ छन्नूलाल, रायबहादुर प्रमदादास मित्र आदिका मार्गदर्शन 'सभा' को प्राप्त हुआ। महामना प. मदन-मोहन मालवीय, राजा रामपाल सिंह, राजा शशिशेखर राय, महाराज बालकृष्ण लाल, श्री. अंबिकादत्त व्यास, श्री बदरीनारायण चौधरी, श्री राधाचरण गोस्वामी, श्री. श्रीधर पाठक, श्री. ज्वालादत्त शर्मा, श्री नंदकिशोर देव शर्मा, कुँवर जोधसिंह मेहता, श्री समर्थ दान तथा डॉ. सर जार्ज ग्रियर्सन आदि लब्धप्रतिष्ठ विद्वान् भी शीघ्रही 'सभा' के संरक्षक और सदस्य बन गये।

['सभा' के प्रथम सभापति भारतेन्दु हरिश्चन्द्रजीके फुफेरे भाई श्री. बाबू राधाकृष्णदासजी हुअे तथा प्रधान मंत्री हुअे श्री. बाबू श्याम सुन्दरदासजी 'सभा' के सहायकोंमें श्री. भारतेन्दुके मित्रोंमेंसे राय बहादुर पं. लक्ष्मीशंकर मिश्र, ठाकुर रामदीन सिंह, बाबू रामकृष्ण वर्मा, बाबू गदाधरसिंह, बाबू कार्तिक प्रसाद खत्री आदि थे।

'सभा' का मूल उद्देश्य: राष्ट्रभाषा हिंदी और राष्ट्रलिपि देवनागरीका प्रचार करना– रखा गया। हिंदीकी प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकोंकी खोज करना अनुशीलन करना, हिंदीका बृहत् कोश तैयार करना, हिंदी भाषा और साहित्यका इतिहास तैयार करना, साहित्यिक गोष्ठियों तथा व्याख्यान-मालाओंका आयोजन करना, शोध-कार्य कराना आदि ठोस-रचनात्मक कार्योंको अपनाकर, उनको कार्यान्वित करनेकी योजनाएँ बनायी गयीं। साहित्यिकोंको पुरस्कृत करके साहित्य निर्माणके कार्यको उत्तेजन दिया गया। उत्तर प्रदेशीय सरकारने अँग्रेजी के साथ केवल फ़ारसी लिपिमें लिखी जानेवाली उर्दूकोही अदालतकी भाषाके रूपमें स्वीकृत किया था। महामना प. मदनमोहन मालवीयजीके नेतृत्वमें 'सभा' ने आंदोलन करके उस समयके संयुक्त प्रांतकी अदालतों तथा राजकीय कचहरियों एवं

कार्यालयोंमें देवनागरी लिपिको स्थान दिलानेके, लिये जनताकी साठ हजार हस्ताक्षर प्राप्त किये तथा एक विशेष निवेदन तैयार करके ता. २ मार्च १८९८ को प्रान्तके गवर्नर सर एन्टनी मेकडॉनेलके सम्मुख इलाहाबादमें वह उपस्थित किया। परिणाम-स्वरूप, सरकारको बाध्य होकर ता. १८ अप्रैल १९०० को देवनागरीलिपिके स्वीकारकी आज्ञा निकालनी पड़ी। जिस सफलताके कारण केवल सात वर्षके अल्पकालमेंही 'सभा' ने जनतामें अपना एक विशेष स्थान प्राप्त करके हिंदी-प्रेमी जनताका विश्वास संपादित किया तथा अपनी प्रतिष्ठा जमायी।

'सभा'के उद्देश्य (संक्षेपमें) :— (१) देश-विदेशमें हिंदी भाषा और नागरी लिपिका प्रचार करना तथा उसे उचित अधिकार दिलानेके लिये उद्योग करना।

(२) हिंदी भाषाकी उन्नति करना, आवश्यक विषयोंके ग्रंथोंसे उसे अलंकृत करना और उसके प्राचीन भांडारकी रक्षा करना।

(३) हिंदीको शिक्षाका माध्यम बनानेका उद्योग करना।

(४) ऐसा संग्रहालय खोलना जिसके द्वारा हिंदी भाषा, नागरी लिपि तथा भारतीय संस्कृतिकी रक्षा और उन्नति हो।

(५) *अन्य ऐसे कार्य करना जो सभाके उद्देश्योंकी पूर्तिके लिये उपयुक्त* और आवश्यक हों।

## 'सभा'की प्रवृत्तियाँ

### आर्य भाषा पुस्तकालय

एक निजी विशाल-भवनमें, सभाके अंतर्गत यह पुस्तकालय चल रहा है। अनेक मूर्द्धन्य साहित्यकारोंने, अपना महत्त्व-पूर्ण संग्रह इस पुस्तकालयको प्रदान *किया है। श्री. गदाधर सिंहजीने ता. २७ अगस्त, १८९४ को अपना* 'आर्यभाषा पुस्तकालय' नामक ग्रंथ-संग्रह सभाको सौंप दिया और तबसे 'सभा' के 'नागरी भंडार' पुस्तकालयका नाम बदलकर आर्यभाषा-पुस्तकालय रख दिया गया। जिस पुस्तकालयमें हिंदीकी ४०,००० पुस्तकें तथा ५,००० हस्तलिखित-ग्रंथ संग्रहीत हैं और निरंतर ग्रंथ-संख्यामें वृद्धि होती रहती है। अन्य प्रादेशिक भाषाओंकी लगभग ५,००० महत्त्व-पूर्ण पुस्तकेंभी इस पुस्तकालयमें संग्रहीत हैं। इसके अतिरिक्त हिंदीकी लगभग दो सौ पत्र-पत्रिकाएँभी यहां आती हैं। हिंदीमें शोध-कार्य करनेवालोंके *लिये यह पुस्तकालय अत्यंत उपयोगी है।* शोध-कार्यके लिये अनेक विद्यार्थी यहाँ आकर इस ग्रंथालयका लाभ उठाते हैं।

## हस्तलिखित-ग्रंथ : खोज-विभाग.

इस विभागके द्वारा प्राचीन अनुपलब्ध साहित्यका अन्वेषण और अनुसंधानका कार्य होता है। अबतक कई हस्तलिखित-ग्रंथोंकी खोज की गयी है। इस कार्यमे डॉ. काशी-प्रसाद जायसवाल, राय-बहादुर डॉ. हीरालाल तथा राय बहादुर, श्री. गौरीशंकर हीराचंद ओझा आदि सुविख्यात विद्वानोंका सहयोग 'सभा' को मिला है। और आज भी बीससे अधिक अनुसंधान-कर्ता इस कार्यमें जुटे हुए है। आरंभमे यह कार्य बंगालकी 'एशियाटिक-सोसायटी' द्वारा करवाया गया था।

## अनुशीलन विभाग

इस विभागके द्वारा, योग्य विद्वानोंको आर्थिक सहायता देकर साहित्यकी विभिन्न धाराओका अनुशीलन-कार्य सम्पन्न कराया जाता है।

## नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका

'सभा'की स्थापनाके केवल तीन वर्ष बादही "नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका"का प्रकाशन प्रारंभ हुआ।

'सभा' की इस पत्रिकाके उद्देश्य निम्नानुसार रखे गये है :—

(१) नागरी लिपि और हिंदी भाषाका संरक्षण तथा प्रचार,

(२) हिंदी साहित्यके विविध अंगोका विवेचन,

(३) भारतीय इतिहास और संस्कृतिका अनुसंधान,

(४) प्राचीन, अर्वाचीन शास्त्र, विज्ञान और कलाका पर्यालोचन, इत्यादि।

हिंदीकी यह सर्वाधिक प्राचीन पत्रिका, लगभग पिछले ७० वर्षोंसे अखण्ड-रूपसे प्रकाशित हो रही है। मुख्यतः यह शोध-पत्रिका है और उस क्षेत्रमे उसने गौरव-पूर्ण स्थान प्राप्त किया है।

'सभा' की ओरसे कुछ समयतकके लिये हिंदी' तथा 'विधि-पत्रिका' एवं अंग्रेजीमे 'हिंदी-रिव्यू' नामक पत्रिकाओका प्रकाशन भी हुआ, और ये पत्रिकाएँ भी लोकप्रिय रहीं।

## कोष-विभाग

'सभा' के प्रकाशनोमे महत्त्वपूर्ण एवं चिरस्थायी प्रकाशन हैं 'हिंदी शब्द-सागर' और 'संक्षिप्त शब्दसागर'। 'हिंदी शब्दसागर'की तैयारीमे, सन-१९०८ से १९२९ तक लगभग २२ वर्ष लगे, और कई मनीषी विद्वानोने बड़ी लगनसे इसके संपादन-कार्यमे सहयोग दिया। लगभग एक लाखकी शब्दसंख्यावाले इस कोशपर एक लाखसे भी अधिक रुपयोका व्यय हुआ। अब इस कोशका परिवर्तित-संशोधित संस्करण तैयार किया जा रहा है।

इसके अतिरिक्त सन-१९६२ मे प्रकाशित 'हिंदी वैज्ञानिक शब्दावली' नामक अँग्रेजी हिंदीकोश भी 'सभा' का एक महत्त्वपूर्ण प्रकाशन है। यह सर्व-प्रथम वैज्ञानिक कोश है। इस कोशमे ज्योतिष, रसायन, भौतिक, विज्ञान, गणित, वेदान्त, भूगोल, अर्थ-शास्त्र आदि विषयोंके शब्द एकत्रित किये गये हैं।

## प्रकाशन और विक्रय विभाग

इस विभागके द्वारा उत्तमोत्तम मौलिक रचनाओंका प्रकाशन तथा उसकी बिक्रीका प्रबंध होता है।

हिंदीमे विस्तृत और सुव्यवस्थित व्याकरणकी पुस्तकका अभाव था। प. कामता प्रसाद गुरुके सहयोगसे सन् १९१९ मे 'सभा'ने एक प्रामाणिक व्याकरणकी पुस्तक प्रकाशित की और सन् १९६० मे प. किशोरीदासजी वाजपेयीके सहयोगसे 'हिंदी शब्दानुशासन' नामक एक और व्याकरण-ग्रंथ प्रकाशित किया।

'हिंदी साहित्यका इतिहास' तैयार करनेमे 'सभा' के अनुसंधान-कार्यने प. रामचंद्र शुक्लको बडी सहायता पहुँचायी है। 'सभा' ने छत्र-प्रकाश' 'सुजान-चरित्र', 'जगनामा', 'पृथ्वीराज-रासो', 'परमाल रासो', 'बीसलदेव रासो', 'ढोला मारुरा दूहा', आदि ऐतिहासिक काव्योंको प्रकाशमे लाकर हिंदी साहित्यकी अभूतपूर्व सेवा की। इसके अतिरिक्त 'सभा' ने तुलसी, सूर, जायसी, भूषण, देव तथा भारतेन्दु जैसे प्रसिद्ध कवियोंकी कृतियोके भी प्रामाणिक तथा सस्ते सस्करणोंका प्रकाशन किया है।

'सभा' की ओरसे निम्न लिखित पुस्तक-मालाओंका प्रकाशन भी होता है – नागरी-प्रचारिणी-ग्रंथमाला, मनोरंजक पुस्तकमाला, सूर्यकुमारी पुस्तकमाला, देवीप्रसाद ऐतिहासिक पुस्तकमाला, प्रकीर्णक-पुस्तकमाला, बालावक्ष राजपूत चारण-पुस्तकमाला, देव पुरस्कार-ग्रंथावली, महेन्द्रलाल गर्ग विज्ञान-ग्रंथावली, श्रीमती रुक्मिणी तिवारी पुस्तकमाला, श्री रामविलास पोद्दार-स्मारक-ग्रंथमाला, नवभारतीय ग्रंथ माला, महिला पुस्तक माला, अर्द्धशती याज्ञिक-ग्रंथावली, राजस्थान साहित्य रक्षा निधि और श्री राजा बलदेवदास बिडला-पुस्तक माला, इत्यादि। *राजाबलदेवदास बिडला-पुस्तक मालाकी स्थापनाके लिये श्रीमान् सेठ घनश्यामदासजी* बिडला ने 'सभा' को पचीस हजार रुपयेका दान दिया।

हिंदीकी जानकारी बढानेवाले और ज्ञान-वर्द्धनके उपयोगी ग्रंथोका प्रकाशन इस बिडला पुस्तकमालाके अंतर्गत करानेकी योजना बनायी गयी है। उसी प्रकार 'राजकीय शब्द-कोश' तथा हिंदी साहित्यके बृहत इतिहासके प्रकाशनका कार्य भी सभाने हाथमे लिया है। राजकीय कोशका कार्य अर्थाभावके कारण अधूरा पडा हुआ है और 'बृहत-हिंदी साहित्य इतिहास' के सोलह खण्डोमे से दो खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं और शेष खण्ड प्रकाशनकी तैयारीमे हैं।

काव्य, कहानी, नाटक, उपन्यास, जीवन-चरित्र, निबंध, इतिहास, राजनीति अर्थशास्त्र, दर्शन, तर्कशास्त्र, विज्ञान, कला आदि विविध-विषयोंकी ५००से अधिक पुस्तकोंका, इन पुस्तक मालाओंके अंतर्गत प्रकाशन करके, 'सभा' ने अनेक उपयोगी तथा महत्वपूर्ण ग्रंथोंको प्रकाशमे लाकर, हिंदी-साहित्यकी श्रीवृद्धि की है।

## प्रसाद साहित्य गोष्ठी तथा सुबोध व्याख्यान-माला

हिंदीके सुविख्यात साहित्यिक कवि स्व. श्री. जयशकर प्रसाद-द्वारा दी गयी निधि से, सन्- १९३० से इस विभागका सचालन होता है। इसके अंतर्गत सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवियोंकी जयतियाँ, पुण्यतिथियाँ मनायी जाती हैं और विद्वानोंके स्वागत-समारोह तथा विभिन्न विषयोंपर अधिकारी व्यक्तियोंके व्याख्यान आदिका आयोजन होता रहता है।

## सत्यज्ञान-निकेतन, ज्वालापुर

स्वामी सत्यदेवजी द्वारा हरिद्वारमे स्थापित इस सस्थाका कार्य भी 'सभा'के अंतर्गत चलता है। इसके द्वारा पश्चिम-भारतमे हिंदी प्रचार कार्य, हिंदी विद्यामदिर और सत्यज्ञान पुस्तकालयकी प्रवृत्तियाँ चलायी जा रही हैं। यहांके पुस्तकालयमे लगभग दो हजार से ऊपर पुस्तके संग्रहीत हैं। स्वामी सत्यदेव परिव्राजकके मार्ग दर्शनमे इस सस्थाका सुंदर विकास हुआ है।

## संकेत लिपि विद्यालय

हिंदी सकेत-लिपि (शॉर्ट हैंड) तथा हिंदी, टंकन (टाइपिंग राइटिंग)की शिक्षा सन् १९५१ से इस विद्यालयके द्वारा दी जाती है जिसका प्रतिवर्ष अनेक लोग लाभ उठा रहे हैं।

## नागरी-मुद्रण

"सभा" का अपना एक सुव्यवस्थित 'नागरी-मुद्रण' नामक मुद्रणालय भी है। 'सभा' के प्रकाशनोंके अतिरिक्त वाहरी मुद्रण-कार्य भी यहाँ होता है मुद्रणालयकी सुविधासे 'सभा' की एक कमी दूर हो गयी है।

## भारत-कला-भवन

'सभा'के सहयोग एव मुख्यतः श्री. रायकृष्णदासजीके उद्योगसे 'सभा'ने भारतीय संस्कृति और कलाकी विपुल प्राचीन सामग्रीका संग्रह 'भारत-कला-भवन मे करवाया। सग्रह बहुत अधिक बढ जानेके कारण, 'कला-भवन'का प्रबंध काशी विश्वविद्यालयको सौंपा गया, जिसके द्वारा उसका सुचारु रूपसे संचालन और विकास हो रहा है।

## पुरस्कार और पदक

हिंदी-साहित्यकी उत्तमोत्तम एवं मौलिक रचनाओंको 'सभा' की ओरसे, प्रतिवर्ष पुरस्कृत किया जाता है। हिंदी-संसारमें 'सभा' के पुरस्कारोंका बड़ा आदर है। 'सभा' के पुरस्कार और पदकोंका विवरण निम्नानुसार है :—

**(१) बलदेवदास बिड़ला पुरस्कार** :—२०० रु. का यह पुरस्कार राजा बलदेवदास बिड़लाकी दी हुई निधिसे, सम्वत् १९९७ से अध्यात्मयोग, सदाचार मनोविज्ञान और दर्शनके सर्वोत्कृष्ट ग्रंथोंपर, प्रति चौथे वर्ष दिया जाता है। 1941

**(२) बटुक-प्रसाद-पुरस्कार** :—२०० रु. का यह पुरस्कार रायबहादुर श्री. बटुक-प्रसाद खत्रीकी दी हुई निधिसे, सम्वत् १९९८से सर्वश्रेष्ठ मौलिक उपन्यास या नाटकपर, प्रति चौथे वर्ष दिया जाता है। 1942

**(३) रत्नाकर-पुरस्कार (अ)** :—२०० रु. का यह पुरस्कार श्री. जगन्नाथदास रत्नाकरकी दी हुई निधिसे सम्वत् १९९८ से ब्रजभाषाके सर्वश्रेष्ठ ग्रंथपर प्रति चौथे वर्ष दिया जाता है। 1942

**रत्नाकर-पुरस्कार (ब)** :—२०० रु. का यह पुरस्कार भी श्री. जगन्नाथदास रत्नाकरकी दी हुई निधिसे हिंदीकी अन्य बोलियाँ—डिंगल, राजस्थानी, अवधी, बुंदेलखंडी, भोजपुरी, छत्तीसगढ़ी आदिकी सर्वोत्तम रचना या सुसंपादित ग्रंथपर प्रति चौथे वर्ष दिया जाता है।

**डॉ. छन्नूलाल-पुरस्कार** :—२०० रु. का यह पुरस्कार श्री. रामनारायण मिश्रकी दी हुई निधिसे विज्ञानविषयक उत्तम रचनापर प्रति चौथे वर्ष दिया जाता है।

**जोधसिंह-पुरस्कार** :—२०० रु. का यह पुरस्कार श्री. जोधसिंह मेहताकी दी हुई निधिसे सर्वोत्तम ऐतिहासिक ग्रंथपर प्रति चौथे वर्ष दिया जाता है।

**डॉ. श्यामसुन्दर-पुरस्कार** :—२००० रु. और १००० रु. के ये दो पुरस्कार रायबहादुर डॉ. श्यामसुन्दरजीकी स्मृतिमें हिंदीकी सर्वोत्तम रचनाओंपर सम्वत् २००३ और सम्वत् २००५ से प्रति चौथे वर्ष दिये जाते हैं।

**माधवी-देवी महिला-पुरस्कार** :—१०० रु. का यह पुरस्कार गृह-शास्त्र-सम्बंधी उत्कृष्ट पुस्तकपर, महिला लेखिकाको प्रति चौथे वर्ष दिया जाता है।

**वसुमति पुरस्कार** :—३०० रु. का यह पुरस्कार बाल-साहित्यकी सर्वोत्तम कृतिपर प्रति वर्ष दिया जाता है।

**डॉ. हीरालाल स्वर्ण-पदक** :—यह स्वर्णपदक रायबहादुर डॉ. हीरालालजीकी दी हुई निधिसे पुरातत्त्व, मुद्राशास्त्र, हिंदी-विज्ञान (इण्डोलॉजी), भाषा-विज्ञान तथा ऍपीग्राफी संबंधी हिंदीमें लिखित सर्वश्रेष्ठ मौलिक पुस्तक या गवेषणापूर्ण निबंधपर प्रति दूसरे वर्ष दिया जाता है।

**द्विवेदी स्वर्ण-पदक** :— आचार्य महावीर-प्रसाद द्विवेदीजीकी दी हुई निधिसे हिंदीकी सर्वोत्कृष्ट रचनापर यह स्वर्ण-पदक प्रतिवर्ष दिया जाता है।

**सुधाकर-रजत-पदक** :—श्री. गौरीप्रसाद ॲडवोकेटकी दी हुई निधिसे मौलिक उपन्यास या नाटकपर 'बटुक-प्रसाद-पुरस्कार' पानेवालेको यह रजत-पदक प्रति चौथे वर्ष दिया जाता है।

**ग्रीव्ज-रजत-पदक** :—श्री. रामनारायण मिश्रकी दी हुई निधिसे विज्ञान-विषयक उत्तम रचनापर डॉ छन्नूलाल-पुरस्कार पानेवालेको यह रजत पदक प्रति चौथे वर्ष दिया जाता है।

**राधाकृष्णदास-रजत-पदक** :—श्री शिवप्रसाद गुप्तकी दी हुई निधिसे ब्रजभाषाके सर्वोत्तम-ग्रंथपर रत्नाकर-पुरस्कार पानेवालेको यह रजत-पदक प्रति चौथे वर्ष दिया जाता है।

**बलदेवदास-रजत-पदक** :—श्री. ब्रजरत्नदास वकीलकी दी हुई निधिसे हिंदीकी अन्य बोलियोंकी सर्वोत्तम रचना या सुसंपादित ग्रंथपर रत्नाकर-पुरस्कार (ब) पानेवालेको यह रजत-पदक प्रति चौथे वर्ष दिया जाता है।

**गुलेरी-रजत-पदक** :—श्री. जगद्धर शर्मा गुलेरीजीकी दी हुई निधिसे स्व श्री. चन्द्रधर शर्मा गुलेरीजीकी स्मृतिमे सर्वोत्तम ऐतिहासिक रचनापर जोधसिंह पुरस्कार पानेवालेको यह रजत-पदक प्रति चौथे वर्ष दिया जाता है।

**रेडिचे-रजत-पदक** :—बनारसके कलेक्टर स्व. रेडिचे साहबने 'सभा' के भवनके लिये भूमि प्रदान कर 'सभा' के प्रत्येक कार्यमें सहयोग दिया था। उनकी स्मृतिमे, अध्यात्म, योग, सदाचार तथा दर्शनके सर्वोत्कृष्ट ग्रंथपर 'बलदेवदास बिडला पुरस्कार पानेवालेको यह रजत-पदक प्रति चौथे वर्ष दिया जाता है।

**हीरक-जयन्ती-समारोह** :—'सभा' ने अपना हीरक जयन्ती-समारोह ता. ६ मार्च १९५४ को अर्थात् सम्वत् २०१० मे गणराज्यके प्रथम राष्ट्रपति देशरत्न डॉ. राजेन्द्रप्रसादजीकी उपस्थिति एवं डॉ. अमरनाथ झाकी अध्यक्षतामें बड़े ही सुन्दर ढंगसे मनाया।

'हीरक-जयन्ती-समारोहका उद्घाटन कर, राष्ट्रपति डॉ राजेन्द्रप्रसादजीने 'सभा'को अपने आशीर्वाद प्रदान किये। राष्ट्रपतिजीके शुभ हाथों साहित्यिकोंका सम्मान किया गया, पुरस्कार वितरित किये गये। राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदास टंडनजीने साहित्य-कला प्रदर्शनीका उदघाटन किया एवं श्री रंगनाथ दिवाकरजीकी अध्यक्षतामें राष्ट्रभाषा सम्मेलन मनाया गया। विचार गोष्ठी, कवि गोष्ठी, साहित्य गोष्ठी, साहित्य विमर्श, पत्रकार सम्मेलन एवं डॉ सुनीतिकुमार चाटुर्ज्याकी अध्यक्षतामें एशियाई राष्ट्रभाषा सम्मेलन तथा डॉक्टर भगवानदासजीके सभापतित्वमें सांस्कृतिक सम्मेलन आदि विविध कार्यक्रमोंके द्वारा 'सभा'की हीरक जयंती अत्यंत सफलतापूर्वक सम्पन्न हुई। नागरी नाटक मंडलीकी ओरसे हिंदी नाटक भी खेले गये। हीरक-जयंती-समारोहके स्वागताध्यक्ष डॉ सम्पूर्णानंद, कार्याध्यक्ष डॉ हजारी-प्रसाद द्विवेदी तथा प्रधान-मंत्री डॉ राजबली पाण्डेय थे। 'सभा'ने इस अवसरपर भविष्यकी अपनी निम्नानुसार योजनाएँ घोषित करके उन्हें कार्यान्वित करने के लिये ठोस योजनाएँ बनायीं --

१ हिंदी शब्दसागरका संशोधन।
२ आकर ग्रंथोंका प्रकाशन।
३ हिंदी साहित्यके बृहत इतिहासका १७ भागोंमें प्रकाशन।
४ हिंदी विश्वकोषका प्रणयन और प्रकाशन।

'हिंदी विश्वकोष' का कार्य केन्द्रीय सरकारकी आर्थिक सहायतासे सम्पन्न हो रहा है, जिसपर लगभग सात लाख रुपयोंका व्यय होगा।

"नागरी प्रचारिणी सभा" हिंदी प्रचारकी अपने ढंगकी भारतकी सर्वप्रथम संस्था है, जिसने राष्ट्रीय जागरणमें अपने रचनात्मक विधायक कार्योंद्वारा गौरवपूर्ण योगदान दिया है। आज हिंदी और नागरीको जो महत्त्व प्राप्त है, उसका बहुत कुछ श्रेय 'सभा'को भी है। हिंदी साहित्य और राष्ट्रीय संस्कृतिके प्रचार एवं उन्नयनके कार्यमें 'सभा' अपना एक विशेष स्थान रखती है। अस्तु, हिंदी-नागरी प्रचारकी इस आद्य संस्थाका निरंतर-अविरल गतिसे विकास हो रहा है।

## हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

ता १ जून १९१० (सम्वत् १९६७) को नागरी प्रचारिणी सभाकी प्रबंध-समितिकी बैठकमें डॉ श्यामसुन्दरदासजीने इस आशयका एक प्रस्ताव रखा कि देशभरके हिंदी साहित्यिकोंका एक सम्मेलन आयोजित किया जाय और उसमें हिंदी तथा नागरी लिपिके व्यापक प्रचार, प्रसार तथा व्यवहारके लिये उपयुक्त साधनों और प्रयत्नोंके संबंधमें विचार किया जाय, एवं समस्याओंके समाधानके उपाय सोचे जायें।

उक्त प्रस्तावके अनुसार महामना पं. मदनमोहन मालवीयजीकी अध्यक्षतामें काशीमें, उसी वर्ष सम्वत् १९६७ सन् १९१० में हिंदी-साहित्य-सम्मेलनका प्रथम अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशनमें बाबू पुरुषोत्तमदासजी टंडनने एक प्रस्ताव रखा, जिसके द्वारा सरकारी कचहरियोंमें नागरी लिपिके प्रचार तथा हिंदी साहित्यकी व्यापक उन्नतिके लिये एक कोशसंग्रहकी अपील की गयी। उसके अनुसार 'हिंदी-पैसा-फंड' समिति स्थापित हुई और तत्काल उसमें २, २५, ५४६ पैसे जमा हो गये। इसी 'पैसा-फंड'के आधारपर मानो 'हिंदी-साहित्य-सम्मेलन'की नींव पड़ी।

## 'सम्मेलन'के उद्देश्य

(१) हिन्दी साहित्यके सब अंगोंकी पुष्टि और उन्नतिका प्रयत्न करना।

(२) देशव्यापी व्यवहारों और कार्योंको सुलभ करनेके लिये राष्ट्रलिपि देवनागरी और राष्ट्रभाषा हिन्दीका प्रचार बढ़ानेका प्रयास करना।

(३) नागरी लिपिको मुद्रण-सुलभ और लेखन-सुलभ बनानेकी दृष्टिसे अधिक विकसित करनेका प्रयत्न करना।

(४) हिन्दी भाषाको अधिक सुगम, मनोरम, व्यापक और समृद्ध बनानेके लिये समय-समयपर उसके अभावोंकी पूरा करना और उसकी शैली और त्रुटियोंके संशोधनका प्रयत्न करना।

(५) हिन्दी-भाषी राज्योंमें सरकारी विभागों, पाठशालाओं, कॉलेजों, विश्वविद्यालयों, म्युनिसिपालिटियों और अन्य संस्थाओं, समाजों, जन-समूहों तथा व्यापार और अदालतके कार्योंमें देवनागरी लिपि और हिन्दी भाषाके प्रचारका उद्योग करते रहना।

(६) हिन्दीके ग्रंथकारों, लेखकों, कवियों, पत्र-सम्पादकों, प्रचारकोंको समय-समयपर उत्साहित करनेके लिये पारितोषिक, प्रशंसा-पत्र, पदक, उपाधि आदिसे सम्मानित करना।

(७) सारे देशके युवकोंमें हिन्दीके प्रति अनुराग उत्पन्न करने और बढ़ानेके लिये प्रयत्न करना।

(८) हिन्दी भाषा-द्वारा परमोच्च शिक्षा देनेके लिये विद्यापीठ स्थापित करना।

(९) हिन्दी भाषा-द्वारा उच्च परीक्षाएँ लेनेका प्रबंध करनेके लिये एक हिन्दी विश्वविद्यालय स्थापित करना।

(१०) जहाँ आवश्यक समझा जाय, वहाँ पाठशाला, समिति तथा पुस्तकालय स्थापित करने और करानेका उद्योग करना तथा इस प्रकारकी वर्तमान संस्थाओंकी सहायता करना।

(११) हिन्दी साहित्यकी वृद्धिके लिये उपयोगी पुस्तकें लिखवाना और प्रकाशित करना।

(१२) हिन्दीकी हस्तलिखित और प्राचीन सामग्री तथा हिन्दी भाषा और साहित्यके निर्माताओंके स्मृति-चिह्नोंकी खोज करना और इनके तथा सभी प्रकाशित पुस्तकोंके संग्रह और रक्षाके निमित्त सम्मेलनकी ओरसे एक बृहत् संग्रहालयकी व्यवस्था करना।

(१३) हिन्दी भाषा और साहित्य सम्बन्धी अनुसंधानका प्रबन्ध करना।

(१४) उपर्युक्त उद्देश्योंकी सिद्धि और सफलताके लिये जो अन्य उपाय आवश्यक और उपयुक्त समझे जायँ, उन्हें काममें लाना।

## "सम्मेलन"के द्वारा स्थापित संस्थाएँ

(१) दक्षिण-भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास —सम्वत् १९७४ अर्थात् सन १९१८ में सम्मेलनका ८ वाँ अधिवेशन महात्मा गांधीजीकी अध्यक्षतामें इन्दौरमें सम्पन्न हुआ। 'सम्मेलन'की स्थापनाके ८ वर्ष बादही महात्मा गांधीजीके नेतृत्वका लाभ 'सम्मेलन'को प्राप्त हुआ। महात्मा गांधीजीके प्रभावशाली व्यक्तित्व एवं व्यापक दृष्टिकोणके कारण 'सम्मेलन'को अखिल भारतीय महत्त्व प्राप्त हुआ और अ ना कांग्रेसका तथा देशके गणमान्य नेताओं तथा साहित्यकारोंका सहयोग प्राप्त होने लगा। इन्दौर-अधिवेशनमें हिन्दीको 'राष्ट्रभाषा' और नागरीको राष्ट्रलिपि'के रूपमें स्वीकार किया गया। अहिन्दी-भाषी प्रांतोंमें हिन्दी और नागरीका प्रचार करनेके हेतुसे 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा'की स्थापना की गयी।

(२) राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा —सम्वत १९९३ अर्थात् सन १९३६ में देशरत्न डॉ राजेन्द्रप्रसादजीकी अध्यक्षतामें, सम्मेलनका २५ वाँ अधिवेशन नागपुरमें सम्पन्न हुआ। इसी अधिवेशनमें दक्षिणके अतिरिक्त, अन्य हिन्दीतर प्रांतोंमें राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा राष्ट्रलिपि-देवनागरीका प्रचार प्रसार करनेके उद्देश्यसे 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा'की स्थापना की गयी। महात्मा गांधीजीकी प्रेरणासे इस संस्थाकी संस्थापनाके सम्बन्धका प्रस्ताव बाबू पुरुषोत्तम दासजी टंडनने रखा और श्री जमनालालजी बजाजने इसका समर्थन किया। बाबू राजेन्द्रप्रसादजी इसके पदेन अध्यक्ष रहे तथा महात्मा गांधीजीसहित अन्य चौदह सदस्य 'समिति'के रूपमें सम्मिलित किये गये।

सम्मेलनका दूसरा अधिवेशन सम्वत् १९६८ में प. गोविंद नारायण मिश्रजीकी अध्यक्षतामें, प्रयागमें हुआ जिसमें प्रधानमंत्री, बाबू पुरुषोत्तमदासजी टंडन चुने गये। श्री टंडनजीने इस अधिवेशनमें 'सम्मेलन' की एक छोटी-सी नियमावली प्रस्तुत की, जो सर्व सम्मत हुई और प्रयागमेंही उसका कार्यालय स्थिर किया गया। तथा

श्रद्धेय बाबू पुरुषोत्तमदासजी टडनके मार्ग दर्शनमे 'सम्मेलन'का कार्य आगे बढ़ने लगा।

सम्मेलनका तीसरा अधिवेशन सम्वत् १९६९मे कलकत्तामे प बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन'की अध्यक्षतामे और चौथा अधिवेशन सम्वत् १९७० मे भागलपुरमें आर्यसमाजके स्वनामधन्य नेता महात्मा मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानद) जीकी अध्यक्षतामे सम्पन्न हुआ।

राष्ट्रभाषा हिंदी तथा राष्ट्रलिपि देवनागरीका व्यापक प्रचार-प्रसार करनेके उद्देश्यसे, सम्मेलनने हिंदीकी परीक्षाओके माध्यमको इसी अधिवेशनमे अपनाया। परीक्षाओकी नियमावली बनानेके लिये एक उप समिति बनायी गयी तथा परीक्षाओके प्रबध आदिके लिये स्वतत्र 'परीक्षा समिति' निर्मित हुई।

## "सम्मेलन"की प्रवृत्तियाँ

### परीक्षा-सचालन

भागलपुर अधिवेशनके निर्णयानुसार सम्वत् १९७१ से सम्मेलनकी ओरसे विभिन्न परीक्षाओका सचालन आरभ कर दिया गया। इन परीक्षाओके कारण सामान्य जनतामें हिन्दी सीखनेकी उत्सुकता बढी और क्रम बद्ध हिन्दी-अध्ययनकी ओर जनताको आकृष्ट किया गया। भारत भरमें सम्मेलनकी परीक्षाओंके केन्द्र फैले हुए हैं और सामान्य व्यक्तिसे लेकर विश्वविद्यालयोके स्नातकतक बड़े आदर भावसे इन परीक्षाओमें प्रतिवर्ष हजारोकी सख्यामें सम्मिलित होते है। 'सम्मेलन'की परीक्षाओकी लोकप्रियता दिनोदिन बढती जा रही है और देशके कई विश्वविद्यालयोने तथा केद्रीय एव राज्य-सरकाराने 'सम्मेलन'की परीक्षाओको मान्यता दी है।

सन १९६० में भारत-सरकारके शिक्षा मत्रालय द्वारा विभिन्न हिन्दी-परीक्षाओका स्तर निश्चित किया गया। उसके अनुसार सम्मेलनकी 'मध्यमा' (साहित्य-विशारद) परीक्षाको हिन्दीज्ञानके स्तरमें बी ए के समकक्ष और उत्तमा (साहित्य रत्न) परीक्षा बी ए से ऊँची किन्तु एम ए से कम स्तरकी मानी गयी है। केन्द्रीय शिक्षा-मत्रालयने इस प्रकार मान्यता देकर 'सम्मेलन'की परीक्षाओके मानदण्डको स्वीकार किया है। 'सम्मेलन'की परीक्षाओके द्वारा हिन्दी प्रचारके कार्यमें बहुत बडी सहायता पहुँच रही है।

### "सम्मेलन"की परीक्षाएँ

'सम्मेलन'के हिन्दी विश्वविद्यालयकी ओरसे निम्नलिखित परीक्षाओका प्रबध किया जाता है —

प्रथमा, मध्यमा (विशारद), आयुर्वेद विशारद, आयुर्वेद-रत्न, कृषि विशारद, व्यापार विशारद, शिक्षा विशारद, सम्पादन कलाविशारद, शीघ्र लिपि विशारद, मुनीमी, अर्जीनवीसी, उपवैद्य, वैद्य विशारद, उत्तमा (साहित्य रत्न), हिन्दी-परिचय, हिन्दी-कोविद साहित्यमहोपाध्याय, इत्यादि।

## सन् १९५७ से १९६१ तक की परीक्षार्थी सख्या

| सन | प्रथमा परीक्षा | मध्यमा | उत्तमा प्र. खण्ड. | द्वि. खण्ड | अन्य विशारद | कुल परीक्षार्थियोंकी संख्या |
|---|---|---|---|---|---|---|
| १९५७. | ७,५००. | ११,३४०. | ४,६७५. | २४००. | १,४३१. | २७,३४६ |
| १९५८. | ७,५५०. | १०,७७१. | ४,६७०. | २,३०२. | १,८७८. | २७,१७१ |
| १९५९. | ७,६७६. | ११,८४०. | ४,८६०. | २,४७०. | २,२७०. | २९,११६ |
| १९६०. | ७,५०७. | १३,६४२. | ५,२६५. | २,७१५. | २,९२६. | ३२,०५५ |
| १९६१. | ७,९२७. | १४,६८६. | ५,३३१. | २,९०३. | ३,३१९. | ३४,१६६ |

### पदवीदान समारोह :

गत कुछ वर्षोंसे सम्मेलनकी ओरसे पदवीदान समारोह मनाये जा रहे हैं। इन समारोहोंमे देशके गण्यमान्य विद्वानो एव साहित्यिकोको आमंत्रित करके उनके दीक्षान्त भाषणोंका आयोजन किया जाता है। अबतक डॉ. राजेंद्रप्रसाद, पं. जवाहरलाल नेहरू, सेठ गोविंददास, श्री. न. वि. गाडगीळ, आदि महानुभावोंने समारोहमे उपस्थित रहकर, उपाधिधारियोंके समक्ष अपने दीक्षान्त भाषण देकर, सम्मेलनकी परीक्षाओंका सम्मान बढ़ाया है ।

### साहित्यिक सम्मान :

'सम्मेलन' के द्वारा मूर्द्धन्य साहित्यकारोंको 'साहित्य-वाचस्पतिकी सर्वश्रेष्ठ उपाधिसे सम्मानित किया जाता है ।

डॉ. अमरनाथ झा, श्री. कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी, श्री. वियोगी हरि, डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, प. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, श्री. लोचनप्रसाद पाण्डेय, श्री. रामनारायण मिश्र, श्री. शिवकुमार सिंह, महापण्डित राहुल साङ्कृत्यायन, श्री. माखनलाल चतुर्वेदी तथा पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी आदि इस उपाधिसे विभूषित हुए हैं ।

### वार्षिक अधिवेशन :

'सम्मेलन' की ओरसे देशके विभिन्न प्रदेशोंमे वार्षिक अधिवेशन मनाये जाते हैं। इन अधिवेशनोंमें देशभरके हिंदी प्रेमी एव साहित्यकार एकत्रित होकर, आपसमे विचार-विनिमय करते हैं। केवल हिंदीके हो नहीं अपितु अन्य प्रादेशिक भाषाओंके

विद्वान् भी अधिवेशनके सभापति चुने जाते हैं। अधिवेशनके साथ-साथ कुछ परिषदें भी होती रहती हैं, जिनमें साहित्य-परिषद, राष्ट्रभाषा परिषद, दर्शन-परिषद, समाज-शास्त्र-परिषद (इतिहास, राजनीति शास्त्र, अर्थशास्त्र), विज्ञान-परिषद आदि मुख्य हैं। ये परिषदें सुविख्यात अधिकारी व्यक्तियोंकी अध्यक्षतामें होती हैं। इनमें विद्वानोंके निबंध पढ़े जाते हैं और उनपर चर्चाएँ होती हैं।

सम्मेलनके अधिवेशनोंमें हिंदीकी समस्याओंपर चिन्तन किया जाता है, समयोचित-आवश्यक प्रस्ताव पारित होते हैं तथा कई महत्त्वपूर्ण निर्णय लिये जाते हैं।

## 'सम्मेलन'के अधिवेशन तथा उसके सभापति :

| अ. क्र | स्थान | सभापति | |
|---|---|---|---|
| १. | काशी ... | पं. मदनमोहन मालवीय ... | १९६७ |
| २. | प्रयाग ... | पं. गोविन्द नारायण मिश्र. ... | १९६८ |
| ३. | कलकत्ता ... | पं. बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ... | १९६९ |
| ४. | भागलपुर ... | महात्मा मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानंद) ... | १९७० |
| ५. | लखनऊ ... | प. श्रीधर पाठक ... | १९७१ |
| ६. | प्रयाग ... | डॉ. श्यामसुन्दरदास ... | १९७२ |
| ७. | जबलपुर ... | महामहोपाध्याय पं. रामावतार शर्मा, साहित्याचार्य | १९७३ |
| ८. | इन्दौर ... | महात्मा मोहनदास करमचंद गांधी ... | १९७४ |
| ९. | बम्बई ... | पं. मदनमोहन मालवीय ... | १९७५ |
| १०. | पटना ... | रायबहादुर पं. विष्णुदत्त शुक्ल ... | १९७६ |
| ११. | कलकत्ता ... | डॉ. भगवानदास ... | १९७७ |
| १२. | लाहौर ... | पं. जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी ... | १९७८ |
| १३. | कानपुर ... | बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन ... | १९७९ |
| १४. | दिल्ली ... | पं. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ... | १९८० |
| १५. | देहरादून ... | पं. माधवराव सप्रे ... | १९८१ |
| १६. | वृन्दावन ... | ... पं. अमृतलाल चक्रवर्ती | १९८२ |
| १७. | भरतपुर ... | महामहोपाध्याय रायबहादुर गौरीशंकर हीराचंद ओझा | १९८३ |
| १८. | मुजफ्फरपुर ... | प. पद्मसिंह शर्मा ... | १९८५ |
| १९. | गोरखपुर ... | श्री. गणेश शंकर विद्यार्थी ... | १९८६ |
| २०. | कलकत्ता ... | बाबू जगन्नाथदास 'रत्नाकर' ... | १९८७ |
| २१. | झांसी ... | श्री. किशोरीलाल गोस्वामी ... | १९८८ |
| २२. | ग्वालियर ... | रावराजा प. श्यामबिहारी मिश्र ... | १९८९ |
| २३. | दिल्ली ... | महाराजा सर सयाजीराव गायकवाड़ ... | १९९० |

| अ.क्र. | स्थान | | सभापति | | |
|---|---|---|---|---|---|
| २४. | इन्दौर | ... | महात्मा मोहनदास करमचंद गांधी | ... | १९९१ |
| २५. | नागपुर | ... | देशरत्न डॉ. राजेन्द्रप्रसाद | ... | १९९३ |
| २६. | मद्रास | .. | सेठ जमनालाल बजाज | ... | १९९४ |
| २७. | शिमला | .. | प. बाबुराव विष्णु पराडकर | ... | १९९५ |
| २८. | काशी | ... | प. अम्बिका प्रसाद बाजपेयी | ... | १९९६ |
| २९. | पूना | ... | डॉ. सम्पूर्णानन्द | ... | १९९७ |
| ३०. | अबोहर | ... | डॉ. अमरनाथ झा | ... | १९९८ |
| ३१. | हरिद्वार | .. | प. माखनलाल चतुर्वेदी | ... | २००० |
| ३२. | जयपुर | ... | गोस्वामी गणेशदत्त | ... | २००१ |
| ३३. | उदयपुर | ... | श्री. कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी | ... | २००२ |
| ३४. | कराची | ... | श्री. वियोगी हरि | ... | २००३ |
| ३५. | बम्बई | ... | महापण्डित राहुल सांकृत्यायन | ... | २००४ |
| ३६. | मेरठ | ... | सेठ गोविन्ददास | ... | २००५ |
| ३७. | हैदराबाद | ... | पं. चन्द्रबलि पाण्डेय | ... | २००६ |
| ३८. | कोटा | ... | प. जयचन्द्र विद्यालंकार | ... | २००७ |

कोटा अधिवेशनके बाद 'सम्मेलन'मे कुछ वैधानिक-गत्यावरोध उत्पन्न हो जानेके कारण उसके वार्षिक-अधिवेशन स्थगित हो गये हैं ।

## हिन्दी-संग्रहालय

सम्वत् १९७९ मे बाबू पुरुषोत्तमदास टंडनजीकी अध्यक्षतामे हुए सम्मेलनके कानपुर-अधिवेशनके निर्णयानुसार स्थापित इस संग्रहालयमे लगभग ४० हजार पुस्तके एव हिंदी पत्र पत्रिकाएँ संग्रहीत हैं। इतिहास-प्रसिद्ध भारतीय विद्वान मेजर वामनदास बसुके निजी पुस्तक संग्रहको सम्मेलनने खरीदकर, इस संग्रहालयमे रखा है, जिसमे महत्त्वपूर्ण एव अप्राप्य लगभग ५ हजार पुस्तकोंका संग्रह है। संग्रहालयमे एक 'राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन-कक्ष' भी है । राजर्षि टंडनजी को प्राप्त विभिन्न भेंटोंको, उन्होंने सम्मेलनको समर्पित कर दिया है, जो यहाँ सुरक्षित रखी गयी है। संग्रहालय एक विशाल निजी भवनमे स्थित है। देशके अनेक उच्च कोटिके अनुसंधान प्रिय सज्जन इस संग्रहालयका लाभ उठाते हैं। सम्मेलनका यह 'हिंदी संग्रहालय' अपने ढगकी एक अनमोल चीज है ।

## हिन्दी विद्यापीठ, प्रयाग :

हिंदीकी उच्च परीक्षाओंके अध्ययन का नि शुल्क सुप्रबंध करनेके हेतु राजर्षि टंडनजीके प्रयत्नोंसे 'हिंदी-विद्यापीठ' की स्थापना हुई। देशके विभिन्न प्रदेशोंसे

अनेक छात्र यहाँ आकर हिंदीकी उच्च परीक्षाओंका अध्ययन करते हैं और हिंदीतर प्रदेशोंमें जाकर राष्ट्रभाषा हिंदीके प्रचार-प्रसारमें हाथ बँटाते हैं। विद्यापीठमें छात्रावासकी सुविधाभी है। यमुना नदीके किनारे, कई एकड़ भूमिमें 'विद्यापीठ' बसा हुआ है।

## साहित्य-विभाग :

इसके द्वारा नवीन पुस्तकोंका निर्माण तथा प्रकाशनकार्य होता है। 'सम्मेलन' के द्वारा अनेक ग्रंथ-मालाओंके प्रकाशनका आयोजन भी हुआ है। जिसके अंतर्गत विभिन्न विषयोंकी लगभग २०० पुस्तकें अबतक प्रकाशित हो चुकी हैं। भारतीय भाषाके गौरव-ग्रंथोंका हिंदीमें अनुवाद करानेकी योजनाभी सम्मेलनकी ओरसे बनायी गयी है।

कोष-विभागके अंतर्गत अधिकारी एवं सुयोग्य विद्वानोंके सहयोगसे 'शासन-शब्द-कोश', प्रत्यक्ष शरीर-कोश', 'जीव-रसायन कोश', 'भूतत्त्व विज्ञान-कोश' 'चिकित्सा कोश' आदि प्रकाशित हो चुके हैं तथा उद्योग, रसायन आदि विषयोंपर कुछ छोटे कोश तैयार किये जा रहे हैं। 'अंग्रेजी-हिंदी-शब्दकोश' का मुद्रण कार्यभी चल रहा है।

'सम्मेलन'के प्रकाशनोंसे हिंदी-साहित्यकी समृद्धि हुई है और अनेक साहित्यकारोंको प्रोत्साहन मिला है।

## सम्मेलन-पत्रिका :

सम्मेलनकी इस त्रैमासिक-पत्रिकामें भारतीय साहित्य तथा संस्कृतिसे संबंधित खोजपूर्ण रचनाएँ प्रकाशित होती रहती हैं। इस के द्वारा हिंदी साहित्यकी गति-विधियोंका ब्यौरा भी उपलब्ध होता है। हिंदीकी उच्चकोटिकी पत्रिकाओंमें 'सम्मेलन-पत्रिका' महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।

'सम्मेलन'का अपना एक विशाल एवं सुसज्जित मुद्रणालय है, जिसके द्वारा सम्मेलनके प्रकाशनोंके अतिरिक्त उत्तर-प्रदेश तथा बिहारकी सरकारोंका एवं अन्य बाहरी प्रकाशनोंका कार्य भी होता है।

## संकेत-लिपि और टंकण-विद्यालय :

सम्मेलनकी ओरसे एक संकेत-लिपि (शॉर्टहॅन्ड) तथा टंकण (टाईप रायटिंग) विद्यालयभी चलाया जाता है, जिससे अनेक छात्र लाभ उठाते हैं।

**'सम्मेलन'के पुरस्कार :**

'सम्मेलन'की ओरसे हिंदीकी मौलिक एवं उच्च कोटिकी पुस्तकोंपर निम्नानुसार विविध पुरस्कार दिये जाते हैं। इन पुरस्कारोंमें विविध विषयोंपर दिया जानेवाला 'मंगला प्रसाद-पुरस्कार' हिंदी-जगत्मे अपना एक विशेष स्थान रखता है। सम्मेलनके पुरस्कारसे सम्मानित रचनाओंका हिंदी-साहित्यमें विशेष महत्त्व आँका जाता है।

पुरस्कार :—

(१) **मंगला-प्रसाद-पुरस्कार :** १२०० रु. का यह पुरस्कार विविध विषयोंके मौलिक ग्रंथोंपर दिया जाता है।

(२) **सेक्सरिया-महिला-पुरस्कार :** ५००, रु. का यह पुरस्कार महिलाओंकी किसी मौलिक रचनापर दिया जाता है।

(३) **'मुरारका-पुरस्कार' :** ५०० रु. का यह पुरस्कार बंगला, उड़िया तथा असामिया भाषा-भाषी सज्जनकी किसी रचनापर दिया जाता है।

(४) **नेमिचन्द पण्ड्या-पुरस्कार :** रु. ५०० का यह पुरस्कार वीर-रस-पूर्ण किसी बाल-साहित्यकी पुस्तकपर दिया जाता है।

(५) **रत्नकुमारी-पुरस्कार :** २५० रु. का यह पुरस्कार हिंदीके किसी मौलिक नाटकपर दिया जाता है।

(६) **नारंग-पुरस्कार :** रु. १०० का यह पुरस्कार भारतीय संस्कृति-विषयक कवितापर, केवल पंजाब-निवासीको दिया जाता है।

(७) **गोविंदराम सेक्सरिया-पुरस्कार :** १५००, रु. का यह पुरस्कार विज्ञानके विविध विषयोंकी पुस्तकोंपर दिया जाता है।

इन पुरस्कारोंके अतिरिक्त 'राधामोहन गोकुळजी पुरस्कार', 'जैन-पुरस्कार' और 'गोपाल-पुरस्कार' नामक अन्य पुरस्कार दिये जाते हैं।

**सम्मेलन : एक राष्ट्रीय महत्त्वकी संस्था :**

भारत सरकारकी ओरसे लोकसभामें सन्-१९६३ में एक विशेष विधेयक स्वीकृत किया गया है, जिसके द्वारा 'हिंदी साहित्य सम्मेलन' को एक राष्ट्रीय महत्त्वकी संस्थाके रूपमे मान्यता दी गयी है।

पिछले १३ वर्षोंसे, सम्मेलनका कार्य सरकार द्वारा नियुक्त आदाता महोदय की देखरेखमे चल रहा है। माननीय श्री. श्रीप्रकाशजीकी अध्यक्षतामें गठित सम्मेलन की शासन-निकाय-समितिने सम्मेलनकी नयी नियमावली हालहीमें स्वीकृत की है

और उक्त नवीन नियमावलीके अनुसार निकट भविष्यमें सम्मेलन का कार्य फिरसे लोकनियुक्त स्थायी-समितिके अंतर्गत पूर्ववत् चालू होगा ।

### 'सम्मेलन'की प्रादेशिक शाखाएँ :

दिल्ली प्रादेशिक हिंदी साहित्य सम्मेलन, विदर्भ हिंदी साहित्य सम्मेलन, पंजाब प्रांतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन, उत्तर प्रदेशीय हिंदी साहित्य सम्मेलन, बिहार प्रादेशिक हिंदी साहित्य सम्मेलन, नागरी प्रचारिणी सभा, आरा (बिहार), तथा नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा-आदि संस्थाएँ सम्मेलनसे सम्बद्ध रहकर, अपने क्षेत्रमें नागरी-हिंदीके प्रचारमे अपना सहयोग दे रही हैं ।

'सम्मेलन' एक राष्ट्रीय महत्त्वकी संस्थाके साथही राष्ट्रीय गौरव एवं राष्ट्र-भाषा हिंदी तथा देवनागरीकी हितकारिणी संस्था है। हिंदी-साहित्यकी वृद्धि तथा हिंदीके प्रचार-प्रसारके कार्यमे 'सम्मेलन'का स्थान अद्वितीय रहा है ।

## दक्षिण-भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

### स्थापना :

सन १९१८ में इन्दौरमें म. गांधीजीकी अध्यक्षतामें सम्पन्न हिंदी साहित्य सम्मेलनके ८ वें अधिवेशनमें दक्षिण भारतमे हिंदी प्रचारका कार्य आरंभ करनेकी एक योजना स्वीकृत की गयी। इस कार्यके लिये म. गांधीजीने आर्थिक सहायताकी अपील की। उसके अनुसार इन्दौरके नगर सेठ श्री. हुकमीचंदजी तथा इन्दौरके तत्कालीन नरेश महाराज श्री. यशवंतराव होल्करने दस-दस हजारकी धनराशि इस कार्यके लिये प्रदान की ।

हिंदी साहित्य सम्मेलन : प्रचार कार्यालय मद्रासके संचालनमें दक्षिण भारतमें हिंदी प्रचारका कार्य चलने लगा। मद्रास, धवलेश्वर, राजमहेन्द्री तथा ईरोडमें हिंदी विद्यालय खोले गये। म. गांधीजीने अपने सुपुत्र स्व. देवदास गांधीको सबसे पहले हिंदी प्रचारके लिये मद्रास भेजा। उस समय उनकी आयु केवल १८ वर्षकी थी।

भारत-सेवा संघ (इन्डियन सर्विस लीग) के अध्यक्ष श्री. सी. पी. रामस्वामी अय्यरकी अध्यक्षतामे श्रीमती एनीबेसंटके शुभ हाथों मद्रासमें प्रथम-हिंदी-वर्गका उद्घाटन हुआ। उक्त वर्गमें मद्रासके कई नामी वकील, डॉक्टर, न्यायाधीश, व्यापारी आदि उच्च श्रेणीके लोग सम्मिलित हुए ।

दक्षिण भारतके कई उत्साही नवयुवक हिंदी सीखनेके लिये प्रयाग गये तथा हिंदी भाषी कुछ नवयुवक दक्षिणकी भाषाओंको सीखने और हिंदीका प्रचार करनेका व्रत लेकर दक्षिण भारतमे गये।

स्वामी सत्यदेव परिव्राजक, पं. हरिहर शर्मा, पं हृषीकेश शर्मा, श्री. क. म. शिवराम शर्मा, श्री. मो. सत्यनारायण, पं. रघुवर दयालु मिश्र, पं. देवदूत विद्यार्थी, पं. अवधनंदन, श्री. प्रतापनारायण वाजपेयी, पं. रामानंद शर्मा, श्री. व्रजनंदन शर्मा, श्री. रामभरोसे श्रीवास्तव, श्री. नागेश्वर मिश्र, श्री. शिवन शास्त्री, श्री. पी. सुब्बराव, श्री. दामोदर उण्णी आदि कार्यकर्ता, दक्षिण भारतके हिंदी प्रचार कार्यमें लगनसे जुट गये और एक दो वर्षोंमेंही बरहहमपुर, राजमहेन्द्रवरम्, मछलीपट्टम, नेल्लूर, त्रिचनापल्ली, मदुरा, सेलम, कोयम्बतूर, बंगलोर, तिरुवन्तपुरम्, एरणाकुलम, मंगलोर, कालिकट, मद्रास, तंजोर, कुंभकोणम्, मैसूर, हुबली, बेलगांव, चित्तूर, बेजवाडा, गुण्टूर आदि शहरोंमें हिंदीका प्रचार जोर शोरसे होने लगा। श्री. सत्यमूर्ति डॉ. पट्टाभि सीतारामैय्या, श्री. सी. पी. रामस्वामी अय्यर, श्री. जमनालाल बजाज, श्री. वैद्यनाथ अय्यर, श्री.राजगोपालाचारी (राजाजी), श्री. ई. वी. रामस्वामी नायकर, तथा काका साहब कालेलकर आदि नेताओंका सहयोगभी हिंदी प्रचारके कार्यमें मिलने लगा। सुश्री अम्बुजम्माल, सुश्री दुर्गाबाई देशमुख तथा सुश्री इंदिरा रामदुरे आदि महिलाओंने भी इस कार्यमें अपना सहयोग प्रदान किया।

### दक्षिण-भारत-हिन्दी-प्रचार-सभाकी स्थापना :

म. गांधीजीकी यह इच्छा थी कि दक्षिणमें हिंदी-प्रचारका कार्य दक्षिण-वासियोंके द्वाराही होना चाहिये। अतः उनकी प्रेरणाके अनुसार स्वतंत्र संस्थाकी स्थापनाका निश्चय लिया गया और तदनुसार सन १९२७ में 'हिंदी साहित्य सम्मेलन : प्रचार-कार्यालय, मद्रास'का नाम बदलकर 'दक्षिण-भारत हिंदी प्रचार सभा, मद्रास' रखा गया। म. गांधीजी 'सभा'के आजीवन अध्यक्ष चुने गये। उनके पश्चात् राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसादजी इसके अध्यक्ष रहे और आज श्री. लालबहादुर शास्त्रीकी अध्यक्षता एवं मार्ग-दर्शनमें 'सभा'का कार्य फलता-फूलता जा रहा है। मद्रासके सुख्यात अँग्रेजी दैनिक "हिंदू"के संपादक श्री. रंगस्वामी अय्यंगार 'सभा'के उपाध्यक्ष रहे शुरूमें सन १९३६ तक श्री. हरिहर शर्माने 'सभा'के प्रधान-मंत्रीके नाते कार्य सम्हाला और उनके बाद सन १९६० तक श्री. मो. सत्यनारायण 'सभा'के प्रधान-मंत्री रहे। आज श्री. एस्. रामचन्द्र-शास्त्री प्रधान-मंत्रीके नाते कार्य कर रहे हैं और पं. रघुवर दयालु मिश्र संयुक्त मंत्रीके नाते उन्हे सहयोग दे रहे हैं।

### 'सभा'के उद्देश्य :

राष्ट्रभाषा हिंदीके प्रचारके द्वारा भारतकी एकताको सुदृढ बनाना ही 'सभा'-का मुख्य उद्देश्य रहा है। प्रांतीय भाषाओंके सहयोगसे हिंदी भाषाका विकास करना एवं प्रांतोंमें प्रांतीय भाषाओंको व्यवहारमें लाना तथा अंतर्प्रान्तीय और केन्द्रीय कार्योंमें हिंदीका प्रयोग करानेके लिये जनतामें हिंदीका प्रचार करना, हिंदीके अनुकूल वातावरण तैयार करने केलिये अन्य आवश्यक प्रयत्न करना—'सभा'के मुख्य कार्य हैं।

## 'सभा'की शाखाएँ

'सभा'के कार्यका विस्तार इतना बढ गया कि उसको सुसगठित करने, शाखा-कार्यालय खोलने पडे।

आंध्र, तमिलनाडु, केरल और कर्नाटकमे प्रांतीय-सभाएँ कार्य करने लगीं। इन 'सभा' ओंका संगठन स्वतंत्र है। इनके अध्यक्ष तथा मत्री स्वतत्र रूपसे चुने जाते हैं। 'सभा'की प्रारभिक तीन परीक्षाओं प्राथमिक, मध्यमा और राष्ट्रभाषाका सचालन प्रातीय-सभा कार्यालयो—द्वाराही होता है। शेष पाँच उच्च परीक्षाओ—प्रवेशिका, विशारद (पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध) प्रवीण तथा हिंदी प्रचारका सचालन 'सभा'के मुख्य कार्यालय-द्वारा होता है।

प्रातीय-शाखाओंके कार्यालय निम्नानुसार हैं —(१) आन्ध्रराष्ट्र हिंदी प्रचार सघ, बेजवाडा अध्यक्ष—श्री डॉ वी गोपाल रेड्डी मत्री—श्री चितूरी लक्ष्मीनारायण शर्मा, (२) तमिलनाडु हिंदी प्रचार सभा तिरुचिरापल्ली मत्री—श्री एस् चन्द्रमौली, (३) केरल हिंदी प्रचार सभा एरणाकुलम, अध्यक्ष—श्री पी के केशवन् नायर, मत्री—श्री प नारायण देव, और (४) कर्नाटक हिंदी प्रचार सभा धारवाड, अध्यक्ष श्री जी वी हल्लीकेरी, मत्री—श्री व्यकटाचल शर्मा। उसीप्रकार दिल्लीमेंभी सभा'की एक शाखा काम कर रही है जिसके मत्री श्री भालचद्र आपटे हैं। शुरूमे प्रातीय शाखाओंका काम आंध्रमे श्री पी सुब्बाराव, तमिलनाडुमे श्री प रघुवर-दयालु मिश्र, केरलमे श्री देवदूत विद्यार्थी तथा कर्नाटकमे श्री प सिद्धनाथपंतने सम्हाला और उसे खूब बढ़ाया।

## 'सभा' की विविध-प्रवृत्तियाँ

### हिन्दी-प्रचार-प्रेस

दक्षिण भारतकी आवश्यकताओंके अनुरूप पुस्तकों तथा मासिक पत्रिकाओंके प्रकाशनका प्रबध करनेके हेतुसे, श्री जमनालालजी बजाजकी सहायतासे सन १९२३ मे 'सभा'ने अपने निजी 'हिन्दी प्रचार प्रेस'की स्थापना की।

'सभा'के सभी प्रकाशन इसी प्रेसमे छापे जाते हैं और दक्षिणके प्रमुख हिंदी प्रेसमें इसकी गणना की जाती है।

### राष्ट्रभाषा परीक्षाएँ

राष्ट्रभाषा हिंदीका क्रम बद्ध अध्ययन हो, इस हेतुसे सन-१९२२ से 'सभा' द्वारा निम्नलिखित परीक्षाएँ चलायी जाती हैं —

(१) प्राथमिक, (२) मध्यमा, (३) राष्ट्रभाषा, (४) प्रवेशिका, (५) विशारद-पूर्वार्द्ध, (६) विशारद उत्तरार्द्ध, (७) प्रवीण, और (८) हिंदी

प्रचारक। इनके अतिरिक्त 'हिंदुस्तानी पहली' और 'हिंदुस्तानी-दूसरी' परीक्षाएँ भी 'सभा' चलाती है। 'राष्ट्रभाषा विशारद' और 'राष्ट्रभाषा-प्रवीण' परीक्षाओंमें उत्तीर्ण स्नातकोंको विशेष पदवीदान-समारोहमें उपाधियाँ प्रदान की जाती हैं।

### 'सभा' का प्रचार-कार्य:

'सभा'का प्रचार कार्य-दिनोदिन बढताही जा रहा है। दक्षिणमे 'सभा'के द्वारा अबतक लगभग बीस लाख लोगोको हिंदीकी शिक्षा दी जा चुकी है। इनमे ३० प्रतिशत तो महिलाएँ है। लगभग नौ हजार प्रचारकोके सहायोगसे विभिन्न १३५० केंद्रोमे 'सभा' का हिंदी-प्रचार-कार्य सुव्यवस्थित-रूपसे चल रहा है।

### प्रकाशन तथा पत्रिकाएँ :

'हिंदी-स्वबोधिनी' नामक पुस्तकसे 'सभा'ने अपना प्रकाशन शुरू किया था। आज करीब ३२५ पुस्तके 'सभा'के द्वारा प्रकाशित हो चुकी है, जिनमे दक्षिणी-भाषाओंसे हिंदी सीखनेकी पुस्तके, रीडरे, कोश एव साहित्यिक महत्त्वकी पुस्तकेभी हैं।

'हिंदी-प्रचार-समाचार'–'सभा' की प्रचारात्मक मासिक-पत्रिका है। दक्षिणके हिंदी प्रचारको एवं विद्यार्थियोंका मार्ग-दर्शन इस पत्रिकाके द्वारा होता है।

'दक्षिण-भारत'–'सभा'की सास्कृतिक द्वैमासिकपत्रिका है। दक्षिणी भाषा एवं संस्कृतिकी विशेषताओको प्रतिबिंबित करनेवाला साहित्य इसमें प्रकाशित होता है।

### हिन्दी-प्रचारक-विद्यालय :

हिंदी प्रचारकों-शिक्षकोंको प्रशिक्षित करनेके हेतुसे 'सभा'-द्वारा कई स्थानोंमें हिंदी-प्रचारक-विद्यालय चलाये जाते हैं, जिनमे छात्रावासकोभी सुविधा है।

### पुस्तकालय :

'सभा'के केन्द्रीय-मद्रास-कार्यालयमें तथा प्रांतीय-कार्यालयोंमें हिंदीके समृद्ध ग्रंथालय भी स्थापित किये गये हैं, जिनसे अनेक हिंदी-प्रेमी सज्जन लाभ उठाते हैं।

### अन्य प्रचार-प्रवृत्तियाँ :

पदवीदान-समारोह, प्रमाण-पत्र-वितरणोत्सव, प्रचारक-सम्मेलन, वाक्स्पर्द्धाएँ, लेखन-स्पर्द्धाएँ, नाट्याभिनय, हिंदी सप्ताह, हिन्दी विद्यार्थी-मेला तथा हिन्दी साहित्य एवं प्रचार-विषयक प्रमुख व्यक्तियोके व्याख्यानोका आयोजन आदि विभिन्न प्रवृत्तियोंके द्वारा 'सभा' दक्षिण-भारतमें हिंदीका अधिकाधिक प्रचार-प्रसार कर रही है।

**परीक्षाओंकी मान्यता :**

दक्षिण भारत हिंदी-प्रचार-सभा, मद्रासकी परीक्षाओंको भारत-सरकारके शिक्षा मंत्रालय-द्वारा निम्नानुसार हिंदीके स्तरकी मान्यता प्रदान की गयी है :—प्रवेशिका, मॅट्रिकके बराबर; विशारद, इन्टरके बराबर और प्रवीण, बी.ए के बराबर।

**राष्ट्रीय महत्त्वकी संस्था :**

हिंदीको दक्षिणमे लोकप्रिय बनानेका और उसे दक्षिणकी सामान्य जनतातक पहुँचानेका श्रेय इसी सस्थाको है।

हालहीमे भारत सरकार-द्वारा, हिंदी साहित्य-सम्मेलन, प्रयागकी तरह दक्षिण-भारत-हिंदी-प्रचार-सभा, मद्रासभी एक 'राष्ट्रीय महत्त्वकी सस्था'के रूपमे घोषित की गई है। नि सन्देह दक्षिण-भारतकी यह हिंदी-प्रचार-सस्था, पूरे भारत-वर्षके लिए एक गौरवशाली सस्था है। इसका कार्य आगेभी बढता रहेगा।

**दक्षिणकी कुछ अन्य हिन्दी-प्रचार-संस्थाएँ :**

दक्षिणमे अन्यभी कुछ संस्थाएँ हिंदी प्रचारके कार्यमे सलग्न हैं, जिनके नाम हैं: (१) तिरुवाकुर हिंदी प्रचार सभा, तिरुअनतपुरम्, (२) मैसूर हिंदी प्रचार परिषद, बगलौर, (३) साहित्यानुशीलन समिति, मद्रास, (४) कर्नाटक हिंदी प्रचार सभा, धारवाड, और (५) हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद।

## राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धा

**स्थापना :**

म गाधीजीकी प्रेरणासे दक्षिण-भारतमे हिंदी-प्रचारका कार्य सन-१९१८ सेही आरभ हुआ था और कर्मठ कार्यकर्त्ताओ तथा देशनेताओके सहयोग-समर्थनसे वह आगे बढ रहा था; किन्तु शेष हिंदीतर प्रदेशोके लिये उसकी व्यवस्था नहीं हो पायी थी।

सन १९३६ (सम्वत् १९९३) मे, हिंदी साहित्य-सम्मेलनका २५ वाँ अधिवेशन नागपुरमे डॉ. राजेन्द्रप्रसादजीकी अध्यक्षतामे सम्पन्न हुआ। उक्त अधिवेशनमे म. गाधीजीकी प्रेरणासे, दक्षिण-भारतके अतिरिक्त अन्य हिंदीतर प्रदेशोमे राष्ट्रभाषा-हिंदीके प्रचारके लिये एक समितिका निर्माण करनेका प्रस्ताव बाबू पुरुषोत्तमदासजी टडनने रखा और श्री जमनालालजी बजाजने उसका समर्थन किया। उक्त प्रस्तावके अनुसार एक 'हिंदी-प्रचार-समिति' सगठित की गयी। फलत. तीन वर्षोंके-

लिये निम्न-लिखित पंद्रह सदस्योंकी 'हिंदी-प्रचार-समिति' बनी :—डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, म. गांधीजी, पं. जवाहरलाल नेहरू, बाबू पुरुषोत्तमदास टंडन, सेठ जमनालाल बजाज, श्री. ब्रिजलाल बियाणी, आचार्य नरेन्द्र देव, श्री. काकासाहेब कालेलकर, पं. हरिहर शर्मा, श्री. वियोगी हरि, श्री. बाबा राघवदास, श्री. शंकरराव देव, पं. माखनलाल चतुर्वेदी, सरदार नर्मदासिंह तथा ठाकुर श्री नार्यसिंह।

उक्त समितिकी प्रथम बैठक म. गांधीजीके निवास-स्थानपर वर्धामें ता. ४-७-१९३६ को डॉ. राजेन्द्रप्रसादजीकी अध्यक्षतामें सम्पन्न हुई, जिसमें निम्न-लिखित और छह सदस्योंको सम्मिलित किया गया :—श्रीमती लोकसुन्दरी रामण, श्रीमती पेरिन बहन कॅप्टन, श्रीमती रमादेवी चौधरानी, श्री. गुरुमुरीय गोस्वामी, श्री. मो. सत्यनारायण और श्री. श्रीमन्नारायण अग्रवाल। इसी बैठकमें निम्नानुसार पदाधिकारी चुने गये :—अध्यक्ष :—डॉ. राजेन्द्रप्रसाद (हिंदी साहित्य-सम्मेलनके पदेन अध्यक्ष); उपाध्यक्ष तथा कोषाध्यक्षः—श्री. जमनालाल बजाज, मंत्रीः—श्री. मो. सत्यनारायण और संयुक्त मंत्री. श्री. श्रीमन्नारायण अग्रवाल। सन १९३८ में श्री. आचार्य काकासाहब कालेलकरजीको उपाध्यक्ष चुना गया।

## नाम-परिवर्तन :

ता. १३–१०–१९३६ को डॉ. राजेन्द्रप्रसादजीके शुभहाथों 'हिंदी-प्रचार-समिति'के कार्यका स-नियम उद्‌घाटन हुआ।

म. गांधीजी, डॉ. राजेन्द्रप्रसाद, आचार्य काकासाहब कालेलकर तथा श्री. जमनालालजी बजाज आदिके मार्ग-दर्शनमें समितिका कार्य चलने लगा।

सन १९३८ (सम्वत् १९९५) में पं. बाबुराव विष्णु पराडकरजीकी अध्यक्षतामें शिमलामें सम्पन्न हिंदी—साहित्य-सम्मेलनके २७ वें अधिवेशनमें, श्री. आचार्य काकासाहब कालेलकरजीके सुझावपर 'हिंदी-प्रचार-समिति'का नाम बदलकर 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' रखा गया। ता. ४–७–१९३६से ता. ६–९–१९३८ तक 'हिंदी-प्रचार-समिति'के नामसे 'समिति'ने काम किया।

## प्रथम राष्ट्रभाषा-सम्मेलन :

अखिल भारतीय कांग्रेस समितिके फैजपुर-अधिवेशनके अवसरपर, कांग्रेस-अधिवेशनके विराट मंडपमें, ता. २८–१२–१९३६ को डॉ. राजेन्द्रप्रसादजीकी अध्यक्षतामें प्रथम राष्ट्रभाषा-सम्मेलनका आयोजन किया गया था, जिसमें राष्ट्रपिता म. गांधीजी, बाबू पुरुषोत्तमदासजी टंडन, श्री जमनालालजी बजाज, श्री. आचार्य काकासाहब कालेलकर, श्री. गंगाधरराव देशपांडे, डॉ. पट्टाभि सीतारामैय्या आदि नेताओंने भाग लिया था। इस सम्मेलनमें सर्व-सम्मतिसे निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकृत किया गया :—"इस राष्ट्रभाषा-सम्मेलनका दृढ

विश्वास है कि हिंदुस्तानके भिन्न सूबोमे राष्ट्रभाषा हिंदी जाननेवालोकी इतनी बडी सख्या है कि देशका अन्तर-प्रातीय काम राष्ट्रभाषा-द्वारा ही होना उचित और हितकर है। अन्तर-प्रातीय कार्योंमे अँग्रेजी भाषाका व्यवहार हमारे गौरवके विपरीत और राष्ट्रीय भावोकी जागृति और उनके प्रचारके लिये हानिकर है।

उन सब सस्थाओसे जो राजनैतिक, सामाजिक, व्यापारिक व धार्मिक, किसी ऐसे काममे लगी है, जो देशभरमे व्यापक है, यह सम्मेलन अनुरोध करता है कि राष्ट्रीयता तथा स्थायी हितकी दृष्टिसे वे अपने मुख्य प्रातीय कार्य प्रातीय भाषामे और सार्वदेशिक काम राष्ट्रभाषामेही किया करे।" इसके बाद हरिपुर-कांग्रेसके अधिवेशनके अवसरपरभी एक सम्मेलन हुआ था और इस सम्मेलनकी अध्यक्षता श्री जमनालालजी बजाजने की थी।

## राष्ट्रभाषा-हिन्दीके व्यापक प्रचारके लिये प्राप्त उदार दान-सहायता

राष्ट्रभाषा-हिंदीके व्यापक प्रचार-कार्यके लिये आर्थिक सहायताकी आवश्यकता महसूस की जाने लगी। श्री जमनालालजी बजाजकी प्रेरणासे कानपुर-निवासी सेठ श्री पद्मपत सिंघानियाने हिंदीतर-भाषी प्रदेशोमे राष्ट्रभाषा-हिंदीके प्रचारके लिये 'समिति'को प्रतिवर्ष १५०००, रुपयोंको सहायता पांच वर्षोंके लिये देनेकी घोषणा की। ता ९-७-१९३७ को सेवाग्राम-वर्धामे श्री जमनालालजी बजाजकी अध्यक्षतामे हुई बैठकमे उक्त दान स्वीकार किया गया और उसके लिये एक धन्यवाद प्रस्ताव पारित किया गया।

सन १९३७ से १९४२ तकमे प्राप्त ७५,००० रु के इस दानसे, 'समिति'को अपना कार्य फैलानेमे बहुत बडी सहायता पहुँची।

महाराष्ट्रमे हिंदी प्रचार-कार्यके लिये अमलनेरके दानी श्री प्रताप सेठने ६,००० रु. की आर्थिक सहायता देकर महाराष्ट्रके हिंदी प्रचार-कार्यको सुन्दर-समयोचित सहायता पहुँचाई। उसी प्रकार श्री घनश्यामदासजी बिडलाने आसाममे हिंदी-प्रचारके लिये ५,००० रु की सहायता दी। सथाल परगनेके आदिवासियोमे हिंदी-प्रचारका कार्य करनेके लिये 'बिहार-सेवा-समिति'के मार्फत 'बिहार-सेवा-निधि'से मासिक १०० रु की सहायता दी जाने लगी।

आसाम सरकारने हिंदी-प्रचारके लिये १०००, रु. का अनुदान देनेकी घोषणा की। तथा स्कूलोमे हिंदी शिक्षा अनिवार्य कर दी। खासी आदि जातियोमे देवनागरी लिपि-द्वारा हिंदी-प्रचारका निश्चय करके आसाम-सरकारने हिंदी-प्रचारके कार्यको अच्छी गति दी। साथही उत्कल (उडीसा) सरकारनेभी अपने प्रदेशमे हिंदी-शिक्षाको अनिवार्य कर दिया।

इस प्रकार 'अनेक स्थानोसे स्वयंस्फूर्त सहायता इस कार्यमें प्राप्त होने लगी और 'समिति'की प्रारंभिक आर्थिक आवश्यकताएँ पूर्ण हुईं। परिणाम-स्वरूप 'समिति अपना कार्य फैलाने और उसे व्यवस्थित बनानेमे सफल हुई।

इस अवधिमें श्री. आचार्य काकासाहब कालेलकर, श्री. मो. सत्यनारायण तथा श्री. श्रीमन्नारायणजी अग्रवालकी सुन्दर सेवा 'समिति'को प्राप्त हुई, यह राष्ट्रभाषा हिंदी-प्रचारके लिए सौभाग्यकी बात रही।

## उद्देश्य :

'समिति'की स्थापना दक्षिणके अतिरिक्त अन्य हिंदीतर प्रदेशोमें अखिल भारतीय स्तरपर राष्ट्रभाषा-हिंदीका प्रचार-प्रसार करनेके उद्देश्यसे हुई और उसके द्वारा राष्ट्रीय एकताको सुदृढ बनाने एवं राष्ट्रीय भावनाको फैलानेका हेतु सामने रखा गया। आरभ में 'समिति'का बोध-वाक्य 'समाना हृदयानि वः" रहा। बादमे उसका सरलीकरण किया गया—'एक हृदय हो भारत-जननी 'समिति'के निष्ठावान् कार्यकर्त्ता 'एक हृदय हो भारत जननी'।'के इस मूल मंत्रको सामने रखकर एवं राष्ट्रीय भावनासे प्रेरित होकर राष्ट्रभाषा प्रचार-प्रसार के कार्यमे लगे हुए हैं। 'समितिका विशाल राष्ट्रभाषा परिवार पूरे भारतमे तथा विदेशोमेंभी फैला हुआ है।

## 'समिति'की विविध प्रवृत्तियाँ :

**परीक्षा-संचालन :** आरभमें हिंदी-साहित्य-सम्मेलनकी हिंदी प्रवेश, हिंदी परिचय तथा हिंदी कोविद परीक्षाओंकाही संचालन 'समिति'ने किया था। ता. ६–९–१९३८ को 'समिति'ने ."राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति"के नामसे कार्य करना शुरु किया और तबसे 'समिति'ने अपनी राष्ट्रभाषा-प्रचार-परीक्षाओका संचालनभी आरंभ कर दिया।

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा-द्वारा आज निम्न-लिखित परीक्षाएँ संचालित की जा रही हैं :—

(१) राष्ट्रभाषा-प्राथमिक, (२) राष्ट्रभाषा-प्रारंभिक (३) राष्ट्रभाषा-प्रवेश, (४) राष्ट्रभाषा-परिचय, (५) राष्ट्रभाषा-कोविद, (६) राष्ट्रभाषा-रत्न, (७) राष्ट्रभाषा-आचार्य (८) अध्यापन-कोविद, (९) आलेखन-कोविद (१०) अध्यापन-विशारद, (११) बातचीत, (१२) महाजनी-प्रवेश तथा (१३) प्रांतीय भाषाः प्रारंभिक-प्रवेश परीक्षा

इन परीक्षाओंमे "राष्ट्रभाषा-कोविद", "राष्ट्रभाषा-रत्न" तथा "राष्ट्रभाषा-आचार्य"उपाधि-परीक्षाएँ हैं।

परीक्षा, प्रचारक तथा परीक्षक-संबंधी नियम आदि बनानेके हेतु जनवरी सन १९२९ मे समिति का गठन किया गया। परीक्षा-समितिके निर्णयोंको परीक्षा मंत्रीजीके द्वारा कार्यान्वित किया जाता है। राष्ट्रभाषा-प्रचारका माप-दण्ड एवं समितिकी मुख्य प्रवृत्ति राष्ट्रभाषा ही परीक्षाएँ है। 'समिति'की परीक्षाएँ देश-विदेशमे बहुतही लोकप्रिय हुई हैं। सन १९६३ तक लगभग ३२ लाख परीक्षार्थी समिति'की परीक्षाओंमे सम्मिलित हो चुके हैं।

| वर्ष : | परीक्षार्थी-संख्या : | केन्द्र-संख्या : | प्रचारक-संख्या : |
|---|---|---|---|
| १९३७. | ६११ | १८ | ७ |
| १९३८. | २,४८६ | ७५ | ६३ |
| १९३९. | ६,८४१ | १४० | १४१ |
| १९४०. | १५,९६५ | २५० | २२६ |
| १९४१. | २७,३८८ | ४२८ | २११ |
| १९४२. (केवल एकसत्र) | १५,६५८ | ६४२ | ३५२ |
| १९४३. | ५०,२६७ | ६७२ | ३९१ |
| १९४४. | ४४,३४५ | ७४० | ४२० |
| १९४५. | ४७,८७७ | ७१२ | ६२१ |
| १९४६. | ४४,७०१ | ८२८ | ८७५ |
| १९४७. | ७०,०१५ | १,०८६ | १,१६८ |
| १९४८. | १,२०,१८६ | १,२१४ | १,४१४ |
| १९४९. | १,४३,३११ | १,५६० | १,८१४ |
| १९५०. | १,८५,७४४ | १,७२१ | २,३४१ |
| १९५१. | १,७७,९७७ | १,७७७ | २,९१७ |
| १९५२. | १,३८,४२२ | १,९०६ | ३,४३४ |
| १९५३. | १,२७,३४० | १,९७० | ४,०१६ |
| १९५४. | १,३२,१५८ | १,९७० | ४,३८४ |
| १९५५. | १,४०,१९१ | २,०२० | ४,८४८ |
| १९५६. | १,७०,९९९ | २,३२८ | ५,१६२ |
| १९५७. | १,५१,४९० | २,३३० | ५,४७१ |
| १९५८. | १,७१,१४९ | २,३६२ | ५,८९३ |
| १९५९. | २,०७,२७६ | २,४४८ | ६,३६५ |
| १९६०. | २,२८,४८३ | ३,२५५ | ६,९४० |
| १९६१. | २,६१,२१५ | ३,६१८ | ७,२६२ |
| १९६२. | २,५०,४४० | ३,९४४ | ७,५६२ |
| १९६३. | २,७४,९०३ | ४,१०० | ८,१०० |

अबतकमें लगभग ३० हजार परीक्षार्थी 'समिति'की उपाधि-परीक्षा : 'राष्ट्रभाषा-कोविद'में सम्मिलित हो चुके है। 'राष्ट्रभाषा-रत्न' परीक्षा : सन १९४४ में आरंभ हुई और अबतकमें लगभग १३ हजार परीक्षार्थी 'रत्न' परीक्षामें सम्मिलित हुए हैं। 'समिति'की सर्वोच्च उपाधि-परीक्षा : राष्ट्रभाषा-आचार्य सन१९५८ मे शुरू हुई और अबतक लगभग १२५ परीक्षार्थी इसमें सम्मिलित हुए है।

## 'समिति' की परीक्षाओंको सरकारी मान्यता :

'समिति'की परीक्षाओंका स्तर शुरूसेही ऊँचा रहा है और सर्व सामान्य जनतामें 'समिति'की परीक्षाएँ बहुत लोक-प्रिय रही हैं।

केन्द्रीय भारत-सरकार तथा विभिन्न-राज्य-सरकारो एवं विश्व-विद्यालयों तथा हिंदी-प्रचार-संस्थाओंद्वारा 'समिति'की परीक्षाएँ विभिन्न रूपमें मान्य की गयी हैं।

भारत-सरकारके शिक्षा-मंत्रालय-द्वारा 'समिति'की परीक्षाएँ निम्नलिखित रूपमें मान्य की गयी हैं :—

राष्ट्रभाषा-परिचय : मॅट्रिक या एस्. एस्. सी. के समकक्ष, राष्ट्रभाषा-कोविद इन्टरके समकक्ष और राष्ट्रभाषा-रत्न : बी. ए. की हिंदीकी योग्यताके समकक्ष।

केन्द्रीय गृह-मंत्रालय, रेल्वे-मंत्रालय, सूचना तथा प्रसारण-मंत्रालय (आकाशवाणी), एवं प्रतिरक्षा-मंत्रालय-द्वारा भी 'समिति'की राष्ट्रभाषा-कोविद परीक्षा : विभागीय परीक्षाके रूपमें मान्य की गयी है। कोविद' उत्तीर्णोंको हिंदीकी योग्यता सम्बधी अन्य कोई परीक्षा देनेकी आवश्यकता नहीं रहती।

महाराष्ट्र, गुजरात, आसाम, बंगाल, उत्कल, मणिपुर, काश्मीर, पंजाब, उत्तर-प्रदेश, मध्य-प्रदेश, राजस्थान, म्हैसूर आदि राज्य-सरकारो-द्वारा तथा आगरा विश्व-विद्यालय, राजस्थान-विश्व-विद्यालय, श्रीमती नाथीबाई दामोदर ठाकरसी महिला-विद्यापीठ एवं साहित्य-सम्मेलन आदि संस्थाओं-द्वारा भी समितिकी परीक्षाओंको विभिन्न रूपमें मान्यता प्रदान की गयी है।

## प्रान्तीय समितियोंका संगठन :

हिंदीतर-भाषी कार्यक्षेत्रके हिंदी-प्रचार-कार्यको सुव्यवस्थित बनानेकी दृष्टिसे 'समिति'ने अपनी प्रांतीय-समितियोंका संगठन-कार्य अपने हाथमें लेकर, धीरे-धीरे उसे पूरा किया। महाराष्ट्र, गुजरात, बम्बई, उत्कल, आसाम, बंगाल तथा सिंध आदि प्रदेशोंमें प्रांतीय-समितियाँ स्थापित की गयीं जो केन्द्रीय समितिसे सम्बद्ध रहकर उसके मार्ग-दर्शनमें अपने अपने क्षेत्रमें राष्ट्रभाषा-हिंदी-प्रचारके कार्यमें कार्यमें योगदान देने लगीं। आज 'समिति'की निम्न-लिखित प्रांतीय समितियाँ सुव्यवस्थित ढंगसे कार्य कर रही हैं :—

(१) महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पुणे.
(२) गुजरात प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, अहमदाबाद.
(३) बम्बई प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, बम्बई.
(४) विदर्भ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, नागपुर.
(५) मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, भोपाल.
(६) सिंध-राजस्थान राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, जयपुर.
(७) आसाम-राज्य राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, शिलांग.
(८) पश्चिम-बंग राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, कलकत्ता.
(९) मणिपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, इम्फाल.
(१०) उत्कल प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, कटक
(११) दिल्ली प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, नई दिल्ली.
(१२) कर्नाटक प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हुबली.
(१३) मराठवाडा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, औरंगाबाद.
(१४) हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद.
(१५) जम्मू-काश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, श्रीनगर.
(१६) पंजाब प्रांतीय राष्ट्रभाषा समिति, अबोहर.
(१७) बेलगांव जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, बेलगांव.
(१८) गोवा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, मडगांव-गोवा.
(१९) अन्दमान-निकोबार राष्ट्रभाषा समिति, पोर्ट-ब्लेअर.

भारतके अतिरिक्त विदेशोंमें भी 'समिति'का कार्य-क्षेत्र फैला हुआ है। आज विदेशके निम्नलिखित स्थानोंमें 'समिति'का-कार्य नियमित तथा सुचारु रूपसे चल रहा है :—

लंका, बर्मा, आफ्रीका, सयाम, जावा-सुमात्रा ( इण्डोनेशिया ), मॉरिशस, एडन, सूदान तथा इंग्लैंड आदि ।

भारतकी तरह विदेशोंसेभी हजारों परीक्षार्थी 'समिति'की राष्ट्रभाषा-प्रचार-परीक्षाओंमें प्रतिवर्ष सम्मिलित होते हैं। भारतकी राजभाषा तथा राष्ट्रभाषाके नाते हिंदीका अधिकृत स्वीकार किये जानेके पश्चात् भारत एवं विदेशोंमेंभी हिंदीके प्रति लोगोंका आकर्षण बढ़ता जा रहा है । प्रतिवर्ष बढ़ती हुई परीक्षार्थियोंकी संख्या इसका प्रमाण है। विदेशोंमेंभी, कई स्थानोंपर स्थानीय समितियोंका संगठन हो गया है और नियमित रूपसे राष्ट्रभाषा-विद्यालय तथा पुस्तकालय आदिकी प्रवृत्तियां चल रही हैं ।

## राष्ट्रभाषा-अध्यापन-मन्दिर

राष्ट्रभाषा-प्रचारकोंको प्रशिक्षित करनेके उद्देश्यसे १५ जून १९३७ को राष्ट्रभाषा-अध्यापन-मंदिर' की स्थापना की गयी। डॉ. राजेन्द्र प्रसादजीकी अध्यक्षतामें ता. ७ जुलाई १९३७ को म. गांधीजीके शुभ हाथों 'राष्ट्रभाषा-अध्यापन-मन्दिर 'के प्रथम-सत्रका उद्‌घाटन हुआ। उक्त समारोहमें सरदार वल्लभभाई पटेल, श्री. राजगोपालाचारी, श्री. गोपबन्धु चौधरी आदि देश-नेताभी उपस्थित थे। अध्यापन-मन्दिरके संचालन-हेतु एक 'प्रबंध समिति' बनायी गयी, जिसके अध्यक्ष श्री. आचार्य काकासाहब कालेलकर और मंत्री श्री. मो. सत्यनारायणजी चुने गये। प्रधानाध्यापकके पदपर पं. श्री. हृषीकेशजी शर्माकी नियुक्तिकी गयी। 'अध्यापन-मन्दिरके सहाध्यापक तथा प्रबंधकके नाते श्री. रामेश्वर-दयाल दुबेजीने कार्य किया। लगातार पाँच वर्षोंतक, अर्थात् सन १९३७ से १९४२ तक 'अध्यापन-मन्दिर' का कार्य सुचारु रूपसे चलता रहा। 'अध्यापन-मन्दिर' में कई राष्ट्रभाषा-प्रचारक भाईबहनोंने शिक्षा पाकर अपने क्षेत्रमें 'समिति' के राष्ट्रभाषा-प्रचार-कार्यको फैलाया तथा प्राथमिक संगठनात्मक कार्य भी किया। राष्ट्रभाषाके द्वारा राष्ट्रीय-भावनाको प्रसारित करने एवं उसे सुदृढ़ बनानेका बुनियादी कार्य इस 'अध्यापन-मन्दिर' के कार्यकर्त्ताओंने बड़ी लगन तथा निष्ठा-पूर्वक निभाया।

## राष्ट्रभाषा महाविद्यालय :

सन १९४२ से १९५२ तक वर्धामें केन्द्रीय महाविद्यालय चला और सन १९५३में 'राष्ट्रभाषा-महाविद्यालय 'की स्थापना की गयी। इसमें 'राष्ट्रभाषा-रत्न' तथा 'अध्यापन-विशारद' की पढ़ाईकी व्यवस्था है। इसी महाविद्यालयमें नागा प्रदेशके छात्रोंको राष्ट्रभाषा हिंदी पढ़ानेका विशेष प्रबंध किया गया है। उन्हें 'समिति' की ओरसे छात्रवृत्ति भी दी जाती है।

दक्षिण-भारतके पुराने एवं अनुभवी अध्यापक श्री. क.,म. शिवराम शर्मा एवं श्री. रसूल अहमद 'अबोध' इसके अध्यापन-कार्यमें सहयोग दे रहे हैं।

प्रांतीय-समिति-द्वारा संचालित राष्ट्रभाषा-महाविद्यालयको प्रतिवर्ष ५०० रु. और अन्य सम्बद्ध महाविद्यालयोंको वार्षिक १०० रु. अनुदान 'समिति' की ओरसे दिया जाता है।

## प्रकाशन-विभाग :

'समिति 'की परीक्षाओंके लिये उपयुक्त पाठ्य-पुस्तकोंका प्रकाशन 'समिति' की ओरसे करनेका निर्णय ता. १-२-१९३८ की बैठकमें लिया गया और तदनुसार

निम्नलिखित पुस्तकें ता. ३०-६-१९३८ तक प्रकाशित की गयीं :— (१) प्रारंभिक बोधिनी, (२) राष्ट्रभाषाकी पहली पुस्तक, (३) दूसरी पुस्तक (४) तीसरी पुस्तक (५) गुलदस्ता भाग १ला (६) भाग २ रा, (७) भाग ३ रा, (८) चलती हिंदी, (९) कहानी संग्रह भाग १ ला, (१०) भाग २ रा, (११) भाग ३ रा, (१२) हाथकी लिखावट (परिवर्तित नाम—'नेताओंकी कलमसे) (१३) राष्ट्रभाषा-सर्वसंग्रह, (१४) सबकी बोली (नागरी), (१५) सबकी बोली (उर्दू), (१६) सरल रचना और पत्र लेखन, (१७) हिंदी-मराठी स्वबोधिनी, (१८) तलाशे हक (म. गांधीजीकी जीवनी), (१९) मीरा पदावली, (२०) चन्द्रगुप्त, (२१) आसाम-दर्शन (२२) हिंदीप्रचार-संग्रह आदि। बादमेंभी 'समिति'की ओरसे पाठ्य पुस्तक-प्रकाशनका कार्य बराबर जारी रहा है। (२३) रहीमके दोहे, (२४) मुहावरे और कहावतें (२५) उड़ते जुगनू (परिवर्तित नामः चमकते जुगनू), (२६) पांच एकाकी, (२७) राष्ट्रभाषाका सरल व्याकरण भाग १, (२८) भाग-२, (२९) साहित्यका साथी, नागरिक-शास्त्र और भारतीय संविधान तथा कहानी-संग्रह-निबंध-संग्रह एकाकी-संग्रह आदि लगभग ७५ पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं और अबतक उनके कई संस्करण निकल चुके हैं। इनकी करीब ८५ लाखसे अधिक प्रतियाँ आजतक छप चुकी हैं और प्रतिवर्ष लाखोंकी संख्यामें इनकी प्रतियाँ छपती हैं।

## साहित्य-निर्माण-योजना :

महापण्डित राहुल सांकृत्यायनकी प्रेरणासे सन १९५० से साहित्य-निर्माणकी योजना कार्यान्वितकी जा रही है। इस योजनाके अंतर्गत अबतकमें निम्नलिखित ग्रंथ प्रकाशितहुए हैं :-(१) संक्षिप्त राष्ट्रभाषा कोश, (२) फ्रेंच स्वयशिक्षक, (३) भारतीय वाङ्मय भाग-१, (४) भाग-२, (५) भाग-३, (६) मराठीका वर्णनात्मक व्याकरण, (७) धरतीकी ओर (कन्नड़ उपन्यास), (८) सोरठ तेरा बहता पानी (गुजराती उपन्यास), (९) लोकमान्य तिलक (जीवन-ग्रंथ), (१०) धूम्ररेखा (गुजराती एकाकी 'धूम्रसेर' का अनुवाद), (११) मिर्जा गालिब (जीवनी और साहित्य), (१२) राज्योपनिषद तथा (१३) तेलुगुकी उत्कृष्ट कहानियाँ एवं भारत-भारती-की १०पुस्तकें (तमिल, तेलुगु, कन्नड, मलयालम, मराठी, गुजराती, बंगला, ओडिया, मणिपुर तथा असमिया) प्रकाशित हो चुकी हैं। भारत-भारती-पुस्तक-मालाका उद्देश्य राष्ट्रभाषा हिंदीके द्वारा भारतकी प्रमुख प्रादेशिक भाषाओंका सामान्य परिचय करा देना रहा है। 'समिति'की यह पुस्तकमाला बहुत उपयोगी साबित हुई है। 'समिति'के रजत-जयन्ती-महोत्सवके निमित्त साहित्य-निर्माणकी योजनाके अंतर्गत : रजत-जयन्ती-ग्रंथ, प्रकाशित किया गया है। 'समिति'का 'रजत जयंती ग्रंथ' ८२२ पष्ठोंका है, जिसके पहले खण्डमें—महाराष्ट्र, गुजरात, आन्ध्र,

कर्नाटक, केरल, तमिलनाड, ओडिसा, पंजाब, मणिपुर, बंगाल तथा काश्मीरकी हिंदीको देन, दूसरे खण्डमें- राष्ट्रभाषाकी दृष्टिसे हिंदी साहित्यका इतिहास, तीसरे खण्डमें—राष्ट्रभाषाका निर्माण तथा पारिभाषिक शब्दावली, प्रादेशिक भाषाओंके सन्दर्भमें हिंदीका शब्दसमूह, हिंदीमें वैज्ञानिक साहित्य, चौथे खण्डमें—देवनागरी वर्णमाला, नागरी लिपि तथा पाँचवे खण्डमें—राष्ट्रभाषा प्रचारका इतिहास विस्तारसे दिया गया है। प्रख्यात विद्वानोंने इस ग्रंथका संपादन किया है।

राष्ट्रभाषा-परिवार-ग्रंथमें 'समिति'के संस्थापक-सदस्य, प्रचार तथा परीक्षा-समितिके सदस्य एवं प्रातवार प्रचारकों तथा केन्द्र-व्यवस्थापकोंके फोटो दिये गये हैं।

'कविश्री-माला'के अंतर्गत भारतीय भाषाओंके सर्व श्रेष्ठ प्राचीन एवं आधुनिक २५ कवियोंकी रचनाएँ प्रकाशित की गयी हैं। भारतीय साहित्यके लब्ध-प्रतिष्ठ प्रतिनिधि कवियोंकी चुनीहुई मूल रचनाएँ, देवनागरी लिपिमें गद्यमय हिंदी अनुवादके साथ इसमें दी गयी हैं। साथही कवि-परिचय तथा भूमिकाके रूपमें प्रादेशिक भाषाके काव्य-साहित्यका सर्वांगीण परिचयभी प्रत्येक पुस्तकमें दिया गया है। निम्न लिखित कवियोंको इस मालामें स्थान दिया गया है :— (१) असमिया : रघुनाथ चौधरी तथा नलिनीबाला देवी, (२) मणिपुरी : कमल सिंह लमाबम, (३) बंगला : सत्येंद्र दत्त तथा काजी नजरुल इस्लाम, (४) उडिया : गंगाधर मेहेर तथा कालिन्दी चरण पाणिग्राही, (५) मराठी : कृष्णाजी केशव दामले 'केशवसुत' तथा यशवंत दिनकर पेण्डारकर 'यशवंत', (६) गुजराती : न्हानालाल दलपतराम कवि तथा त्रिभुवनदास पुरुषोत्तमदास लुहार 'सुन्दरम्', (७) सिन्धी : किशिन चन्द 'बेवसि', (८) कश्मीरी : परमानन्द, (९) पंजाबी : भाई वीरसिंह तथा अमृता प्रीतम, (१०) तेलुगु : तिरुपति-वेंकट कवुलु तथा काटूरी वेंकटेश्वरराय और पिंगलि लक्ष्मीकान्तम्, (११) तमिल : सुब्रह्मण्य भारती तथा नामक्कल रामलिंगम् पिल्लै, (१२) कन्नड : दत्तात्रेय रामचंद्र बेंद्रे तथा 'कुवेम्पु', (१३) मलयालम् : वल्लत्तोळ नारायण मेनन तथा जी. शंकर 'कुरुप', (१४) उर्दू : मुहम्मद इक़बाल और (१५) हिंदी : जयशंकर प्रसाद।

'समिति'की यह 'कवि श्री माला' अपने ढँगकी अनूठी माला है।

### पुस्तक-बिक्री-विभाग :

प्रचारकों, परीक्षार्थियों तथा पुस्तक-विक्रेताओंको 'समिति'की पाठ्य-पुस्तकें एवं अन्य हिंदीकी साहित्यिक पुस्तकों- प्रकाशनोंको उपलब्ध करा देनेके हेतुसे सन १९३७ में इस विभागकी स्थापना की गयी। उत्तरोत्तर इस विभागकी उपयोगिता एवं कार्य बढ़ता ही रहा है। इस विभागके द्वारा लाखों पुस्तकें हिंदीतर प्रदेशोंमें प्रचारित हुईं और अब भी यह विभाग सामान्य जनतामें हिंदीकी अभिरुचि फैलानेका सुन्दर कार्य कर रहा है।

## "राष्ट्रभाषा" और "राष्ट्रभारती" पत्रिकाओंका प्रकाशन

"राष्ट्रभाषा" :—ता. ७-५-१९३९की बैठकमें 'समिति'की ओरसे एक मासिक-मुखपत्र प्रकाशित करनेका निर्णय लिया गया। उसके अनुसार सन १९३९ अक्तूबर महीनेसे "सबकी बोली" नामक मासिक-पत्रिकाका प्रकाशन आरंभ हुआ। सन १९४१ जूनमें "राष्ट्रभाषा-समाचार"का प्रकाशन किया गया और सन १९४३ जुलाईसे "राष्ट्रभाषा"के नामसे, 'समिति'के मुखपत्रके रूपमें मासिक-पत्रिकाका प्रकाशन हो रहा है। इस पत्रिकामें 'समिति'की परीक्षाओंसे संबंधित जानकारी तथा वर्धा-समिति एवं उसकी प्रांतीय समितियोंकी गतिविधियोंका विवरण तथा परीक्षोपयोगी लेख आदि सामग्री प्रकाशित होती रहती है। राष्ट्रभाषा-परीक्षा-केंद्रों तथा 'समिति'के सक्रिय प्रमाणित-प्रचारकोंको यह निःशुल्क भेजी जाती है। इसका वार्षिक-मूल्य ३, रु रखा गया है। 'समिति'के प्रधानमंत्रीके सम्पादकत्वमें यह पत्रिका, पिछले २० वर्षोंसे हर महीनें नियमित प्रकाशित हो रही है। राष्ट्रभाषाके क्षेत्रमें कार्य करनेवाले कार्यकर्त्ताओं तथा राष्ट्रभाषाके परीक्षार्थियोंके लिए "राष्ट्रभाषा" बहुतही उपयोगी पत्रिका है।

### राष्ट्रभारती :

सन १९५०से इस अंतर-प्रांतीय भारतीय साहित्यकी मासिक पत्रिकाका प्रकाशन 'समिति'की ओरसे किया जा रहा है। देशकी विभिन्न प्रादेशिक भाषाओंकी उच्चतम साहित्यिक कृतियोंका हिंदी-रूपांतर इसके द्वारा प्रस्तुत किया जाता है "राष्ट्रभारती"के द्वारा भारतीय-साहित्यकी झाँकी प्राप्त होती है। इसका वार्षिक मूल्य ६ रु. रखा गया है। राष्ट्रभाषा-प्रचार-केंद्रों, प्रचारकों तथा स्कूल-कॉलेजों एवं वाचनालयोंसे वार्षिक चन्दा केवल ५ रु लिया जाता है। इस पत्रिकाने हिंदी पत्रिकाओंमें अपना विशेष स्थान प्राप्त किया है। इसके द्वारा 'समिति' सांस्कृतिक साहित्यके प्रचारका कार्य कर रही है।

### राष्ट्रभाषा प्रेस :

'समिति' अपने प्रकाशनोंका काम बाहरी प्रेस द्वाराही करा लेती थी। 'समिति के निजी प्रेसकी आवश्यकताकी पूर्ति सन १९४६में हुई। ता. २२-५-१९४६ की 'समिति'की बैठकमें प्रेस चालू करनेका निश्चय हुआ और उसके लिए शुरूमें २५,०००रु. की रकम स्वीकृत की गयी। तदनुसार सन १९४६ जूनमें 'समिति'के राष्ट्रभाषा प्रेसकी स्थापना हुई। प्रेसका कार्य निरंतर बढ़ताही जा रहा है। आज प्रेसमें लगभग सवा लाखकी कीमतोंकी मशीनें तथा अन्य सामग्री हो गयी है और ५० के करीब कारीगर इसमें काम करते हैं। निजी प्रेसके कारण पाठ्य पुस्तकोंकी

छपाई तथा अन्य छपाईका कार्य बहुतही कम लागतपर किया जा सकता है। पाठ्य-पुस्तकोंकी माँगके अनुसार, उसकी शीघ्रही पूर्तिकरनेका भी प्रबंध 'समिति' आसानीसे कर सकती है।

## अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन :

अ भा कांग्रेस-अधिवेशनोंके अवसरपर फैजपुर तथा हरिपुरामें राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिके कार्य-कर्ताओंकी बैठकें हुई थीं। किन्तु राष्ट्रभाषा-प्रचारकोंका विधिवत् अखिल-भारतीय सम्मेलन तो सन् १९४९ से शुरू हुआ। इस प्रकारके सम्मेलन-अधिवेशनोंके अवसरपर, भारत-वर्षके कोने-कोनेसे 'समिति'के प्रचारक एकत्र आकर आपसमें विचारोंका आदान-प्रदान करते हैं और परस्पर परिचय पाकर राष्ट्रभाषा-विषयक समस्याओंपर विचार-विनिमय करते हैं।

सन १९६२ तकमें, 'अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन' के निम्नानुसार ११ अधिवेशन सम्पन्न हुए हैं —

| सन | अधिवेशन | स्थान | उद्घाटक | अध्यक्ष |
|---|---|---|---|---|
| १९४९. | पहला | वर्धा | प. द्वारकाप्रसाद मिश्र | सेठ गोविन्ददास |
| १९५०. | दूसरा | अहमदाबाद | बाबा राघवदास | मुनि जिन विजयजी |
| १९५१. | तीसरा | पूना | श्री न. वि गाडगीळ | श्री वियोगी हरि |
| १९५२. | चौथा. | बम्बई. | श्री. रामदेव पोद्दार | श्री. कन्हैयालाल मुन्शी |
| १९५३. | पाँचवाँ. | नागपुर | श्री. श्रीप्रकाश | श्री न. वि गाडगीळ |
| १९५५. | छठा. | जगन्नाथपुरी | भदन्त आनंद कौसल्यायन | डॉ. बालकृष्ण वि. केसकर |
| १९५६. | सातवाँ | जयपुर | श्री. ब. न. दातार | सेठ गोविन्ददास |
| १९५८. | आठवाँ. | भोपाल | डॉ राजेन्द्रप्रसाद | डॉ कालूलाल श्रीमाली |
| १९५९. | नवाँ | नई दिल्ली | श्री. जवाहरलाल नेहरू | श्री. अनन्तशयनम् आयंगार |
| १९६१. | दसवाँ | तिनसुकिया | श्री. जगजीवनराम | डॉ हरेकृष्ण मेहताब |
| १९६२. | ग्यारहवाँ. | वर्धा | श्री. जवाहरलाल नेहरू | डॉ. राजेन्द्रप्रसाद |

## महात्मा गांधी-पुरस्कार :

अ.भा राष्ट्रभाषा-प्रचार-सम्मेलनके दूसरे—अहमदाबाद-अधिवेशनके अवसरपर बाबा राघवदासजी द्वारा प्रस्तावित प्रस्तावके अनुसार, हिंदीतर भाषा-विद्वानोंकी हिंदी सेवाओंके सम्मानमें १५०१, रु.का "महात्मा गांधी-पुरस्कार" एवं ताम्रपट

अ. भा. सम्मेलनोके अवसरोपर समर्पित किया जाता है।
'महात्मा गांधी-पुरस्कार' प्राप्तकर्ता निम्नानुसार हैं :—

| सन | सम्मेलन स्थान : | पुरस्कार-प्राप्त-कर्ता |
|---|---|---|
| १९५१. | पूना | आचार्य क्षितिमोहन सेन |
| १९५२. | बम्बई | पं. श्रीपाद दामोदर सातवळेकर |
| १९५३. | नागपुर | श्री. बाबुराव विष्णु पराडकर |
| १९५५. | जगन्नाथपुरी | आचार्य विनोबा भावे |
| १९५६. | जयपुर | प. सुखलाल सघवी |
| १९५८. | भोपाल | प. संतराम, बी. ए. |
| १९५९. | नई दिल्ली | आचार्य काकासाहब कालेलकर |
| १९६१. | तिनसुकिया | श्री. अनन्त गोपाल शेवडे. |

## १४ सितम्बर : हिन्दी-दिवस :

सन १९५३ मे नागपुरमे सम्पन्न अ. भा. राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन अधिवेशनके निर्णयानुसार, 'समिति' की ओरसे ता. १४-सितबरको 'हिंदी-दिवस' मनाया जाता है। ता. १४ सितबर १९४९ को भारतीय सविधान-सभामे राजभाषाके रूपमे हिंदी और राष्ट्रलिपिके नाते देवनागरी स्वीकृत की गयी। उसकी स्मृति एव हिंदीके प्रचार-प्रसारकी योजनाबद्ध कार्यवाहीके लिए तथा केन्द्रीय एव राज्य-सरकारो और सर्व-सामान्य जनताका हिंदीकी प्रगतिके लिए ध्यान आकर्षित करनेके उद्देश्यसे इस दिनको मनानेकी योजना बनायी गयी है।

जिस प्रकार १५ अगस्त और २६ जनवरीको भारतीय जीवनमे राष्ट्रीय महत्व प्राप्त हो चुका है, उसी प्रकार १४ सितंबर : 'हिंदी-दिवस'का महत्त्व भी हमारे राष्ट्रीय जीवनमे बढता जा रहा है। जन-जागृतिके राष्ट्रीय पर्वके रूपमें १४ सितबर को 'हिंदी-दिवस' सारे भारत-वर्षमे प्रतिवर्ष मनाया जाने लगा है।

## पदवीदान-समारोह :

'समिति'की सर्वोच्च उपाधि-परीक्षा 'राष्ट्रभाषा-रत्न' तथा राष्ट्रभाषा-आचार्य 'के उपाधि-पत्रोका वितरण अ. भा. राष्ट्रभाषा-प्रचार सम्मेलनके अवसरपर किसी विद्वान-साहित्यिक या राजनीतिक देश-नेताके कर-कमलो-द्वारा समारोह-पूर्वक किया जाता है एव उनके दीक्षान्त-भाषणोका भी आयोजन होता है।

## समाचार भारती :

सन १९५९ मे नई दिल्लीमे सम्पन्न अ. भा. राष्ट्रभाषा-प्रचार-सम्मेलनके नौवे अधिवेशनके निश्चयानुसार 'समिति'की ओरसे हिंदी तथा प्रादेशिक भाषाओमे

पुस्तकालयमें १२ हज़ारसे भी अधिक पुस्तकें संग्रहीत हैं, जिनमे हिंदीके अतिरिक्त बंगला, गुजराती, मराठी तथा अँग्रेजीकी भी कई पुस्तकें हैं।

वर्धा-शहरकी जनताके लिए, शहरमेंभी 'समिति'की ओरसे 'हिंदी मन्दिर : पुस्तकालय-वाचनालय' चलाया जाता है जिसका कई लोग, नियमित लाभ उठाते हैं।

हिंदीतर प्रांतोंके राष्ट्रभाषा-प्रचार-केंद्रोंमें भी 'राष्ट्रभाषा-पुस्तकालय' स्थापित करनेके लिये 'समिति'की ओरसे सन-१९४३ से १९५४ तक एक 'राष्ट्रभाषा-पुस्तकालय' योजना चलायी गयी, जिसके अन्तर्गत सिंध, महाराष्ट्र तथा गुजरातमें ६२ पुस्तकालय स्थापित हुए। 'समिति' की ओरसे इन पुस्तकालयोंकी स्थापनामें आर्थिक एवं पुस्तकोंकी सहायता दी गयी।

## रजत जयन्ती महोत्सव :

'समिति'की स्थापना सन १९३६ मे हुई। सन १९६१ मे 'समिति'ने अपनी राष्ट्रभाषा-हिंदीकी सेवाके २५ वर्ष पूरे किये। इसके उपलक्षमें २६, २७, और २८ मई, १९६२ को 'रजत-जयंती-महोत्सव'का विशेष आयोजन किया। इसी अवसरपर अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार-सम्मेलनका ११ वाँ अधिवेशन : वर्धामें सम्पन्न हुआ। इस अधिवेशनके उद्घाटक : प्रधान-मंत्री श्री. जवाहरलालजी नेहरू एवं अध्यक्ष राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसादजी दोनोंका स्वास्थ्य ठीक न होनेके कारण अधिवेशनके अवसरपर उपस्थित न रह सके। श्री. श्रीमन्नारायणजीके साथ भेजे अपने विशेष उद्घाटन-संदेशमें श्री. नेहरूजीने इन शब्दोंमें 'समिति'के कार्यकी सराहना की :—

"राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिने इन २५ वर्षोंमें जो काम किया है उसको सब लोग जो हिंदीमें दिलचस्पी लेते हैं, जानते हैं और उसकी बहुत प्रशंसा करते हैं। मैंने इस कामको अक्सर देखा है और मुझे बहुत पसंद आया है। विशेषकर समितिने जो राष्ट्रभाषाका ढंग निकाला है, यानी सादी और सरल हो, वह मुझे खास तौरसे पसंद आया है। अक्सर हमारी हिंदी बहुत कठिन हो गई है, जिसको आम लोग नहीं समझते। मैं आशा करता हूँ कि राष्ट्रभाषा समितिकी हिंदीका योग अधिकतर हो। इससे हिंदीको भी लाभ होगा और उसके पढनेवालोंको भी।

हिंदी एकही तरहसे उन्नति कर सकती है—लोगोंको सीखनेका मौका दिया जाय बगैर जबरदस्ती किये। कोई भाषाभी उन्नति करती है—इसी तरहसे। राष्ट्रभाषा-समितिने यह मौका बहुतोंको दिया और बहुतोंने उससे लाभ उठाया। हमारे लिए यह भाषाओंका प्रश्न बहुत कठिन और पेचीदा हो गया है। लेकिन मैं समझता हूँ कि हल्के हल्के उसको हल करनेका रास्ता दिख रहा है।

मैं पसंद करूँ अगर जैसे राष्ट्रभाषा-समिति बनी है वैसीही समितियाँ उत्तर-भारतमे बनें जो कि दक्षिण-भारतकी भाषाओंको सिखायें ।

मैं आशा करता हूँ कि आपका महोत्सव सफलतासे होगा और वह हिंदीको और बढाने और सिखानेका प्रबन्ध करनेमे सफल होगा ।"

आशीर्वाद :

"राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति, वर्धाने बहुत अच्छा काम किया है। मैं आशा करता हूँ कि उसकी उन्नति होगी और सरल हिंदीको वह सारे देशमे फैलाएगी।"

—जवाहरलाल नेहरू

रजत-जयन्ती-महोत्सवके मनोनीत अध्यक्ष राष्ट्रपति डॉ राजेन्द्रप्रसादजीने अपना अध्यक्षीय भाषण 'टेप रेकॉर्ड' करके भेजा था, जिसमे राष्ट्रभाषा प्रचारकोंको सुन्दर मार्गदर्शन किया गया था। भारत-सरकारके तत्कालीन गृहमंत्री श्री लाल-बहादुर शास्त्रीजीने महोत्सवके प्रथम दिनकी कार्यवाहीकी अध्यक्षता की। राष्ट्रपति डॉ राजेन्द्र प्रसादजीने अपने अध्यक्षीय भाषणमे कहा था—"यह काम रचनात्मक है। इसमें यदि कभी कभी कोई बाधाभी दिखाई दे तोभी कार्यकर्त्ताओंको घबराना नहीं चाहिए। राष्ट्र निर्माणके कार्यमे हाथ बँटानेवाला व्यक्ति परिस्थिति-योंसे हार नहीं मानता। शर्त केवल यही है कि उस कार्यके प्रति उसकी अपनी श्रद्धा अडिग हो और उसका संकल्प दृढ हो। 'समिति'की रजत-जयन्तीके अवसरपर मैं सब शिक्षकों—कार्य-कर्त्ताओंको बधाई देता हूँ और यह आशा करता हूँ कि यह महोत्सव उन्हें इस शुभ कार्यमे संलग्न रहनेकी औरभी प्रेरणा देगा।"

'समिति'के मंत्री तथा रजत-जयन्ती-महोत्सवके स्वागत-मंत्री श्री मोहन-लालजी भट्टने अपने निवेदनमे 'समिति'के २५ वर्षोंका रिपोर्ट बताया और आशा व्यक्तकी कि—सबके लिए यह समारोह प्रेरणादायी, उत्साह प्रेरक रहेगा।

रजत-जयन्ती महोत्सवके स्वागताध्यक्ष एवं महाराष्ट्रके तत्कालीन मुख्यमंत्री माननीय श्री यशवंतराव चव्हाणने अपने स्वागत-भाषणमे कहा कि—"विगत २५ वर्षोंमे 'समिति'ने हिंदीतर प्रदेशोंमे राष्ट्रभाषा हिंदीके व्यापक प्रचारके लिए ठोस कार्य किया है। राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति न केवल महाराष्ट्रके लिए बल्कि अखिल भारतके लिए भूषणावह संस्था बनी हुई है। इतनाही नहीं तो विदेशोंमें भी 'समिति'ने हिंदीभाषाको बढावा देनेके लिए ठोस कार्य किया है। 'समिति' अबतक जो कार्य करती आ रही है, उसको देखते हुए यह आशा करना उचित ही होगा कि 'समिति'का कार्य भविष्यमे उत्तरोत्तर अधिकाधिक विस्तृत तथा व्यापक होता जाएगा।"

"सभी प्रांतोंकी उन्नति देशकी उन्नतिपर निर्भर है। इसलिए सम्पूर्ण देशके हितको प्राथमिकता देते हुएही प्रत्येक प्रांतको अपना-अपना कार्य करना होगा। देशकी इस एकताको मजबूत बनानेका कार्य हिंदी भाषाको करना है। इसलिए हिंदीकी शिक्षाको राष्ट्रीय महत्त्व है।

"मैं राष्ट्रभाषा प्रचार समितिको उसके कार्यके लिए बधाई देता हूँ। मुझे आशा है कि इस महोत्सवसे 'समिति' तथा उसकी प्रांतीय शाखाओंको अधिक तीव्रतासे हिंदी-साहित्य तथा देशकी सेवा करनेके लिए उचित प्रेरणा प्राप्त होगी।"

इसी अवसरपर गृह-मंत्री श्री लालबहादुर शास्त्रीने अपने भाषणमें घोषणाकी कि—हिंदीके साथही अंग्रेजीभी भारतकी सह-भाषाके रूपमें सन १९६५ के बादभी अनिश्चित कालतक भारतमें बनी रहेगी।"

## 'समिति' प्रांगणमें मूर्तियोंकी स्थापना :

रजत-जयन्तीके अवसरपर 'समिति'के प्रांगणमें म. गांधीजीकी मानवाकार कांस्य प्रतिमा तथा हिंदीके प्राण राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडनजी एवं श्री जमनालाल बजाजकी संगमरमरकी सुन्दर अर्ध प्रतिमाओंकी स्थापना की गयी।

## राष्ट्रभाषा-गौरव उपाधि :

राष्ट्रभाषाकी सेवामें निरंतर दीर्घकालतक लगे हुए राष्ट्रभाषाके निम्नलिखित निष्ठावान सेवकोंको रजत जयन्ती समारोहके अवसरपर ता. २८-५-१९६२ को "राष्ट्रभाषा गौरव"की उपाधिसे विभूषित किया गया —(१) श्रीमती शारदा-बहन मेहता (गुजरात), (२) श्रीमती राजलक्ष्मी राघवन् (दिल्ली), (३) श्री स्वामी केशवानन्द (पंजाब), (४) श्री पं. काशीनाथ रघुनाथ वैशम्पायन (महाराष्ट्र), (५) श्री मुकुंद श्रीकृष्ण पधे-गुरुजी (विदर्भ नागपुर), (६) श्री भास्कर गणेश जोगलेकर (बम्बई), (७) श्री अम्बिका प्रसाद त्रिपाठी (आसाम) तथा (८) श्री देवदत्त शर्मा (सिन्ध-राजस्थान)।

## अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रदर्शनी

अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार-सम्मेलनके अवसरपर राष्ट्रभाषा-प्रचारके कार्यकी झांकी बतानेवाली 'राष्ट्रभाषा प्रदर्शनी'भी 'समिति'की ओरसे आयोजित की जाती है।

रजत जयन्ती महोत्सवके अवसरपर आयोजित 'अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा-प्रदर्शनी' अपने ढंगकी एक अविस्मरणीय प्रदर्शनी थी और महोत्सवका विशेष

आकर्षण रही। इस विशाल प्रदर्शनीमें हिंदी-प्रचारका कार्य करनेवाली लगभग सभी प्रमुख संस्थाओं तथा 'समिति' से सम्बद्ध प्रादेशिक समितियों एवं केन्द्रीय तथा राज्य-सरकारोंकी ओरसे, हिंदी-प्रचारकी गतिविधियोंके सुन्दर कक्ष सजाए गये थे। उसी प्रकार कई प्रकाशकोंने तथा अन्य संस्थाओंनेभी इस प्रदर्शनीमें भाग लिया था।

इस प्रदर्शनीका उद्घाटन महाराष्ट्र-राज्यके तत्कालीन मुख्यमंत्री माननीय श्री. यशवंतरावजी चव्हाणके शुभ हाथों हुआ। रजत-जयन्ती-महोत्सवके अवसरपर विविध सांस्कृतिक कार्यक्रम—कवि-सम्मेलन, पदवीदान-समारोह, भाषण तथा निबन्ध-स्पर्धा आदि कई कार्यक्रमोंका आयोजन किया गया।

'समिति' का यह रजत-जयन्ती-महोत्सव अनेक दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण एवं सफल सम्पन्न रहा, जो 'समिति' तथा राष्ट्रभाषा-प्रचारके इतिहासमें अविस्मरणीय रहेगा। इस महोत्सवमें भारतके विभिन्न प्रदेशोंके ढाई हजारसेभी अधिक प्रतिनिधियों तथा हिंदी-प्रेमियों एवं विदेशोंकेभी कुछ लोगोंने भाग लिया था।

### राष्ट्रभाषा बालमन्दिर :

'समिति' के प्रांगणमेंही 'समिति' की ओरसे एक 'बाल-मन्दिर' चलाया जाता है, जिसका हिंदी-नगर एवं रामनगर-वर्धाके निवासी लाभ उठाते हैं। 'बाल-मन्दिर' राज्य-सरकारके शिक्षा-विभाग-द्वारा मान्यभी किया गया है।

### 'समिति' के भवन :

आरंभमें 'समिति' का कार्यालय किरायेके स्थानमें चला। सन १९४२ में 'समिति' ने निजी भूमि खरीद ली। उसमें धीरे-धीरे आवश्यकतानुसार 'समिति' के कई भवन निर्माण किये गये।

कार्यालय-भवन, सभा-भवन, महाविद्यालय-भवन, रोहित-कुटीर, कार्यकर्ता-निवास, परीक्षा-विभाग-भवन, प्रेस-भवन, औषधालय, अतिथि-भवन एवं हिंदी नगरका डाकघर आदि लगभग छः लाख रुपयोंकी लागतके भवन 'समिति' की १६ एकड़ भूमिके विशाल क्षेत्रमें आज स्थित हैं, जिसे एक स्वतंत्र 'हिंदी-नगर' कॉलोनीका स्वरूप प्राप्त हुआ है। 'समिति' का खेती और उद्यान विभागभी है, जिसके अंतर्गत 'समिति' की इमारतोंकी देख-भाल तथा निर्माणका कार्य चलता है।

### प्रांतीय कार्यालय : भवन योजना :

सन १९५१ में 'समिति' ने एक विशेष योजना बनायी, जिसके द्वारा सम्बद्ध प्रांतीय समितियोंकी कार्यालयोंके लिए भी निजी भवन बनाने व प्रांतीय समितियोंको आर्थिक अनुदान देनेका निश्चय हुआ। उसके अनुसार उत्कल प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, गुजरात राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, विदर्भ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति तथा मणिपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति क्रमशः कटक, अहमदाबाद, नागपुर और मणिपुरमें अपने भवनोंका निर्माण कर चुकी हैं।

उसी प्रकार महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, जयपुर, मध्य-प्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, भोपाल, तथा बम्बई प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, बम्बईकी ओरसेभी निजी भवनोंकी योजनाएँ बनायी गयी हैं।

बडौदा, सूरत, गंजाम, बेलगाँव और नसिराबादकी स्थानीय राष्ट्रभाषा प्रचार समितियोंके भवनके लिए भी 'समिति' ने आर्थिक सहायता दी है।

## 'एक हृदय हो भारत जननी'

'समिति' अपने इस बोध सूत्रके लक्ष्यमें अपने राष्ट्रीय कार्यको, 'समिति' के निष्ठावान प्रचारकों एवं केन्द्र-व्यवस्थापकों तथा हिंदी प्रेमी जनताके बलपर बढाते कायम सतत प्रयत्नशील रही है। अनेक संकटोंका सामना कर, 'समिति' ने भारतकी एक गौरवशालिनी संस्थाके रूपमें, भारतकी जनताके हृदयमें अपना विशेष स्थान प्राप्त कर लिया है। 'समिति' का भविष्य बहुतही उज्ज्वल है और राष्ट्रकी भावनात्मक एकता संपादित करनेके कार्यमें उसका योगदान चिरस्मरणीय है।

## राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धासे सम्बद्ध संस्थाएँ :

### (१) महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पुणे

८६६, सदाशिव पेठ, पो बॉ न ५५८ पुणे २

हिंदी प्रचारका प्रारंभ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी स्थापनासे पहलेही पूनामें ता २१ जून १९३४ को स्व ग र वैशंपायन-गुरुजीके प्रयत्नोंसे म गांधीजीके शुभ-हाथों 'हिंदी प्रचार संघ,' पुणेकी स्थापना हुई थी तथा ता २० जुलाई १९३४ को प श्री नारायणशास्त्री वालावलकरजीके प्रयत्नोंसे कोल्हापुरमें 'श्रीमत दयानंद नि शुल्क हिंदी विद्यालय'की स्थापना की गयी थी। अर्थात महाराष्ट्रमें बहुत पहलेही हिंदी प्रचारके कार्यका श्रीगणेश हो चुका था। नासिक, अहमदनगर, सोलापुर, राजापुर, चिपलून, मालवण, रत्नागिरी आदि स्थानोंमेंभी हिंदी प्रचारका कार्य शुरू हो चुका था और परीक्षार्थियोंको 'दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा' की परीक्षाओंके लिए तैयार किया जाता था।

सन १९३६ मे 'वर्धामें राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' की स्थापना हुई। उसके बाद आचार्य श्री काकासाहब कालेलकर और श्री शंकरराव देवने ता १५-७ ३६से १-८-३६ तक राष्ट्रभाषाके प्रचारार्थ महाराष्ट्रमें परिभ्रमण किया। पूनामें महाराष्ट्रके हिंदी प्रचारकोंकी एक परिषद आयोजित हुई और उक्त परिषदमें 'अखिल महाराष्ट्र हिंदी प्रचार समिति' की स्थापना की गयी। श्री शंकरराव देव अध्यक्ष चुने गये और श्री कृ ज उर्फ नाना धर्माधिकारी मंत्री संचालक नियुक्त हुए। वर्धा-समितिसे सम्बद्ध यह पहली 'समिति' है।

**श्रीमान् प्रताप सेठकी उदार सहायता :**

अमलनेरके दानी सज्जन श्रीमान् प्रताप सेठजीने महाराष्ट्रके हिंदी-प्रचार-कार्यको संगठित करनेके हेतु ६००० (छ हजार) रु. की उदार सहायता प्रदान की। इस आर्थिक सहायतासे महाराष्ट्रके विभिन्न स्थानोमे सवेतन राष्ट्रभाषा-प्रचारक नियुक्त किये गये । एव हिंदी प्रचार सम्मेलन तथा विद्वानोके व्याख्यानोका आयोजन किया गया ।

**नामपरिवर्तन :**

सन १९४० में, 'अखिल महाराष्ट्र हिंदी-प्रचार समिति'का नाम बदलकर महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' रखा गया । लगभग तीन सालतक 'महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' 'तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ'के अतर्गत कार्य करती रही।

**एक नयी संस्थाका जन्म :**

सन१९४५मे 'महाराष्ट्र समिति'के कुछ पदाधिकारियोने, वर्धा समितिसे अपना सम्बन्ध तोडकर, स्वतन्त्र-रूपसे कार्य करनेकी घोषणा कर दी और सन् १९४६ से स्वतन्त्र-रूपसे 'महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा'के नामसे अपना अलग कार्य शुरू किया।

ता. १-४-१९४५ की बैठकमे प्रा. द. वा. पोतदार अध्यक्षके नाते एव श्री. गो. प. नेने संगठन-मत्रीके नाते चुने गये । श्री शकरराव देव तथा प्रा. द. वा. पोतदार नेही 'समिति' के मूल उद्देश्य और नीति-रीतिमे परिवर्तन कर इस स्वतन्त्र सस्थाका निर्माण किया। श्री. कृ. ज. उर्फ नाना धर्माधिकारीके स्थानपर श्री. गो. प. नेने सगठन-मत्रीका काम करने लगे ।

वर्धा 'समिति'की दृढ़ नीति :-- वर्धा समितिके मत्री : श्री. भदन्त आनंद कौसल्यायनने इस सम्बन्ध-विच्छेदका निषेध किया और कुछ लोगोंकी इस नीतिको अवैधानिक बताकर 'महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति'का नया सगठन घोषित किया। उसके अनुसार ता. ८ नवम्बर १९४५ को निम्नानुसार पदाधिकारियोंका निर्वाचन हुआ :—अध्यक्ष : श्री. प्रा. वा. मा. दवडघाव, कोषाध्यक्ष : श्री. नी. वा जिन्नर, सगठन-मत्री : श्रीमती सोनूताई फाळे सदस्य : श्री. प्राचार्य श. वा. (मामा) दाडेकर, प्राचार्य के. रा. कानिटकर और मं. श्री. दा. सातवळेकर । सन १९४६ नवम्बरसे श्रीमती सोनूताई फालेके स्थानपर श्री. पं. मु. डागरे, बी. ए., बी. टी. कोविदको सचालकके पदपर नियुक्त की गयी और तबसे लेकर श्री. डागरेजीके सुयोग्य सचालनमे 'समिति'का कार्य विकसित होता जा रहा है । इस प्रकार वर्धा-समितिसे सम्बद्ध 'महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' का कार्य जारी रहा और वह आज भी महाराष्ट्रमे हिंदी प्रचार-प्रसारका कार्य सुचारु रूपसे कर रही है। 'समिति'के प्रचार-प्रयत्नोसे महाराष्ट्रके साढ़ेपाँच लाखसे भी अधिक लोगोंने राष्ट्रभाषा हिंदीका ज्ञान प्राप्त किया है। लगभग छ. सौ प्रमाणित प्रचारको,

चारसौ परीक्षकों एव पांच सौ केंद्र-व्यवस्थापकोंके सहयोगसे 'समिति'का कार्य सुन्दर ढंगसे चल रहा है। आज भी प्रत्येक वर्षमें, २५ हजारसे अधिक परीक्षार्थी, महाराष्ट्रसे वर्धा-समितिकी विभिन्न परीक्षाओंमें सम्मिलित होते हैं। 'समिति' आज एक रजिस्टर्ड-सरकारमान्य तथा लोकशाही तत्वानुसार कार्य करनेवाली प्रातिनिधिक लोक-सस्था है। 'समिति'का अपना विधान बना हुआ है। सरकार-मान्य लेखेक्षक (चार्टर्ड-अॅकाउन्टेन्ट) के द्वारा उसके वार्षिक हिसाब-किताबका जाँच-कार्य होता है। कार्यकारिणी तथा सर्व-साधारण समितिके द्वारा उसका वित्तसकल्प (बजट) बनता है और प्रचार-कार्यकी योजना एव सर्व-साधारण नीति निर्धारित होती है।

**'महाराष्ट्र समिति'के वर्तमान पदाधिकारी :**

ता. ३० जून, १९६२ को हुई महाराष्ट्रकी सर्वसाधारण बैठकमें निम्नानुसार पदाधिकारी निर्वाचित हुए :—

अध्यक्ष : माननीय श्री. यशवतराव चव्हाण (प्रतिरक्षा-मत्री' भारत-सरकार),
उपाध्यक्ष : माननीय श्री. न. वि. उपाख्य काकासाहब गाडगीळ,
उपाध्यक्ष : माननीय श्री. मधुकरराव चौधरी (मत्री : महाराष्ट्र-राज्य)
कोषाध्यक्ष : श्री. श्रीनिवास मून्दडा,
अतर्गत-लेखेक्षक : श्री माधवराव घुमाळ
सचालक : श्री. प. मु. डागरे, बी ए., बी. टी, कोविद।

**'समिति'का कार्यक्षेत्र :**

महाराष्ट्रके निम्नलिखित १२-जिलोंमें, 'समिति'का कार्य फैला हुआ है : जिले :— अहमदनगर, कुलाबा, कोल्हापुर, जलगाँव, ठाणे, धुळे, नाशिक, पुणे, रत्नागिरी, सागली, सातारा, और सोलापुर तथा गोमतक।

इन सभी जिलोंमें तथा कल्याण-कॅम्प (सिन्धुनगर-उल्हासनगर), कोल्हापुर-शहर, पुणे-शहर और सोलापुर शहरमें 'समिति'के अतर्गत जिला-समितियाँ एवं शहर-राष्ट्रभाषा प्रचार समितियाँ सगठित की गयी है। इन सब अतर्गत-समितियोंके सहयोगसे महाराष्ट्रके प्रचार सगठनका-कार्य सम्पन्न होता है।

**'समिति'की विविध प्रवृत्तियाँ :**

'जयभारती' :— 'समिति'की यह मासिक मुख-पत्रिका सचालक श्री. प. मु. डागरेजीके सपादकत्वमें सन १९४७ से जून १९६२ तक प्रकाशित होती रही। राष्ट्रभाषा-क्षेत्रके उदीयमान लेखकों तथा राष्ट्रभाषा-परीक्षार्थियोंके लिये यह पत्रिका बहुतही उपयुक्त हुई। फिलहाल इसका प्रकाशन स्थगित है।

**प्रकाशन :**

'समिति'के प्रकाशन-विभागकी ओरसे निम्नानुसार पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं : 'बातचीत' (बातचीत' परीक्षाके लिये उपयोगी),' 'बापूकी बातें' (म. गाधी-

जीके जीवनके कुछ प्रभावी प्रसग), 'अमावसकी रात' (महाराष्ट्र-राज्य सरकार-द्वारा पुरस्कृत मराठी नाटक "अशीच एक रात्र येते"का हिंदी अनुवाद)।

'समिति'के सचालक श्री प मु डागरेजी तथा अन्य कार्यकर्त्ताओके सम्पादन मे, महाराष्ट्र-राज्यके स्कूलोंके लिये उपयोगी "जयभारती-पाठमाला" सम्पादित की गयी है, जिसका प्रकाशन अन्य प्रकाशकके द्वारा करवाया गया है। महाराष्ट्रके कई स्कूलोमे पाठ्य-पुस्तकके रूपमे, यह "जयभारती-पाठमाला" पढाई जा रही है।

## तुलसी विद्या-निकेतन तथा महाविद्यालय :

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी राष्ट्रभाषा प्रारंभिकसे कोविद एव राष्ट्र-भाषा-रत्नतककी परीक्षाओकी नियमित पढाईका सुचारु प्रबध इसमे किया गया है। सुयोग्य अध्यापकोके मार्गदर्शनमे, पूना शहरके कई हिंदी प्रेमी इस 'विद्या निकेतन' तथा 'महाविद्यालय'से लाभ उठाते हैं।

## शिक्षक-सनद-विद्यालय :

सन १९४७ मे स्थापित इस विद्यालयमे महाराष्ट्र-राज्यके शिक्षा विभाग-द्वारा सचालित "ज्यूनियर तथा सीनियर हिंदी-शिक्षक-सनद" परीक्षाकी पढाईका प्रबध किया गया है। महाराष्ट्र-राज्यके स्कूलोके हिंदी अध्यापकोके लिये राज्य-सरकारके द्वारा यह परीक्षा उत्तीर्ण करना आवश्यक किया गया है।

## पुरुषोत्तम ग्रथालय तथा राष्ट्रभारती ग्रथालय :

"समिति'के 'पुरुषोत्तम-ग्रथालय'मे हिंदी साहित्यकी लगभग पांच हजार पुस्तके सग्रहीत हैं।

'राष्ट्रभारती-ग्रथालय' केंद्रीय सरकारको अनुदान-योजनाके अतर्गत इस ग्रथालयकी स्थापना सन १९६१ मे की गयी है। इसमे हिंदीकी लगभग दो हजार पुस्तके सग्रहीत ह।

## आनन्द वाचनालय :

हिंदी-मराठीकी लगभग ३०-४० पत्र-पत्रिकाएँ वाचनालयमे आती हैं। यह वाचनालय सबके लिये नि शुल्क एव मुक्त-द्वार रखा गया है।

## हिन्दी साहित्य सदन (पुस्तक-विक्री-विभाग)

'समिति'के इस विभागके द्वारा वर्धा-समितिकी पाठ्य-पुस्तके तथा अन्य हिंदी प्रकाशनोकी विक्रीकी व्यवस्था की जाती है।

### भारती वाग्वर्द्धिनी सभा :

इसमे राष्ट्रभाषाके परीक्षार्थियोंकी संभाषण-शक्तिका विकास करनेके हेतु, परीक्षोपयोगी निबन्ध-विषयोंपर चर्चा होती है ।

### भारती कलावृन्द :

हिंदी-नाटकोंके द्वारा, सर्व-सामान्य जनतामे हिंदीका प्रचार एवं हिंदीके प्रति रुचि उत्पन्न करनेकी दृष्टिसे इसकी स्थापना की गयी है । इस नाट्याभिनय-विभागके द्वारा अबतक निम्न-लिखित नाटक सफलताके साथ खेले गये हैं । :—
(१) अमावसकी रात, (२) रिपोर्टर, (३) मीना कहाँ है, (४) भोरका तारा, (५) देवता, तथा (६) शारदीया, एवं अन्य छोटे-बड़े एकाकी आदि।

### अ. भा. राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका तीसरा अधिवेशन :

अ. भा. राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका तीसरा अधिवेशन, महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पुणेंके तत्वावधानमे सन १९५१ के मई महीनेमे पूनामे सफलता-पूर्वक सम्पन्न हुआ ।

इसका उद्घाटन भारत-सरकारके तत्कालीन मंत्री श्री. न. वि. उपाख्य काका-साहब गाडगीळजीने तथा अध्यक्ष-स्थान श्री. वियोगीजी हरिने ग्रहण किया था। इसी अधिवेशनमे हिंदी साहित्यकी सेवा करनेके उपलक्ष्यमे शान्ति-निकेतनके आचार्य श्री. क्षितिमोहन सेनको १५०१ रु. का 'महात्मा-गांधी-पुरस्कार' एवं ताम्रपट्ट समर्पित किया गया ।

इस सम्मेलनके अवसरपर राष्ट्रभाषा-प्रदर्शनीकाभी आयोजन किया गया । सम्मेलन-अधिवेशनमे लगभग एक हजार प्रतिनिधियोंने भाग लिया । इस अवसरपर "जयभारती"का विशेषांक प्रकाशित किया गया, जिसमे महाराष्ट्रके राष्ट्रभाषा-प्रचारकों तथा केन्द्रव्यवस्थापकोंका परिचय दिया गया था ।

### "राष्ट्रभाषा हिन्दी भवन" योजना :

'समिति'ने अपने निजी "राष्ट्रभाषा-हिंदी-भवन"की एक योजना बनायी है । उसके लिये पूना शहरके मध्यवर्ती स्थानमे एक प्लॉट खरीदा गया है । 'भवन-निधि' के लिये प्रयत्न चालू हैं । उसके लिये हिंदीप्रेमी जनता तथा राष्ट्रभाषाके परीक्षार्थियोंसे अपील की गयी है । आशा है, महाराष्ट्रकी हिंदी-प्रेमी जनताके आशीर्वादसे 'भवन'का कार्य आरंभ हो जाएगा और 'समिति'का अपना–निजी शानदार भवन शीघ्रही खड़ा हो जाएगा । 'समिति'की ओरसे 'हिंदी-दिवस' तथा अन्य उत्सव-त्यौहार समारोह-पूर्वक, धूमधामसे मनाये जाते हैं । फलतः 'समिति'का कार्य सबके सहयोगसे बढता जा रहा है ।

## (२) गुजरात प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, अहमदाबाद.

[पता : राष्ट्रभाषा-हिन्दी-भवन; एलिस ब्रिज, अहमदाबाद ६.]

**हिन्दी प्रचारका आरंभ** : गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद; श्री दक्षिणामूर्ति विद्या-मन्दिर, भावनगर तथा राजकोट सेवा-संघ आदि राष्ट्रीय संस्थाओंके द्वारा हिन्दी प्रचारका कार्य बहुत पहलेसे हो रहा था। बड़ौदा रियासतमें तो सरकारी कर्मचारियोंके लिए हिन्दी सीखना अनिवार्य किया गया था और गुजराती तथा नागरी, दोनों लिपियाँ, राज्य-लिपियोंके रूपमें मान्य की गयी थीं।

सूरतमें सन १९३५ में श्री परमेष्ठीदास जैनके प्रयत्नोंसे 'राष्ट्रभाषा प्रचारक मंडल' की स्थापना हुई और अहमदाबादमें गुजरात विद्यापीठ तथा नवजीवन-ट्रस्टके अंतर्गत श्री. मोहनलाल भट्टने राष्ट्रभाषा-प्रचार-कार्यका श्रीगणेश किया। सन १९२८में श्री. जेठालालजी जोशीके प्रयत्नोंसे अहमदाबादमें हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयागकी परीक्षाओंका केन्द्र खोला गया और आजभी उन्हींके संचालनमें वह केन्द्र सुचारु-रूपसे चल रहा है।

**स्थापना** : सन १९३८ में हरिपुरा-कांग्रेस-अधिवेशनके अवसरपर श्री. जमनालालजी बजाजकी अध्यक्षतामें एक राष्ट्रभाषा परिषद हुई। उसके पहले सन १९३७ में श्री. मोहनलालजी भट्टके साथ, वर्धा-समितिके तत्कालीन मंत्री श्री. मो. सत्यनारायणजीने गुजरातमें राष्ट्रभाषा-प्रचारार्थ भ्रमण किया। परिणामस्वरूप गुजरातके कई स्थानोंमें राष्ट्रभाषा-प्रचार-केन्द्र खुलने लगे। श्री. जेठालालजी जोशीको प्रचार-कार्य सौंपा गया। ता. १–१–१९४४ को 'गुजरात राष्ट्रभाषा प्रचार समिति'की विधिवत् स्थापना हुई। श्री. रामनारायण भाई पाठक-अध्यक्ष; डॉ. चम्पकलाल घीया-उपाध्यक्ष तथा श्री. परमेष्ठीदास जैन-मंत्री एवं श्री. कमलेश भारतीय–संचालक नियुक्त किये गये। श्री. कमलेशजीने एक साल तक इस कार्यको निभाया, बादमें श्री. जेठालालजी जोशीने मंत्री-संचालकका कार्यभार सम्हाला और तबसे आजतक बड़ी लगन, निष्ठा एवं कुशलतापूर्वक वे गुजरात-समितिका कार्य संभाल रहे हैं। उनके मार्गदर्शन तथा संचालनमें गुजरातको राष्ट्रभाषा-प्रचारके क्षेत्रमें सर्वोपरि स्थान प्राप्त हुआ है। सन १९४६ से श्री. कन्हैयालाल मा. मुन्शीजीने गुजरात-समितिके अध्यक्षका पद-भार ग्रहण किया है। कार्याध्यक्षाके रूपमें श्रीमती शारदाबहन मेहताका सहयोग कई वर्षोंतक 'समिति' को मिलता रहा और

उनकी निवृत्तिके उपरात श्री. हरसिद्धभाई दिवेटियाने इस पदको सुशोभित किया। इन सबके मार्गदर्शनसे समितिको बहुतही लाभ हुआ। सन १९६१ से इस पदपर श्रीमती हंसाबहन मेह्ताका सहयोग प्राप्त हो रहा है। उपाध्यक्षके रूपमें श्री. ग. वा. उर्फ दादासाहेब मावलंकर, डॉ. हरिप्रसाद देसाई, प्रा. रा. व. आठवले, श्री हरभाई त्रिवेदी, श्री. गौरीशंकर जोशी 'धूमकेतु' तथा श्री. डोलरराय माकडका सहयोग एव मार्गदर्शन 'समिति'को मिला है।

गुजरात-समितिके वर्तमान पदाधिकारी निम्नानुसार हैं:— अध्यक्ष: श्री. क. मा. मुन्शी, उपाध्यक्ष: श्री.गजाननभाई जोशी तथा श्री. रमणिकलाल इनामदार, कार्याध्यक्ष: श्रीमती हसाबहन मेहता, कोषाध्यक्ष: श्री. सन्तप्रसाद भट्ट तथा मंत्री-संचालक श्री. जेठालाल जोशी।

## 'समिति'की प्रवृत्तियाँ.

**प्रकाशन :**

"राष्ट्रवीणा" : 'समिति' की यह त्रैमासिक साहित्यिक पत्रिका सन १९५१ से सम्पादक-मण्डलके सहयोगसे श्री. जेठालालजी जोशीके मार्ग-दर्शन-सम्पादनमें नियमित रूपसे प्रकाशित हो रही है। सन् १९६४ से मासिक-पत्रिकाके रूपमें इसका प्रकाशन हो रहा है।

गुजरात-समितिके अन्य प्रकाशन: (१) कविवर सुमित्रानन्दन पन्तके कुछ काव्योंका गुजराती-पद्यानुवाद : "सुमित्रानन्दन पन्तनां केटलाक काव्यो" के नामसे 'समिति' ने प्रकाशित किया है। (२) "गुजरातीकी प्रतिनिधि कहानियाँ" शीर्षक कहानी-संग्रहमें गुजरातीकी सुरुचिपूर्ण १५ कहानियोंका हिन्दी अनुवाद दिया गया है। (३) हिन्दी-हिन्दी-गुजराती कोशके प्रकाशनकी योजनाभी 'समिति' की ओरसे बनायी गयी है।

## सरदार वल्लभभाई पटेल विजय पद्मः वक्तृत्व स्पर्धा:

सरदार वल्लभभाई पटेलकी पुण्य-स्मृतिमें, सन १९५४ से 'सरदार वल्लभभाई पटेल विजय-पद्म (ट्राफी)' वक्तृत्व-स्पर्द्धाओंका आयोजन किया जा रहा है। इसमें १८ से २५ वर्षतक की उम्रके हिन्दीतर-भाषी हिन्दी-प्रेमी भाग ले सकते हैं। विजेताओंको निम्नानुसार पुरस्कार दिया जाता है: — प्रथम पुरस्कार १०१ रु ) द्वितीय ५१ रु ) तथा तृतीय ४१ रु.) गुजरातके विभिन्न स्थानोंमे इसका आयोजन होता रहता है। अबतक अहमदाबाद, बडौदा, वल्लभ विद्यानगर आदि स्थानोंमे इसका आयोजन हो चुका है।

### राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलन तथा शिविर :

सन १९५४ से प्रांतीय तथा विभागीय राष्ट्रभाषा-प्रचार सम्मेलनों एवं शिविरोंका आयोजन प्रतिवर्ष होता है। जिला-राष्ट्रभाषा-प्रचार-सम्मेलनभी आयोजित किये जाते हैं। इन शिविर-समेम्लनोंमें राष्ट्रभाषा-प्रचारकी वर्तमान समस्याओं एवं प्रचार-कार्य बढ़ानेकी योजनाओंपर विचार-विनिमय होता है।

### अ. भा. राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका दूसरा अधिवेशनः

सन १९५० में अ. भा. राष्ट्रभाषा-प्रचार-सम्मेलनका दूसरा अधिवेशन गुजरात-समितिके तत्त्वावधानमें, अहमदाबादमें सम्पन्न हुआ। इसी अधिवेशनमें 'महात्मा गांधी-पुरस्कार' का ऐतिहासिक निर्णय लिया गया।

### 'राष्ट्रभाषा-हिन्दी-भवन' :

गुजरात-समितिके प्रांतीय-कार्यालयके लिए, अहमदाबादमें 'राष्ट्रभाषा-हिन्दी-भवन' का निर्माण किया गया और सन् १९६० से इसी शानदार भवनमें 'समिति' का कार्य सुन्दर ढँगसे चल रहा है।

**'समिति'का संगठन :** 'समिति' 'रजिस्टर्ड संस्था है और अपनी व्यवस्थापिका-समितिके मार्गदर्शन तथा सहयोगसे समस्त गुजरात (कच्छ-सौराष्ट्र सहित) में राष्ट्रभाषा-प्रचार-प्रसारके कार्यमें अग्रसर है। जिलोंके लिए विभागीय समितियाँभी स्थापित की गयी हैं। गुजरातसे अबतक लगभग ११ लाख परीक्षार्थियोंने राष्ट्रभाषा-हिन्दीकी शिक्षा ग्रहण की है और आजभी प्रतिवर्ष लगभग पौन लाख परीक्षार्थी 'समिति' की राष्ट्रभाषा-परीक्षाओंसे लाभ उठा रहे हैं। राष्ट्रभाषाके प्रचार-प्रसारमें, गुजरात-समितिको एक विशेष स्थान प्राप्त हुआ है, जो हिन्दीतर भाषा-भाषी अन्य प्रदेशोंके लिए आदर्शके समान है।

### (३) बम्बई प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, बम्बई.

[पताः कांग्रेस-भवन, डी ब्लोक, विट्ठल सदन, दूसरा मजला, विट्ठलभाई पटेल रास्ता, बम्बई – ४.]

**हिन्दी प्रचारका श्रीगणेश :** सन् १९२१ में कांग्रेस-भवनकी कीर्ति बिल्डिंगमें बम्बई-प्रदेश कांग्रेस-समितिकी ओरसे सेवादल द्वारा हिन्दीकी पढ़ाईका सर्वप्रथम वर्ग खोला गया। सन १९२४ में बम्बई महानगरपालिका (म्युनिसिपल कॉर्पोरेशनकी) ओरसे हिन्दी पढ़ाईकी व्यवस्था प्रारंभ हुई और मारवाडी सम्मेलनकी ओरसेभी हिन्दी-शिक्षाके कार्यमें सहयोग प्राप्त हुआ।

सन १९३० के 'नमक-सत्याग्रह-आन्दोलन' के कारण हिन्दी-प्रचार-कार्य को बहुत बल मिला। सन १९३१ में श्री वेलजी लखनसी नप्पूकी अध्यक्षतामें 'हिन्दी-प्रचार-सभा'की स्थापना हुई और श्री. रा. शंकरन्ने मंत्रीका कार्य सभाला। सन १९३५ में श्री. प्रेमचदजीकी उपस्थिति एव श्री. जमनालालजी बजाजकी अध्यक्षतामें 'हिन्दी-प्रचार-सभा' की विधिवत् स्थापना की गयी। परिणामस्वरूप बम्बईके हिन्दी प्रचार कार्यको सगठित रूप मिला। शुरूमें, यहां दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभाकी परीक्षाओंकी पढ़ाई होती रही।

श्री. विट्ठलभाई पटेल, श्री. वेलजी नलनसी नप्पू, श्री. जमनालाल बजाज, श्री. राजा गोविंदलाल बन्सीलाल पित्ती, सुश्री पेरिनबहन केप्टन, डॉ ना. सु. हार्डिकर, श्री. कृष्णलालजी वर्मा, श्री भा. ग जोगलेकर तथा श्री. रा शकरन् आदि महानुभावोंका हिन्दी-प्रचारके कार्यमें सतत सहयोग प्राप्त हुआ।

**स्थापना** : सन १९३६ में, राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धाकी स्थापनाके उपरान्त, 'बम्बई-हिन्दी-प्रचार-सभा'को सन १९३७ में 'बम्बई प्रातीय राष्ट्रभाषा-प्रचार सभा'के नामसे राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धासे सम्बद्ध किया गया। प्रातीय-सचालकके नाते श्री. कातिलाल जोशीकी नियुक्ति हुई। तबसे श्री. कातिलालजी जोशी, इस पदको बड़ी योग्यतापूर्वक सभाल रहे। अध्यक्षके नाते श्री राजा गोविंदलाल बन्सीलाल पित्ती तथा श्री. मगलदास पक्वासाके मार्गदर्शनका 'सभा' को अनेक वर्षोतक लाभ मिलता रहा।

**वर्तमान पदाधिकारी :** बम्बई प्रातीय-राष्ट्रभाषा-प्रचार-सभाके वर्तमान पदाधिकारी निम्नानुसार हैं :—

**अध्यक्ष :** श्री. स. ल सिलम (महाराष्ट्र-राज्य-विधान सभाके भूतपूर्व सभापति एव पॉन्डीचेरी-राज्यके वर्तमान उप-राज्यपाल),

**उपाध्यक्ष :** श्रीमती सुलोचनाबहन मोदी (बम्बई महानगर पालिकाकी भूतपूर्व मेयर)

**उपाध्यक्ष :** श्री रामसहाय पाण्डेय (बम्बई प्रदेश कांग्रेस समितिके भूतपूर्व उपाध्यक्ष एव वर्तमान लोकसभा-सदस्य)

**कोषाध्यक्ष :** श्री. शिवकुमार भुवालका

**मंत्री-संचालक :** श्री. कातिलाल जोशी

**राष्ट्रभाषा प्राथमिक परीक्षा :** 'सभा' की ओरसे सन १९५६ से 'राष्ट्रभाषा-प्राथमिक' परीक्षाका सचालन किया जा रहा है जिसमें प्रतिवर्ष ६ हजारसे अधिक परीक्षार्थी सम्मिलित होते हैं। अबतक ३० हजारसे अधिक परीक्षार्थियोंने सभाकी इस परीक्षासे लाभ उठाया है।

'सभा' की प्रवृत्तियाँ : बम्बई महानगर एवं उपनगरोमें 'सभा' के अंतर्गत ५० से अधिक राष्ट्रभाषा-परीक्षा-केन्द्र चल रहे हैं। बम्बईके ८७ राष्ट्रभाषा-शिक्षण-केन्द्र, ११७ राष्ट्रभाषा-विद्यालय तथा १६ राष्ट्रभाषा-महाविद्यालयोंमें राष्ट्रभाषा-प्रारंभिकसे राष्ट्रभाषा-रत्न तककी पढ़ाईकी व्यवस्था की गयी है।

राष्ट्रभाषा-स्नेहसम्मेलन, शिबिर तथा प्रतियोगिताएँ और पदवीदान समारोहः 'सभा' अपनी ओरसे प्रतिवर्ष राष्ट्रभाषा-प्रचारकोंका स्नेह-सम्मेलन तथा शिबिर आयोजित करती है। भाषण, नागरी-सुलेखन, काव्य-पठन काव्य-रचना, तथा नाट्याभिनय आदिकी प्रतियोगिताओंकाभी प्रतिवर्ष आयोजन होता है। सन १९३७ से 'सभा' की ओरसे प्रतिवर्ष पदवीदान-समारोह मानाया जाता है। 'सभा' के पदवीदान-समारोह अपनी विशेषता रखते हैं।

गांधी-जयन्ती : निबन्ध-स्पर्द्धा : म. गांधीजीकी पुण्य-स्मृतिमें, प्रतिवर्ष गांधी-जयन्तीके अवसरपर हिन्दी निबंध-स्पर्द्धाका आयोजन होता है। इसमें राष्ट्रभाषा-वर्गोंके विद्यार्थी तथा स्कूल-कॉलिजोंके छात्र काफी सख्यामें सम्मिलित होते हैं। निम्न एवं उच्च कक्षाके छात्रोंके लिए अलग-अलग स्पर्धा रखी जाती है और प्रयेक विभागके लिए क्रमश रु. २५, १५, तथा १०, पुरस्कार-स्वरूप दिये जाते हैं।

राष्ट्रभाषा पुस्तकालय : 'सभा' द्वारा राष्ट्रभाषा-पुस्तकालय भी चलाया जाता है जिसमें पाठ्य-पुस्तकोंके अलावा हिन्दीकी लगभग चार हजार पुस्तकें संग्रहीत हैं। राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, करांचीके पुस्तकालयकी पुस्तकें श्री. सूर्य प्रकाशजी-द्वारा इसमें भेंट स्वरूप दी गयी जिससे पुस्तकालय आरंभ हुआ।

अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा-प्रचार-सम्मेलनका चौथा अधिवेशन : सन् १९५२ में अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा-प्रचार-सम्मेलनका चौथा अधिवेशन 'सभा' के तत्वावधानमें माननीय श्री कन्हैयालाल मा. मुन्शीकी अध्यक्षतामें सम्पन्न हुआ। इसी अवसरपर वेदमूर्ति पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजीको राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिकी ओरसे 'महात्मा गांधी-पुरस्कार' समर्पित किया गया।

राष्ट्रभाषा भवन-योजना : 'सभा' ने अपने निजी राष्ट्रभाषा-भवनकी एक योजना बनायी है और उसके लिए भवन-निधिमें दान एकत्र किया जा रहा है।

'सभा' का संगठन : 'सभा' रजिस्टर्ड संस्था है और अपने १२०० से अधिक सदस्यो-प्रचारकों तथा कार्य-समिति एवं व्यवस्थापिका समितिके सहयोगसे, बम्बई तथा बृहद् बम्बईके क्षेत्रमें राष्ट्रभाषा-प्रचारका कार्य कर रही है। अबतक पाँच लाखसे अधिक लोगोने 'सभा' द्वारा राष्ट्रभाषाका ज्ञान संपादित

किया है और प्रतिवर्ष लगभग ३० हजार परीक्षार्थी 'सभा' के प्रयत्नोंसे राष्ट्रभाषाकी परीक्षाओंमें सम्मिलित होते हैं। बम्बई जैसे सर्व-भाषी महानगरमें, 'सभा' अपने एक हजारसे अधिक कार्यकर्त्ता-प्रचारकोंके सहयोगसे राष्ट्रभाषा-हिन्दीका व्यापक रूपसे प्रचार-प्रसार कर रही है।

## (४) विदर्भ राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, नागपुर

[पताः 'राष्ट्रभाषा-हिन्दी-भवन', उत्तर अंबाझरी मार्ग, नागपुर–२]

**कार्यारंभः** सन १९३६ में राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धाकी स्थापना हुई। उसके उपरान्त, सन १९३७ में उस समयके सी. पी. बेरार-प्रदेशमें राष्ट्रभाषा प्रचारका कार्य आरंभ करनेके हेतु, अमरावतीमें 'विदर्भ-नागपुर राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति' की स्थापना की गयी। वीर वामनराव जोशी तथा श्री. हरिहर रावजी देशपांडेके मार्ग-दर्शनमें हिन्दी-प्रचारका कार्य शुरू हुआ। श्री. कृष्णदासजी जाजू, श्री. कानडे शास्त्री, श्री. ब्रिजलाल बियाणी, श्री. तात्याजी वझलवार, श्रीमन्नारायणजी, दादा धर्माधिकारी आदिका भी इस कार्यमें सहयोग मिला। सन १९४५ तक इसका कार्यालय अमरावती रहा और सन १९४६ से वह नागपुरमें लाया गया। दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार-सभाके अनुभवी कार्यकर्त्ता एवं राष्ट्रभाषाके कर्मठ उपासक पं. श्री. हृषीकेशजी शर्मा को सन् १९४५ में प्रांतीय-संचालकका कार्य-भार सौंपा गया और तबसे लेकर आजतक वे बडी योग्यता एवं निष्ठापूर्वक यह कार्य संभाल रहे हैं। उनके कुशल नेतृत्वमें विदर्भका राष्ट्रभाषा-प्रचार-कार्य आशातीत प्रगति कर रहा है। श्रीमती शारदादेवी शर्मा, श्रीमती अनसूयाबाई काळे, श्री. काकासाहब पुराणिक एव पं. प्रयागदत्तजी शुक्ल आदिके सक्रिय सहयोगसे विदर्भमें राष्ट्रभाषा-प्रचार केन्द्रों, प्रचारकों एवं परीक्षार्थियोंकी संख्यामें काफी वृद्धि हुई है। सन १९४६ से नागपुर उच्च न्यायालयके मुख्य-न्यायाधीश और नागपुर विश्वविद्यालयके भूतपूर्व कुलगुरु डॉ. भवानीशंकर नियोगीजीका अध्यक्ष के रूपमें 'समिति' को अमूल्य लाभ मिल रहा है। कार्याध्यक्ष के नाते प्राचार्य शंकर रावजी लोढेका मार्गदर्शन प्राप्त हो रहा है।

**कार्यक्षेत्र :** वर्तमान महाराष्ट्र-राज्यके निम्न-लिखित ८ जिलोंमें 'समिति' का कार्य चल रहा है :— (१) अमरावती, (२) अकोला, (३) यवतमाल, (४) बुलढाना, (५) नागपुर, (६) भण्डारा, (७) चांदा और (८) वर्धा।

**'समिति' की प्रवृत्तियां :** राष्ट्रभाषा-प्रचार-सम्मेलन, शिविर तथा सांस्कृतिक-कार्यक्रमोंका समय-समयपर आयोजन किया जाता है। 'समिति' की ओरसे एक

विशाल राष्ट्रभाषा-पुस्तकालय भी संचालित किया जाता है जिसका नागपुरकी हिन्दी-प्रेमी जनता बहुत बड़ी संख्यामें लाभ उठाती है। 'समिति' की ओरसे बड़े शहरोंमें माहिती-केन्द्र एवं जिला-समितियोंकी स्थापना की गयी है। जिला-संगठकोंके द्वारा, जिलोंके केन्द्रोंका निरीक्षण होता है और प्रचार-कार्यको व्यापक रूपसे फैलानेके कार्यमें उनसे बहुत सहयोग प्राप्त होता है।

**पदवीदान तथा दीक्षान्त समारोह :** 'समिति'की ओरसे कोविद, रत्न' विशारद, साहित्य-रत्न आदि हिन्दीकी उच्च परीक्षाओंके स्नातकोंको प्रतिवर्ष सम्मान-पूर्वक पदवी-प्रदान की जाती है। इस अवसरपर सुख्यात हिन्दी साहित्यिक एवं नेतागणोंके प्रभावशाली दीक्षांत भाषण होते हैं तथा उनकी ओरसे हिन्दी-प्रचारके कार्यको प्रोत्साहन एवं आशी दि प्राप्त होते हैं।

**अ. भा. राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका पाँचवाँ अधिवेशन :** सन १९५३ में श्री. न. वि. ऊर्फ काकासाहब गाडगीळजीकी अध्यक्षतामें अ. भा. राष्ट्रभाषा-प्रचार-सम्मेलनका पाँचवाँ अधिवेशन नागपुरमें सम्पन्न हुआ। इस अवसरपर श्री. बाबुराव विष्णु पराडकरजीको 'महात्मा गांधी-पुरस्कार' समर्पित किया गया। इसी अधिवेशनमें, प्रतिवर्ष ता. १४ सितंबरको 'हिन्दी-दिवस' मनानेका महत्त्वपूर्ण निर्णय लिया गया।

**नाम-परिवर्तन :** राज्य-पुनर्रचनाके बाद विदर्भके ८ मराठीभाषा-भाषी जिले महाराष्ट्रमें सम्मिलित किये गये। अतः सन १९५६ में 'विदर्भ-नागपुर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति 'का नाम बदलकर ' विदर्भ राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, नागपुर' रखा गया।

**'राष्ट्रभाषा-हिन्दी भवन' :** 'समिति' ने डेढ़ लाख रुपयोंकी लागतसे अपने कार्यालयके लिए हालहीमें शानदार ' राष्ट्रभाषा-हिन्दी-भवन 'का निर्माण किया है। ' भवनके ' हेतु पुरानी मध्य-प्रदेश सरकारकी ओरसे एक एकड़ भूमि 'समिति 'को दानमें मिली। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धाकी ओरसे १५००० रु. एवं केन्द्रीय सरकारकी ओरसे २०,००० रु. की भवन-सहायता 'समिति ' को प्राप्त हुई है।

**आर्थिक-अनुदान :** पुरानी मध्य-प्रदेश सरकारकी ओरसे ' समिति 'को सन् १९५१ से ५,००० रु. का आर्थिक अनुदान प्रतिवर्ष मिलता रहा। महाराष्ट्र राज्य-सरकारने भी यह अनुदान चालू रखा है। उसी प्रकार केन्द्रीय सरकारकी ओरसे पुस्तकालय, शिबिर तथा सांस्कृतिक कार्यक्रमोंके लिए ' समिति 'को आर्थिक अनुदान प्राप्त होता है।

'समिति' का संगठन : 'समिति' रजिस्टर्ड संस्था है और अपनी कार्य-समिति एवं लगभग एक हजार राष्ट्रभाषा-प्रचारकों तथा छह सौसे अधिक प्रचार-केन्द्रोंकी सहायतासे विदर्भ-क्षेत्रमें राष्ट्रभाषा-प्रचारका कार्य आगे बढा रही है। 'समिति' के प्रयत्नोंसे अबतक विदर्भके पाँच लाखसे अधिक छात्र-छात्राओंने राष्ट्रभाषा-हिन्दीकी परीक्षाएँ दीं और आजभी प्रतिवर्ष लगभग पचास हजार हिन्दी-प्रेमी 'समिति' द्वारा राष्ट्रभाषाकी परीक्षाओंमें सम्मिलित कराए जाते हैं।

'समिति' की ओरसे प्रत्येक नये स्थापित केन्द्रको राष्ट्रभाषा-प्रचार-परीक्षाओंकी पाठ्य-पुस्तकोंका सच, केन्द्रके उपयोगार्थ भेंट-स्वरूप दिया जाता है। विदर्भमें समिति' का कार्य दिन दूना-रात चौगुना बढता जा रहा है।

## (५) उत्कल प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, कटक

[ पता : राष्ट्रभाषा रोड, कटक १ (उडीसा) ]

स्थापना : सन १९३२ में अखिल भारतीय कॉंग्रेस समितिका वार्षिक-अधिवेशन जगन्नाथपुरीमें सम्पन्न हुआ। इस अधिवेशनकी कार्यवाही हिन्दीमें करनेका निर्णय लिया गया था। फलत. उत्कलमें हिन्दी प्रचारकोंकी आवश्यकता महसूस की गयी। कई प्रचारक उत्कलमें पहुँचे और इस अधिवेशनके कार्यमें सहयोग दिया। कलकत्तासे श्री. अनसूयाप्रसादजी पाठक भी वहाँ पहुँचे और उन्होंने उडीसाके हिन्दी-प्रचार कार्यका श्रीगणेश किया। सन १९३३ में 'उत्कल प्रांतीय राष्ट्रभाषा सभा' की स्थापना हुई। शुरूमें यहाँ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयागकी परीक्षाओंकी पढ़ाई होती रही, किन्तु वर्धाकी राष्ट्रभाषा प्रचार समितिकी स्थापनाके बाद सन १९३७ में इसे वर्धा-समितिसे सम्बद्ध किया गया।

'सभा' के कार्यमें श्रीमती रमादेवी, श्री राधामोहन महापात्र, श्री. विश्वनाथ दास, श्री. काकासाहब कालेलकर, श्री. रामसुखजी, श्री वनमाली मिश्र, डॉ हरेकृष्ण मेहताब, प. लिंगराज मिश्र, डॉ. आर्तवल्लभ महान्ति, श्री गुरुचरण महान्ति, श्री. जगन्नाथ मिश्र, श्री. उदयनाथ षडंगी, श्री. वैद्यनाथ आचार्य आदि महानुभावोंका पूरा सहयोग मिलता रहा है। 'सभा' के वर्तमान सभापति है। स्वामी विचित्रानंद दास, मंत्री : श्री. राजकृष्ण बोस तथा सचालक श्री. अनसूयाप्रसाद पाठक।

'सभा' की प्रवृत्तियाँ : (१) राष्ट्रभाषा-पुस्तकालय : इसमे हिन्दी, सस्कृत तथा ओडियाकी ६,००० से अधिक पुस्तके सग्रहीत हैं। हिन्दीकी ५०-६० पत्रिकाएँ भी वाचनालयमें रहती हैं।

(२) राष्ट्रभाषा-पत्र : सन् १९४४ से 'सभा'की ओरसे मासिक मुखपत्रके रूपमें "राष्ट्रभाषा-पत्र" का नियमित प्रकाशन किया जा रहा है। इसमें परीक्षार्थियों, शिक्षकों तथा प्रचारकोंके उपयोगकी सामग्री प्रकाशित होती रहती है।

(३) राष्ट्रभाषा-समवाय प्रेस : सन् १९४८ में 'सभा'के इस प्रेसकी स्थापना हुई। इसमें "राष्ट्रभाषा-पत्र" तथा 'सभा' के अन्य प्रकाशन आदिकी छपाई होती है।

(४) प्रकाशन विभाग: 'सभा' के इस विभाग-द्वारा अबतक ५० से अधिक पुस्तकोंका प्रकाशन हो चुका है।

(५) हाथ कागज़ कारखाना : अ. भा. खादी तथा ग्रामोद्योग बोर्डकी ओरसे 'सभा' के तत्त्वावधानमें इस कारखानेका संचालन हो रहा है।

(६) अनुवाद समिति: ओडियासे हिन्दी और हिन्दीसे ओडियामें अनुवादित साहित्यके प्रकाशनका कार्य इस समिति-द्वारा होता है।

(७) राष्ट्रभाषा भवन : उत्कल सरकारकी ओरसे 'भवन' के लिए डेढ़ एकड़ भूमि दानमें मिली। उसी भूमिपर आज 'सभा'का राष्ट्रभाषा-भवन एवं राष्ट्रभाषा-समवाय प्रेस स्थित है। राज्य-सरकार तथा वर्धा-समितिकी सहायतासे सभा-कार्यालयके प्रांगणमें "गांधी-भवन" का भी निर्माण किया गया है।

राष्ट्रभाषा-रजत-जयन्ती : 'सभा'ने सन् १९५९ में अपनी रजत-जयन्ती मनायी। इस अवसरपर उत्कलका परिचय देनेवाला 'रजत-जयन्ती-ग्रंथ' 'सभा'की ओरसे प्रकाशित किया गया। डॉ. हरेकृष्ण मेहताबजीकी अध्यक्षतामें रजत-जयन्ती उपसमिति गठित की गयी और रजत-जयन्ती-ग्रंथके मुख्य संपादक भी डॉ. हरेकृष्ण मेहताब ही रहे।

आर्थिक-अनुदान: उत्कल सरकारने 'सभा'के कार्य-संचालन एवम् पुस्तकालयकी वृद्धि, शिविर-संचालन आदिके लिए, समय-समयपर पर्याप्त सहायता दी है। स १९५१ से उत्कल सरकार 'सभा' को प्रतिवर्ष १५००० रु. का अनुदान देती है। केन्द्रीय सरकारकी ओरसे सन १९५५ से 'सभा' को लगभग २५०० रु. की आर्थिक सहायता मिलती है। राज्य-सरकारके प्रशिक्षण-शिबिरोंके संचालनमें भी 'सभा'ने सहयोग दिया है।

राष्ट्रभाषा प्रचारका कार्य : 'सभा' के प्रयत्नोंसे अबतक उत्कल प्रदेशके ढाई लाखसे भी अधिक लोगोंने राष्ट्रभाषाका ज्ञान प्राप्त किया है। और

आज भी प्रतिवर्ष ३० हजार लोग 'सभा' द्वारा राष्ट्रभाषाकी परीक्षाओंमें सम्मिलित होते हैं।

उत्कल सरकारके सक्रिय सहयोग एवं संचालक श्री. अनसूयाप्रसादजी पाठक जैसे कर्मठ राष्ट्रभाषा-सेवीके प्रयत्नोंसे उत्कलका राष्ट्रभाषा-प्रचार-कार्य प्रगति कर रहा है।

## (६) आसाम राज्य राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, शिलांग.

[पता.— पो. शिलांग (आसाम)]

म. गांधीजीकी प्रेरणासे बाबा राघवदासजीने आसाममें राष्ट्रभाषा-प्रचारका कार्य शुरू किया। सन १९३८ में श्री. गोपीनाथ बारदोलाईकी अध्यक्षतामें 'आसाम हिन्दी-प्रचार-समिति' की स्थापना की गयी। सन १९३९ में काकासाहब कालेलकरजीकी अध्यक्षतामें गौहाटीमें असम प्रान्तीय हिन्दी-प्रचार-सम्मेलन सम्पन्न हुआ। स्थान-स्थानपर राष्ट्रभाषा-विद्यालय स्थापित हुए। श्री यमुनाप्रसाद श्रीवास्तव, सर्वप्रथम संचालक नियुक्त हुए। बाबा राघवदासजी, रायसाहेब श्री. हनुमान बक्स कनोई, श्री. गोपीनाथ बारदोलाई, डॉ. हरेकृष्णदास, श्री. कमलदेव नारायण, श्री. रामप्रसादजी, श्री. कामाख्याप्रसाद त्रिपाठी, डॉ. बिरंचिकुमार बरुआ, डॉ. वाणिकान्त काकती, श्री. देवकान्त बरुआ श्री. नीलमणिजी फूकन, श्री. चक्रेश्वर भट्टाचार्य, श्रीमती नलिनीदेवी कमलदेव श्री. छगनलाल जैन, श्री अम्बिका प्रसाद त्रिपाठी, श्री विपिनचन्द्र गोस्वामी, श्री. राजकुमार कोहली आदिके सहयोगसे आसाममे राष्ट्रभाषा-प्रचारका कार्य आगे बढने लगा।

श्री. कमलदेव नारायण तथा श्री. छगनलालजी जैनने कुछ समय तक प्रांतीय-संचालकका कार्य निभाया। सन् १९५२ से श्री. जीतेन्द्रचन्द्र चौधुरीजी प्रांतीय-संचालकका कार्य बड़ी कुशलता-पूर्वक संभाल रहे हैं। उनके मार्ग दर्शनमे, आसाममें राष्ट्रभाषा-प्रचारका कार्य खूब बढ़ता जा रहा है। सन् १९४३ में 'आसाम हिन्दी-प्रचार समिति' का नाम बदलकर 'असम-राज्य राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति' रखा गया और उसका कार्यालय गौहाटीसे शिलांगमें स्थानान्तरित किया गया।

### वर्तमान पदाधिकारी:

अध्यक्ष: श्री नरेन्द्रनाथ शर्मा, एम्. एल्. ए; कार्याध्यक्ष: श्रीमती लावण्य प्रभा दत्त चौधुरी, उपाध्यक्ष: श्री. राधाकृष्ण खेमका, एम. एल्. ए.

तथा श्री. गोपालचन्द्र अग्रवाल, एड्वोकेट, कोषाध्यक्ष : श्री. कामाख्यालाल सिंहानिया, मंत्री-संचालक : श्री. जीतेन्द्रचन्द्र चौधुरी तथा प्रचार-मंत्री : श्री. भगवती-प्रसाद लाडिया।

'समिति' रजिस्टर्ड संस्था है और उसका अपना विधान बना हुआ है।

**प्रशिक्षण-केन्द्र** : सरकारकी ओरसे असममे हिन्दी शिक्षकोंको प्रशिक्षित करनेके हेतु 'समिति' को २०,००० रु. का अनुदान दिया गया। उसके अतर्गत सन १९५८ से १९६१ तकमें शिलचर, करीमगंज तथा [कामाख्या पर्वतपर प्रशिक्षण-केन्द्र चलाए गए।

**अ. भा. राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका १० वाँ अधिवेशन :** 'समिति' के तत्वावधानमे सन १९६१ मे अ. भा. राष्ट्रभाषा-प्रचार-सम्मेलनका १० वां अधिवेशन डॉ. हरेकृष्ण मेहताबकी अध्यक्षतामें, तिनसुकियामे मनाया गया। इसके स्वागताध्यक्ष असमके मुख्य-मंत्री श्री. विमलाप्रसाद चलिहा तथा उद्घाटक श्री. जगजीवनराम रहे। इस अवसरपर प्रख्यात उपन्यासकार श्री. अनन्त गोपाल शेवडेको 'महात्मा गांधी-पुरस्कार' प्रदान किया गया।

**हिन्दी-दिवस :** 'समिति' की ओरसे प्रतिवर्ष 'हिन्दी-दिवस' समारोह बड़े पैमानेपर मनाया जाता है तथा अन्य राष्ट्रीय-साहित्यिक समारोहभी आयोजित किए जाते हैं।

**प्रचार-कार्य :** 'समिति' के प्रचार-प्रयत्नोंसे अबतक लगभग अस्सी हजारसे अधिक लोगोंने राष्ट्रभाषा-हिन्दीकी शिक्षा पायी है और आजभी प्रतिवर्ष लगभग दस-बारह हजार परीक्षार्थी समिति-द्वारा वर्धा-समितिकी राष्ट्रभाषा-प्रचार-परीक्षाओंमें सम्मिलित होते हैं। बीचमें हिन्दी-हिंदुस्तानीके मतभेदको लेकर 'समिति' के कार्यमें गतिरोध पैदा हो गया था किन्तु जनताके सुदृढ समर्थन एवं निष्ठावान कार्यकर्त्ताओंके बलपर असममें 'समिति' का कार्य सतत अग्रसर होता जा रहा है।

## (७) पश्चिम बंग राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, कलकत्ता.

[पता :— ४२। १-बी, हालदारपारा रोड, कलकत्ता–२६. (पश्चिम-बंगाल) ]

बंगालमे सन १९३४ मे 'पूर्व-भारत-हिन्दी-प्रचार-सभा' की स्थापना हुई। सन १९३६ मे वर्धा-समितिकी स्थापनाके बाद यह 'सभा' उससे सम्बद्ध होकर कार्य करने लगी और उसका नाम 'पूर्व-भारत-राष्ट्रभाषा-प्रचार-सभा' रखा गया।

हिन्दी-हिन्दुस्तानीके मतभेदके कारण सन १९४५ में डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्याकी अध्यक्षतामें 'बंगाल-राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति' की स्थापना हुई और देश-विभाजनके बाद वह 'पश्चिम-वंग-राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति' हो गयी। श्री. रेवतीरंजन सिन्हाने प्रचार-संगठनका कार्यभार संभाला और सर्वश्री डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, भुवनेश्वर झा, व्रजनन्दन सिंह, नरेन्द्रसिंह-राय, शिवविलास सिन्हा, अमल सरकार, जयगोविंद मिश्र, वामनचंद्र वसु, श्रीनिवास शर्मा, जनार्दन चतुर्वेदी, संजीवप्रसाद सेन, देवीप्रसाद वर्मा, अरण्यबिहारी दास आदि प्रचारक-कार्यकर्त्ताओंके सहयोगसे कार्यको आगे बढाया। पश्चिम-बंगालके निम्न-लिखित १२ जिलोमें 'समिति' का कार्य चल रहा है :— कलकत्ता, हावडा, हुगली, चौबीस परगना, वर्द्धमान, बीरभूम, नदीया, मुर्शिदाबाद, मालदह, कूच-बिहार, दार्जिलिंग तथा मेदिनीपुर।

त्रिपुरा-राज्यका कार्य भी इसी 'समिति'के अंतर्गत चलता है।

### 'समिति' के वर्तमान पदाधिकारी :

**अध्यक्ष** . डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, **कर्यवाह सभापति** : डॉ. श्रीकुमार वन्द्योपाध्याय, **उपसभापति** : डॉ. सुकुमार सेन तथा सजनीकान्त दास **अर्थ-मंत्री** : श्री. जगन्नाथ बेरीवाला, **मन्त्री-संचालक** : श्री रेवतीरंजन सिन्हा।

**शिक्षक-शिक्षण-योजना** : पश्चिम बंग सरकारके जन-शिक्षा-विभागके सहयोगसे 'समिति' की ओरसे प्रतिवर्ष 'शिक्षक-शिक्षण-केन्द्र' चलाए जाते हैं। इसमें डिप्लोमा-इन-हिन्दी-टीचिंगकी शिक्षा दी जाती है। सरकार हिन्दी शिक्षकोंकी नियुक्ति तथा कर्मचारियोंके वर्ग आदि कार्यमें भी 'समिति' से सलाह-सहयोग लेती है।

**समावर्तन-समारोह** : 'समिति' के वार्षिक-समापन-समारोहकी एक विशेषता एवं परम्परा यह है कि वह राज-भवनके मार्बल-हॉलमें एवं राज्यपालकी अध्यक्षतामेंही प्रतिवर्ष समारोहपूर्वक मनाया जाता है। इस अवसपर लब्धप्रतिष्ठ विद्वान या राज्यके शिक्षण-मंत्री दीक्षान्त-भाषण देते हैं। उपाधि-पत्र तथा पुरस्कारका महामहिम राज्यपालके शुभ-हाथों वितरण होता है। यह एक अपूर्व परिपाटी है जो राष्ट्रभाषा-प्रचारके इतिहासमे अनोखी है।

**पुस्तकालय और वाचनालय** : हिन्दी-प्रेमी समाज-सेवी श्री. सीताराम्जी सेक्सरियाकी सहायतासे 'हिन्दी-प्रचार-पुस्तकालय'की स्थापना की गयी। पुस्तकालय-वाचनालय निःशुल्क रखा गया है। पुस्तकालयमे एक हजारसे अधिक पुस्तकें संग्रहीत हैं और ४०–५० पत्र-पत्रिकाएँ वाचनालयमें रहती हैं।

**प्रकाशन :** 'समिति' की ओरसे 'पन्तकविता-संकलन' नामक पुस्तकका प्रकाशन किया गया है।

**प्रचार-कार्य :** लगभग डेढ़ सौ प्रचारकों, हिन्दी-अध्यापकों एवं केन्द्र-व्यवस्थापकोंके सहयोगसे दो सौसे अधिक शिक्षण-केन्द्र तथा विद्यालयोंमें हिन्दी-प्रचार का कार्य चल रहा है। अबतक बंगालके एक लाखसे अधिक लोगोंने हिन्दीकी शिक्षा पायी है और आज भी प्रतिवर्ष लगभग १२ हजार परीक्षार्थी राष्ट्रभाषाकी परीक्षाओंमें सम्मिलित होते हैं। डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्याके मार्ग-दर्शन एवं श्री. रेवतीरंजन सिन्हाके कुशल संचालनमें पश्चिम-बंगालमें राष्ट्रभाषा-प्रचार-कार्यका विधिवत् विकास हो रहा है।

## (८) मणिपुर राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, इम्फाल

[पता :—राष्ट्रभाषा-भवन, पो. इम्फाल (मणिपुर)]

मणिपुर-राज्यमें पहले असम-राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिकी ओरसे कार्य होता रहा। सन १९४० में 'मणिपुर-राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति' की स्थापना हुई और श्री. छत्रध्वज शर्माकी संगठक-संचालकके नाते नियुक्ति की गयी।

### वर्तमान पदाधिकारी :

**अध्यक्ष :** श्री. कालाचन्द सिंह शास्त्री, **उपाध्यक्ष :** श्री. पं. गौरहरि शर्मा, **कोषाध्यक्ष :** श्री. ते. आवोरसिंह, **मंत्री-संचालक :** श्री. छत्रध्वज शर्मा।

**राष्ट्रभाषा-भवन :** ता. २६-११-१९५५ को अ. भा. कांग्रेस समितिके तत्कालीन अध्यक्ष : श्री. उछरंगराय ढेबर-द्वारा राष्ट्रभाषा-भवनका शिलान्यास किया गया था। 'समिति' का कार्यालय आज इसी भवनमें कार्य कर रहा है। सरकारकी ओरसे भवनके लिए जमीन दानमें मिली और वर्धा-समितिने आर्थिक सहायता प्रदान की।

**पुस्तकालय तथा वाचनालय :** राष्ट्रभाषा-भवनमें पुस्तकालय-वाचनालय खोला गया है जिसका राष्ट्रभाषाके परीक्षार्थी एवं हिन्दी-प्रेमी सज्जन बहुत बड़ी संख्यामें लाभ उठाते हैं।

**प्रकाशन :** 'समिति' की ओरसे 'मणिपुरमें राष्ट्रभाषा-प्रचारका संक्षिप्त इतिहास' नामक पुस्तिका प्रकाशित की गयी है।

**राष्ट्रभाषा-शिविर तथा प्रदर्शनी—** 'समिति'की ओरसे समय-समयपर राष्ट्रभाषा-शिविर तथा प्रदर्शनीका आयोजन किया जाता है।

**प्रचार-कार्य :** 'समिति' के लगभग ५० प्रचारकों तथा ६० परीक्षा-केन्द्रों एवं राष्ट्रभाषा-विद्यालयोंके सहयोगसे मणिपुरमें हिन्दी-प्रचारका कार्य खूब फैल रहा है। 'समिति' की ओरसे राष्ट्रभाषाकी उच्च पढ़ाईके लिए एक राष्ट्रभाषा महाविद्यालय भी चलाया जा रहा है। अबतक ५० हजारसे अधिक लोगोंने हिन्दीकी शिक्षा पायी है और आज भी प्रतिवर्ष ५ हजारके लगभग परीक्षार्थी राष्ट्रभाषाकी परीक्षाओंमें सम्मिलित होते हैं। श्री. छत्रध्वज शर्मा जैसे उत्साही युवक-संचालकके नेतृत्वमें मणिपुरमें राष्ट्रभाषाका कार्य काफी बढ़ा है और बढ़ता जा रहा है। वर्धा-समिति एवं मणिपुर-प्रशासनके द्वारा 'समिति' को हिन्दी-प्रचार-कार्यके लिए प्रतिवर्ष आर्थिक अनुदान प्राप्त होता है।

## (९) दिल्ली प्रांतीय-राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति, दिल्ली

[पता :— ६।५७ वेस्टर्न एक्स्टेन्शन एरिया, करोल बाग, नयी दिल्ली—५]

सन १९४२ में, श्रीमती राजलक्ष्मी राघवन द्वारा दिल्लीमें राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति, वर्धाका कार्य शुरू किया गया। आप सन १९३७ सेही बम्बईमें राष्ट्रभाषा-प्रचारका कार्य करती रही थीं। सन १९४८ में सन्त विनोबाजीके द्वारा दिल्ली-केन्द्रका उद्घाटन डॉ. पट्टाभि सीतारामय्याकी अध्यक्षतामें हुआ और वहाँ प्रो. रंजनजी, श्री. यशपालजी, श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख आदिके सहयोगसे प्रचार-कार्य आगे बढ़ने लगा।

**'समिति' की स्थापना :** ता. ३ अगस्त, १९५२ को श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडितकी अध्यक्षतामें, राजर्षि पुरुषोत्तमदासजी टंडनके शुभ-हाथों 'दिल्ली प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति' की विधिवत स्थापना हुई।

### वर्तमान पदाधिकारी :

अध्यक्ष : श्री. के. सी. रेड्डी, उपाध्यक्ष : श्री. अनंतशयनम् आयंगार, **कोषाध्यक्ष :** श्री. एस. आर. एस. राघवन, **मंत्री-संचालक :** श्रीमती राजलक्ष्मी राघवन।

थैली समर्पित की गयी । राजर्षि टंडनजीने उक्त रकम रा० भाषा-प्रचार-समितिको हिन्दी-प्रचार-कार्यके लिए सुपुर्द कर दी ।

राजधानीमें हुए इस अधिवेशनमें भारतके कोने-कोनेसे लगभग डेढ़ हजार प्रतिनिधि पहुँचे थे । भारतके तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसादने सम्मेलनके प्रतिनिधियोंको राष्ट्रपति-भवनके मुगल-उद्यानमें अल्पाहारके लिए निमंत्रित किया और प्रधानमंत्री श्री. जवाहरलालजी नेहरूने प्रतिनिधियोंको अपने निवासस्थानपर मुलाकात दी । संसदीय हिन्दी-परिषदकी ओरसे लोकसभा-भवनमें प्रतिनिधियोंका स्वागत किया गया तथा दिल्ली-नगर-निगमकी ओरसे प्रतिनिधियोंके सम्मानमें एक शानदार स्वागत-समारोह आयोजित हुआ ।

इन सभी आयोजनोंसे सम्मेलनका यह अधिवेशन अविस्मरणीय रहा।

**प्रचार-कार्य** : लगभग डेढ़सौ राष्ट्रभाषा-प्रचारक बन्धुओं एवं केन्द्र-व्यवस्थापकों तथा वर्ग-विद्यालयोंके सहयोगसे दिल्ली-क्षेत्रमें राष्ट्रभाषा-प्रचारका कार्य श्रीमती राजलक्ष्मी राघवनकी निगरानीमें बहुत सुन्दर ढँगसे चल रहा है । अबतक लगभग ५ हजार परीक्षार्थी राष्ट्रभाषाकी परीक्षाओंमें सम्मिलित हो चुके हैं और प्रतिवर्ष पाँचसौ तक परीक्षार्थी शामिल होते हैं ।

## (१०) सिन्ध-राजस्थान राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, जयपुर

[ पता :— सुराणा-भवन, जयपुर (राजस्थान) ]

डॉ. चोइथराम गिडवाणी-द्वारा सन १९११ में सिन्धमें हिन्दी-प्रचारका कार्य आरंभ किया गया था । सन १९१५ में स्वामी सत्यदेवजी परिव्राजकने सिन्ध-हैद्राबादमें 'नागरी प्रचारिणी सभा' की स्थापना की । सन १९३६ में आचार्य काकासाहब कालेलकरजीकी अध्यक्षतामें सिन्ध प्रांतीय साहित्य सम्मेलनका अधिवेशन हुआ । उसी अवसरपर 'सिन्ध हिन्दी प्रचार समिति' सगठित की गयी । सेठ लोकामल चेलाराम अध्यक्ष एवं प. चन्द्रसेन जेतली मंत्री निर्वाचित हुए । प. इन्द्रदेव शर्माकी संचालकके नाते नियुक्ति की गयी । सन १९४० में प्रो. नारायणदास मलकानीजीने अध्यक्षका कार्य सभाला । इसी वर्ष आचार्य काकासाहब कालेलकरजीकी अध्यक्षतामें हैदराबादमें सिन्ध-राष्ट्रभाषा-सम्मेलन हुआ । श्री. देवदत्त शर्मा प्रांतीय-सचालक नियुक्त हुए । सन १९४२ में भाई प्रताप दोअलदासजी अध्यक्ष बनाये गये । सन १९४६ में हिन्दी साहित्य सम्मेलनका वार्षिक अधिवेशन कराँचीमें सम्पन्न हुआ । उसी अवसरपर श्री. दौलतरामजी शर्माकी प्रांतीय-संचालकके पदपर नियुक्ति हुई ।

**राजस्थानमें स्थानान्तर** : देश-विभाजनके कारण सिन्ध-राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिका कार्यालय कराँचीसे अजमेरमें स्थानान्तरित किया गया और 'समिति'

का नाम 'सिन्ध-राजस्थान-राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति' रखा गया। आज कार्यालय जयपुरमें स्थित है।

### वर्तमान-पदाधिकारी :

अध्यक्ष : डॉ सोमनाथ गुप्त, कोषाध्यक्ष : श्री राजरूपजी टोंक तथा मंत्री-संचालक : श्री. दौलतराम शर्मा।

**राष्ट्रभाषा-सम्मेलन :** 'समिति'की ओरसे समय-समयपर प्रांतीय तथा जिला-राष्ट्रभाषा-प्रचार सम्मेलन आयोजित किये जाते हैं।

**अ. भा. राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका सातवां अधिवेशन :** सन १९५६ में अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनका सातवां अधिवेशन सेठ गोविन्द दासजीकी अध्यक्षतामें जयपुरमें सम्पन्न हुआ जिसका उद्घाटन भारत-सरकारके तत्कालीन गृह-मंत्रालयके मंत्री श्री. ब. ना. दातारने किया। इस अवसरपर आयोजित राष्ट्रभाषा-प्रदर्शनीका उद्घाटन जयपुरके महाराजा सवाई मानसिंहजीके हाथों किया गया एवं महात्मा गांधी-पुरस्कार . प्रज्ञाचक्षु प. सुखलालजी सघवीको समर्पित किया गया।

**हिन्दी-भवन :** 'समिति' ने अपने निजी 'हिन्दी-भवन'की एक योजना बनायी है। राजस्थानके मुख्य-मंत्री श्री. मोहनलालजी सुखाड़ियाके शुभ हाथों 'हिन्दी-भवन' का शिलान्यास किया गया है।

**प्रचार-कार्य :** सन १९४७ तकमें सिन्धसे लगभग २५ हजार परीक्षार्थी 'समिति' की परीक्षाओंमें सम्मिलित हो चुके थे और उसके बाद लगभग ७५ हजार परीक्षार्थी राजस्थान-क्षेत्रसे सम्मिलित हो चुके हैं। अबतक लगभग एक लाखसे ऊपर परीक्षार्थी सख्या हो गयी है और प्रतिवर्ष १० हजारसे अधिक परीक्षार्थी 'समिति' की परीक्षाओंमें बैठते हैं। 'समिति' की ओरसे रेलवे कर्मचारियोंके लिए हिन्दी-पढ़ाईकी विशेष व्यवस्था की गयी थी। लगभग डेढ सौ प्रचारकों एवं ढाई सौ केन्द्रोंकी सहायतासे 'समिति' का कार्य अध्यक्ष श्री. डॉ. सोमनाथ गुप्तजीके मार्गदर्शन एवं संचालक श्री. दौलतराम शर्माजीके कुशल संचालनमें आगे बढ़ता जा रहा है।

## (११) मध्य प्रदेश राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, भोपाल

[पता :— सोमवारिया द्वार (पीर गेट) भोपाल (मध्य-प्रदेश) ]

मध्य-भारत तथा भोपालके क्षेत्रमें श्री. प्रेमसिंह चौहान 'विद्यार्थ' के संचालनमें यहांका कार्य सन १९५२ तक चलता रहा। सन १९५२ में डॉ. रघुवीर

सिंहकी अध्यक्षतामें 'भोपाल-मध्यभारत राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति 'की स्थापना हुई। सन १९५४ में श्री. बैजनाथप्रसाद दुबेकी प्रांतीय-समितिके मंत्री-संचालक के पदपर नियुक्ति हुई। सन १९५६ में 'समिति' का नाम 'मध्यभारत राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति' रखा गया और भोपालमें उसके कार्यालयका विधिवत् उद्‍घाटन मध्य-प्रदेशके तत्कालीन मुख्य-मंत्री डॉ. कैलासनाथ काटजूके शुभ-हाथों किया गया।

## वर्तमान पदाधिकारी :

**अध्यक्ष :** श्री. महाराज कुमार डॉ. रघुवीर सिंह, **कार्याध्यक्ष :** श्री. सौभाग्यमलजी जैन, **उपाध्यक्ष :** श्री. श्यामाचरणजी शुक्ल तथा महाराज श्री. भानुप्रकाशसिंहजी एवं डॉ. विनयमोहन शर्मा, **कोषाध्यक्ष :** श्री. हुकुमचन्दजी पाटनी, **महिला-विभाग-संयोजिका :** श्रीमती सुशीलारानी दास, **मंत्री-संचालक :** श्री. बैजनाथप्रसाद दुबे।

**महिला-विभाग :** महिलाओंमें राष्ट्रभाषा-प्रचार-कार्यको बढ़ावा देनेकी दृष्टिसे, सन १९५७ में रानी पद्मावती देवीके नेतृत्वमें महिला-विभागकी स्थापना की गयी। राज्य-शिक्षा-विभागकी ओरसे एवं समाज-कल्याण बोर्ड द्वारा इस विभागको अनुदान दिया जाता है। इसके पुस्तकालयके लियेभी विशेष अनुदान प्राप्त होता है।

**वाद-विवाद-प्रतियोगिता :** रानी पद्मावती देवीद्वारा प्रदत्त दानसे सन १९५९ से इस प्रतियोगिताका आयोजन किया जाता है। पुरुष-विभागके लिये 'पं. रविशंकर शुक्ल शील्ड' एवं महिला-विभागके लिये 'रानी पद्मावती देवी शील्ड' रखी गयी है।

**हस्ताक्षर आन्दोलन :** अशिक्षित व्यक्तियोंको अपने हस्ताक्षर करना सिखाने एवं अंगूठा-निशानी दूर करनेके लिये 'समिति' ने सन १९६१ से 'हस्ताक्षर-आन्दोलन' शुरु किया है। मध्य-प्रदेशके राज्यपाल श्री. ह. वि. पाटसकरजीने एक चपरासिनको हस्ताक्षर करना सिखाकर इस आन्दोलनका उद्‍घाटन किया।

**हिन्दी-भवन :** मध्य-प्रदेशके भूतपूर्व मुख्यमंत्री श्री. पं. रविशंकर शुक्लकी स्मृतिमें 'हिन्दी-भवन' का निर्माण करनेकी एक योजना 'समिति'-द्वारा बनायी गयी है। मध्य-प्रदेश शासनकी ओरसे लगभग पौने तीन एकड़ भूमि दानमें मिल चुकी है। बिड़ला-बंधुओंकी ओरसे १० हजार रु. का दान मिला है।

**प्रचार-कार्य :** अबतक लगभग पचास हजार परीक्षार्थी राष्ट्रभाषाकी परीक्षाओंमें सम्मिलित हो चुके हैं और प्रतिवर्ष तीन हजारसे अधिक परीक्षार्थी शामिल होते रहते हैं। ४० राष्ट्रभाषा प्रचार-केंद्रों, राष्ट्रभाषा-प्रचारकों तथा हिन्दी-प्रेमी जनताके सहयोगसे श्री. वासुदेव चिन्तामणि बस्तीजीके संचालनमें कर्नाटकमें 'समिति'का कार्य प्रगति कर रहा है।

## (१३) मराठवाडा राष्ट्रभाषा प्रचारसमिति, औरंगाबाद.

[ पता :—किराना चावडीके पास, औरंगाबाद (महाराष्ट्र) ]

मराठवाडा-क्षेत्रमें हैद्राबाद हिन्दी-प्रचार-सभाकी ओरसे शुरूसेही हिन्दी-प्रचारका कार्य होता रहा। पं. विष्णुदत्त शर्माजीके सहयोगसे सन १९५६ में वर्धा-समितिने इस क्षेत्रमें अपना स्वतंत्र कार्य शुरू किया। राज्य-विभाजनके बाद मराठवाडामें कई निष्ठावान् कार्यकर्ताओंकी सहायतासे 'समिति'का प्रचार कार्य बढ़ने लगा। सन १९५८ में विधिवत् 'मराठवाडा राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति'की स्थापना हुई। पं. विष्णुदत्त शर्माजीको प्रांतीय संचालक के नाते नियुक्त की गयी।

**वर्तमान पदाधिकारी :** अध्यक्ष :—श्री. भगवंतराव गाढे, उपाध्यक्ष : श्री. शंकरराव चव्हाण, संचालक : श्री. पं. विष्णुदत्त शर्मा।

**कार्यक्षेत्र :** मराठवाडाके निम्नलिखित पाँच जिलोंमें 'समिति'के अंतर्गत राष्ट्रभाषा-प्रचार-प्रसारका कार्य चल रहा है :—औरंगाबाद, बीड, उस्मानाबाद परभणी तथा नांदेड।

**पुस्तक संच भेंट योजना :** 'समिति' की ओरसे राष्ट्रभाषा-प्रचार-केंद्रोंकी सहायतामें, प्रचार-परीक्षाओंकी पाठ्य-पुस्तकोंका संच एवं राष्ट्रभाषा-कोष भेंटमें दिया जाता है।

**प्रचार-कार्य :** लगभग एक सौ राष्ट्रभाषा प्रचारकों तथा केंद्रोंके सहयोगसे पं. विष्णुदत्त शर्माजीके सुयोग्य संचालनमें मराठवाडाका राष्ट्रभाषा-प्रचार-कार्य बढता जा रहा है। महाराष्ट्र-राज्य-सरकारकी ओरसे 'समिति'को प्रतिवर्ष लगभग पाँच हजारका आर्थिक अनुदान भी प्राप्त होता है। अबतक लगभग पचीस हजार परीक्षार्थी 'समिति'की परीक्षाओंमें सम्मिलित हो चुके हैं और प्रतिवर्ष लगभग छः हजार परीक्षार्थी शामिल होते रहते हैं।

**अ. भा. राष्ट्रभाषा-प्रचार सम्मेलनका आठवाँ अधिवेशन :** सन १९५८ मे केन्द्रीय सरकारके तत्कालीन शिक्षा-मन्त्री डॉ. कालूलाल श्रीमालीजीकी अध्यक्षतामे, 'समिति' के तत्त्वावधानमे अ भा. राष्ट्रभाषा-प्रचार सम्मेलनका आठवाँ अधिवेशन भोपालमे सम्पन्न हुआ। इसका उद्घाटन भारतके राष्ट्रपति डॉ राजेन्द्रप्रसादजीके करकमलो-द्वारा किया गया तथा प. सन्तराम, बी ए को महात्मा गाधी-पुरस्कार प्रदान किया गया। अधिवेशनमे एक हजारसे अधिक प्रतिनिधि सम्मिलित रहे।

**प्रचार-कार्य :** अपने एक सौसे अधिक प्रचारको-कार्यकर्त्ताओ तथा केन्द्र-व्यवस्थापकोके सहयोग एव श्री बैजनाथप्रसाद दुबेके सुचारु सचालकत्वमे मध्यप्रदेशमे राष्ट्रभाषा-प्रसारका कार्य द्रुतगतिसे बढ रहा है। अबतक मध्यप्रदेशके लगभग पचास हजार लोगोंने राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धाकी परीक्षाओसे लाभ उठाया है और आजभी प्रतिवर्ष लगभग साढे पाँच हजार परीक्षार्थी राष्ट्रभाषा की परीक्षाओमे सम्मिलित होते हैं।

## (१२) कर्नाटक प्रातीय राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति, हुबली.

[ पता —दुर्गद बयलु, हुबली (मैसूर-राज्य) ]

कर्नाटकमे हिन्दी प्रचारका कार्य बहुत पहलेसे होता रहा है। वर्धा-समितिका कार्य सन १९४७ से आरभ हुआ। सन् १९४९ मे श्री आर. व्ही. शिरूरकी *अध्यक्षतामें हुबलीमे स्थानीय राष्ट्रभाषा-प्रचार समिति बनी।* प्रि. महाजन, श्री वा. चि बस्ती तथा श्री भा. मा कुलकर्णीके सहायोगसे राष्ट्रभाषा-प्रचारका कार्य बढने लगा। सन १९५४ मे कर्नाटक प्रातीय राष्ट्रभाषा प्रचार-समिति' की श्री निर्जलिंगप्पाजीकी अध्यक्षतामे स्थापना की गयी।

**वर्तमान पदाधिकारी :** अध्यक्ष : श्री एच् बी शहा, कार्याध्यक्ष' श्री. आर. व्ही शिरूर, उपाध्यक्ष : श्री. वी एल. इचिनाल तथा श्री राघवजी देवजी लद्दड, संचालक ' श्री वासुदेव चिन्तामणि बस्ती।

**हिन्दी-भवनकी योजना :** 'समिति' ने निजी 'हिन्दी-भवन' की एक योजना बनायी है, जिसके लिये भूमि प्राप्त हो गयी है।

**प्रवृत्तियाँ :** 'समिति' की ओरसे समय-समयपर स्पर्द्धा एव शैक्षणिक-स्नेह-सम्मेलन तथा हिन्दी-दिवस-समारोहका आयोजन किया जाता है।

**प्रचार-कार्य :** अवतक लगभग पचास हजार परीक्षार्थी राष्ट्रभाषाकी परीक्षाओंमे सम्मिलित हो चुके हैं और प्रतिवर्ष तीन हजारसे अधिक परीक्षार्थी शामिल होते रहते हैं। ४० राष्ट्रभाषा प्रचार-केंद्रों, राष्ट्रभाषा-प्रचारको तथा हिन्दी-प्रेमी जनताके सहयोगसे श्री. वासुदेव चिन्तामणि बस्तीजीके संचालनमे कर्नाटकमे 'समिति'का कार्य प्रगति कर रहा है।

## (१३) मराठवाडा राष्ट्रभाषा प्रचारसमिति, औरंगाबाद.

[ पता :—किराना चावडीके पास, औरंगाबाद (महाराष्ट्र) ]

मराठवाडा-क्षेत्रमें हैद्राबाद हिन्दी-प्रचार-सभाकी ओरसे शुरूसेही हिन्दी-प्रचारका कार्य होता रहा। प. विष्णुदत्त शर्माजीके सहयोगसे सन १९५६ में वर्धा-समितिने इस क्षेत्रमे अपना स्वतंत्र कार्य शुरू किया। राज्य-विभाजनके बाद मराठवाडामें कई निष्ठावान् कार्यकर्ताओंकी सहायतासे 'समिति'का प्रचार कार्य बढ़ने लगा। सन १९५८ मे विधिवत् 'मराठवाडा राष्ट्रभाषा प्रचार-'समिति'की स्थापना हुई। पं. विष्णुदत्त शर्माजीकी प्रांतीय संचालक के नाते नियुक्त की गयी।

**वर्तमान पदाधिकारी** · **अध्यक्ष** :—श्री. भगवंतराव गाढे, **उपाध्यक्ष :** श्री. शंकरराव चव्हाण, **संचालक :** श्री. पं. विष्णुदत्त शर्मा।

**कार्यक्षेत्र :** मराठवाडाके निम्नलिखित पाँच जिलोंमे 'समिति'के अंतर्गत राष्ट्रभाषा-प्रचार-प्रसारका कार्य चल रहा है :—औरंगाबाद, बीड़, उस्मानाबाद परभणी तथा नांदेड।

**पुस्तक संच भेंट योजना :** 'समिति' की ओरसे राष्ट्रभाषा-प्रचार-केंद्रोंकी सहायतामे, प्रचार-परीक्षाओंकी पाठ्य-पुस्तकोंका संच एवं राष्ट्रभाषा-कोष भेंटमे दिया जाता है।

**प्रचार-कार्य :** लगभग एक सौ राष्ट्रभाषा प्रचारको तथा केंद्रोंके सहयोगसे पं. विष्णुदत्त शर्माजीके सुयोग्य संचालनमें मराठवाडाका राष्ट्रभाषा-प्रचार-कार्य बढता जा रहा है। महाराष्ट्र-राज्य सरकारकी ओरसे 'समिति'को प्रतिवर्ष लगभग पाँच हजारका आर्थिक अनुदान भी प्राप्त होता है। अबतक लगभग पचीस हज़ार परीक्षार्थी 'समिति'की परीक्षाओंमें सम्मिलित हो चुके हैं और प्रतिवर्ष लगभग छः हज़ार परीक्षार्थी शामिल होते रहते हैं।

## (१४) बेलगांव जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, बेलगांव

[ पता :—हिन्दी-भवन, किर्लोस्कर रोड, बेलगांव (मैसूर) ]

महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, पुणेके सचालनमें सन १९४५ सेही बेलगांवमें 'समिति' का प्रचार-कार्य शुरु हुआ था। सन १९५१ मे बेलगांव जिला राष्ट्रभाषा प्रचार समितिका स्वतत्र संगठन स्थापित किया गया। डॉ. भैरूलालजी व्यास–अध्यक्ष एव श्री द. पा. साटम–मत्री चुने गये। बेलगांव-शहापुर, तिलकवाडी, येल्लूर तथा कागवाड आदि केंद्रोमे 'समिति' का प्रचार-कार्य चलने लगा। सन १९५४ में प. ना. शा. वालावलकरजीकी अध्यक्षतामे बेलगांव जिला राष्ट्रभाषा-प्रचार-सम्मेलन सम्पन्न हुआ, जिसके कारण प्रचार-कार्यको गति मिली। अध्यक्ष: डॉ. भैरूलालजी व्यासके ता. २५ दिसबर १९६० को हुए आकस्मिक निधनसे बेलगांवके राष्ट्रभाषा प्रचार-कार्यको काफी क्षति पहुँची। श्री. द. पा. साटमजीके मार्ग-दर्शनमे बेलगांव जिलेका राष्ट्रभाषा-प्रचार-कार्य प्रगति पथपर अग्रसर हो रहा है। अबतक लगभग पचीस हजार परीक्षार्थी 'समिति' की राष्ट्रभाषा परीक्षाओमे सम्मिलित हो चुके हैं और प्रतिवर्ष लगभग तीन हजार परीक्षार्थी शामिल होते रहते हैं। हिन्दी-प्रचार-सभा, बेलगांवकी ओरसे 'हिन्दी-भवन' का निर्माण किया गया है। 'समिति' का कार्यालय उसीमे स्थित है। वर्धा-समितिसे बेलगांव तथा येल्लूरके हिन्दी-भवन-निर्माणमे आर्थिक सहायता प्राप्त हुई है।

आदि कार्यकर्त्ताओंका इस कार्यमें अनवरत सहयोग प्राप्त हुआ। सन १९६३ में 'गोवा राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति' गठित की गयी और श्री. सी. सी. सुर्लेकरको मंत्री नियुक्त किया गया। सन १९६४ के अप्रैल महीनेमें, राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धाके प्रधान-मंत्री : श्री. मोहनलाल भट्टजीकी अध्यक्षतामें प्रथम गोवा राष्ट्रभाषा प्रचार-सम्मेलन हुआ। पिछले दो-ढ़ाई वर्षोंमें लगभग चार हजार परीक्षार्थी गोवासे राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धाकी परीक्षाओंमें सम्मिलित हो चुके हैं और अब प्रतिवर्ष दो-ढाई हजार परीक्षार्थी 'समिति'की परीक्षाओंमें सम्मिलित होने लगे हैं। गोवामें निर्वाचित लोकप्रिय सरकारकी स्थापनाके बाद हिन्दी-प्रचार-कार्यको काफी बल एवं समर्थन प्राप्त हो रहा है तथा राष्ट्रभाषा-प्रचारका कार्य तीव्र गतिसे बढ़ता जा रहा है।

## (१६) जम्मू-काश्मीर राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, श्रीनगर

[पता :— पो. श्रीनगर (काश्मीर)]

सिन्ध-राजस्थान राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिके संचालक श्री. दौलतरामजी शर्माके प्रयत्नोंसे सन १९५६ में जम्मू-काश्मीर राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिकी स्थापना हुई। सन १९४० सेही श्रीनगरके महिला महाविद्यालयमें हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयागकी परीक्षाओं तथा पंजाब विश्व-विद्यालयकी रत्न, भूषण एवं प्रभाकर आदि परीक्षाओंकी पढ़ाईका प्रबंध था। यहींपर 'समिति' का प्रथम केन्द्र स्थापित किया गया। सन १९५८ में राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धाके प्रधान-मंत्री श्री. मोहनलालजी भट्ट, गुजरात राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति के संचालक श्री. जेठालाल जोशी एवं सिन्ध-राजस्थान-राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिके संचालक श्री. दौलतरामजी शर्माका श्रीनगरमें आगमन हुआ। श्री. जगद्धरजी जाडूके सभापतित्वमें एक बैठक हुई, जिसमें निम्नानुसार पदाधिकारी निर्वाचित किये गये :— अध्यक्ष: श्री. जगद्धरजी जाडू, मंत्री : श्रीमती कमला पारिभू, संचालक : श्री. शम्भूनाथजी पारिभू।

**आर्थिक-अनुदान :** जम्मू-काश्मीर सरकारसे १००० रु. का एवं भारत सरकारकी ओरसे पुस्तकालयकी सहायतामें ५०० रु. का आर्थिक अनुदान 'समिति' को प्राप्त हुआ है।

**हिन्दी-दिवस तथा प्रमाण पत्र वितरणोत्सव :** प्रतिवर्ष 'हिन्दी-दिवस'के अवसरपर राज्यके शिक्षा-मंत्री या अन्य किसी सरकारी अधिकारीके शुभ हाथों परीक्षार्थियोंको पुरस्कार एवं प्रमाण-पत्र वितरित किये जाते हैं।

**प्रकाशन :** 'समिति ने' उर्दू-हिन्दी-स्वयंशिक्षक' का प्रकाशन किया और 'काश्मीरी'-सीखिए' पुस्तिकाके प्रकाशनकी भी योजना बनायी है।

**प्रचार-कार्य :** काश्मीरमे राष्ट्रभाषा-प्रचारका भविष्य उज्ज्वल प्रतीत हो रहा है। अबतक चार हजारसे अधिक लोगोने 'समिति' की राष्ट्रभाषा-परीक्षाओंसे लाभ उठाया है और प्रतिवर्ष एक हजारसे अधिक परीक्षार्थी 'समिति' की परीक्षाओंमें सम्मिलित होते रहते हैं।

## (१७) पंजाब प्रांतीय राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, अबोहर.

[पता :— साहित्य-सदन, पो. अबोहर (पंजाब)]

स्वामी केशवानंदजीके नेतृत्वमें सन १९२५ मे एक पुस्तकालयके रूपमे अबोहरके साहित्य-सदनकी स्थापना हुई। हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, प्रयागकी हिन्दी-परिचय तथा हिन्दी-कोविद परीक्षाओंकी—पंजाब तथा काश्मीरके लिए व्यवस्था करनेका कार्य साहित्य-सदनको सौंपा गया। पंजाबमें साहित्य-सदनके द्वारा ही हिन्दी-प्रचार-कार्यका श्रीगणेश हुआ। इसी संस्थाकी ओरसे सम्वत् १९९८ में डॉ. अमरनाथ झाकी अध्यक्षतामे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका ३० वाँ अधिवेशन। निमंत्रित किया गया और उसके विशाल भवनके प्रागणमेंही वह सम्पन्न हुआ। सन १९५८ से 'साहित्य-सदन' की व्यवस्थाका भार राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिको सौंपा गया है। सिन्ध-राजस्थान राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिके संचालक श्री. दौलतराम शर्माके मार्गदर्शनमें पंजाबमें राष्ट्रभाषा-प्रचारका कार्य चल रहा है। तीन हजारसे अधिक परीक्षार्थी अबतक परिक्षाओंमें सम्मिलित हो चुके हैं और प्रतिवर्ष लगभग पाँचसौ परीक्षार्थी 'समिति' की परीक्षाओंमें शामिल होते हैं।

## (१८) अन्दमान-निकोबार राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, पोर्ट ब्लेअर.

[ पता :— अन्दमान द्वीप, पो. पोर्ट ब्लेअर, अन्दमान (भारत) ]

यहाँकी आदिम जातियोंको राष्ट्रभाषाकी शिक्षा देनेके लिये 'अन्दमान राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति' की स्थापना की गयी है। यहाँ कई बोलियाँ बोली जाती हैं। लेकिन उनकी अपनी कोई लिपि नहीं है। सामान्यत: रोमन लिपिकाही लोग उपयोग करते हैं। राष्ट्रभाषा-हिन्दीके प्रचारके साथ-साथ नागरी-लिपिके प्रचार-प्रसारका कार्यभी यहाँ हो रहा है। नानकोडी, आवरडीन तथा जंगलघाट आदि केन्द्रोंमें प्रचार-कार्य चल रहा है और उसका विकास हो रहा है।

## (१९) हिन्दी-प्रचार-सभा, हैदराबाद

[ पता :—नामपल्ली स्टेशन रोड, हैदराबाद (आंध्र) ]

राष्ट्रभाषा हिन्दी और देवनागरी-लिपिका प्रचार और प्रसार करनेके उद्देश्यसे सन १९३५ में 'हिन्दी-प्रचार-सभा, हैदराबाद' की स्थापना हुई। 'सभा' राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धासे सम्बद्ध है। वह 'समिति' की परीक्षाओंके साथ-साथ, अपनी स्वतंत्र परीक्षाओंकाभी संचालन करती है। हिन्दी-शिक्षक प्रशिक्षण-वर्गोंका संचालन भी 'सभा' की ओरसे किया जाता है। जेलके कैदियोंको राष्ट्रभाषा हिन्दीकी शिक्षा देनेका विशेष प्रबंध 'सभा' ने किया है और हरिजन एवं पिछड़ी जातियोंके परीक्षार्थियोंको निःशुल्क शिक्षा-परीक्षाकी सुविधा दी जाती है। आंध्र-प्रदेश-सरकारके शिक्षा-विभागको 'सभा' अपना पूर्ण सहयोग प्रदान कर, शिक्षा-प्रसारके कार्यमेंभी हाथ बँटाती है। 'सभा' की ओरसे हैद्राबादमें दो हिन्दी-महाविद्यालय चलाये जा रहे हैं। 'सभा' का अपना विशाल पुस्तकालय है और 'सभा' के अनुदानसे कई स्थानोंमें जिला-पुस्तकालयोंकी स्थापना की गयी है। 'सभा' की ओरसे 'अजंता' नामक साहित्यिक पत्रिकाका वर्षोंतक प्रकाशन होता रहा। 'सभा' के प्रकाशन-विभागकी ओरसे कई पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। भारत सरकारकी सहायतासे मराठी, तेलुगु, कन्नड़ और उर्दू साहित्यका इतिहास हिन्दीमें प्रकाशित करनेकी एवं हिन्दी-उर्दू-कोष तथा उर्दू-हिन्दी कोषके प्रकाशनकी योजना बनायी गयी है।

परीक्षाएँ : हिन्दी-प्रवेश, हिन्दी-प्रथम ; हिन्दी-मध्यमा, हिन्दी-उत्तमा, हिन्दी-विशारद, हिन्दी-भूषण तथा हिन्दी-विद्वान। 'सभा' की इन परीक्षाओंमें तथा वर्धा-समिति की परीक्षाओंमें हजारों परीक्षार्थी सम्मिलित होते रहते हैं। 'सभा' का कार्यालय अपने निजी विशाल हिन्दी-भवनमें स्थित है। श्री. गोपालराव मर्पासगीकर एवं अन्य महानुभावोंके मार्गदर्शनमें 'सभा' का उत्तरोत्तर विकास होता जा रहा है।

अन्य हिन्दी-प्रचार-संस्थाएँ :

### १. बम्बई-हिन्दी-विद्यापीठ, बम्बई

[ पता :— आनंद-नगर, फॉरजेट स्ट्रीट, बम्बई—२६ ]

स्थापना : ता. १२ अक्तूबर १९३८ को राष्ट्रभाषा हिन्दी और राष्ट्रलिपि देवनागरीका प्रचार एवं प्रसार करनेके उद्देश्यसे बम्बईमें 'बम्बई हिन्दी विद्यापीठ' की स्थापना हुई जिसका कार्यक्षेत्र सारे देशमें फैला हुआ है।

**प्रचार तथा परीक्षाएँ :** अपनी परीक्षाओंके माध्यमसे, राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा देवनागरीका विद्यापीठने भारतभरमें काफी प्रचार-प्रसार किया है। इस 'विद्यापीठ' के लगभग ९०० परीक्षा-केंद्रोंसे, प्रतिवर्ष ८० हजारसे अधिक विद्यार्थी विद्यापीठकी परीक्षाओंमें सम्मिलित होते हैं । विद्यापीठ-द्वारा निम्नलिखित परीक्षाओंका संचालन होता है :— (१) हिन्दी-प्रवेश, (२) हिन्दी-प्रथमा, (३) हिन्दी-मध्यमा, (४) हिन्दी उत्तमा, (५) हिन्दी-भाषारत्न (उपाधि) एवं (६) साहित्य-सुधाकर (उपाधि)।

१. **प्रवृत्तियाँ : प्रकाशन विभाग :** विद्यापीठकी परीक्षाओंमें निर्धारित अधिकांश पाठ्य-पुस्तकोंका प्रकाशन, विद्यापीठके इस प्रकाशन विभाग की ओरसे ही किया जाता है। अबतक लगभग एक सौ पुस्तकें प्रकाशित की गयी हैं। विद्यापीठके "दीक्षान्त-भाषणों" का एक संग्रह भी प्रकाशित हुआ है।

२. **विद्यापीठ-मुद्रणालय :** विद्यापीठकी छपाईके साथही मराठी-गुजराती एवं अंग्रेजीकी बाहरी छपाईका कार्य इसमें होता है।

३. **"भारती" :** विद्यापीठके मुख-पत्रके रूपमे यह मासिक-पत्रिका सन १९५० से प्रकाशित हो रही है। इसमे विद्यापीठकी गतिविधियोंकी एवं परीक्षा-विषयक जानकारी तथा लेखादि प्रकाशित होते हैं।

४. **पुस्तकालय :** बम्बई-महानगर एवं बडौदा शहरमें विद्यापीठकी ओरसे समृद्ध पुस्तकालय स्थापित किये गये हैं।

५. **सांस्कृतिक विभाग :** इस विभागकी ओरसे विविध-सांस्कृतिक कार्यक्रमोंका आयोजन किया जाता है। यहाँ राष्ट्रकवि मैथिलीशरणजी गुप्तकी उपस्थितिमें 'यशोधरा' को सफल नृत्य-नाटिकाके रूपमें प्रदर्शित किया गया था, जो बहुत पसंद किया गया। 'पंचवटी', 'कामायनी', तथा 'रामायण' 'चित्रलेखा' एवं मराठीके श्रेष्ठ नाटककार आचार्य अत्रेके 'उद्याचा संसार' का हिन्दी रूपांतर 'कलकी गृहस्थी' को भी हिन्दी रंगपंचपर सफलताके साथ प्रदर्शित किया गया। विद्यापीठका यह प्रयास बड़ाही स्तुत्य है।

**योजनाएँ :** भवन, प्रकाशन, वृहद् हिन्दी ग्रंथालय, अनुसंधान-केन्द्र, हिन्दी-प्रशिक्षण-केन्द्र, हिन्दी-माध्यमके हाईस्कूल चलाना आदि 'विद्यापीठ'की योजनाएँ हैं।

**दीक्षान्त-समारोह:** सुविख्यात साहित्यिक, विद्वान् एवं नेताओंकी उपस्थितिमे विद्यापीठके द्वारा प्रतिवर्ष दीक्षान्त-समारोह आयोजित होते हैं, जो अपनी विशेषता रखते हैं। श्रीमती लीलावती मुन्शी, श्री. रामनाथ पोद्दार,

श्री. रणछोडलाल ज्ञानी, डॉ. मोतीचंद्र, श्री. घनश्यामदास पोद्दार, साहू श्रेयांस-प्रसाद जैन, श्री. देवीप्रसाद खण्डेलवाल, श्री. मदनमोहन रुइया, श्री. रतनचंद-हीरालाल, श्री. लक्ष्मीलाल पित्ती एवं श्री. भानुकुमार जैन आदिके सहयोगसे विद्यापीठने काफी प्रगति की है।

**रजत-जयंती महोत्सव :** ता. ९, १० और ११ नवम्बर, १९६३ को विद्यापीठने उपराष्ट्रपति डॉ. ज़ाकिर हुसेनकी अध्यक्षतामें, बड़ी धूम-धामसे अपनी रजत-जयन्ती मनायी। इस अवसरपर विद्यापीठकी ओरसे बृहत् 'रजत-जयन्ती-ग्रन्थ' का प्रकाशन एवं सुन्दर साहित्यिक-सांस्कृतिक समारोहका आयोजन किया गया।

## २. ज्ञानलता मण्डल तथा भारतीय विद्यापीठ, बम्बई.

[पता : 'ज्ञान-सदन', ४-पहली अक्कलकोट लेन, खाडिलकर रोड, बम्बई ४.]

**स्थापना :** सन् १९४२ में राष्ट्रभाषा हिन्दीका प्रचार करनेके उद्देश्यसे ज्ञानलता-हिन्दी मंडलकी बम्बईमें स्थापना हुई। बादमें उसका नाम 'ज्ञानलता-मण्डल' रखा गया। भाषा, कला, शास्त्र, एवं संस्कृतिकी अभिवृद्धि तथा प्रसार करना संस्थाका ध्येय है।

ज्ञानलता-मण्डल के अंतर्गत, हिन्दीके साथही अन्य भारतीय भाषाओंकी परीक्षाओंका प्रबन्ध करनेके हेतु ता. ६ फरवरी १९४९ को 'भारतीय-विद्यापीठ' की स्थापना की गयी। राष्ट्रभाषा-हिन्दीके अतिरिक्त, मराठी, गुजराती, बंगला तथा कन्नड़ भाषाकी पढ़ाई एवं परीक्षाओंका प्रबन्ध इसके द्वारा होता है। 'विद्यापीठ' के द्वारा अँग्रेजीकी परीक्षाएँ भी संचालित होती हैं।

**परीक्षाएँ :** हिन्दी, गुजराती, मराठी, द्वितीय-परीक्षा, तृतीय-परीक्षा, तथा 'रत्न-परीक्षा (उपाधि)। इनके अलावा हिन्दीकी 'आचार्य' (उपाधि) तथा 'रत्न' (उपाधि) परीक्षाएँ भी ली जाती हैं। अँग्रेजी भाषाकी परीक्षाओंके नाम हैं :— फर्स्ट, सेकन्ड, थर्ड, फोर्थ-एक्झामिनेशन, ज्यूनियर तथा सीनियर एक्झामिनेशन।

**प्रकाशन :** 'विद्यापीठ' के द्वारा लगभग १९ पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं जिसमें 'व्यवहार-दीपिका' नामक मराठी-हिन्दी लघु-कोष बहुत लोकप्रिय है। 'ज्ञानधारा' नामक पत्रिका भी कुछ समयतक चली।

**अंतर भाषीय पुस्तकालय :** इसमें हिन्दी, मराठी, गुजराती, बंगाली, तथा अँग्रेजी आदि भाषाकी पुस्तकें संग्रहीत हैं।

विद्यापीठकी परीक्षाएँ भारतके विभिन्न प्रदेशोंमें प्रचारित रही हैं। अनेक महानुभावोंके मार्ग-दर्शन एवं सक्रिय सहयोगसे इस संस्थाका कार्य प्रगति करता जा रहा है।

## ३. महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पुणें

[ पता :—३८८, नारायण पेठ, पुणें–२ ]

**स्थापना :** राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धाके अंतर्गत कार्य करनेवाली महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिके कुछ पदाधिकारी एवं कार्यकर्ताओंने नवम्बर सन् १९४५ में अहमदनगर जिलेके (बेलापुर-श्रीरामपुर) गांवमें एक बैठक बुलायी जिसमे 'महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा' स्थापित हुई। इसकी स्थापनामें श्री. शंकरराव देव, महामहोपाध्याय प्रा. दत्तो वामन पोतदार एवं श्री. गो. प. नेने आदिका वर्चस्व रहा और इनके ही मार्ग-दर्शनमें यह 'सभा' महाराष्ट्रमे राष्ट्रभाषाके प्रचार-प्रसारका कार्य करने लगी।

**'सभा' की नीति :** हिन्दीके सम्बन्धमें 'सभा' की मान्यता इस प्रकार रही है :—

भारतमें अंतर-प्रांतीय व्यवहारके लिए जिस भाषाका उपयोग सदियोंसे आम तौरपर चलता आ रहा है, वह हमारी राष्ट्रभाषा है। इसके लिए हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी ये तीनों नाम रूढ हैं।

" राष्ट्रभाषा हिन्दी सर्व-संग्राही होनी चाहिए। इसके प्रति जनतामे अपनापा पैदा हो और यह सच्चे अर्थोंमे सार्वदेशिक भाषा बने, इस दृष्टिसे भारतकी समस्त भाषाओं तथा उनके साहित्यकी सहायतासे इसका विकास होना चाहिए। यह आसान, आम फ़हम और उपयोगी बननी चाहिए।"

**कार्यक्षेत्र :** इसका कार्यक्षेत्र पूरे महाराष्ट्रके मराठी भाषा-भाषीक्षेत्रमें फैला हुआ है।

**वर्तमान पदाधिकारी :** अध्यक्ष :—म. म. श्री. वा. दत्तो वामन पोतदार, **उपाध्यक्ष :** श्री. रामानंद तीर्थ, श्री. मुस्तफा फकी, **कार्याध्यक्ष :** श्री. माधवराव मेमाणे, **कोषाध्यक्ष :** श्री. भा. म. गुप्ते, **प्रशासन-मंत्री :** श्री. गो. प. नेने, **मंत्री :** श्री. ग. वा. करमरकर **सह-मंत्री :** श्री. ग. सा. मुळे तथा श्री. द. रं. जानोरकर।

**परीक्षाएँ :** 'सभा' द्वारा निम्नलिखित परीक्षाओंका संचालन होता है :
१. राष्ट्रभाषा बाल-बोधिनी, २. राष्ट्रभाषा-पहली, ३. राष्ट्रभाषा-दूसरी ४. राष्ट्रभाषा-प्रबोध, ५. राष्ट्रभाषा-प्रवीण, ६ राष्ट्रभाषा-पंडित, ७. नागरी लिपि-परिचय, ८. उर्दू लिपि-परिचय-पहली, ९. उर्दू लिपि-परिचय-दूसरी, १०. संभाषण-योग्यता. ११. व्याख्यान-योग्यता, १२ अनुवाद-पण्डित (मौखिक), १३. अनुवाद-पण्डित (लिखित), और १४. राष्ट्रभाषा व्यवहार-योग्यता।

**प्रचार-कार्य :** 'सभा' की इन परीक्षाओंमें महाराष्ट्र-क्षेत्रसे लगभग २० लाख परीक्षार्थी शामिल हो चुके हैं और प्रतिवर्ष दो लाखसे ऊपर परीक्षार्थी 'सभा'की परीक्षाओंमें शामिल होते हैं। 'सभा' के प्रचार-केन्द्रोंकी संख्या १७०० और अधिकृत-अध्यापकों की कुल संख्या ३,५०० है।

**प्रवृत्तियाँ :** १. प्रकाशन : 'सभा'की परीक्षाओंमें निर्धारित कुछ पाठ्य-पुस्तकोंके अलावा 'सभा' द्वारा मराठीकी बीस चुनी हुई पुस्तकोंके हिन्दी अनुवाद एवं हिन्दीके विख्यात कवि श्री. सुमित्रानंदन पंतकी चुनी हुई कविताओंका पद्यमय मराठी अनुवाद प्रकाशित किया गया है। हिन्दी-मराठी शब्दकोश, मुहावरे-कहावत-कोश, उर्दूके अदीब (उर्दू साहित्यका इतिहास) अंग्रेजीमें 'हिन्दी-नागरी-प्राइमर' एवं 'राष्ट्रभाषाका अध्ययन' तथा 'राष्ट्रभाषा आंदोलन' 'सभा' के उल्लेखनीय प्रकाशन हैं। अबतक लगभग ९१ पुस्तकें 'सभा' द्वारा प्रकाशित की गयी हैं।

**पत्रिकाएँ :** सन १९४९ से 'सभा' द्वारा 'राष्ट्रवाणी' नामक साहित्यिक पत्रिकाका प्रकाशन किया जा रहा है। उसी प्रकार 'हमारी बात' नामक पाक्षिक (हालमें मासिक) भी 'सभा' की ओरसे प्रकाशित होता है जिसमें 'सभा' की गतिविधियोंकी जानकारी एवं परीक्षा-विषयक सूचनाएँ प्रकाशित होती हैं।

**राष्ट्रभाषा-मुद्रणालय :** 'सभा' के इस मुद्रणालमें अपने निजी प्रकाशनोंके अलावा बाहरकी छपाईकाभी काम होता है।

**राष्ट्रभाषा-ग्रंथालय :** 'सभा' के इस बृहत् ग्रंथालयमें हिन्दीकी लगभग २० हजार पुस्तकें संग्रहीत हैं। 'सभा' द्वारा जिला-राष्ट्रभाषा-ग्रंथालयभी चलाये जाते हैं।

**हिन्दी प्राथमिक विद्यालय तथा हिन्दी हाईस्कूल :** 'सभा' की ओरसे पुणेके लष्कर-क्षेत्र (कॅन्टोन्मेन्ट) में हिन्दी-माध्यमका एक प्राथमिक विद्यालय तथा हाईस्कूल संचालित किया जा रहा है।

**राष्ट्रभाषा-भवन :** 'सभा'का कार्यालय एवं मुद्रणालय तथा ग्रंथालय अपने निजी 'राष्ट्रभाषा-भवन' में स्थित है।

पुस्तक-भांडार: इसमें 'सभा'-प्रकाशनोंके अतिरिक्त, हिन्दी-मराठी एवं अन्य भाषाओंकी पुस्तकों-प्रकाशनोंकी बिक्रीकी व्यवस्था है।

राष्ट्रभाषा-सम्मेलन, शिबिर, वासंतिक-वर्ग, हिन्दी अध्यापक विद्यालय, व्याख्यान-मालाएँ, वक्तृता प्रतियोगिताएँ आदि 'सभा' की अन्य प्रवृत्तियाँ हैं। 'सभा' की विभिन्न परीक्षाओंमें सर्व-प्रथम आनेवालोंको राज्यस्तरपर एवं जिला स्तरपर पुरस्कार दिये जाते हैं।

नियामक मण्डल तथा कार्यकारिणी-समितिके मार्गदर्शनमें तथा विभागीय समितियोंके सहयोगसे 'सभा' अपना कार्य करती है।

पुणे, बम्बई, औरंगाबाद तथा नागपुरमें 'सभा' की विभागीय समितियाँ स्थापित की गयी हैं। महाराष्ट्रके राष्ट्रभाषाके प्रचार-प्रसारमे 'सभा' ने बहुत बड़ा योगदान दिया है। इसका कार्य तीव्र गतिसे फैलता जा रहा है।

### ४. गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद
### ( हिन्दी प्रचार समिति )

[ पता :— अहमदाबाद (गुजरात) ]

स्थापना : सन १९२० के असहयोग आन्दोलनमें, कई नवयुवकोंने अंग्रेजी शिक्षा-दीक्षाका त्याग कर दिया। वैसे राष्ट्रीय वृत्तिवाले युवकोंकी शिक्षाका प्रबंध करनेके हेतु राष्ट्रीय शालाके रूपमें सन १९२० मेंही महात्मा गाधीजी द्वारा 'गुजरात विद्यापीठ' की स्थापना की गयी। गांधीजी स्वयं इसके कुलपति बने तथा आचार्य जे. बी. कृपलानी, आचार्य काकासाहब कालेलकर, आचार्य गिडवानी आदि विद्वानों एवं शिक्षा-शास्त्रियोंका उसे पूरा सहयोग मिला। राष्ट्रीय विकासके कार्यमें इसने बहुत प्रशंसनीय कार्य किया। राष्ट्रीयताको बढ़ानेवाली राष्ट्रभाषा-हिन्दीको विद्यापीठके पाठ्य-क्रममे अनिवार्य विषयके रूपमें स्थान मिला तथा माध्यमिक एवं महाविद्यालयीन हिन्दी-शिक्षाका 'विद्यापीठ' की ओरसे सुचारु प्रबंध किया गया।

सन १९३५ मे राष्ट्रभाषा-प्रचारका कार्यभी विद्यापीठकी 'हिन्दी-प्रचार-समिति'द्वारा प्रारंभ किया गया। नवजीवन-ट्रस्टके सहयोगसे श्री. मोहनलालजी भट्टने इस कार्यको संभाला। सन १९३६ से १९४२ तक राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिके अंतर्गत यह कार्य होता रहा, किन्तु सन १९४२ मे हिन्दुस्थानी-प्रचार-सभा, वर्धा-द्वारा यह कार्य होने लगा। सन १९४५ में हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाने, गुजरातके हिन्दी-प्रचार-कार्यका संचालन 'गुजरात विद्यापीठ' को सौंप दिया। संविधानमे हिन्दी तथा नागरी स्वीकृत होजानेपर 'विद्यापीठ' ने उर्दू लिपिके आग्रहको छोड़ दिया। सुप्रसिद्ध गांधीवादी कार्यकर्ता श्री. मगनभाई देसाईका कई वर्षोतक कुलपतिके

नाते 'विद्यापीठ' को मार्गदर्शन मिलता रहा। वर्तमान समयमें श्री मोरारजी भाई देसाई इसके कुलगुरु हैं।

**परीक्षाएँ:** हिन्दीके प्रचारके लिए विद्यापीठ-द्वारा स्थापित 'हिन्दी-प्रचार-समिति' की ओरसे निम्नलिखित, परीक्षाएँ संचालित होती हैं :— १.हिन्दी पहली २. हिन्दी दूसरी, ३ हिन्दी तीसरी ४. विनीत तथा ५. हिन्दी-सेवक।

वर्षमें दो बार, फरवरी तथा सितंबरमें परीक्षाओंका आयोजन होता है और बहुत बड़ी संख्यामें इन परीक्षाओंमें हिन्दी-प्रेमी सम्मिलित होते रहते हैं। गुजरातमें 'विद्यापीठ' द्वारा राष्ट्रभाषा-प्रचारका कार्य बहुत बड़े पैमाने पर हो रहा है और वह दिनों-दिन बढ़ता जा रहा है। 'विद्यापीठ' की शिक्षामें हिन्दीको आजभी वही महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है जो पहलेसे था। 'गुजरात विद्यापीठ' निःसन्देह गुजरातकी एक गौरवपूर्ण-राष्ट्रीय संस्था है।

## ५. हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा, वर्धा

[ वर्तमान पता :—राजघाट, नई दिल्ली ]

**स्थापना :** महात्मा गांधीजीकी प्रेरणासे ता. २ मई १९४२ को हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभाकी स्थापना वर्धामें हुई। सन १९४५ में म. गांधीजीकी अध्यक्षतामें हुई इसकी एक बैठकमें हिन्दुस्तानी भाषाके प्रचारके लिए साहित्य तैयार करनेके हेतुसे एक बोर्ड स्थापित किया गया और डॉ ताराचंदको इस कार्यकी जिम्मेदारी सौंपी गयी। प्रांतीय संगठन कायम किये गये और श्री. काका साहब कालेलकरने हिन्दुस्तानीके प्रचारके लिये देशभरमें दौरे लगाये। सन १९४७ तक श्रीमन्नारायणजीने इस 'सभा' के मंत्रीका कार्य सभाला और श्री. अमृतलाल नाणावटी इसके परीक्षा-मंत्री रहे।

**परीक्षाएँ :** १. हिन्दुस्तानी लिखावट, २. हिन्दी पहली, ३. हिन्दी दूसरी, ४. हिन्दी तीसरी, ५. काबिल तथा ६. विद्वान।

'सभा' का कार्यालय बम्बईमें भी कार्य कर रहा है और वहींसे उसकी परीक्षाओंका संचालन हो रहा है। बम्बई-कार्यालयका पता निम्नानुसार है :— हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, गांधी मेमोरियल बिल्डिंग, चर्नी रोड, बम्बई ४।

बम्बई-शाखाका कार्य शुरूसे, पेरिन बहन कॅप्टनके सचालकत्वमें चलता रहा और उनके अथक परिश्रमसे वह खूब फैला। पेरिन बहन कॅप्टनके निधनके कारण 'सभा' के कार्यकी अपूरणीय हानि हुई है।

आज भी श्री. काकासाहब कालेलकरका मार्गदर्शन 'सभा'को मिल रहा है और उन्हींकी छत्र-छायामें 'सभा' आगे बढ़ रही है। श्री. काकासाहब कालेलकरके संपादकत्वमें 'मंगल-प्रभात' पत्रिकाका प्रकाशन भी 'सभा'द्वारा हो रहा है।

## ६. अखिल भारतीय हिन्दी परिषद, नई दिल्ली

[ कार्यालय :—२. फिरोज़शाह रोड, नई दिल्ली तथा नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा. ]

**स्थापना :** मुख्यतः भारतीय संविधानके अनुच्छेद ३५१ के अनुसार राजभाषा हिन्दीके निर्माण, विकास एवं प्रचारमें मदद पहुँचानेके हेतुसे इसकी स्थापना डॉ. राजेन्द्र प्रसादकी अध्यक्षतामें ता. २३ नवम्बर सन १९४९ में नई दिल्लीमें हुई। श्री ग. वा. मावलंकर, श्री. गोविन्दवल्लभ पंत, श्री. रंगराव दिवाकर, श्री. कमलनयन बजाज, श्री. शंकरराव देव एवं श्री मो सत्यनारायण तथा श्री. देवदूत विद्यार्थी आदि महानुभावोंका मार्गदर्शन तथा सहयोग इसे प्राप्त हुआ है। कई विशेष-सम्मानित सदस्यों एवं सम्बद्ध संस्थाओंके प्रतिनिधियोंका सहयोग भी इसे प्राप्त है। इसके उद्देश्योंसे सहमत कई प्रादेशिक हिन्दी-प्रचार-संस्थाएँ इसके साथ सम्बद्ध हुई हैं।

**हिन्दी महाविद्यालय :** हिन्दीतर-भाषियोंको हिन्दीकी उच्च शिक्षाकी सुविधा उपलब्ध करा देनेके हेतुसे 'परिषद'की ओरसे आगरामें १५ अगस्त १९५२ में 'अखिल भारतीय हिन्दी महाविद्यालय' खोला गया। इसमें परिषदकी सर्वोच्च परीक्षा 'भारतीय हिन्दी पारगत' तथा 'शिक्षणकला-प्रवीण'की शिक्षाका प्रबन्ध किया गया है। अब इस विद्यालयका संचालन भारत-सरकारके शिक्षा-मंत्रालय-द्वारा होता है। इसमें अध्ययन तथा निवासकी निःशुल्क सुविधा है तथा छात्रवृत्ति भी दी जाती है। हिन्दीतर-भाषी प्रदेशोंके कई छात्र इसका लाभ उठाते हैं।

**'परिषद' की परीक्षा-योजना :** राष्ट्रभाषाके प्रचार-कार्यमें प्रामाणीकरण लानेके उद्देश्यसे 'परिषद'ने नीचे लिखी परीक्षाएँ चलानेकी योजना बनाई है :—

**साहित्यिक :** १ भारतीय हिन्दी-परिचय, २. भारतीय हिन्दी-प्रवेश ३. भारतीय हिन्दी प्रबोध, ४. भारतीय हिन्दी विशारद तथा ५. भारतीय हिन्दी-पारगत।

**विशेष योग्यता परीक्षाएँ :** १ शिक्षण-कला-प्रवीण, २. पत्रकार-कला-प्रवीण, ३. शीघ्रलिपि प्रबोध और प्रवीण, ४. मुद्रालेखन प्रबोध और प्रवीण तथा ५. कार्यपालन (सेक्रेटेरिएट और एक्जिक्युटिव कार्य)।

'परिषद'के कार्यमें अनेक साहित्यिक विद्वानों तथा देश-नेताओंका सहयोग प्राप्त है और सबके मार्गदर्शनमें इसका कार्य आगे बढ़ रहा है। केन्द्रीय सरकारसे भी इस संस्थाको अच्छी सहायता प्राप्त हो रही है।

### ७. मैसूर हिन्दी प्रचार परिषद, बंगलोर

[ पता :—पो. बंगलोर (मैसूर) ]

**स्थापना :** सन १९४४ में राष्ट्रभाषा-हिन्दीके प्रचार-प्रसार और हिन्दी साहित्यके प्रति जनतामें अभिरुचि उत्पन्न करनेके उद्देश्यसे इस संस्थाकी स्थापना हुई।

**पदाधिकारी :**

**अध्यक्ष :** श्री. एच. रामकृष्ण रावजी, **उपाध्यक्ष :** श्रीमती पुष्पा-बाई, **कोषाध्यक्ष :** श्री. वेंकटेशय्या, **प्रधान, प्रचार तथा परीक्षा-मन्त्री :** श्री. के. वी. मानप्पा।

**प्रचार तथा परीक्षाएँ :** १. हिन्दी प्रथमा, २. हिन्दी मध्यमा, ३. हिन्दी प्रवेश, ४. हिन्दी उत्तमा तथा ५. हिन्दी-रत्न (उपाधि)। इन परीक्षाओंका 'परिषद'की ओरसे संचालन किया जाता है और प्रतिवर्ष इनमें २५ हजार परीक्षार्थी सम्मिलित होते हैं। २०० परीक्षा-केन्द्रोंमें परीक्षाएँ ली जाती हैं।

**पुस्तकालय-वाचनालय :** 'परिषद'के केन्द्रीय पुस्तकालयमें २० हजारसे अधिक हिन्दीकी पुस्तके संगृहीत हैं। 'परिषद'की तरफसे मैसूर-राज्यके प्रमुख नगरोंमें भी हिन्दी-पुस्तकालय चल रहे हैं। इन पुस्तकालयोंको केन्द्रीय तथा राज्य-सरकार एवं स्थानीय संस्थाओंकी ओरसे आर्थिक सहायता भी प्राप्त होती है। पुस्तकालयोंके साथही वाचनालयोंका भी प्रबंध किया गया है।

**प्रकाशन :** 'परिषद'की प्रारंभिक परीक्षाओंकी पाठ्य-पुस्तकोंके अतिरिक्त, अबतक 'हिन्दी-प्रकाश' के तीन भाग, 'महापुरुष', 'चार एकांकी', 'साहित्य-सुबोध', हिन्दी-कन्नड़ अनुवादमाला, हिन्दी-कन्नड़-व्याकरण आदि पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

हिन्दी प्रशिक्षण-केन्द्र : 'परिषद 'के तत्वावधानमे एव राज्य-सरकारकी आर्थिक सहायतासे 'हिन्दी-अध्यापक-प्रशिक्षण केन्द्र ' चलाया जाता है ।

अन्य प्रवृत्तियाँ व्याख्यान-माला, वाक्स्पर्धा, विशेष-भाषण, प्रचारक-सम्मेलन, विचार-गोष्ठी एवं अन्य सांस्कृतिक प्रवृत्तियोंका भी 'परिषद' द्वारा सचालन हो रहा है । हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयागकी 'विशारद' तथा 'साहित्य-रत्न' परीक्षाओंकी पढाईका प्रबन्ध भी 'परिषद 'की ओरसे किया जाता है ।

'परिषद 'के कार्य-सचालनमे मैसूर-राज्य-सरकार तथा भारत-सरकारकी ओरसे आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है । अतएव हिन्दी-प्रेमियोके सक्रिय सहयोगसे परिषदका कार्य मैसूर-राज्यके कोने-कोनेमे फैल रहा है ।

## ८. बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना

[ पता :—पो पटना (बिहार) ]

स्थापना : ता ११ अप्रैल, सन १९४७ को बिहार-राज्य-विधान-सभाके सकल्पके अनुसार 'बिहार राष्ट्रभाषा परिषद ' की स्थापना का निश्चय किया गया। बिहार-राज्यके तत्कालीन राज्यपाल श्री माधव श्रीहरि अणेके शुभ हाथों ता ११ मार्च, सन १९५१ को 'परिषद 'का विधिवत् उद्घाटन हुआ ।

उद्देश्य 'परिषद 'की स्थापनामे निम्न लिखित उद्देश्य रखे गये हैं — बिहारकी राज्यभाषा एव भारतकी राष्ट्रभाषा हिन्दीमे कला, विज्ञान, एव अन्यान्य विषयोके मौलिक तथा उपयोगी ग्रथोका प्रकाशन और बिहारकी प्रमुख बोलियोका अनुशीलन करना । आधुनिक भारतीय भाषाओंके साहित्यका सवर्धन करना । इसके लिए श्रेष्ठ साहित्यके सकलन और प्रकाशनकी 'परिषद 'की ओरसे व्यवस्था की गयी है । प्रारंभिक तथा वरिष्ठ ग्रथ प्रणेताओ एव नवोदित साहित्यकारोंको पुरस्कार देनेकी एव उपयोगी साहित्यकारोको आर्थिक सहायता प्रदान करनेकी योजनाएँ बनायी गयी हैं । विशिष्ट विद्वानोके भाषणों तथा उसके प्रकाशनका और हस्तलिखित तथा दुर्लभ साहित्यकी खोजका कार्य हाथमे लिया गया है । भोजपुरी, मैथिली तथा मराठी आदि भाषाओंके शब्द-कोशके निर्माणकी योजनाएँ बनायी गयी हैं ।

इस कार्यक्रमके अनुसार अब 'परिषद' के पास कई हस्तलिखित तथा अन्य दुर्लभ ग्रंथोंका संग्रह एकत्रित हो गया है।

'परिषद'के प्रकाशन . हिन्दी साहित्य : आदिकाल, हर्ष-चरित, योरोपीय-दर्शन, सार्थवाह, भोजपुरी भाषा और साहित्य आदि ।

वार्षिकोत्सव : 'परिषद' का वार्षिकोत्सव अपनी विशेषता रखता है। इस भव्य समारोहके साथही विशिष्ट विद्वानोंके भाषणोंका आयोजन, राज्यपाल, राज्यके मंत्रीगण, सज्जनों, विशेष-निमंत्रित एवं साहित्यिकोंकी उपस्थितिमें होता है।

बिहार राष्ट्रभाषा परिषदके प्रथम अध्यक्ष : बिहारके तत्कालीन शिक्षा-मंत्री श्री बद्रीनाथ वर्मा एवं मंत्री : आचार्य शिवपूजन सहाय नियुक्त हुए थे। 'परिषद' ने हिन्दी-जगत्में अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया है और राष्ट्रभाषा हिन्दीके विकास एवं संवर्द्धनके कार्यमें उसका महत्त्वपूर्ण योगदान प्राप्त हो रहा है।

## ९. हिन्दी विद्यापीठ, देवघर.

[ पता : पो. देवघर (बिहार) ]

**कार्य :** हिन्दी विद्यापीठ, देवघरकी ओरसे बिहारमें तथा भारतके अन्य प्रदेशोंमें भी राष्ट्रभाषा-हिन्दीकी उच्च परीक्षाओंका प्रबंध किया जाता है। इसकी उपाधि-परीक्षा : साहित्यालंकारका देशभरमें बड़ा सम्मान है और भारतके प्रत्येक प्रदेशसे इस परीक्षा में कई हिन्दी-प्रेमी सम्मिलित होकर अपनी हिन्दीकी योग्यता बढ़ाते हैं। इसके साहित्य-महाविद्यालयमें हिन्दीकी पहलीसे उत्तमा तककी अनिवार्य शिक्षा दी जाती है। यहां साहित्यिक परीक्षाओंके अतिरिक्त औद्योगिक एवं विज्ञान-विषयक परीक्षाओंकी भी हिन्दी माध्यम द्वारा-शिक्षा दी जाती है।

बिहार-राज्यमें इस संस्थाका कार्य काफी फैला हुआ है तथा भारतके विभिन्न प्रदेशोंमें भी इसके परीक्षा-केंद्र स्थापित हो चुके हैं। हिन्दीकी प्रगतिमें, देवघरका हिन्दी विद्यापीठ अपना अनमोल सहयोग प्रदान कर रहा है।

## १०. हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयाग.

[ पता :— पो. प्रयाग (उ. प्र.) ]

**स्थापना :** महत्त्वपूर्ण पुस्तकोंके अनुवाद कराने, मौलिक रचनाओंको पुरस्कृत करने एवं साहित्यिकोंका सम्मान करनेके हेतुसे सन १९४७ में

इसकी स्थापना प्रयागमें हुई। प्रतिवर्ष, लब्ध प्रतिष्ठ विद्वानोंके व्याख्यानोंका भी आयोजन होता है। 'हिन्दुस्तानी' नामक पत्रिका प्रकाशित की जाती है। इसका एक विशाल पुस्तकालय है। कई विषयोंपर, अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकोंका प्रकाशन करके, हिन्दी प्रकाशनके क्षेत्रमें इसने अपना एक विशेष स्थान बना लिया है। अबतक लगभग डेढ सौ पुस्तके इसके द्वारा प्रकाशित हो चुकी हैं। हिन्दी और उर्दू साहित्यकी श्रीवृद्धि करना इसका प्रमुख उद्देश्य रहा है।

## ११. महिला विद्यापीठ, प्रयाग

[पता — पो प्रयाग (उ प्र)]

हिन्दीकी सुख्यात कवयित्री सुश्री महादेवी वर्माकी निगरानीमें चलनेवाली इस सस्थाने प्रारभसे लेकर एम ए तककी पढाईका हिन्दी-माध्यमके द्वारा बहुत पहलेसेही प्रबंध किया और इस प्रकार राष्ट्रभाषा हिन्दीके विकासमें महत्वपूर्ण योगदान दिया है। सस्थाकी ओरसे एक कॉलेज भी चलाया जाता है।

**परीक्षाएँ** १ प्रवेशिका, २ विद्या विनोदिनी, ३ विदुषी, ४ सुगृहिणी तथा सरस्वती आदि परीक्षाएँ इसके द्वारा सचलित होती हैं।

## १२ भारतीय साहित्य सहकार, काशी

[पता — हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी—५ (उ प्र)]

**स्थापना** साहित्यकारो, साहित्यके अभ्यासको और साहित्य प्रेमियोकी इस सस्थाकी स्थापना सन १९४७ मे काशीमे हुई। भारतकी सभी भाषाओंके साहित्यकारोंमे परस्पर सम्पर्क एव सहकार स्थापित करना—इसका प्रमुख उद्देश्य रहा है।

साहित्यिक गोष्ठी, निबध वाचन, साहित्य रचना वाचन, कविता पाठ व्याख्यान तथा विचार-विनिमय आदि इसकी प्रवृत्तियाँ हैं। इसके कार्यक्रमोंमें काशी एव भारतके साहित्यिक अपने विचारोके आदान प्रदान द्वारा एक दूसरेके अधिक निकट आते हैं। हिंदू विश्वविद्यालयके जर्मन भाषा विभागके प्रमुख डॉ म सी करमरकर इसके मत्री हैं और उन्हींके मार्गदर्शनमे इसका कार्य चलता है

## १३. हिन्दी प्रचार संघ, पुणें.

[ पता :— ७८८-ब, सदाशिव पेठ, लक्ष्मी रास्ता, कुंटे चौक, पुणे २. ]

स्थापना : राष्ट्रभाषा हिन्दीका देवनागरी लिपिद्वारा प्रचार करनेके उद्देश्यसे ता. २१ जून, १९३४ को महात्मा गांधीजीके शुभ-हाथों 'हिन्दी-प्रचार-संघ, पुणे' की स्थापना हुई।

यहाँ शुरूमें दक्षिण-भारत हिन्दी-प्रचार-सभा तथा हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनकी परीक्षाओं की पढ़ाईका प्रबंध होता रहा।

सन-१९३६ से, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा की परीक्षाओं के प्रचारका कार्य 'संघ'की ओरसे होने लगा। प्रारंभसे ही 'संघ' की एक विशेषता रही है कि उसके कार्यकर्त्ता सेवाभावसे, निर्वेतन कार्य करते हैं। स्व. ग. र. वैशंपायनजीके प्रयत्नोंसे 'संघ' की स्थापना की गयी और वेही इसके प्रथम प्रधान-मंत्री रहे। महाराष्ट्रमें हिन्दी-प्रचारका कार्य करनेवाली यह आद्य प्रचार-संस्था है। इसी संस्थाने कई राष्ट्रभाषा-प्रचारक निर्माण किये जो महाराष्ट्रके विभिन्न स्थानोंमें आजभी हिन्दी-अध्यापन एवं राष्ट्रभाषा के प्रचार-प्रसार में अपना सहयोग दे रहे हैं।

ग्रंथालय : 'संघ' के ग्रंथालयमें हिन्दीकी चुनी हुई ८ हज़ारसे भी अधिक पुस्तकें संग्रहीत हैं। महाराष्ट्रका यही प्रथम 'हिन्दी-ग्रंथालय' है।

प्रकाशन : 'संघ' की ओरसे प्रकाशित 'हिन्दी-मराठी-अनुवादमाला' के भाग :१, २, ३, राष्ट्रभाषा के परीक्षार्थियों के लिए बहुतही उपयुक्त साबित हुए हैं और इनके अबतक कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

प्रवृत्तियाँ : प्रमाण-पत्र वितरण समारोह, विद्यार्थी-सम्मेलन, चर्चा तथा 'हिन्द-शक्ति' नामक हस्तलिखित पत्रिका, तुलसी-दल, चुनाव-परीक्षा तथा व्याख्यान माला, वर्ग-विद्यालयोंका संचालन आदि अपनी प्रवृत्तियोंके द्वारा 'संघ' ने राष्ट्रभाषा-हिन्दीके प्रचार-प्रसार में बहुत बड़ा योगदान दिया है और आज भी दे रहा है। कई साहित्यिक एवं राजनीतिक नेताओंके आशीर्वाद, मार्ग-दर्शन तथा सहयोग 'संघ' को प्राप्त होता रहा है। स्नेह-सम्मेलनोंके अवसरपर 'मराठी' के लोकप्रिय नाटकोंका हिन्दीमें रूपांतर करके खेलना और इस प्रकार नाटकों के द्वारा राष्ट्रभाषा-हिन्दीका प्रचार करना 'संघ' की विशेषता रही है। सन १९४० में पुणेमें सम्पन्न हिन्दी साहित्य सम्मेलनके २९ वे अधिवेशनको, 'संघ' के द्वाराही निमंत्रित किया गया। उसी प्रकार सन १९५१ में महाराष्ट्र-राष्ट्रभाषा-प्रचार-समितिद्वारा निमंत्रित अखिल भारतीय

राष्ट्रभाषा प्रचार-सम्मेलनके तीसरे अधिवेशनको सफल बनानेका श्रेय भी 'सघ' के कार्यकर्त्ताओकोही है। 'सघ' के वर्तमान अध्यक्ष है—डॉ. न का धारपुरेजी एव प्रधान-मन्त्रीके नाते श्री ज ग फगरेजी कार्य सँभाल रहे हैं। दिसबर, सन-१९६१ मे महाराष्ट्रके तत्कालीन राज्यपाल श्री श्रीप्रकाशजीकी अध्यक्षता मे 'सघ' ने अपनी 'रजत-जयती' बडी धूम-धामसे मनायी। महाराष्ट्रके हिन्दी-प्रचारके इतिहासमें, 'सघ' को एक विशेष स्थान प्राप्त है। आज भी 'हिन्दी-प्रचार-सघ,' राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धा के राष्ट्रभाषा प्रचार-प्रसार के कार्य मे पहलेकीही तरह अपना योग दान दे रहा है। 'सघ' के द्वारा अबतक २५ हजार से अधिक लोगोको राष्ट्रभाषा-हिन्दी की शिक्षा दी जा चुकी है।

## १४. राष्ट्रभाषा प्रचारक मण्डल, सूरत

[ पता : खपाटिया चकला, सूरत (गुजरात) ]

स्थापना : राष्ट्रभाषा और उसके साहित्यका प्रचार एव प्रसार करने के उद्देश्य से ता ९–५–१९३७ को राष्ट्रभाषा के परम उपासक श्री प परमेष्ठीदासजी जैन के द्वारा इसकी स्थापना सूरतमें हुई। शुरूसे ही वर्धा-समिति के प्रचार-कार्यमें इस सस्था सहयोग मिलता रहा है।

प्रवृत्तियां : राष्ट्रभाषा विद्यामन्दिर : इसके द्वारा सूरतकेविभिन्न मुहल्लोमें राष्ट्रभाषाकी पढाईके वर्ग चलाये जाते हैं। अबतक लगभग ५० हजार परीक्षार्थियोने इस का लाभ उठाया है।

राष्ट्रभाषा-अध्यापन मदिर : राज्य सरकार द्वारा सचालित 'हिन्दी-शिक्षक-सनद' (ज्यूनियर तथा सीनियर) की पढाईका प्रबध यहाँ होता है।

पुस्तकालय : इसके पुस्तकालयमें हिन्दी, उर्दू, गुजराती, तथा अँग्रेजी की लगभग ८ हजार पुस्तके सग्रहीत हैं। यह अपने क्षेत्रमें अनोखा स्थान रखता है। इस के साथही 'वाचनालय' भी चलता है। जिसमें लगभग ५० पत्र-पत्रिकाएँ आती हैं।

गाधी-साहित्य पुस्तकालय : इसमे गाधी-साहित्य-सम्बन्धी हिन्दी, गुजराती तथा अँग्रेजीकी लगभग ३०० पुस्तके रखी गयी, हैं। पुस्तकालयके लिये सूरत नगरपालिकाकी ओरसे आर्थिक सहायताभी मिलती है। वक्तृत्व तथा निबंध-स्पर्धाओ एव व्याख्यान मालाओका मण्डलकी ओरसे समय-

समयपर आयोजन किया जाता है। प्रत्येक सत्रमें प्रमाण पत्र-वितरणोत्सव मनाये जाते हैं और साहित्यिक चर्चाओंका भी आयोजन किया जाता है।

राष्ट्रभाषा प्रचारका कार्य करनेवाली गुजरातकी यह पुरानी सस्था है। श्री ईश्वरलाल इच्छाराम देसाई, श्री मोहनलाल दवे, श्री चन्द्रवदन शाह, श्री साकेरचद मगनलाल सरैया, श्री घनजय शाह एव श्री विपिनविहारी चटर्जी आदि महानुभावोंका सहयोग इस सस्थाको प्राप्त है।

## १५. पूर्व-भारत राष्ट्रभाषा-प्रचार-सभा, कलकत्ता

बगाल, आसाम और उत्कलमें राष्ट्रभाषाका प्रचार करनेके लिए सन १९२९ मे इसकी स्थापना कलकत्तामें हुई।

बीचमें इसका कार्य स्थगित रहा, किन्तु इसे पुन क्रियाशील बनाया गया है। इसके अध्यक्ष हैं—भागीरथ कनोडिया और मत्री हैं—श्री भँवरमल सिंघी। इसके द्वारा स्वतत्र परीक्षाओंका सचालन होता है। राष्ट्रभाषा प्रचारके पूर्वांचलके कार्यमें इस सस्थाने अच्छा योगदान दिया है।

## १६. आन्ध्र-राष्ट्र हिन्दी-प्रचार सघ, विजयवाडा

**स्थापना :** सन १९३६ मे इसकी स्वतत्र स्थापना हुई। श्री टी प्रकाशम पन्तुलु इसके अध्यक्ष हैं और श्री उन्नवराज गोपाल कृष्णय्या मत्री हैं।

**परीक्षाएँ :** दक्षिण-भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रासके अतर्गत इस सस्थाका कार्य चलता है। प्राथमिक, मध्यमा और राष्ट्रभाषा—इन तीन परीक्षाओंका सचालन सन १९४९ से 'सघ' की तरफसे ही रहा है। हैद्राबादमे 'हिन्दी प्रचार सघ' के नामसे इसका एक शाखा कार्यालय खोला गया है। कई स्थानोंमे इसके द्वारा विद्यालय चलाये जाते हैं। 'सघ' का अपना भवन, कार्यकर्त्ता-अध्यापक निवास तथा छात्रावास एव प्रेसभी है। इसमे हिन्दी तेलुगुकी पुस्तकें छपती हैं। 'सघ' की ओरसे तेलुगुकी सात पुस्तकें प्रकाशित की गयी हैं। "स्रवती" नामक हिन्दी-तेलुगु पत्रिकाकाभी प्रकाशन होता है। 'सघ' का कार्य पूरे आन्ध्र प्रदेशमे फैला हुआ है।

## १७. तामिलनाडु हिन्दी-प्रचार-सभा, तिरुचिरापल्ली

स्थापना सन १९३६ मे इसकी स्वत त्र स्थापना हुई। दक्षिण-भारत हिन्दी-प्रचार सभा, मद्रासके अतर्गत यह कार्य करती है। इसके अध्यक्ष हैं—सरदार वेदरत्नम् पिल्लै और मत्री हैं—श्री अयपनन्दन। 'सभा' के ४०० केन्द्र और ६००० प्रचारक राष्ट्रभाषाके प्रचारमे सहयोग दे रहे हैं। "हिन्दी-पत्रिका" का प्रकाशन 'सभा'

की ओरसे होता है । पुस्तकालय, प्रचारक-सम्मेलन, हिन्दी-प्रदर्शनी आदि 'सभा' की प्रवृत्तियाँ हैं । तिरुचिरापल्लीमें 'सभा' का अपना निजी भवन है और उसीमें कार्यालय तथा कार्यकर्त्ताओंके निवासका प्रबंध किया गया है ।

## १८. कर्नाटक-प्रांतीय हिन्दी-प्रचार-सभा, धारवाड

स्थापना : सन १९३६ में इसकी स्वतंत्र स्थापना हुई। इसके पूर्व सीधे मद्राससे कार्य-संचालन होता था । श्री. तालकेरे सुब्रह्मण्यम् इसके अध्यक्ष एवं श्री. सिद्धनाथ पन्त इसके मंत्री रहे। प्रारम्भिक परीक्षाओंका संचालन 'सभा' द्वारा किया जाता है ।

'सभा' का निजी भवनभी बन गया है। मई, सन १९६४ में 'सभा' ने अपनी सुवर्ण-जयन्ती बडी धूमधामसे मनायी जिसमें भारतकी अन्य हिन्दी प्रचार संस्थाओंनेभी उत्साहपूर्वक भाग लिया।

## १९. केरल हिन्दी-प्रचार-सभा, तिपुणीतुरा, कोचिन.

स्थापना : सन १९३६ में इसकी स्वतन्त्र स्थापना हुई। 'सभा' के प्रथम अध्यक्ष रायसाहब श्री. मत्ताई और मंत्री श्री देवदूत विद्यार्थी रहे । बादमें श्री के. पी. माधवन् नायर–अध्यक्ष और श्री. एन् वेंकटेश्वरन्–मंत्री रहे ।

केरलके भिन्न-भिन्न शहरोंमें इसकी कई शाखा-सभाएँ स्थापित हैं। ५०० प्रचारकों तथा केन्द्रोंका सहयोग इसे प्राप्त हो रहा है । ५० से अधिक केन्द्रोंमें पुस्तकालयोंकी स्थापना की गयी है। 'सभा' की ओरसे सम्मेलन, हिन्दी-मेला, प्रचारक-शिबिर आदिका समय-समयपर आयोजन होता है। 'सभा' का एक निजी भवन और एक मासिक-पत्रिकाकीभी योजना बनायी गयी है।

## २०. असम प्रांतीय राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, गौहाटी

स्थापना : सन १९३८ मे बाबा राघवदासजीके प्रचार-प्रयत्नोंसे इसकी स्थापना हुई शुरूमे वर्धा समितिसे सम्बद्ध होकर यह कार्य करती रही किन्तु सन १९४५ मे वर्धा-समितिसे वह अलग हो गयी । सन १९४८ से 'समिति' अपनी स्वतंत्र परीक्षाएँ चलाने लगी। 'विशारद' उसकी अन्तिम-उपाधि परीक्षा है ।

प्रकाशन : 'समिति' की तरफसे अबतक १५ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी । राष्ट्र-[illegible] नामक पत्रिकाभी निकलती है ।

विद्यालय : केन्द्रोंमे हिन्दी विद्यालयभी चलाये जाते हैं । 'समिति' को असम राज्य-सरकार एवं भारत सरकारकी ओरसे अनुदान प्राप्त होता है ।

## २१. साहित्य अकादमी, नई दिल्ली.

स्थापना : ता. १२ मार्च १९५४ को भारत-सरकार द्वारा इसकी स्थापना हुई। भारतकी सभी भाषाओंके साहित्यका विकास करना तथा उनकी साहित्यिक गतिविधियोंमें सहकारिता स्थापित करके भारतकी सांस्कृतिक एकताकी साधना करना अकादमीके उद्देश्य हैं। अकादमीद्वारा हिन्दीमें विभिन्न भाषाओंके अनेक ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं। प्रत्येक भाषाकी उत्कृष्ट साहित्यिक रचनापर अकादमीकी ओरसे ५००० रु. का पुरस्कार दिया जाता है। हिन्दीकी इन पुस्तकोंपर अकादमी-पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं:— "हिम-तरंगिनी" (माखनलाल चतुर्वेदी), "पद्मावत-व्याख्या" — (डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल) "बौद्ध-धर्म-दर्शन" (आचार्य नरेन्द्र-देव) " "मध्य एशियाका इतिहास" (राहुल सांकृत्यायन) तथा "संस्कृतिके चार अध्याय" (रामधारी सिंह 'दिनकर')। इनके अतिरिक्त प्रतिवर्ष पुरस्कार-योग्य पुस्तकोंका चयन किया जाता है और अकादमीकी ओरसे पुरस्कारोंकी घोषणा की जाती है। हिन्दी भाषाके प्रतिनिधिके रूपमें डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदीजीका सहयोग अकादमीको प्राप्त है

भारतके प्रधान-मंत्री सभापति और उपराष्ट्रपति—इसके उपसभापति हैं। राष्ट्रपतिके शुभ-हाथों, विशेष समारोहमें नई दिल्लीमें पुरस्कारोंका वितरण होता है।

निःसंदेह, साहित्य अकादमीने भारतीय-साहित्यको प्रोत्साहित कर उसके मानदण्डको ऊपर उठाया है।

## २२. भारतीय हिन्दी परिषद, प्रयाग.

स्थापना : डॉ. धीरेन्द्र वर्माने सन१९४२-४३ में हिन्दीके लब्ध-प्रतिष्ठित विद्वानोंकी सहायतासे हिन्दीके शोध-कार्यको नियोजित तथा निर्देशित करनेके लिए तथा हिन्दीके समस्त अंगों—भाषा, साहित्य तथा संस्कृतिके अध्ययनार्थ 'भारतीय हिन्दी परिषद' की स्थापना की। गत २१-२२ वर्षोंसे इसकी प्रगति इन दिशाओंमें लगातार हो रही है। अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिए 'भारतीय हिन्दी परिषद' निम्नलिखित प्रवृत्तियोंका संचालन करती है:—

प्रकाशन, विशिष्ट विद्वानोंके विशेष व्याख्यानोंका आयोजन, हिन्दीके विकासके हेतु वार्षिक अधिवेशनोंका आयोजन आदि।

भारतीय हिन्दी परिषदके वार्षिक अधिवेशन अपनी एक विशेषता रखते हैं। अन्य अधिवेशनों या सम्मेलनोंकी धूमधाम इसमें नहीं रहती, बल्कि

ठोस प्रगतिकी योजनाएँ इसमे बनती हैं और उन योजनाओका सुन्दर ढंगसे कार्यान्वय भी होता है।

हिन्दीके लब्ध प्रतिष्ठ विद्वानो एव गण्यमान्य मनीषियोकी उपस्थितिसे उसके अधिवेशनोकी उपादेयता औरभी बढ जाती है। अधिवेशनमे हिन्दी-साहित्यकी गतिविधियोकी जानकारी देनेवाले विचार पूर्ण निबधो एव खोज पूर्ण प्रबधोका पठन होता है तथा उसके द्वारा अनेकोको मार्गदर्शन मिलता है। प्राय सभी विश्वविद्यालयोके हिन्दी प्राध्यापक तथा प्रतिष्ठित विद्वान 'परिषद' की प्रवृत्तियोमे अपना सक्रिय सहयोग प्रदान कर रहे हैं और 'परिषद' के कार्योंको लगनसे आगे बढा रहे हैं।

'परिषद' के वर्तमान पदाधिकारी निम्नलिखित हैं :—

सभापति डॉ रामकुमार वर्मा इलाहाबाद

प्रधान मत्री प्रो कल्याणमल लोढा, कलकत्ता

प्रबन्ध मत्री डॉ रघुवश, इलाहाबाद

साहित्य-मत्री डॉ गोवर्धन शुक्ल, अलीगढ

अबतक डॉ धीरेन्द्र वर्मा डॉ हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ विनयमोहन शर्मा, आचार्य नददुलारे वाजपेयी, डॉ दीनदयाळ गुप्त, डॉ नगेन्द्र, डॉ भगीरथ मिश्र, डॉ व्रजेश्वर वर्मा, डॉ उमाशकर शुक्ल, डॉ विजयेन्द्र स्नातक आदि विद्वानोने इसका सम्यक् नेतृत्व और ठोस मार्ग दर्शन किया है।

प्रकाशन :"अनुशीलन' नामक एक त्रैमासिक शोध पत्रिकाका प्रकाशन होता है। "डॉ धीरेन्द्र वर्मा अभिनन्दन विशेषाक" इस पत्रिकाने सन १९६० के देहली अधिवेशमे प्रकाशित किया था। हिन्दी साहित्य भाग १ और २ तथा अन्य महत्त्वपूर्ण प्रकाशन इस सस्थाके द्वारा हुए है। अबतक भारतके विख्यात और विभिन्न नगरोंमें स्थापित विश्वविद्यालयोके तत्त्वावधानमे 'भारतीय हिन्दी परिषद'के वार्षिक-अधिवेशन सुसपन्न होते रहे हैं।

२३. भारतीय हिन्दी परिषद, दिल्ली प्रदेश, नई दिल्ली

२४ भारतीय हिन्दी परिषद काश्मीर-प्रदेश, श्रीनगर

२५. हैदराबाद हिन्दी-प्रचार-सघ, हैदराबाद

२६ राष्ट्रभाषा-प्रचार-परिषद, भोपाल

२७ त्रावणकोर हिन्दी-प्रचार सभा, त्रिवेंद्रम

२८ मणिपुर हिन्दी प्रचार-परिषद, इम्फाल,

इन सस्थाओके हिन्दी साहित्य अतिरिक्त सम्मेलन, प्रयागके अतर्गत काय करनेवाली सस्थाओ तथा कुछ अन्य हिन्दी प्रचार सस्थाओकाभी हिन्दीके प्रचार एव प्रसारमे महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है जिनके नाम निम्नानुसार हैं —

२९. दिल्ली प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, नई दिल्ली
३०. बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन, पटना
३१. उत्तर-प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
३२. पंजाब-प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन, चण्डीगढ
३३. बंग-प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन, कलकत्ता
३४. ग्रामोत्थान विद्यापीठ, संगरिया
३५. श्री. मध्यभारत हिन्दी साहित्य समिति, इन्दौर
३६. बजरंग परिषद, कलकत्ता
३७. हिन्दी साहित्यिक समिति, भरतपुर
३८. राष्ट्रभाषा कॉलिज (श्री सनातन धर्म हिन्दी विद्यापीठ,) जयपुर
३९. केरल प्रांतीय हिन्दी-प्रचार-सभा
४०. हिन्दुस्तानी-प्रचार-सभा, हैदराबाद
४१. हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, बम्बई
४२. बम्बई हिन्दी सभा (कांग्रेस राष्ट्रभाषा-समिति), बम्बई
४३. नागरी प्रचारिणी सभा, आगरा।

[सिंहल राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, कोलंबो के द्वारा (श्री लंका-सिलोन) में, तथा हिन्दी-शिक्षा-संघ, नातालके अंतर्गत दक्षिण-आफ्रिका एवं पूर्व आफ्रिकामेंभी हिन्दी प्रचारका कार्य हो रहा है।]

समारोप : संविधानमें राष्ट्रभाषाके नाते हिन्दी स्वीकृत हो जानेपर उसका महत्त्व औरभी बढ़ गया है तथा उसके प्रचार-प्रसारके लिए कई नयी-नयी संस्थाएँ प्रस्थापित हुई हैं—होती जा रही हैं।

राज्य-सरकारों तथा केन्द्रीय-भारत-सरकारकी ओरसे हिन्दी-प्रचार-संस्थाओंको आर्थिक अनुदान दिये जाने लगे हैं तथा हिन्दी-साहित्यिकोंको पुरस्कृत भी किया जाता है।

[भारतीय ज्ञानपीठ, काशीकी ओरसे भारतीय भाषाओंमेंसे सर्वश्रेष्ठ सर्जनात्मक साहित्यिक कृतिपर प्रतिवर्ष एक लाख रुपयोंके पुरस्कारकी योजना बनायी गयी है। और भी अन्य कई संस्थाओं तथा राज्य-सरकारों द्वारा सर्वश्रेष्ठ हिन्दी-साहित्यिक रचनाओंपर पुरस्कार प्रदान किये जा रहे हैं।]

निःसंदेह, स्वतंत्र भारतमें अब उसकी राष्ट्रभाषा-हिन्दीका बहुत अधिक महत्त्व बढ़ गया है और साथही उसके साहित्यकारोंका दायित्व भी बड़ा है। हिन्दीका भविष्य उज्ज्वल है और वह निश्चितही धीरे-धीरे अंग्रेजीका स्थान ग्रहण कर, राष्ट्रभाषाके साथही, राजभाषाके रूपमें, भारतभरमें निकट भविष्यमें व्यवहृत होने लगेगी—इसका विश्वास है।

कोईभी स्वतंत्र देश किसी विदेशी भाषामें, हमेशाके लिए अपना कारोबार चलाना कतई पसद नहीं करेगा। सामान्य जनताकी प्रबल इच्छा एवं मांग तो यही रहेगी कि जनताकी अपनी भाषामें शासनका कामकाज यथाशीघ्र होने लगे। इस कार्यमें इन सभी छोटी बड़ी हिन्दी-प्रचार-संस्थाओके संपूर्ण सहयोगकी अभिलाषारखना उचितही होगा।

इन संस्थाओके सिवाय औरभी अनेक ऐसी छोटी-मोटी संस्थाएं भारत तथा विदेशोमे हैं, जो राष्ट्रभाषा हिन्दीके प्रचार एवं प्रसारके कार्यमें अपना अमूल्य योगदान दे रही हैं। इन सभी हिन्दी-सेवी सस्थाओके प्रति हम अपनी कृतज्ञता व्यक्त कर, उनके द्वारा हो रहे हमारी इस राष्ट्रीय एवं भावनात्मक एकताके कार्यके प्रति हार्दिक आदराजलि अर्पित करते हैं।

---

### जॉर्ज अब्राहम ग्रिअर्सनकृत राष्ट्रभाषाकी परिभाषा :

If grew up as Lingua Franca in the Poligot Bazzar attached to Dilhi Court and was carried every where by the Literature of the Moghal Empire —**Grier Son**

ग्रियर सन महोदयने ठीकही कहा है—"हिन्दी प्रारम्भसेही एक आतर-भाषाके रूपमें विकसित हुई थी।"

(A Linguistic Survey of India Vol IX, part I, P 44.)

## ५५ : राष्ट्रभाषा-प्रचार-आन्दोलनके कतिपय मोडोंका विवेचन

**—डॉ. न. चि. जोगलेकर और डॉ. भगवानदास तिवारी.**

[ प्रस्तुत निबन्धके पूर्व राष्ट्रभाषा-प्रचारक-संस्थाओका सक्षिप्त इतिहास और उनकी विविध गतिविधियोका परिचय दिया गया है, जिससे यह सिद्ध होता है कि राष्ट्रभाषा-हिन्दीका देशव्यापी प्रचार-प्रसार एक राष्ट्रीय आवश्यकता है। दक्षिण भारतके कतिपय हिन्दी विरोधियोकी यह धारणा कि उत्तर-भारतके लोक दक्षिण-भारतीयोपर हिन्दी थोप रहे हैं, पूर्ववर्ती लेखसे निर्मूल सिद्ध होती है। यहाँ हिन्दीके स्वरूप-विकासकी सुदीर्घ परम्पराके कुछ महत्त्वपूर्ण मोडोका निर्देश मात्र कर उसके भावी स्वरूप पर कुछ स्फुट विचार दिये गये हैं जिन्हें हमे सोच-समझकर कार्यरूपमें परिणत करना है। आज हमारी राष्ट्रभाषा हमारी कर्तव्य-शक्तिको आव्हान कर रही है। ]

### राष्ट्रभाषाका देशव्यापी स्वरूप :

हिन्दी भारतकी राष्ट्रीयता और संस्कृतिकी वाहिनी भाषा है, अतः उसका राष्ट्रभाषा, राज्यभाषा या सघभाषाके रूपमे प्रतिष्ठित होना अत्यन्त स्वाभाविक है। उसकी छत्रछायामें भिन्न भिन्न धर्मीय, प्रान्तीय, जातीय, गोत्रीय जन भारतीयताके सामान्य धरातलपर समन्वित हो हमारे सामने आते हैं। प्राचीन

कालसे अधुनातन युगतक, वह धार्मिक आन्दोलनोंसे लेकर राजनैतिक उथल-पुथल और स्वातन्त्र्य संग्रामतक तथा विदेशी शासनसे अपने देशमें अपने राजतक जन-मानसकी, भारतीय समाजकी राष्ट्रीय-भावना और विचार-धाराका वहन करती रही है। आजभी भारतकी भावनात्मक एकताका शिविर उसकी छत्रछायामें आयोजित हो रहा है और उसकी वास्तविक सफलताका आधार भी यही राष्ट्रभाषा है।

## राष्ट्रभाषा-प्रचार :

सारे भारतीय नागरिक तथा राष्ट्रभाषाके प्रचारक और राष्ट्रभाषा-प्रेमियोंके लिये हिन्दीके प्रचार-प्रसारका मूल्य समझ लेना चाहिये, क्योंकि —

निज भाषा उन्नति अहै, सब उन्नतिको मूल।

अतः भारतकी राष्ट्रभाषाकी उन्नति करना प्रत्येक भारतीयका आद्य कर्तव्य है। यों हमारे अनेक राष्ट्रीय व्रत हैं। उनमेंसे राष्ट्रभाषा-प्रचार भी एक राष्ट्रीय व्रत है। यह व्रत हमें भावनात्मक एकताकी सगुणताका साक्षात्कार कराता है। प्रचारके पीछे आजकलकी राजनीतिमें अभिनिवेश और विचार दोनों रहते हैं। यह प्रचार विचारपूर्ण और सोद्देश्य तथा विचार-रहित अभिनिवेशपूर्ण एवम् विचारपूर्ण पर अभिनिवेश रहित अंधश्रद्धायुक्त या चक्षु-युक्तश्रद्धासहित किये गये अनेक रूपोंमें सामने आता रहा है। इन विविध मोडोंमेंसे कतिपय महत्त्वपूर्ण मोड़ोंका निवेदन करनाही प्रस्तुत निबंधका अभिप्रेत उद्देश्य है।

## हिन्दीकी राष्ट्रीय गरिमा :

हिन्दीके मध्यकालीन धर्म-साधना साहित्यसे ऐसा पता चलता है कि हिन्दी भारतकी स्वयसिद्ध राष्ट्रभाषा रही है। कबीर, जायसी, सूर और तुलसीकी रचनायें इसके प्रमाणस्वरूप प्रस्तुतकी जा सकती हैं। मध्यकालमें देशाटनायें, पंडितोंसे मैत्री, शास्त्रोंके अध्ययन और आलोडनके हेतु तथा संत-सज्जन समागमके लिये दक्षिणसे उत्तर, उत्तरसे दक्षिण व पूर्वसे पश्चिमतक एवं पश्चिमसे पूर्वतक लम्बी लम्बी यात्राएं कर हमारे साधु-सन्त हिन्दीका प्रचार-प्रसार किया करते थे। भलेही उनका यह कार्य एक प्रचार अभियान न कहा जाये; पर इतना तो निर्विवाद सत्य है कि सन्तोंने लोक-जीवन और लोक-रुचिके अनुरूप हिन्दीमें रचनाएं कर उसको राष्ट्रीय व्यापकता और उपयोगिताके लिये एक सांस्कृतिक सामाजिक स्तर प्रदान किया है। यह हिन्दीके प्रचारका

प्रथम मोड है। इस कालमें अनेक आर्य और अनार्य परिवारके सन्तों, भक्तों और कवियोंने अपनी मातृभाषाके अतिरिक्त हिन्दीमें रचनाएँ की हैं। नामदेव, ज्ञानेश्वर, एकनाथ, तुकाराम, रामदास, नरसी मेहता, शंकरदेव आदि कई ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्होंने अपनी मातृभाषाके साथ-साथ हिन्दीमें भी रचनाएँ लिखी हैं। संवत् १५२३—१५५५ में गोलकण्डाके शासक मोहम्मद कुली कुतुबने हिन्दीमें कविताएँ कर उन्हें अपनी वाणीमें स्थान दिया तथा केरलके त्रावण-कोर नरेशने पद्मनाथ स्वामीकी स्तुति हिन्दीमें रची। राष्ट्रभाषाके प्रथम मोडका यह उत्सर्ग अपने आपमें गौरवशाली है।

## स्वातन्त्र्य-प्राप्तिके प्रयत्नमें लगे हुये क्रान्तिकारियोंका हिन्दी प्रचार :

सन १८५७ का क्रान्तियुद्ध हमारी स्वाधीनताका प्रथम संग्राम था। रोटियाँ और कमल हमारे सन्देशके प्रतीक थे। इन प्रतीकोंका अर्थ हिन्दी भाषाके माध्यमसेही सारे भारतमें पहुंचा था। रानी लक्ष्मीबाई, तात्या टोपे, बहादुरशाह नानासाहब, मौलवी अहमदशाह आदि जन-जागरण और राष्ट्रीय भावनाके पोषणार्थ इसी भाषाका प्रयोग करते थे। राष्ट्रभाषाके इस पावन स्वरूपको शहीदोंने अपने खूनसे सींचा था। सन १९०९ – १० में क्रान्तिकारियोंने भारतके बाहर हिन्दी अखबार निकालकर तथा आजाद हिन्द फौजके आदेशोंतक सैनिकोंमें राष्ट्रीयताको जगानेका कार्य हिन्दीनेंही किया। राष्ट्रभाषाके द्वितीय मोडका यह क्रान्तिकारी रूप हिन्दी-प्रेमियोंको नहीं भूलना चाहिये। जहाँ क्रान्तिकी यह लहर सारे देशमें दौड रही थी वहीं परम्पराका निर्वाह करनेवाले व्यापारी, तीर्थयात्री, साधु–सन्यासी अपने पारस्परिक, व्यावहारिक, सांस्कृतिक एवम् वैचारिक आदान प्रदान देश-भाखामेंही कर रहे थे।

## विशिष्ट व्यक्ति, नेता और संस्थाओंका प्रचार-कार्य :

राष्ट्रीय जीवनमें हिन्दीके महत्वको स्वीकार करते हुये आचार्य केशवचन्द्र सेनके परामर्शसे गुजराती होते हुयेभी स्वामी दयानन्द-सरस्वतीने हिन्दीमेंही अपने व्याख्यान और प्रवचन दिये। स्वामी श्रद्धानन्दने आर्य-समाजका प्रचार हिन्दीके ही माध्यमसे किया। सन १८९४ में श्री के बा पेठेने 'राष्ट्रभाषा' नामकी एक पुस्तिका लिखकर हिन्दीका समर्थन किया। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक राष्ट्रभाषा हिन्दीके तेजस्वी रूपके समर्थक थ। उनकी कामना थी कि भारतमें देशभक्ति और राजनिष्ठाकी भावना हिन्दीके द्वारा उत्कट रूपसे प्रकट हो।

आचार्य केशवचन्द्रसेन हिन्दीको देशव्यापी एकताका आधार मानते थे राजा राममोहन राय, बंकिमचंद्र चटर्जी, भूदेव मुकर्जी हिन्दीके कट्टर समर्थक थे। महायोगी अरविन्द घोषने कर्मयोगिन और धर्म नामके दो वृत्तपत्र हिन्दीमें छपाये थे। माधवराव सप्रेने नागपुरसे 'हिन्दी-केसरी' प्रकाशित करवाया था। इन्दौर, ग्वालियर, धार, बड़ौदा आदि रियासतोंके राजाओंने हिन्दीको अपनी राज्य-भाषाके रूपमें अपनाया था। सन १८८२ में ब्रिटिश सरकारके द्वारा एक कमीशन नियुक्त किया गया था। जिसका प्रमुख कार्य यह था कि वह शासनको भारतमें शिक्षाके माध्यमके लिये एक उपयुक्त भाषाका सुझाव दे। स्वामी दयानन्दने उस समय सरकारको स्मरण-पत्र भेजकर हिन्दीको भारतमें शिक्षाके माध्यमके लिये सामर्थ्यवान भाषा कहा था। महात्मा गांधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, रामकृष्ण मिशन, स्वातन्त्र्यवीर सावरकर, काकासाहब कालेलकर पं. सातवलेकर, पं. ग. र. वैशम्पायन आदि नेताओंने राष्ट्रभाषा हिन्दीका समर्थन कर उसके प्रचार-आन्दोलनको सबल बनाया है। पं. मदनमोहन मालवीय, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन, चन्द्रबली पाण्डेय और डॉ. राजेन्द्रप्रसादजीके नाम हिन्दी-प्रचार-आन्दोलनके इतिहासमें सदैव स्वर्णाक्षरोंसे लिखे जायेंगे। इस दिशामें नागरी प्रचारिणी सभा, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा और महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा आदि संस्थाओंका कार्य निस्सन्देह प्रशंसनीय है।

## राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपि

'हिन्द-स्वराज्य' के सन १९०९ के अंकमें अपना मत प्रदर्शित करतेहुए महात्मा गान्धीने कहा था कि प्रत्येक भारतवासीको, जोकि पढ़ालिखा है उसे यदि वह हिन्दू है तो संस्कृत और मुसलमान है तो अरबी और सभी सबको हिन्दीका ज्ञान होना आवश्यक है। भाषा और लिपिके पारस्परिक सम्बन्धोंको देखते हुए राष्ट्रभाषा और राष्ट्रलिपिके देशव्यापी प्रचार-आन्दोलनका अध्ययन भी आवश्यक हो जाता है। इस सन्दर्भमें हमारा 'देवनागरी लिपि: स्वरूप, विकास और समस्याएँ' ग्रन्थ देखा जा सकता है। यहाँ हम लिपि-विषयक चर्चा नहीं करना चाहते। हम अपने सुहृद पाठकोंका ध्यान 'एक लिपि-विस्तार-परिषद'के व्यापक भावनात्मक एकताके दृष्टिकोणकी ओर आकर्षित करना चाहते हैं। रमेश दत्त और बाबू शारदाचरण मित्र इसके समर्थक और संयोजकोंमेंसे थे। इनका मत था कि सारे देशमें एक राष्ट्रभाषा हो और उसकी एकही लिपि हो। एक लिपिका आग्रह राष्ट्रीय भावनात्मक एकतापर आधारित था। बाबू शारदाचरण मित्रने 'देवनागर'कापत्रिका प्रकाशन किया, जिसमें 'सभी भारतीय

भाषाओंके लेख देवनागरी लिपिमें छपते थे। 'देवनागर' का पुन प्रकाशन डा. राजेन्द्रप्रसादजीके संरक्षकत्वमें दिल्लीसे प्रारम्भ हुआ। इसमे द्रविड तथा आर्य परिवारकी भाषाओका साहित्य देवनागरी लिपिमे छपता था। अब यह पत्र बन्द हो गया है, परन्तु राष्ट्रभाषा-प्रचार-आन्दोलनके इतिहासमें इसका अपना अन्य तमस्थान सुरक्षित है।

## दक्षिण भारतमें हिन्दीका प्रचार

सन १९१६ तथा १९१७ के कलकत्ताके कांग्रेस-अधिवेशनमे महात्मा गांधीने दक्षिण भारतमें हिन्दी प्रचारकी आवश्यकता प्रतिपादित की थी। इसके लिये दक्षिण भारतमे पहलेसेही अनुकूल वातावरण तैयार था। सन १९१८ के मार्च महिनेमे जब महात्मा गान्धीने हिन्दी साहित्य-सम्मेलनके इन्दौर-अधिवेशनकी अध्यक्षता स्वीकार की तब उन्होंने कहा था कि —

"आजका शिक्षित वर्ग अँग्रेजीके मोहमें फँस गया है और अपनी राष्ट्रीय-मातृभाषासे उसे असन्तोष हो गया है। पहली मातासे (अभिप्राय अँग्रेजीसे है) जो दूध मिलता है उसमें जहर और पानी मिला हुआ है और दूसरी मातासे शुद्ध दूध मिलता है। बिना इस शुद्ध दूधके मिले हमारी उन्नति होना असंभव है। पर जो अन्धा है वह देख नहीं सकता और गुलाम नहीं जानता कि अपनी बेडियाँ किस तरह तोडे ?"

(—राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी, नवजीवन प्रकाशन, पृष्ठ १० )

आज गुलामीकी बेडियाँ टूट गई हैं परन्तु विमाताका दूधही हमें अच्छा लगता है। संविधानकी मान्यताके बावजूदभी हम हिन्दीका मखौल उडा रहे हैं। तर्क कुतर्कमें उलझ रहे हैं और अपनी अपनी डफली पर अपना अपना राग आलाप रहे हैं। सन १९१८ से १९६४ तक राष्ट्रभाषा-प्रचार-आन्दोलन की धारा दक्षिणमें निरन्तर बह रही है। उसने दक्षिण भारतके निवासियोंको जो जीवनदायिनी शक्ति प्रदान की है, उसका प्रामाणिक विवरण श्री पी के केशवन नायरको—'दक्षिणके हिन्दी प्रचार आन्दोलनका समीक्षात्मक इतिहास'— पुस्तकसे प्राप्त हो जाता है।

इन्दौर अधिवेशनमें महात्माजीने सम्मेलन तथा कांग्रेस आदि संस्थाओंको यह चेतावनी दी थी कि—

"हमें ऐसा उद्योग करना चाहियेकि एक वर्षमें राजकीय सभाओंमें, कांग्रेसमें, भारतीय सभाओंमें तथा अन्य सभा-समाज और सम्मेलनोंमें अँग्रेजी का एकभी शब्द न सुनाई दे। हम अँग्रेजीका व्यवहार बिलकुल त्याग दें।"

(—राष्ट्रभाषा हिन्दुस्तानी, नवजीवन प्रकाशन, पृष्ठ १०)

पर इस चेतावनीका कितना पालन किया गया ? कॉंग्रेसमें तो हिन्दीका *प्रयोग जायज माना गया पर अँग्रेजीका व्यामोह अबभी सरकारी कर्मचारियों* और तथाकथित नेताओंपर हावी है। राजभाषाकी सखी भाषाके रूपमें अँग्रेजी अबभी हमपर अपना प्रभाव जमायें बैठी है।

इन्दौर-अधिवेशनमें दक्षिणभारतमें हिन्दी प्रचारके लिये एक योजना बनी और गान्धीजीने अपने पुत्र देवदास गान्धीको सन १९१८में दक्षिणमें हिन्दी का प्रचार करनेके लिये भेजा। श्रीमती एनी बेसेण्ट द्वारा प्रथम हिन्दी वर्गका उद्घाटन हुआ। कई उत्तर भारतीय हिन्दी-प्रचारके लिये दक्षिणमें गये जिनमेंसे *श्री लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी,श्री. देवदूत विद्यार्थी, श्री. रामानन्द शर्मा, आदि प्रमुख* व्यक्ति थे। दक्षिणके लोगोंमें पं. सिद्धनाथ पन्त, श्री पी. के. केशवन नायर, पं. हृषीकेश शर्मा, पं. *सत्यनारायण, पं. हरिहर शर्मा आदिने व्रतधारीकी भाँति नैष्ठिक* उत्साहसे हिन्दीका प्रचार किया। सन १९१८ से सन १९२७ तक दक्षिणभारत हिन्दी प्रचार सभा, हिन्दी साहित्यसम्मेलनके तत्त्वावधानमें कार्य करती रही और फिर वह स्वतन्त्र रूपसे अपने प्रचार अभियानमें आगे बढ गई। आज आवश्यकता इस बातकी है कि हम अब उत्तर और दक्षिणके बीचकी खाईको पाटकर अपने देशकी सांस्कृतिक परम्परा और भावनात्मक एकताको सुदृढ बनानेके लिये राष्ट्रभाषा-प्रचार-कार्यको नई दिशा दें, नूतन गति दें।

## उत्तरके सांस्कृतिक शिष्ट-मण्डलोंकी दक्षिण-यात्राऍं:

स्वतन्त्रता प्राप्तिके बाद हमारे देशमें एक केन्द्रीय सरकारी समिति इसलिये *नियुक्त हुई थी जो कतिपय विद्वानों और साहित्यकारोंको* दक्षिणमें हिन्दीके प्रति सद्भावना प्रसारित करनेके लिये भेजे। उक्त समितिने अपना प्रस्ताव पारित होनेके बाद दो-तीन सांस्कृतिक शिष्टमण्डल उत्तरसे दक्षिणमें भेजे, जिनमें महादेवी वर्मा, डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी जैसे विद्वान साहित्यकार सम्मिलित थे। इन विद्वानोंने दक्षिण भारतके चारों प्रान्तोंमें जाकर लोगोंमें हिन्दीके प्रति सद्भावनाका प्रसार किया। अपनी दक्षिण भारतकी यात्राके सम्बन्धमें आचार्य श्री. नन्ददुलारेजी वाजपेयीने —'राष्ट्रभाषाकी कुछ समस्याएँ'-नामक एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी। उसके पृष्ठ. क्रमांक ६६ पर उन्होंने जो अत्यन्त उपादेय निष्कर्ष दिये हैं, उनका सार इस प्रकार है। —

१. सारे भारतीय एक ही राष्ट्रके व्यक्ति हैं, इसलिये हिन्दी जैसी सर्वसामान्य भाषासे आपसी दूरी और विभेद मिटनेमें सहायता प्राप्त होती है।

२ दक्षिण-यात्रामें यह अनुभव सामने आया कि देशोन्नतिमें हिन्दीका दायित्व है। इस भावनाको दक्षिणात्योंका हिन्दीके प्रति अगाध स्नेह पूर्ण रूपेण प्रगट करता है। ३ हिन्दी हमें स्वेच्छासे सीखनी है, पर विभिन्न भाषाओंके साहित्यके अध्ययनसे भावनात्मक एकताके संयोजक सूत्रोंको हम जान सकते हैं अर्थात् दक्षिणमें यह व्यापक भावना हिन्दीके राष्ट्रीयत्वको लोकप्रियतासे सिद्ध हो जाती है। ४ हिन्दीका अन्य भाषाओंसे एक सजातीय सम्बन्ध है, जो यह सिद्ध करती है कि हिन्दीको भार रूपमें कोई नहीं स्वीकारता, वरन् राष्ट्रभाषाका सम्मान राष्ट्रका सम्मान है-इस राष्ट्र-चेतनासे सब उसे स्वीकार करते हैं। इसी भावनाको इन शिष्टमंडलीय लोगोंने दक्षिणमें सर्वत्र देखा है, ।अत दक्षिण में हिन्दीका विरोध है इस भ्रमका अपने आप खंडन हो जाता है।५ हर प्रान्तमें कई संस्थाएँ हिन्दीका प्रचार करती हैं। प्रत्येकका अपना स्तर और विशिष्टताएँ सामने आती हैं। इनको दूर करनेके लिये दक्षिणके अध्यापक और हिन्दी सीखनेवाले छात्रोंको उत्तरमें भेजा जाये — यह उपाय आचार्य नन्ददुलारेजी वाजपेयीने सुझाया है। इससे उच्चारण आदिका एक निश्चित स्तर सीखनेमें सहायता होगी।

दक्षिण भारतमे हिंदीका प्रचार-प्रसार करनेवालोंने दिन रात अथक परिश्रम कर राष्ट्रभाषाकी ज्योति जलाई है, अत उनके त्याग, तप और श्रमके प्रति हिंदी भाषियोंको कृतज्ञता ज्ञापन करना चाहिए। वैचारिक एकताका आदान-प्रदान भावनात्मक एकताको सुदृढ बनाता है, अत हिंदी भाषियोंको अनार्य परिवारकी भाषाओंका अध्ययन और उनके साहित्यके श्रेष्ठ ग्रन्थोंका हिंदीमे अनुवाद करना चाहिए। इससे राष्ट्रभाषा का साहित्य कोष समृद्ध होगा। राष्ट्रभाषाकी समस्याएँ राष्ट्रकी समस्याएँ है, अत उनके समाधानके लिए देशव्यापी संगठित प्रयास हो और सहयोग, सद्भाव तथा पारस्परिक आदान-प्रदान द्वारा प्रत्येक समस्या सुलझे यही इन सांस्कृतिक शिष्टमण्डल के अधिकारी विद्वानोंकी राय रही है। राष्ट्रभाषा-प्रचार आन्दोलनके इतिहासमे दक्षिण भारत का हिंदी-प्रचार ऐतिहासिक मोड है।

## हिन्दीकी जागतिक प्रतिष्ठा :

सन १४५९ के नूरनामेमे आधुनिक भारतकी राष्ट्रभाषाका 'हिंदी' नाम सर्व प्रथम पाया जाता है, जिसे कालान्तरमे विदेशी विद्वानोंसे "इण्डिया दैट इज भारत" की "लिंगुआ फ्रांका" कहा है, किन्तु आज हिन्दी भारतकी ही नहीं, विश्वकी एक महत्त्वपूर्ण भाषा है। सर जार्ज ग्रियर्सन, सर विलियम जोन्स, गार्सा द तासी, विलसन, कार्पेण्टर, वारान्निकोव, कामिल बुल्के आदि

का संस्कृत और हिंदी विषयक कार्य स्तुत्य हैं। इनकी साधना ने भारतकी ज्ञान गरिमाको पश्चिमके समक्ष प्रस्तुत कर भारतका गौरव बढाया है और समयके साथ साथ आज हिंदी पेरिस, मास्को, लदन, न्यूयार्क, मिशिगन, रोम, पेनसलवेनिया, बर्लिन आदि विश्वविद्यालयोमे पढाई जा रही है, जो उसकी जागतिक प्रतिष्ठाका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

## हमारी राष्ट्रभाषाका आन्तरराष्ट्रीय स्वरूप

वर्तमान विश्व एक संक्रमण कालसे गुजर रहा है। इसका एक मात्र कारण यह है कि मनुष्यकी बौद्धिकता उसके भावनात्मक विभव और आध्यात्मिक मूल्योंपर कुछ इस तरहसे हावी हो गई है कि मनुष्य मानवताकी सामान्य समतल भावभूमि पर निजी जीवनकी सार्थकता और यथार्थताका विचार ही नहीं कर पाता है। आज मनुष्यकी समस्त मानसिक व शारीरिक शक्तियाँ भौतिक विकासकी चरम सीमा को, यांत्रिक उन्नतिकी क्षितिज रेखाको पदाक्रान्त करनेके लिये व्यग्र हैं। मनुष्य प्रकृतिके प्रत्येक रहस्यको अपने बुद्धिबलसे जानना चाहता है अतएव उसकी प्रज्ञा प्रकृति और पुरुषके द्वंद्वात्मक संघर्षमे जड जगतके सम्पूर्ण भौतिक उपादानोपर मानवीय वर्चस्व स्थापना की भावनासे अनुप्राणित है। विश्वके विविध जन समूहोमे यह भावना प्रतिस्पर्धामे बदल गई है। विश्व संघर्ष की इस विशद भूमिका पर मनुष्यकी ब्रह्मांड विहारिणी बौद्धिकता के परिवेशमे सामान्य जन जीवन संघर्षका ज्वलन्त प्रत्यक्ष प्रमाण बन गया है। प्रतिस्पर्धाके उन्मादमे विज्ञानका क्षेत्र इतना आगे बढ गया है जहाँ मानवता की प्रगतिके पथका क्षितिज विध्वंस और सर्वनाश की तिमिराच्छन्न गुहामे तिरोहित हो गया है। आज विश्व मानवको एक स्वस्थ जीवन दर्शनकी आवश्यकता है। ऐसी स्थितिमे भारतपर, भारतकी तरुण पीढी पर, एक नैतिक कर्तव्य का बोझ है, जिसे वह वाणीके माध्यमसे संसारके समक्ष रख सकता है। भारतकी राष्ट्रभाषाको ऐसे विचारको, कवियो, साहित्यकारो और लेखकोकी आवश्यकता है जो पश्चिमका अन्धानुकरण न कर अपनी प्रतिभा और मनोबल से पूर्वका प्रकाश पश्चिम तक पहुँचायें। विश्व संघर्ष और यान्त्रिक युगकी आवश्यकताओ पर प्रकाश डालकर नये युगकी चेतना लेकर चलनेवाले साहित्यकी हिंदीको बडी आवश्यकता है। देखना है— विश्वविद्यालयोमे हिंदीका शिक्षण, विदेशोमे हिंदी का प्रचार और हिंदीवालो का हिंदीके प्रति अनुराग आगे चलकर क्या रूप लेगा? समय बडा पारखी है, अतः हिंदीकी आन्तरराष्ट्रीय प्रतिष्ठाके लिये हमे समय समाजके साथ चलकर अपना और विश्वका पथ प्रशस्त करना है। यह एक दायित्व है जिसे निभाना हमारा पुनीत कर्तव्य है।

[प्रस्तुत लेख : महाराष्ट्र-राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, पुणेके संचालक : श्री. प. मु. डांगरेजीने, इस 'संग्रह'के लिए विशेष-रूपसे लिखा है। आप पिछले पन्द्रह-बीस वर्षोंसे महाराष्ट्रमें राष्ट्रभाषा-प्रचार-प्रसारके कार्यमें लगन एवं निष्ठापूर्वक कार्य कर रहे हैं। "जयभारती" नामक पत्रिका का बरसोंतक आपने सफल सम्पादन किया। महाराष्ट्र-राज्यकी माध्यमिक पाठशालाओंके लिए शिक्षा विभागद्वारा स्वीकृत "जयभारती-पाठमाला" (भाग १ से ६)के आप प्रधान सम्पादक हैं। आपके सामयिक लेख बड़े ही चिंतनीय होते हैं।]

## एक हृदय हो भारत जननी :

राष्ट्रभाषाका प्रचार पहले राष्ट्रका प्रचार है और बादमें भाषाका प्रचार है। राष्ट्रभाषा शब्दमेंही प्रथम स्थान राष्ट्रको तथा द्वितीय, भाषाको है। राष्ट्र-भारत-वर्षकी मूलभूत एकता ध्यानमें लेकर उसको परिपुष्ट करनेके लिएही तो राष्ट्रभाषा प्रचार शुरू हुआ। उसका नारा भी "एक हृदय हो भारत जननी।" है।

## नागरी-हिन्दी ·

भारतवर्ष एक संघ-राज्य है। उसके प्रदेश प्रदेशकी भाषा भिन्न है। प्रदेशीय जन पासके तथा अन्यान्य प्रदेशोंकी भाषाओंको जबतक जान नहीं ले सकेंगे, तबतक परस्पर परिचय-प्रेम, स्नेह-सहकार कैसे सम्भव हो सकेगा ? एक हृदय अन्यान्य हृदयोंसे सहानुभूत, समरस जबतक नहीं हो पाएगा, तबतक एक-साथ होकर, कन्धेसे कन्धा मिलाकर राष्ट्रीय कार्यक्रम तथा योजना-आयोजनाओंको मूर्त रूप कैसे दे पाएगा ? भिन्न-भिन्न भाषाओं तथा लिपियोंके कारण बनी खाइयोंको पाटकर पार कर देनेवाला, भाई-भाईको पास लानेवाला, आदान-प्रदानसे प्रेम-परिचय बढानेवाला, स्नेह-सहकार फुलाने-फलानेवाला, आ-सेतु-हिमाचल सेतु यदि कोई हो सकता है तो वह नागरी-हिन्दीका ही है।

## संविधानका आदेश-आशीर्वाद :

नागरी-हिन्दी, बहुत पहलेसे, श्रीज्ञानेश्वर-नामदेवके जमानेसे राष्ट्रभाषाके रूपमें व्यवहारमें आयी है। परस्पर समझ लेनेके लिए तथा समझा देनेके लिए नागरी-हिन्दीका संविधान एवम् जन-भाषाका उसका स्थान मान बहुत पहलेसे प्रचलित है। वह सब देखकरही तो उसे राष्ट्रभाषाका स्थान-मान मिला है। नागरी हिन्दी-राष्ट्रभाषाका प्रचार भारतीय संविधानका आदेश-आशीर्वाद है। तदनुसारही हम सभी राष्ट्र-भाषा प्रेमी उसमें श्रद्धा तथा सेवा भावसे लगे हुए हैं।

## भारतीय भाषाओंको बढ़ाइए :

भारतवर्षकी राजनीति-धर्मनीति अपने आपको बढानेके पक्षमें है, आत्मोन्नतिके लक्ष्य-वेधमे, एकता-अद्वैत-सिद्धि-साधनमे सलग्न है। 'भारतीय भाषाओंको बढाओ" यही उसका सही नारा है। भारतीय भाषाएँ फलेगी-फूलेगी, हृष्ट-पुष्ट होगी तो परस्पर आदान-प्रदानसे, दर्शन-स्पर्शन, वन्दन-अभिनन्दनसे आखिर जाके हृदयमे भारत-भारती : शिव-शक्तिकेही सदर्शन करेगी।

## एकताके सुदर्शन : हमारा राष्ट्रीय कार्यक्रम :

"तत्र को मोहः क. शोकः एकत्वमनुपश्यतः।" एकताके सुदर्शन कर लेनेपर मोह किसीको क्या मुग्ध और शोक क्या दग्ध कर पाएगा ! मोहको मिटाने तथा शोकको हटाने सहस्रों वर्षपूर्व भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अर्जुनको अपनी अपूर्व सप्तशती गीता सुनायी; और इतिहास पुनरावृत्त होही जाता है। हमारी आजकी साम्यनीति, राज्य-नीति जन-मानसके मोह-शोकको दूर करनेके लिए, देशको आगे बढानेके लिए, विश्वको शान्ति-सन्देश सुनानेके. लिए, राष्ट्रभाषा-प्रचारका राष्ट्रीय कार्यक्रम बता रही है। उक्त राष्ट्रीय कार्यक्रमको निष्ठा-पूर्वक निबाहना हम राष्ट्रभाषा-प्रेमियोंका परम कर्तव्य है।

## विचार-उच्चार-प्रचार :

राष्ट्रभाषा-प्रचार पर काफी विचार होना परम आवश्यक है। प्रचार तो बादकी वस्तु है। पहले विचारकी कली, पखुडी बाद पखुड़ी एक-एक कर, खिलती है, उसके पूर्ण रूपसे विकसित होनेके उपरान्त उसकी सुगध उच्चारण-द्वारा फैलती है और प्रचारका फल तो अनन्तरही उसमे लगता है। विचारका डठलही मजबूतीसे न लगा हो तो उच्चारणमे चेतनता, प्रचारमे प्राणपन आएगा भी तो कहाँसे ? विचारकी बैठकही जहाँ न हो, वहाँ उच्चरणोंके खम्भे और प्रचारकी पाटन किस आधारपर खडी होगी ? आसन जितना सिद्ध और सुदृढ होगा, योगदानभी उतनाही प्रवृद्ध तथा प्रगाढ होगा। विचार जितने गम्भीर होंगे, प्रचार उतनाही उच्च-उदात्त होगा।

**राष्ट्रभाषा-प्रचार--एक महान् विचार :**

आखिरमे एकही विचार, जो कि अतीव महत्त्वका है, सम्मुख प्रस्तुत करता हूँ। हम अपने एक हृदयताके उद्दिष्टसे कभी, किसी हालतमे विचलित न हो। एक-हृदयता, राष्ट्रभाषा-प्रचारकी आत्मा है। आत्मा तो अमर ही होती है; हमही भेद-छेदके वशीभूत होकर कभी छिन्न-भिन्न न हो जाएँ, स्वार्थ-संकोचके शिकार न बने। राष्ट्रभाषाका प्रचार भारत-भारतीका प्रचार है, राष्ट्रीय भावनात्मक एकताका प्रचार है, सत्य-शिव-सुन्दरम्का प्रचार है, प्रेम-मानवताका प्रचार है; राष्ट्रभाषा-प्रचार-द्वारा विश्वको 'शान्ति-निकेतन', 'सेवा-ग्राम' बना लेनेका महान् विचार है। अतएव विचार, आचार और प्रचार का समन्वय होना चाहिए।

---

## ५७ : राजभाषा : विधेयक हिन्दी या अँग्रेज़ी

[ इस लेखके लेखक श्री दत्तात्रेय कृष्ण दड्डीकरजी, बी. ए, राष्ट्र-भाषा-रत्न, राष्ट्रभाषाके बहुत पुराने प्रचारक एव सफल अध्यापक हैं। राष्ट्रभाषा प्रचार-प्रसारके क्षेत्रम लगनशील तथा उत्साही एव विधायक कार्यकर्ताके नाते आपका कार्य बडा ही प्रशसनीय रहा है। हिन्दी-मराठीमे आपकी कई फुटकर रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी है। ]

**अ-सीमित कालतक अँग्रेजी :**

भारत सरकारके संशोधनात्मक अधिनियमनके अनुसार हिन्दीकी सह-योगिनीके रूपमें अंग्रेजी तबतक रहेगी जबतक अहिन्दी प्रदेशवाले स्वयं यह न कह दें कि अंग्रेजीको हटाकर अकेली हिन्दीको राजभाषा बनानेकी सम्मति हम देते है। पारित विधेयकके फलस्वरूप ऐसा लगता है कि हमारे सरपर भविष्यमें अंग्रेजी अ-सीमित कालतक राजभाषा के रूपमें रहेगी।

**अवधिका योग्य उपयोग नही किया गया :**

स्वतंत्र भारतकी राजभाषा हिन्दी हो इसपर एकमत होकर निर्णय लिया गया। प्रश्न था केवल अवधिका। आशा थी कि पन्द्रह वर्षोमे हिन्दी भाषाकी उचित प्रगति होगी और वह अंग्रेजीकी जगह ले लेगी। इसी आशाको मद्देनज़र रखते हुए राष्ट्रभाषा-प्रचार-क्षेत्रमे काम करनेवाले लोगोंने हिन्दीको समुचित स्थान दिलानेकी भरसक कोशिश की। हिन्दी प्रदेशके लोगोने भी आन्दोलन खड़ा किया। लेकिन पन्द्रह सालके बाद यह माना गया कि हिन्दीकी इतनी सर्वांगीण

प्रगति नहीं हुई कि जितनी होनी चाहिए थी। इस अवधिमें देशका वायुमंडल भी वदलता रहा और समर्थन की अपेक्षा विरोधकी मात्रा देशमें बढ़ गई। कई जाने-माने नेता भी अंग्रेजीका समर्थन करने लगे। फल यह निकला कि हमारे सरपर अंग्रेजीका अधिराज वन कर रहा।

## राजाजीका विरोध : सरकारी नीति अँग्रेजीके पक्षमें : हिन्दी विद्वान हिन्दीके पक्षमें :

मई, १९६२ में वर्धामें, :—राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धाद्वारा रौप्य-महोत्सव मनाया गया। उस समय राजभाषा विधेयकका प्रश्न ज्वलन्त रूपमें देशके सामने मुंह बाँये खड़ा था। भारत सरकारके तत्कालीन गृहमंत्री श्री. लालबहादुर शास्त्रीजीने इस मामलेमें सरकारकी नीतिको स्पष्ट करते हुए अंग्रेजीका समर्थन किया। कुछ व्यावहारिक अड़चनें दूर करनेके इरादेसे तथा अहिन्दी प्रान्तवालोंका हिन्दी के प्रति पूर्ण विश्वास हो इसलिए समय देना उन्हें वाजीव-सा लगा। उस समय नाना प्रदेशोंमें भाषाके प्रश्नको लेकर गड़बड़ी मची थी। इसी प्रश्नपर सिलचेरमें गोलियां चलीं। बंगाल उपेक्षा वृत्तिसे इस सवालको देख रहा था। श्री. राजाजीका विरोध भी जाहिर था। इस नाजुक परिस्थितिको देखते हुए अंग्रेजीकी जगहपर हिन्दीको बिठाना अनुचित माना गया। लोग शांत चित्तसे सुन रहे थे। क्योंकि श्री. शास्त्रीजीकी हिन्दीके प्रति जो व्यक्तिगत निष्ठा थी उससे वे परिचित थे। जिम्मेदारीके बोझ से शास्त्रीजी बोल रहे थे और अंग्रेजीका समर्थन कर रहे थे। राष्ट्रभाषा प्रेमी श्रोतवृन्द कड़वे घूंटको अगतिक होकर पी रहा था। वहाँपर जो राष्ट्रभाषा प्रेमी इकट्ठा हो गए थे उनमेंसे अधिकांश चाहते थे कि *जहाँतक हो सके जल्दही हिन्दीकी प्रतिष्ठापना राजभाषाके* नाते अंग्रेजीको हटाकर हो। उसी मंचपर श्री. शास्त्रीजीके बाद उज्जयिनीके प्राचार्य डॉ. शिवमंगल सिंह सुमनजीका भाषण हुआ। वे आरंभसे लेकर अन्ततक सरकारकी नीतिका प्रखर विरोध करते हुए हिन्दीका समर्थन करते रहे। उनकी काव्यमयी वाणीसे सारा श्रोतृगण प्रभावित रहा। वह एक अनूठा भाषण था। इस भाषणने सभीके हृदयपर काबू पा लिया। सरकारकी नीतिकी उन्होंने चिट्ठी-चिट्ठी उड़ा दिया। केवल मत समर्थन तक ही मामला बना रहा, नतीजा अर्थात् अनिर्णित ही था।

## जल्दसे-जल्द हिन्दी : अन्यथा विदेशोंमें हमारी बदनामी :

*एक दफा पंडित जवाहरलालजीने जाहिर तौरपर बता दिया था कि हम जितनी* जल्दी अंग्रेजीके स्थानपर हिन्दीको बिठा दें उतनाही अच्छा है। इसमें देर लगानेसे देशमें और विदेशोंमें हमारी बदनामी होती है। एक

स्वतंत्र राष्ट्रके बारेमे अन्य देशोंकी जो राय बनती रहती है वह खास महत्त्व रखती है। हमारे देशके मान या अपमान की भावना उसमें निहित होती है। किन्तु यह बात हमें तनिक भी खटकती नहीं है, यह सचमुच घोर लज्जाकी घटना है। जबसे राजभाषा हिन्दी घोषित हो चुकी है तबसे खासकर अहिन्दी प्रान्तवालोंका उत्तरदायित्व बढ गया है। उसके सम्मानकी रक्षा अहिन्दीवाले यदि करें तो ही हो सकती है। कालके क्रमानुसार हिन्दीको राजभाषाके पदपर अंग्रेजीको हटाकर स्थिर होनेमें अपेक्षासे जादा समय लगेगा। इसके लिये जादा समय लगने देना शर्मकी बात होगी। हम भारतीय, दुर्भाग्य-वश अंग्रेजीके समर्थक बनकर भी क्यों न रहे, अंग्रेजी यहाँ नहीं रहेगी-यह निश्चित है। क्योंकि उसका रहना अनैसर्गिक है। अंग्रेजीका समर्थन करनेवाले कई सज्जन हमारे देशमें मौजूद हैं। अंग्रेजीका पक्ष लेते हुए कई बताते हैं कि हिन्दी भाषाका अन्य प्रान्तीय भाषाओंपर खासकर, एक लिपि होनेसे, मराठीपर आक्रमण होगा। किन्तु मेरी राय ठीक इसके विपरीत है। चौदह भाषाओंकी सहायतासे हिन्दीको समृद्ध बनाना है। इसके बनानेमें अहिन्दी भाषिकोंका अधिक हाथ रहेगा। तौलनिक दृष्टिसे सख्यामें हिन्दीतर भाषी लोग अधिक हैं। फलत उनकी मातृभाषाका आक्रमण यदि हिन्दी पर होता रहा तो उसे नैसर्गिक ही मानना पडेगा। इसी प्रयत्नमें राजभाषा हिन्दीका स्वरूप चंद विशेषताओंको लेकर समृद्ध होगा।

## देशकी सुविधाके लिए संविधान-द्वारा हिन्दीको मान्यता :

देशकी सुविधाकी दृष्टिसे हिन्दीको यह स्थान संविधानद्वारा दिया गया। आंतर-प्रान्तीय तथा संघराज्यके कारोबारके लिए सार्वदेशिक हिन्दी प्रयुक्त हो। संविधानने इसी नीतिका समर्थन किया है। जब देशकी सुविधास्वरूप हमने हिन्दीको राजभाषाके रूपमें चुना है तब उसको भलाबुरा कहनेसे क्या होगा? अपने अपने प्रान्तमें वहाँकी प्रादेशिक भाषा तो मातृभाषाके स्वरूपमें उन्नत रहेगी ही। अखिल भारतके बारेमें जब हम सोचेंगे तब हिन्दीकोही महत्त्व देना होगा। हमारे देशमें चंद सुविद्य लोगोंको अंग्रेजीमें सोचनेकी आदत पडी है। उन्हें ऐसा लगता है कि यदि अंग्रेजीको हटा दिया जाय तो हमारे देशका सारा ज्ञान-विज्ञान नष्ट हो जायेगा। उनका समीकरण है—अंग्रेजी याने ज्ञान। भला, ऐसा समझनेवाले सज्जनोंको उनकी समझ-बूझ से कौन रोके? खासकर दक्षिण-भारतके तथा पूर्व-भारतके लोग हिन्दीके विरोधक बनकर खडे हैं। श्री. राजाजीके विरोधको कौन समझ पायेगा? सन १९२८ और १९३७ में वे जो बातें हिन्दीके बारेमें कहते थे ठीक उसके विपरीत आज बोल रहे हैं। यह सुनकर हमें अफसोस होता है। दरअसल तो यह होना चाहिए था कि श्री राजाजी

हमारा नेतृत्व करते और हम सभी अहिन्दीवालोंको लेकर प्रगतिकी छलांग मारते। महात्मा गांधीजीके पश्चात् हमारा भरोसा श्री. राजाजीके ऊपर था। मैं तो मानता हूँ कि केवल राजनैतिक बातोंको लेकर ही श्री. राजाजी अपनी खिचडी अलग पकाना चाहते हैं। इस स्थानपर यदि मैं श्री. राजाजीको सन १९२८ और १९३७ की बातें उद्‌धृत कर दूं तो वह अनुचित नहीं होगा।

## राजाजीका विरोध एक राजनैतिक चाल है—देखिए :

" It is necessary that Hindi should be learnt by the South Indians. It is not possible and not desirable to impose English for our sake on all and weaken the people's control over their representatives all over India, The Nehru—Report constitution *has, it be noted, adopted Hindi as the State language for* India. This is the Logical consequence of Self-Government for India. In educational matters if we wish to avoid waste of energy and penalisation of a whole generation, we must anticipate things by a few years. The present generation of boys should therefore immediately take up Hindi whether it is introduced in the School curriculum or not, otherwise they would practically loose a valuable part of the rights of Indian citizenship and repent when it may be too late.

## अँग्रेजीका स्थान क्या हो ?

जागतिक दृष्टिकोणसे यदि देखा जाय तो अँग्रेजीका महत्त्व कोई कम नहीं। आंतरराष्ट्रीय व्यवहारके लिए अँग्रेजी उपयुक्त होकर ही रहेगी । इसका मतलब यद्यपि यह नहीं हो सकता कि यह भाषा भारतके हर निवासीपर लादी जाय। खास योग्यता रखनेवाले व्यक्ति अँग्रेजीका अध्ययन करेंगे ही। वैसे तो अन्य विदेशी भाषाओंका भी अध्ययन करना स्वतंत्र भारतके लिए आवश्यक है। इसके लिए अँग्रेजी तथा अन्य विदेशी भाषाओंके पढ़ानेकी सुविधा जरूर हो, पर अनिवार्य तौरपर कदापि न हो। अखिल भारतीय स्तरपर आज जो अँग्रेजीका महत्त्व है उसे हम कम कर दें। सायही विश्व-विद्यालयमें प्रवेश पानेके लिए अँग्रेजी आज अनिवार्य है-वैसा न हो। सेना-विभागकी नौकरियोंमें अँग्रेजी ठीक तरहसे न जाननेवाले आज पिछड़ जाते हैं। ऐसी स्थिति नहीं रहनी चाहिए। लड़ाईके समय भाषाकी अपेक्षा हिम्मतकी अधिक महत्त्व है। देशकी रक्षा करनेवाले मर्द अँग्रेजीके अधूरे ज्ञानके कारण पिछड़े न रहें।

## यह प्रयोग है या खिलवाड़ ?

बीचमें बम्बई सरकारने शिक्षा-विभागमें अँग्रेजीकी पढ़ाईको कुछ शिथिल कर दिया था। पाँचवीं, छठी तथा सातवीं कक्षाकी अँग्रेजीको हटा दिया था। आठवींसे लेकर आगे वैकल्पिक रूपमें यह विषय रहा। विशिष्ट वर्गके लोगोंने सरकारकी इस नीतिका घोर विरोध किया। हेडमास्टर्स असोसीएशनने भी इसपर कड़ी आलोचना की। पूरे महाराष्ट्रमें इसकी प्रतिक्रिया होती रही। इल्जाम यह था कि अखिल भारतीय स्पर्धामें महाराष्ट्रके लोग पिछड़े जा रहे हैं और अँग्रेजीकी कमीके कारण योग्य नौकरियाँ नहीं मिलतीं। यदि बम्बई सरकारकी नीतिका अन्य प्रदेशके लोग तथा केन्द्रीय सरकार अनुसरण करते तो शायद यह नौबत नहीं आती। आजकल भारत सरकारके शिक्षा-मंत्री माननीय श्री छगलाजी अखिल भारतमें शिक्षाके बारेमें एक-सी नीति हो, इसपर जोर दे रहे हैं। इसका राज शायद यही हो सकता है। चार वर्षके बाद बम्बई (महाराष्ट्र) सरकारकी नीतिमें परिवर्तन हो गया और फिलहाल पाँचवीं कक्षासे लेकर अँग्रेजी फिरसे जारी की गई। बीचमें जो खाई पड़ गई थी उसको पाटना मुश्किल हो गया। आज प्रायमरी शालाओंमें भी अँग्रेजी पढ़ानेकी व्यवस्था की जा रही है। पर इसके लिए योग्यता रखनेवाले शिक्षकोंकी कमी है। अँग्रेजीके जो शिक्षक हमारी नज़रोंके सामने आते हैं उनमेंसे बहुतेरे अँग्रेजीका अच्छा ज्ञान नाममात्रको ही रखते हैं। इन शिक्षकोंसे अँग्रेजीकी पढ़ाई कैसे अच्छी होगी ?

विद्यार्थियोंकी ओरसे भी एक कठिनाई यह है कि उन्हें मातृभाषा तथा हिन्दी दोनों अनिवार्य रूपमें पढ़नी पड़ती हैं। देहाती विद्यार्थियोंको मातृभाषा

तथा हिन्दीका ज्ञान प्राप्त करनेमें दिक्कत महसूस होती है। क्योंकि उनकी बोलीका स्वरूप व्याकरण शुद्ध भाषासे भिन्न रहता है। बोलीका असर भाषापर होता है। इस अवस्थामें इन दो भाषाओंके साथ यदि संस्कृत तथा अंग्रेजी का बोझ लाद दें तो किसी एक भी भाषाका सुचारु रूपका ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकेंगे। देहातोंमें अब राष्ट्रभाषा पहुँच चुकी है। अनुभव यह होता है कि लडकोंको मातृभाषाका भी ज्ञान ठीक नहीं रहता। किसी एक भी भाषाका व्याकरण-शुद्ध ज्ञान यदि पूर्णतया हो तो अन्य भाषाका ज्ञान प्राप्त करना कठिन नहीं होता। शिक्षा-क्षेत्रका स्तर अब गहराईकी अपेक्षा व्यापक होता जा रहा है। ऐसी अवस्थामें और अधिक बोझ लादना तर्कसंगत नहीं होगा। हाँ यह ठीक है कि विशेष योग्यता रखनेवाले विद्यार्थियोंको अन्य भाषाओंकी पढाई करनेकी सुविधा अवश्य हो। एकसाथ सभी विद्यार्थियोंपर इन चार भाषाओंका बोझ डालनेसे उनकी हिम्मत टूट जाती है : और टूटा हुआ दिल क्या प्रगति करेगा? मेरी रायमें मातृभाषा तथा हिन्दीको ही अनिवार्य रूपमें रखा जाय और ऐसी स्थिति निर्माण करें कि जिसमें अंग्रेजीके प्रति प्रलोभन न हो। माध्यमिक शालाओंके समान कॉलेजोंमें भी हिन्दी विषय अनिवार्य होगा।

### दक्षिणमें हिन्दीका विरोध नहीं है।

आनंदकी बात है कि केरल, कर्नाटक तथा आन्ध्र प्रदेशोंमें हिन्दीका विरोध नहीं है। है केवल तमिलनाडमें। यह विरोधक भी केवल वहाँ के कुछ नेताओंकेद्वारा किया जाता रहा है। जनताकी ओरसे बिलकुल नहीं है। जनसाधारण कभी इसका विरोध नहीं करेंगे। कालके संदेशको पहचानकर नेतागण भी अपनेको सम्हालें। स्वतंत्र भारतको नया इतिहास बनाना है, ऐतिहासिक आपत्तिको जतन करके रखना नहीं है। महाराष्ट्र तथा गुजरात इस क्षेत्रमें अग्रणी हैं ही। हम आशा करते हैं कि बंगालमें भी बंगालीभाई जाग्रत हो जाय और आगे कदम बढ़ावें।

### हिन्दीकी प्रगति एक ऐतिहासिक आवश्यकता है।

हिन्दी प्रान्तके लोग हिन्दीको अपनीही बाती समझकर हिन्दीपर जो जोर देते हैं उसे छोड़कर वे अब चुप बैठें और उसका पूरा भार हम अहिन्दीवालोंपर सौंप दें। इससे हम अहिन्दीवालोंमें पूरा विश्वास निर्माण होगा और आजकी आपसकी कड़ुवाहट भी मिट जायेगी। राजभाषाके संबंधमें जमाना अहिन्दीवालोंके मुँहकी ओर देख रहा है। भावी इतिहासकार ऐसा न कह दें कि अहिन्दी वालोंने हिन्दीकी उपेक्षा की और प्रेम नहीं रखा। हम हिन्दी-प्रेमी लोगोंका अंग्रेजीके प्रति कोई विरोध नहीं है। केवल हम यही चाहते हैं कि यह हमारे जीवनपर भार रूप नहीं रहेगी और हमारे युवकोंको शक्तिके श्रेष्ठ

अंशकी माँग नहीं करेगी। जनताकी भाषामें यदि कारोबार न चले तो उस सरकारको जनताकी सरकार कहलानेका क्या हक है? तथा कथित बुद्धिवादी अपना अँग्रेजीका अनुचित आग्रह छोड़ दें और जन-साधारणको भूलभुलैयामें डालनेकी कोशिश न करें। वे ध्यानमें रखें कि उनका जमाना बीत चुका है। सरकारी नीतिमें भी एकसूत्रता हो। आजकल जबरदस्तीसे अँग्रेजीके प्रति आकर्षण निर्माण किया गया है। इससे विद्यार्थी अब अँग्रेजीकी प्राथमिक परीक्षाओंमें सम्मिलित होते जा रहे हैं। फलस्वरूप हिन्दीके प्रति कुछ उदासीन-से हो रहे हैं। इस प्रकार हिन्दीकी प्रगतिमें बाधा निर्माण करना देशके लिए घातक है। सरकार अपनी नीतिके बारेमें सचेत रहे और ऐसी परिस्थिति निर्माण कर दे कि जिससे हिन्दीकी प्रगति घुडदौडकीचालसे होगी और यह एक ऐतिहासिक आवश्यकता है।

## आगेके लिए कुछ उपाय और सूझें :

(१) प्राप्त परिस्थितिका विचार करके हमें मार्ग ढूढ़ निकालना है। उत्तर-दक्षिण मनमुटाव मिटाना अत्यंत आवश्यक है। इस दृष्टिसे अहिन्दी प्रान्त के सुयोग्य वक्ता और प्रचारकोंको जनता संपर्कके लिए मौका दें। मेरा मतलब है कि ऐसे वक्ताओंको प्रथम उत्तर-भारतमें यात्राके लिए भेजा जाय। इस प्रवाससे ज्ञानार्जन भी होगा और उत्तर-भारतकी संस्कृतिके साथ सीधा संपर्क भी बढेगा। सायही उनकी दृष्टि विशाल होगी। वे प्रथम यात्राके समय विद्यालयीन संस्था तथा सांस्कृतिक मंडलोंके साथ अपना संबंध प्रस्थापित करें। इसके अनन्तर वे दक्षिणमें जायें। वहाँपर हिन्दी व्याख्यान द्वारा अखिल भारतीय सांस्कृतिक एकताके बारेमें अपने विचार पेश करें और वहांके लोगोंकी सहानुभूति को अपनानेकी कोशिश करे। मैं अपने अनुभवके आधार पर यह बात लिख रहा हूँ। जब महाराष्ट्र तथा गुजरातमें (द्विभाषिक राज्यमें) मनमुटाव था तब मैंने गुजरात-भ्रमण किया था। वहाँपर मैं टूटी फूटी गुजरातीमें तथा हिन्दीमें बोलता रहा। बदलेमें मैंने उनका प्रेम संपादन किया। उनका प्रेम धरोहरके रूपमें अब भी मेरे हृदयमें सुरक्षित है। केवल सुयोग्य व्यक्ति ही चुने जाय इसके विषयमें सरकार सचेत रहे। एकाध द्रविड भाषा जाननेवालेको प्रथम मौका दिया जाय। यह काम केन्द्रीय सरकारकोही करना होगा।

२. अहिन्दी प्रदेशमें जो सुयोग्य लेखक—वक्ता आदि हैं वे अपनी मातृभाषाके अच्छे वजनवाले-सार्थ शब्दोंका हिन्दीमें बगैर हिचकिचाहटके उपयोग करें। यह प्रथम कुछ विचित्रसा लगेगा पर धीरे-धीरे वे शब्द रूढ़ हो जाएँगे। इससे हिन्दी भाषा समृद्ध बनानेमें मदद मिलेगी।

३. हर भारतीय भाषाके अच्छे-अच्छे शब्द प्रयुक्त करनेके इरादेसे एक समिति स्थापित हो। सभी लेखकोंकी मदद इस काममें ली जाय। हिन्दी भाषामें प्रयुक्त करनेके काबिल ऐसे शब्द हैं या नहीं इसका निर्णय करनेका अधिकार इस समितिको होगा। शब्द संपत्तिको इस प्रकार बढ़ानेकी कोशिश करना फायदेमन्द सिद्ध होगा।

४. जहाँ जहाँ अंग्रेजी अपना निरर्थक प्रभुत्व रखती है वहाँ जान बूझकर उसको हटानेकी कोशिश हो। हिन्दी अंग्रेजीकी होड़में येन-केन प्रकारेण—हिन्दी की जीत हो इसके लिए हर भारतीयको प्रयत्नशील रहना होगा।

५. अधिक महत्त्वकी बात यह है कि हिन्दी भाषी प्रदेशमें राज-कारोबार की भाषा तुरन्त हिन्दी ही हो। वहाँ अंग्रेज़ीको हटानेका प्रयत्न होता रहे। अपने प्रदेशमें हिन्दीभाषी यदि इतना भी न करें तो उनका दूसरोंको उपदेश देना निरर्थक होगा। कारोबारकी भाषा बनानेसे वे यह सिद्ध कर सकेंगे कि हिन्दीमें राजव्यवहारकी भाषा बननेकी सामर्थ्य है। इससे अहिन्दीवालोंका संदेह भी दूर हो जाएगा तथा। वे इनका अनुकरण करनेमें प्रयत्नशील रहेंगे।

६. हिन्दी हमारे हृदयके आविष्कार की-हमारी भावनाकी भाषा हो : उसके उच्चारणसे हमारा कण्ठ पवित्र हों, उसके सुननेसे हमारे कर्ण पवित्र हों ओर उसके लिखनेसे हमारी लेखनी तेजस्वी हो जाय। जिस दिन अकेली हिन्दी राजभाषाके पदपर आसीन होगी वह दिन भारतके इतिहासमें स्वर्ण-दिन कहलाएगा। आइए, हम एक स्वरमें गुंजें–भारत जननी एक हृदय हो। जय हिन्दी।

## परिशिष्ट : क :

### विभिन्न हिन्दी परीक्षाओंको भारत सरकारके-शिक्षा-मत्रालय द्वारा दी गयी मान्यता :

भारत-सरकारके शिक्षा-मत्रालयने (केन्द्रीय हिन्दी निदेशालयकी ओरसे) ता. २२ अप्रैल १९६० को एक प्रेस-विज्ञप्ति-द्वारा भारतकी प्रमुख हिन्दी-प्रचार-सस्थाओ-द्वारा संचालित हिन्दी परीक्षाओंकी समकक्ष-मान्यताके सम्बन्धमे जो घोषणा की वह मूलरूपमे यहाँ दी जा रही है। यह समकक्ष-मान्यता, केवल हिन्दी-विषयके स्तरकी मानी गयी है न कि पूरी परीक्षाके बराबर।

इस विज्ञप्तिमे कहा गया है कि सन् १९६३ के बाद, इस सबधमें फिरसे विचार किया जायगा। किन्तु अबतक इस विषयमें दूसरी कोई विज्ञप्ति प्रकाशित नहीं हुई है। अर्थात् जबतक दूसरी विज्ञप्ति प्रकाशित नहीं होती, तब तक इसी विज्ञप्तिको जारी माना जा सकता है। —सम्पादक

### भारत-सरकारके शिक्षा-मंत्रालय (केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय) द्वारा जारी की गयी प्रेस-विज्ञप्ति : ता. २२ अप्रैल, १९६०

[परिपत्रक संख्या : एफ–१०–६/६० एच्–२ ता. २–७–६०]

देशके विभिन्न भागोमें अनेक हिन्दी सस्थाएँ काफी समयसे हिन्दी परीक्षाएँ ले रही हैं जिनको भारत-सरकारने अभी तक मान्यता नहीं दी थी। इन परीक्षाओको मान्यता न मिलनेके कारण वे उम्मीदवार जिन्होंने ये परीक्षाएँ पास की थीं, उन सरकारी नौकरियोके लिये योग्य नहीं थे, जहांपर कोई भी हिन्दी योग्यता निर्धारित की गई थी। कुछ सस्थाओने इन परीक्षाओंको मान्यता देनेके लिए सरकारसे प्रार्थना की थी। इस विषयपर अनेक समितियोने विचार किया और हिन्दी शिक्षा-समितिकी सिफारिशोके आधारपर भारत-सरकारने अपने अधीन नौकरियोंके लिए अनुबन्धमे दिखाई हुई सस्थाओद्वारा ली जानेवाली हिन्दी परीक्षाओंको मान्यता दी है। प्रत्येक परीक्षाके सामने हिन्दीका स्तर लिखा हुआ है।

२. यहाँ पर यह भी स्पष्ट हो जाना चाहिए कि इन सस्थाओ-द्वारा ली जानेवाली विभिन्न हिन्दी परीक्षाओको मान्यता केवल बराबर की परीक्षाओंमें निर्धारित हिन्दी स्तरको ही दी गई है और इनको पूर्ण प्रमाण-पत्र और या डिग्री परीक्षाओ, जिनसे इनकी बराबरी की गई है, के बराबर नहीं माना जाना चाहिए।

## अनुबन्ध-जिसका उल्लेख अनुच्छेद १ में किया गया है :

| सस्था का नाम | परीक्षा-ओं का नाम जिन्हें मान्यता दी गई है। | बराबर की परीक्षा में हिन्दी का निर्धारित स्तर | कैफियत |
|---|---|---|---|
| १ | २ | ३ | ४ |
| १. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग. | प्रथमा<br>मध्यमा (विशारद)<br>उत्तमा (सा रत्न) | मैट्रिक<br>बी ए.<br>बी. ए. से उच्च परन्तु एम्. ए. के बराबर नहीं | (अ) कालम एकमे दी गई सस्थाओ द्वारा संचालित परीक्षाओको जो सन १९६० के अन्ततक ली गई थीं (जो कालम २ मे दी गई हैं) मान्यता दी गई है ।<br><br>(ब) क्रमसंख्या १ से १३ तक दी गई संस्थाओद्वारा संचालित परीक्षाओको ३ वर्षतकके लिए और, यानी सन १९६३ तक मान्यता दी गई है । उसके बाद स्थितिपर फिरसे विचार किया जाएगा । |
| २. राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, वर्धा. | परिचय<br>कोविद<br>रत्न | मैट्रिक<br>इन्टर<br>बी. ए. | |
| ३. प्रयाग महिला विद्या-पीठ, इलाहाबाद. | विदुषी<br>सरस्वती | इन्टर<br>बी. ए. | |
| ४. हिन्दी विद्यापीठ, देवघर. | प्रवेशिका<br>साहित्य-भूषण<br>साहित्या-लकार | मैट्रिक<br>इन्टर<br>बी. ए. | |
| ५. त्रावनकोर हिन्दी प्रचार सभा, त्रिवेन्द्रम्. | प्रवेश<br>भूषण | मैट्रिक<br>इन्टर | |
| ६. असम राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति, गौहाटी | प्रबोध<br>विशारद | मैट्रिक<br>इन्टर | |

| संस्था का नाम<br>१ | परीक्षाओं का नाम जिन्हें मान्यता दी गई है।<br>२ | बराबर की परीक्षा में हिन्दी का निर्धारित स्तर<br>३ | कैफियत<br>४ |
|---|---|---|---|
| ७. हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद. | विशारद<br>भूषण<br>विद्वान | मैट्रिक<br>इन्टर<br>बी. ए. | |
| ८ बम्बई हिन्दी विद्यापीठ, बम्बई. | उत्तमा<br>भाषारत्न<br>साहित्य सुधाकर | मैट्रिक<br>इन्टर<br>बी. ए. | |
| ९. महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, पूना. | प्रबोध<br>प्रवीण<br>पण्डित | मैट्रिक<br>इन्टर<br>बी. ए. | |
| १० अखिल भारतीय हिन्दी परिषद, आगरा. | पारगत | बी. ए. | |
| ११. मणिपुर हिन्दी परिषद इम्फाल | प्रबोध<br>विशारद | मैट्रिक<br>इन्टर | |
| १२. मैसूर हिन्दी प्रचार परिषद, बंगलोर. | प्रवेश<br>उत्तमा<br>रत्न | मैट्रिक<br>इन्टर<br>बी. ए | |
| १३. गुजरात विद्यापीठ अहमदाबाद. | तीसरी<br>विनीत<br>सेवक | मैट्रिक<br>इन्टर<br>बी. ए. | (क) गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद-द्वारा संचालित (जो क्रमसंख्या १३ पर दी गई हैं) केवल उन्ही परीक्षाओंको मान्यता दी है, जिनमे विद्यार्थियोंने प्रश्न-पत्रोंका उत्तर देवनागरी लिपिमे |

| संस्था का नाम<br>१ | परीक्षा-ओं का नाम जिन्हें मान्यता दी गई है।<br>२ | बराबर की परीक्षा में हिन्दी का निर्धारित स्तर<br>३ | कैफियत<br>४ |
|---|---|---|---|
| | | | दिया हो और विद्यापीठको भविष्यमें, सभी प्रमाणपत्रों और सनदोंपर साफ तौरसे इस बातका उल्लेख करना चाहिए और जिन विद्यार्थियोंको सनदें पहलेसे मिल चुकी हों, उनको विद्यापीठसे एक प्रमाणपत्र मिलना चाहिए कि उन्होंने देवनागरी लिपिके माध्यमसे हिंदी परीक्षा पास की है। |
| १४. दक्षिण-भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास. | प्रवेशिका<br>विशारद<br>प्रवीण | मैट्रिक<br>इन्टर<br>बी. ए. | (ङ) दक्षिण-भारत हिन्दी-प्रचार सभा, मद्रास और हिन्दुस्तानी प्रचार सभा, बम्बई-द्वारा संचालित (जो क्रमशः क्रम संख्या १४ और १५ पर दिये गये हैं) परीक्षाओंको सन १९६० से आगे मान्यता देनेका प्रश्न भारत-सरकारके विचाराधीन है। |
| १५. हिन्दुस्तानी प्रचार-सभा, बम्बई. | काबिल<br>विद्वान | मैट्रिक<br>इन्टर | |

# हिन्दी पत्र-पत्रिकाओंकी सूची

## सकलक —श्री. शान्तिभाई जीवनपुत्रा

भारतीय सविधानमे, राष्ट्रभाषा-राजभाषाके रूपमे हिन्दी स्वीकृत हो जानेके उपरात, हिन्दीमें प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओकी सख्यामे काफी वृद्धि हुई है। वर्तमान समयमें—साहित्य, समाज, उद्योग, व्यापार, विज्ञान, सगीत, कला, कृषि ज्योतिष, धर्म, दर्शन, मनोविज्ञान, तान्त्रिक, बाल-विषयक आदि प्राय सभी विषयोंकी रुचि बढानेवाली अनेक पत्र-पत्रिकाएँ हिन्दी मे प्रकाशित हो रही है और उनका स्तरभी उत्तरोत्तर विकसित होता जा रहा है।

हिन्दीकी कुछ प्रमुख चुनी हुई पत्र-पत्रिकाओके नाम तथा पते, हिन्दी प्रेमियोंके उपयोगार्थ यहाँ दिये गये हैं :—

| पत्र-पत्रिका का नाम | पता |
|---|---|
| | **दैनिक** |
| अधिकार | आर्य-नगर, लखनऊ (उ प्र ) |
| अमृत-पत्रिका | अमृत बाजार पत्रिका-प्रकाशन - १०, एड् मान्स्टन रोड, प्रयाग (उ प्र ) |
| आज | कबीरचौरा, पो बॉ न ७ वाराणसी १ (उ प्र ) |
| आर्य मित्र | ५, मीराबाई मार्ग, लखनऊ (उ प्र.) |
| आर्यावर्त | मजरूल हक पथ, पटना, (बिहार) |
| इन्दौर समाचार | १३, गेस हाऊस रोड, इन्दौर (म प्र ) |
| उजाला | कचौरा बाजार, आगरा (उ प्र ) |
| जागरण | कस्तुरबा गाधी रोड, कानपुर (उ. प्र ) |
| जागृति | २४, बनारस रोड, सलकिया । हावडा-कलकत्ता (पश्चिम बगाल) |
| नवजीवन | केशर बाग, लखनऊ (उ प्र ) |
| नवप्रभात | नवप्रभात-कार्यालय, भोपाल (म. प्र.) |
| नवभारत | कॉटन मार्केट ,नागपुर २ (महाराष्ट्र) |
| नवभारत-टाइम्स | १०, दरिया गज, दिल्ली, |
| नवभारत-टाइम्स | टाइम्स ऑफ इन्डिया बिल्डिग, पो बॉ. न २१३ बम्बई १ (महाराष्ट्र) |
| प्रताप | गणेश शकर विद्यार्थी रोड, कानपुर (उ. प्र.) |
| प्रदीप | बुद्धमार्ग, पो बॉ न ४३, पटना (बिहार) |

| पत्र-पत्रिका का नाम | पता |
|---|---|
| प्रभात | सडे टाइम्स प्रेस मेरठ, (उ प्र.) |
| भारत | लीडर प्रेस, इलाहाबाद (उ प्र) |
| महाकोशल | महात्मा गाधी मार्ग, रायपुर (म प्र) |
| युगधर्म | रामदास पेठ, नागपुर १ (महाराष्ट्र) |
| हिन्दी मिलाप | मुकरमजाही रोड, पो बॉ न १८४ हैदराबाद (आन्ध्र) |
| राष्ट्रदूत | हल्दियाका रास्ता, जयपुर (राजस्थान) |
| लोकमान्य | सुभाष रोड, नागपुर २ (महाराष्ट्र) |
| लोकमान्य | १६, हॅरिसन रोड, कलकत्ता ७ (पश्चिम बगाल) |
| लोकवाणी | सवाई मानसिंह राजमार्ग, पो बॉ न ८, जयपुर (राजस्थान) |
| वर्तमान | वर्तमान प्रेस, सिविल लाइन्स, कानपुर (उ प्र) |
| विश्वमित्र | ७४, धर्मतल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता १३ (पश्चिम बगाल) |
| विश्वमित्र | नोबल चेंबर्स, पारसी बाजार स्ट्रीट, बम्बई १ (महाराष्ट्र) |
| विश्वमित्र | महात्मा गाधी रोड, कानपुर (उ प्र) |
| विश्वमित्र | कदम कुआँ, पटना (बिहार) |
| वीर अर्जुन | १९, पच कुइ रोड, नयी दिल्ली |
| | लाठी मुहाल, कानपुर (उ प्र,) |
| वीरभारत | १३०-सी, चित्तरजन एवेन्यू कलकत्ता ७ (पश्चिम बगाल) |
| सन्मार्ग | |
| | हिंदुस्तान टाइम्स लि पो बॉ न ४० |
| हिंदुस्तान | नयी दिल्ली १ |

## अर्ध साप्ताहिक

| पत्र पत्रिका का नाम | पता |
|---|---|
| जीवन | जीवन साहित्य ट्रस्ट, जीवन प्रेस, लश्कर ग्वालियर (म प्र) |
| राजस्थान | राजस्थान प्रेस, अजमेर (राजस्थान) |
| शुभ चिंतक | पो जबलपुर (म प्र) |
| हिन्दी स्वराज्य | पो खण्डवा (म प्र) |
| हिमाचल टाइम्स | दि माल, मसूरी (उ प्र) |

## साप्ताहिक

| पत्र-पत्रिका का नाम | पता |
| --- | --- |
| अग्रदूत | पो. रायपुर (म. प्र.) |
| अग्रवाल समाचार | धर्म पेठ, नागपुर २ (महाराष्ट्र) |
| अध्यापक संसार | परीक्षा-भवन प्रेस, लखनऊ (उ. प्र.) |
| अभ्युदय | अभ्युदय-प्रेस, प्रयाग (उ. प्र.) |
| अभ्युदय | ओल्ड असेम्ब्ली रेस्ट हाउस, नागपुर (महाराष्ट्र) |
| अमरज्योति | बगरुवालोंका रास्ता, जयपुर (राजस्थान) |
| अशोक | ४, महारानी रोड, इन्दौर (म प्र.) |
| आगरा-साप्ताहिक | आगरा-साप्ताहिक प्रेस, आगरा (उ प्र) |
| आगामी कल | जवाहर गंज, पो. खण्डवा (म. प्र.) |
| आज | कबीरचौरा, पो बॉ न. ७, वाराणसी १ (उ प्र.) |
| आदर्श | १९८।१, कॉर्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता (पश्चिम बंगाल) |
| आदिवासी | बिहार सरकारी प्रेस, पो. रांची (बिहार) |
| आर्य | निकलसन रोड, पो. अम्बाला-छावनी (पंजाब) |
| आर्य जगत् | कचहरी के पास, पो. जालंधर-शहर (पंजाब) |
| आर्य प्रकाश | काकडवाडी, बम्बई ४ (महाराष्ट्र) |
| आर्य्य मार्तण्ड | आदर्श नगर, अजमेर (राजस्थान) |
| आर्यमित्र | ५, मीराबाई मार्ग, लखनऊ (उ. प्र.) |
| आलोक | गीता ग्राऊण्ड, सीताबर्डी, नागपुर २ (महाराष्ट्र) |
| आवाज | पो देहरादून (उ. प्र) |
| आवाज् | पो. धनबाद (झरिया) (बिहार) |
| इन्डस्ट्रीयल गजट | १, मछुआ बाजार स्ट्रीट, कलकत्ता (पश्चिम बंगाल) |
| उत्तरा खण्ड | पो. ऋषिकेश (जि. देहरादून, उ. प्र.) |
| उदय | सिंह प्रेस, १९ बी, नरेन्द्रसेन स्क्वायर, कलकत्ता ९ (पश्चिम बंगाल) |
| ऊषा | ऊषा-प्रेस, पो. बॉ. न. २६, पो. गया (बिहार) |
| उषाकाल | ४७०, गेट बाजार, पो. जबलपुर (म. प्र..) |
| एकता | पो. भिवानी (हिसार, पंजाब) |
| कर्मवीर | पो. खण्डवा (म. प्र) |
| कलकी दुनिया | जालोरी गेट, पो जोधपुर (राजस्थान) |
| कानपुर-समाचार | विनोद प्रेस, कानपुर (उ. प्र.) |

| पत्र पत्रिका का नाम | पता |
|---|---|
| गोधन | गोहत्या निरोध समिति, ५३३३, सदर थाना रोड, दिल्ली-६ |
| चातक | चातक प्रेस, पो परतापगढ (उ ) |
| चित्रपट | २३, दरिया गज, दिल्ली |
| जन-जीवन | समाज शिक्षा बोर्ड, बिहार, पटना-४ (बिहार) |
| जन-युग | २२, कैसर बाग, लखनऊ (उ प्र ) |
| जन-वाणी | पो बॉ न ३१, पो कोटा (राजस्थान) |
| जन-वाणी | २, गोरा कुड, इन्दौर (म प्र ) |
| जन-शक्ति | पो इटारसी (म प्र ) |
| जयहिन्द | पो कोटा (राजस्थान) |
| जयाजी प्रताप | पो लश्कर, ग्वालियर, (म प्र ) |
| जैन गजट | मारवाडी कटरा, नई सडक, दिल्ली—६ |
| जैन-प्रकाश | १३९०, चाँदनी चौक, दिल्ली—६ |
| जैन-भारती | ३, पोर्तुगीज़ चर्च स्ट्रीट, कलकत्ता (पश्चिम बगाल) |
| जैन मित्र | गाधी चौक, सूरत (गुजरात) |
| जैन सन्देश | पो मथुरा (उ प्र ) |
| ज्वाला | मिर्ज़ा इस्माईल रोड, जयपुर (राजस्थान) |
| तरुण जैन | महावीर प्रेस, सोजती गेट, पो जोधपुर (राजस्थान) |
| देशदूत | कोठी वशीधर, कटरा, प्रयाग (उ प्र ) |
| धरतीके लाल | पो कोटा (राजस्थान) |
| धर्मयुग | टाइम्स ऑफ इन्डिया प्रेस बिल्डिंग, पो बॉ २१३ बम्बई १ (महाराष्ट्र) |
| नया भारत | १९, कैसर बाग, लखनऊ (उ प्र.) |
| नया राजस्थान | मिर्ज़ा इस्माईल रोड, जयपुर (राजस्थान) |
| नया ससार | सब्जी मण्डी, पो मुजफ्फरनगर (उ प्र ) |
| नव प्रभात | किशोर भवन, सीताबर्डी, नागपुर २ (महाराष्ट्र) |
| नवयुग सन्देश | पो भरतपुर (राजस्थान) |
| नव सन्देश | राँका भवन, नागपुर २ (महाराष्ट्र) |
| नवशक्ति | पो बॉ. न ६७, पटना (बिहार) |
| नागरिक | भार्गव इस्टेट, कानपुर (उ प्र ) |
| पचायतराज गजट | बेलन गज, कचौरा बाजार, आगरा (उ प्र.) |
| पचायती राज | प्रेमी प्रेस, पो मेरठ (उ प्र ) |

| पत्र-पत्रिका का नाम | पता |
| --- | --- |
| पथिक | क्लॉथ मार्केट, इन्दौर (म प्र ) |
| पाचजन्य | सदर बाजार, लखनऊ (उ प्र ) |
| पुकार | पो. हमीरपुर (उ. प्र ) |
| प्रकाश | स्पार्क प्रेस, कदम कुआँ, पटना-३ (विहार) |
| प्रगति | पो जालना (महाराष्ट्र) |
| प्रजाबन्धु | श्री कल्याण प्रेस, पो सीकर (राजस्थान) |
| प्रजासेवक | प्रजा सेवक प्रेस, पो जोधपुर (राजस्थान) |
| प्रताप | गणेश शकर विद्यार्थी रोड, कानपुर (उ प्र ) |
| प्रभाकर | प्रभाकर प्रेस, पो मुंगेर (बिहार) |
| प्रभात | १३, साँठा बाजार, इन्दौर (म प्र ) |
| प्रहरी | सुभद्रा नगर, जबलपुर (म प्र ) |
| प्राची | चौरगी स्क्वायर कलकत्ता-१ (पश्चिम बगाल) |
| फौजी अखबार | ब्लॉक ६, पुराना सचिवालय, दिल्ली |
| भविष्य | मिश्रबन्धु प्रेस, स्नेहलता गज, इन्दौर (म प्र ) |
| भाग्योदय | म्युनिसिपल चाल न ३२४, कमरा २, तुलसी पाईप रोड, बम्बई १३ (महाराष्ट्र) |
| भारत | ३, लीडर रोड, प्रयाग (उ प्र ) |
| भूदान-यज्ञ | मुरारपुर, पो. गया, बिहार) |
| भूदान-यज्ञ-पत्रिका | सर्व सेवा सघ, वाराणसी (उ प्र ) |
| मजदूर आवाज | मजदुर आवाज प्रेस, दामोदर रोड, साक्ची, जमशेदपुर (पश्चिम बगाल) |
| मजदूर सन्देश | १६०, स्नेहलता गज, इन्दौर (म प ) |
| मजदूर ससार | महेन्द्रू पटना ६ (बिहार) |
| महाकोशल | महात्मा गाधी मार्ग, रायपुर (म प्र ) |
| मीरां | सिविल लाइन्स, अजमेर (राजस्थान) |
| यातायात-सन्देश | रामगज बाजार, जयपुर (राजस्थान) |
| युग भारती | हजरत गज, लखनऊ (उ. प्र ) |
| युगवासी | भारतीय प्रेस एटा (उ प्र.) |
| युगान्तर | युगान्तर प्रेस, १०६।४३, गाधी नगर, कानपुर (उ प्र ) |
| योगी | योगी प्रेस, पटना (बिहार) |
| राजधानी | टाऊन हॉल, दिल्ली—६ |
| राजस्थान | ९ बी, चौरंगी प्लेस, कलकत्ता १- (पश्चिम बगाल) |
| रामराज्य | ८।३४, आर्य नगर, कानपुर (उ. प्र.) |

| पत्र-पत्रिका का नाम | पता |
| --- | --- |
| राष्ट्रीय हलचल | पॉप्युलर प्रेस, पो कन्नौज (उ. प्र.) |
| ललकार | त्रिपोलिया बाजार, जोधपुर (राजस्थान) |
| ललकार | पो बिकानेर (राजस्थान) |
| लोकवाणी | पो जयपुर (राजस्थान) |
| वर्तमान | पो कानपुर (उ प्र.) |
| विश्व-कल्याण | पो. बॉ. न. ६०२, नयी दिल्ली |
| विश्वमित्र | ७४, धर्मतल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता-१३ (पश्चिम बगाल) |
| शक्ति | देशभक्त प्रेस, पो अल्मोडा (उ प्र.) |
| शक्ति सन्देश | शक्ति सन्देश प्रेस, पो कनखल-हरिद्वार (उ. प्र.) |
| शहीद | नागरी प्रेस, झाँसी. (म प्र.) |
| शुभ चिन्तक | शुभ-चिन्तन प्रेस, कोतवाली बाजार, जबलपुर (म. प्र.) |
| श्रमजीवी | श्रम विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार, कानपु (उ. प्र.) |
| श्री वेकटेश्वर समाचार | ३६।४८, खेतवाडी बॅक रोड, ७ वी गली, बम्बई- (महाराष्ट्र) |
| श्वेताम्बर जैन | मोती कटरा, आगरा (उ. प्र.) |
| सयुक्त राष्ट्र | डायरेक्टर, युनाइटेड नेशन्स इन्फर्मेशन सेटर, नयी दिल्ली–१ |
| सन्मार्ग | टाऊन हॉल, वाराणसी (उ. प्र.) |
| स्वतत्र | स्वतन जर्नल्स लि पो झाँसी (म प्र ) |
| समाज जीवन | समाज शिक्षा बोर्ड, बिहार राज्य सरकार, पटना–४ (बिहार) |
| सहयोगी | सहयोगी प्रेस, वाजपेयी भवन, कस्तुरबा गाधी रोड, कानपुर (उ. प्र ) |
| साप्ताहिक सिने-तस्वीर | १३५ ए, चित्तरजन एवेन्यू (नॉर्थ ब्लॉक), कलकत्ता-७ (पश्चिम बगाल) |
| साप्ताहिक हिन्दुस्तान | पो बॉ न. ४०, नयी दिल्ली |
| सेनाग्राम | १, दरिया गज, दिल्ली |
| सैनिक | सैनिक प्रेस, किनारी बाजार, आगरा (उ. प्र.) |

| पत्र-पत्रिका का नाम | पता |
|---|---|
| हिन्दी सचित्र भारत | ८३, धर्मतल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता—१३ (पश्चिम बगाल) |
| हिन्दी-स्क्रीन | न्यूज-पेपर हाऊस, सासून डॉक, कोलाबा, बम्बई-५ (महाराष्ट्र) |
| हिन्दू | हिन्दू प्रेस, पो, हरिद्वार (उ प्र) |
| हुंकार | न्यू मार्केट, पटना१- (बिहार) |
| ज्ञानशक्ति | ज्ञान शक्ति प्रेस, पो गोरखपुर (उ. प्र.) |
| ज्ञानोदय | पो हिसार (पजाब) |
| अमेरिकन रिपोर्टर (हिन्दी) | युनायटेड स्टेटस इन्फॉर्मेशन सर्विस, बहावलपुर हाऊस सिकदरारोड, नयी दिल्ली |
| हिन्दी ब्लिट्ज् | ब्लिट्ज पब्लिकेशन्स प्रा लि १७-१७-एच, पटेल हाऊस, कावसजी पटेल स्ट्रीट, बम्बई-१ (महाराष्ट्र) |

## पाक्षिक

| | |
|---|---|
| अणुव्रत | ३, पोर्तुगीज स्ट्रीट, कलकत्ता १ (पश्चिम बगाल) |
| आर्थिक समीक्षा | ७, जतर मंतर रोड, नयी दिल्ली १ |
| आर्य-सेवक | गोरे पेठ, नागपुर (महाराष्ट्र) |
| उत्तर-प्रदेश पंचायती-राज्य | सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार, विधान-भवन, लखनऊ (उ. प्र.) |
| कर्मयोग | गीता मन्दिर, सिकन्दरा, आगरा (उ. प्र.) |
| कहानियाँ | सत प्रकाशन, पटना-३ (बिहार) |
| गावकी बात | मोतीलाल नेहरू रोड, प्रयाग (उ. प्र.) |
| गो-शुभचितक | गो-शुभचितक मडल, पो. गया (बिहार) |
| घनघुग | विश्वेश्वर गज, वाराणसी-१ (उ. प्र.) |
| घनवान | ३, महालक्ष्मी निवास, डी. वी. प्रधान रोड, दादर, बम्बई १४ (महाराष्ट्र) |
| नव चित्रपट | ९२, दरिया गज, दिल्ली |
| निर्भय | १३, विंडसर प्लेस, नयी दिल्ली |
| न्यायदूत | राजपूत सभा भवन, पो. जोधपुर (राजस्थान) |
| पंचायत | हुसैनी आलम, हैदराबाद-२ (आंध्र) |

| पत्र-पत्रिका का नाम | पता |
|---|---|
| भाग्यलक्ष्मी | शिवपुरी, लखनऊ (उ. प्र.) |
| मजदूर आवाज़ | ओडियन बिल्डिंग, कॅनाट प्लेस, नयी दिल्ली |
| रहबर | जे. जे. अस्पतालके सामने, बम्बई (महाराष्ट्र) |
| राजभाषा | १५, विंडसर प्लेस, नयी दिल्ली |
| विचारमाला | ९० ई, कमला नगर, दिल्ली–६ |
| समस्या | जवाहर मार्ग (सिया गंज), इन्दौर (म. प्र.) |
| सरोवर | सिंधु प्रिंटिंग प्रेस, ११८ थाडा बाजार, इन्दौर (म प्र.) |
| सलाहकार | ३४ ए, दादाभाई चाल, सूर्य सिनेमाके पीछे, परेल, बम्बई–१२ (महाराष्ट्र) |
| सुधानिधि | ३, सम्मेलन मार्ग, प्रयाग (उ. प्र.) |
| सूझबूझ | १८, गोविन्द बॅनर्जी लेन, सलकिया, हावडा, कलकत्ता (पश्चिम बंगाल) |
| सोवियत-भूमि | पो. बॉ न. २४१, नयी दिल्ली–१ |
| हलचल | पो. अमरोहा (उ. प्र ) |
| हिन्दी-पंच | सुन्दर भवन, डिप्टी गज, दिल्ली–६ |

## मासिक

| | |
|---|---|
| अखण्ड प्रभा | ७।१३७, स्वरूप नगर, लखनऊ (उ. प्र.) |
| अखण्ड ज्योति | अखण्ड ज्योति-प्रेस, घीयामडी, मथुरा (उ. प्र.) |
| अग्रगामी | अग्रवाल समाज समिति, पो जयपुर (राजस्थान) |
| अग्रवाल | ४५५, सिनेमा स्ट्रीट, सब्जी मडी दिल्ली–६ |
| अग्रवाल-सन्देश | २१, बुलानाला, वाराणसी (उ प्र.) |
| अजन्ता | हैदराबाद हिन्दी प्रचार सभा, नामपल्ली रोड, हैदराबाद (आंध्र) |
| अनेकान्त | १, दरिया गज, दिल्ली |
| अमरज्योति | किशोर-निवास, त्रिपोलिया बाजार, जयपुर (राजस्थान) |
| अमर कहानी | रगमहल कार्यालय, लाहौरी गेट, दिल्ली–६ |
| अमर-ज्योति | ११।३०९, सूटर गज, कानपुर (उ प्र.) |
| अमृत | बी एम्. दास रोड, पटना–४ (बिहार) |
| अरुणोदय | भावना क्षितिज, रामनगर, आलमबाग, लखनऊ (उ. प्र ) |

| पत्र-पत्रिका का नाम | पता |
|---|---|
| अवन्तिका | नया टोला, पो बॉ न ४८, पटना–४ (बिहार) |
| अहिंसावाणी | पो अलीगज (जि एटा, उ प्र.) |
| आंचल | ३, डिप्टी गज, सदर बाजार, दिल्ली |
| आजकल | प्रकाशन विभाग भारत सरकार, पुराना सचिवालय, दिल्ली–६ |
| आपका स्वास्थ्य | इन्डियन मेडिकल असोसिएसन वाराणसी–१ (उ. प्र ) |
| आयुर्वेद गौरव | ६०, पाथुरिया घाट स्ट्रीट कलकत्ता–६ (पश्चिम बगाल) |
| आरसी | ११३।११६ स्वरूपनगर कानपुर (उ.प्र ) |
| आरोग्य | आरोग्य मन्दिर पो गोरखपुर (उ प्र ) |
| आर्य्य महिला | जगत गज, छावनी, वाराणसी (उ प्र ) |
| आर्य शक्ति | आर्यसमाज, बोरा बाजार, बम्बई–१ (महाराष्ट्र) |
| आलोक | भारतवासी प्रेस दारा गज, प्रयाग (उ प्र.) |
| इन्डियन म्यूजिक | १८, फायर ब्रिगेड लेन, नयी दिल्ली–१ |
| इस्लामी साहित्य | दाल मडी, वाराणसी (उ प्र ) |
| उर्दू साहित्य | उर्दू-साहित्य प्रकाशन, २१६, दायरशाह अजमल इलाहाबाद–३ (उ प्र ) |
| उद्यम | धर्म पेठ, नागपुर २ (महाराष्ट्र) |
| उद्योग भारती | १६१।१, हॅरिसन रोड, कलकत्ता–७ (पश्चिम बगाल) |
| उद्योग व्यापार पत्रिका | व्यापार तथा उद्योग मत्रालय, भारत सरकार केन्द्रीय सचिवालय, नयी दिल्ली |
| ओसवाल | रोशन मोहल्ला, आगरा (उ प्र ) |
| कल्पना | ७, दरिया गज, दिल्ली |
| कल्पना | ६७, जीरो रोड, प्रयाग (उ प्र ) |
| कल्पना | ५१६, सुलतान बाजार, हैदराबाद–१ (आध्र) |
| कल्याण | पो गीता प्रेस, गोरखपुर (उ प्र ) |
| कहानी | पो बॉ २४, सरस्वती प्रेस, ५, सरदार पटेल मार्ग, प्रयाग–१ (उ प्र ) |
| कादम्बिनी | हिंदुस्तान टाइम्स लि नयी दिल्ली पो बॉ ४० कनाट सर्कस |
| किशोर | बाल शिक्षा समिति, बांकीपुर, पटना–४ (बिहार) |
| किशोर भारती | १९, शिवचरणलाल रोड प्रयाग (उ प्र ) |

| पत्र-पत्रिका का नाम | पता |
|---|---|
| कुरुक्षेत्र | प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, पुराना सचिवालय, दिल्ली–६ |
| केसरी | ३९, कचहरी रोड, पा गया (विहार) |
| कृषक | घाट रोड, धम पेठ नागपुर–२ (महाराष्ट्र) |
| गल्प भारती | ८, इडियन मिरर स्ट्रीट, कलकत्ता–१३ (पश्चिम बगाल) |
| ग्रामसेवक | प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, पुराना सचिवालय दिल्ली–६ |
| गायत्री | गायत्री मदिर पो हाथरस (उ प्र ) |
| गीता धम | साक्षी विनायक, वाराणसी (उ प्र ) |
| गुरुकुल पत्रिका | गुरुकुल कागडी विश्वविद्यालय, पो कागडी (हरिद्वार, उ प्र ) |
| गृहिणी | गाधी मैदान, सीतावर्डी नागपुर–२ (महाराष्ट) |
| गो सम्वर्धन | केन्द्रीय गोसम्वर्धन परिपद, नयी दिल्ली |
| ग्रथालय | दिल्ली विश्वविद्यालय ग्रथालय, दिल्ली |
| चन्दामामा | चन्दामामा प्रकाशन, मद्रास–२६ |
| चरित्र निर्माण | विज्ञान प्रेस, पो ऋषिकेश (जि. देहरादून, उ. प्र ) |
| चलचित्र | ५६, वॅटिक स्ट्रीट, भारतीय प्रकाशन गृह, कलकत्ता (पश्चिम बगाल) |
| चाँद | २८, एड्मास्टन रोड, प्रयाग (उ प्र ) |
| चित्रभारती | २६७, अपर चितपुर रोड, कलकत्ता–५ (पश्चिम वगाल) |
| चित्रा | ३६, वाराणसी घोप स्ट्रीट, कलकत्ता–७ (पश्चिम वगाल) |
| चुन्नू-मुन्नू | श्री अजन्ता प्रेस लि पो बॉ न ४८, पटना–४ (विहार) |
| छपाईकला | पो बॉ न ६३४, पूना–२ (महाराष्ट्र) |
| छाया | हेमिल्टन रोड, जॉज टाऊन, प्रयाग (उ प्र ) |
| जनवाणी | पान दरीवा, जन साहित्य मडल, लखनऊ (उ प्र ) |
| जीवनसखा | प्राकृतिक स्वास्थ्य गृह लूकर गज, प्रयाग (उ प्र ) |
| जीवन साहित्य | सस्ता साहित्य मडल, कनाट सरकस, नयी दिल्ली–१ |

| पत्र-पत्रिका का नाम | पता |
|---|---|
| न्याय | १६८२, नई सड़क, दिल्ली |
| न्याय बोध (हिन्दी) | सेन्ट्रल लॉ हाउस, तिलक रोड, नागपुर–२ (महाराष्ट्र) |
| पंचायत | ग्रामपंचायत विभाग, राजस्थान सरकार, स्टेशन रोड, जयपुर (राजस्थान) |
| पंचायत सन्देश | बिहार राज्य पंचायत परिषद, नेशनल हॉल, कदम कुआँ, पटना–३ (बिहार) |
| पराग | टाइम्स ऑफ इन्डिया प्रेस बिल्डिंग पो. बॉ. न. २१३, बम्बई–१ (महाराष्ट्र) |
| परलोक | ब्रह्मचर्याश्रम, पो. भिवानी (हिसार, पंजाब) |
| पशुसेवक | ३२ ए, गार्डन रोड, आगरा-छावनी (उ. प्र.) |
| पुस्तकालय | बिहार राज्य पुस्तकालय संघ, पटना–१ (बिहार) |
| पुस्तकालय सन्देश | पो. पटना विश्वविद्यालय, पटना–५ (बिहार) |
| पूर्वज्योति | पूर्व ज्योति कार्यालय, फॅन्सी बाज़ार, गोहाटी (आसाम) |
| प्रकाशन-समाचार | राजकमल प्रकाशन लि. ८, फैजबाज़ार दिल्ली–७ |
| प्रभाकर | प्रभाकर कार्यालय, पटना ३ (बिहार) |
| प्रवाह | राजस्थान भवन, पो. बॉ. न. ३२—अकोला (महाराष्ट्र) |
| प्रसाद | ६५। २०९, बड़ी पियरी, वाराणसी (उ. प्र.) |
| प्राकृतिक जीवन | प्राकृतिक चिकित्सा मन्दिर, १९, शिवाजी मार्ग, लखनऊ (उ. प्र.) |
| प्रारब्ध | पो. बॉ. न. ३५२, इतवारी, नागपुर–२ (महाराष्ट्र) |
| प्रेम कहानियाँ | यन प्रिन्टिंग वर्क्स ७ ए। २३, डब्ल्यू ई. ए. करोलबाग, नयी दिल्ली–५ |
| प्रेम सन्देश | प्रेम धाम, प्रेम महामंडल, पो. वृन्दावन (मथुरा, उ. प्र.) |
| ब्रजभारती | पो. मथुरा (उ. प्र.) |
| बालक | गोविंद मित्र रोड, बांकीपुर, पटना–४ (बिहार) |
| बालभारती | प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, पुराना सचिवालय दिल्ली–६ |
| बालभारती | २६९, कर्नल गंज, प्रयाग (उ. प्र.) |
| बालविनोद | २३५, तेली वाडा, दिल्ली |

| पत्र-पत्रिका का नाम | पता |
| --- | --- |
| बालसखा | इण्डियन प्रेस (पब्लिकेशन्स) प्रा लि प्रयाग (उ प्र ) |
| बालसेवा | गांधी नगर, कानपुर (उ प्र ) |
| भक्ति | भगवद्-भक्ति आश्रम, पो रामपुरा (रेवाड़ी-पंजाब) |
| भविष्य दर्पण | ११९, चन्दा स्ट्रीट, पो मैनपुरी (उ प्र ) |
| भविष्य दीपक | ९०, राम बाग, इन्दौर (म प्र ) |
| भारत जननी | ५४, हिवेट रोड, प्रयाग (उ प्र ) |
| भारतवाणी | कर्नाटक प्रान्तीय हिन्दी प्रचार सभा पो धारवाड़ (मैसूर-राज्य) |
| भारत सेवक | भारत सेवक समाज ९ थिएटर कम्युनिकेशन बिल्डिंग कनाट सरकस नयी दिल्ली-१ |
| भारत स्नेह वर्धिनी | पो बॉ न ५६६ पूना-२ (महाराष्ट्र) |
| भारती | पो बॉ न २६८ कानपुर (उ प्र ) |
| भारती | बम्बई हिन्दी विद्यापीठ, फॉरजट स्ट्रीट बम्बई-२६ (महाराष्ट्र) |
| भारतीय धर्म | गुलाब बाड़ी, पो अजमेर (राजस्थान) |
| भारतीय विद्या पत्रिका | भारतीय विद्या भवन, बम्बई-७ (महाराष्ट्र) |
| मंगल प्रभात | गांधी साहित्य (हिन्दुस्तानी) सभा, राजघाट, नयी दिल्ली |
| मजदूर-जगत | श्रम मन्त्रालय, भारत सरकार, केन्द्रीय सचिवालय, नयी दिल्ली |
| मजदूर समाचार | सिविल लाइन्स, कानपुर (उ प्र ) |
| मधुकर | वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद, पो टीकमगढ़ (झांसी, म प्र ) |
| मनोरमा | मित्र प्रकाशन लि प्रयाग-३ (उ प्र ) |
| मनोविज्ञान | ६१।२५, सिद्धगिरी वाराणसी (उ प्र ) |
| मनोहर कहानियां | मित्र प्रकाशन लि प्रयाग-३ (उ प्र ) |
| मस्ताना जोगी | जगपुरा, नयी दिल्ली-१२ |
| महाशक्ति | ५।५३, त्रिपुरा भैरवी, वाराणसी (उ प्र ) |
| माध्यम | हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (उ प्र ) |
| माधुरी | नवलकिशोर प्रेस, पो लखनऊ (उ प्र ) |
| मानव | कृष्ण निकेतन, नो वस्ता, आगरा (उ प्र ) |
| मानव | ९०, लोअर चितपुर रोड, कलकत्ता-७ (पश्चिम बंगाल) |

| पत्र पत्रिका का नाम | पता |
|---|---|
| मानवता | मानवता प्रकाशन पो. अकोला (महाराष्ट्र) |
| मानसमणि | पो रामवन (सतना, म. प्र.) |
| मानस हंस | मानस मन्दिर, हाथरस (उ प्र.) |
| माया | मित्र प्रकाशन लि. प्रयाग–३ (उ. प्र.) |
| मुक्ता | दिल्लीप्रेस, झंडेवाला इस्टेट नयी दिल्ली |
| मुन्ना-मुन्नी | मोहन प्रेस, कदम कुआँ, पटना–३ (बिहार |
| मुसकान | लल्ला प्रेस, प्रयाग (उ. प्र) |
| मोहिनी | जगत प्रिंटिंग, दिल्ली |
| मोहिनी | कटरा, प्रयाग (उ. प्र.) |
| युगछाया | २५५१, धर्मपुरा, दिल्ली–६ |
| युगधर्म | युगधर्म कार्यालय, प्रयाग (उ. प्र.) |
| युगभारती | हजरत गंज, लखनऊ (उ. प्र) |
| युगवाणी | आजाद भारत प्रेस, आगरा (उ. प्र.) |
| युगारंभ | साहित्य प्रेस, साठिया कुआँ, जबलपुर (म प्र.) |
| युवक | ३, विजय नगर कॉलनी, आगरा (उ. प्र.) |
| युगोस्लाव समाचार | युगोस्लाव दूतावास, १०, सुन्दर नगर, नयी दिल्ली |
| योगेन्द्र | अ. भा योगी महामंडल, प्रयाग (उ. प्र.) |
| रंग | हिन्दी-भवन, १७०, रानीमंडी, इलाहाबाद–३ (उ. प्र.) |
| रंगभूमि | १५०१, दरीबा, दिल्ली–६ |
| रंजना | १७।५, महात्मा गांधी रोड, कानपुर (उ प्र.) |
| रसीली कहानियाँ | २८, एड्मास्टन रोड, प्रयाग (उ. प्र) |
| रसभरी | नई सडक, रोशन पुरा, दिल्ली–६ |
| रसवंती | रानी कटरा, विद्या मन्दिर, लखनऊ–३ (उ. प्र) |
| रसायन | पो. बॉ. न. ११२५, दिल्ली |
| राजस्थान-साहित्य | राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर (राजस्थान) |
| राजीव | लोटस पब्लीकेशन्स, पो बॉ. न. १६०२, बम्बई–१ (महाराष्ट्र) |
| रानी | चितरंजन एवेन्यू, कलकत्ता (पश्चिम बंगाल) |
| राष्ट्रभारती | राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पो. हिन्दी नगर, वर्धा (महाराष्ट्र) |
| राष्ट्रभाषा | राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पो. हिन्दी नगर, वर्धा (महाराष्ट्र) |

| पत्र-पत्रिका का नाम | पता |
|---|---|
| राष्ट्रभाषा-पत्र | उत्कल प्रांतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सभा, राष्ट्रभाषा रोड, कटक१ (उड़ीसा) |
| राष्ट्रवाणी | महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, ३८८, नारायण पेठ, पो बॉ न ५६०, पूना-२ (महाराष्ट्र) |
| राष्ट्रवीणा | गुजरात राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, राष्ट्रभाषा-हिन्दी-भवन, एलिसब्रिज, अहमदाबाद-६ (गुजरात) |
| रूपरानी | ९२, दरिया गंज, दिल्ली |
| रेडियो-समाचार | पो बॉ न ७०८, नयी दिल्ली-१ |
| लोक चित्र | कमल प्रकाशन, वकील पुरा, दिल्ली |
| विक्रम | पो उज्जैन (म प्र ) |
| विद्यार्थी | हिन्दी प्रेस, प्रयाग (उ प्र ) |
| विनोद | हिन्दी प्रेस, प्रयाग (उ प्र) |
| विशाल भारत | १०२।२, अपर सरकुलर रोड, कलकत्ता-९ (पश्चिम बंगाल) |
| विश्व ज्योति | साधु आश्रम, पो होशियारपुर (पंजाब) |
| विश्ववाणी | विश्ववाणी प्रेस, आजाद स्क्वायर, प्रयाग (उ प्र.) |
| विज्ञान | विज्ञान परिषद, म्योर सेन्ट्रल कॉलेज भवन, प्रयाग (उ. प्र ) |
| विज्ञान-पत्रिका | नेपियर टाऊन एक्सटेंशन, जबलपुर (म प्र ) |
| विज्ञान प्रगति | ओल्ड मिल रोड, नयी दिल्ली-२ |
| वीणा | तुकोजी गंज, इन्दौर (म प्र ) |
| वैदिक धर्म | स्वाध्याय मण्डल, पो किल्ला-पारडी (जि सूरत, गुजरात) |
| व्यायाम | रावपुरा बड़ोदा (गुजरात) |
| शबनम | नया हिन्दुस्तान प्रेस, चाँदनी चौक, दिल्ली-६ |
| शिशु | शिशुप्रेस, प्रयाग (उ प्र ) |
| शिक्षा-सुधा | पो मडी धनौरा (जि मुरादाबाद, उ प्र ) |
| श्रमण | जैनाश्रम, हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-५ (उ प्र ) |
| श्री गुरुदेव | श्री गुरुदेव कार्यालय, पो गुरु-कुंज मोझरी, (जि. अमरावती, महाराष्ट्र) |
| शृङ्गार | शक्तिनगर, दिल्ली-६ |

| पत्र पत्रिका का नाम | पता |
| --- | --- |
| सगीत | सगीत कार्यालय, पो हाथरस (उ. प्र ) |
| सत्रय | २४, क्लाइव स्क्वेयर, नयी दिल्ली |
| सत | ६३३, कटरा, प्रयाग (उ प्र ) |
| सतवाणी | मगल प्रेस, जयपुर (राजस्थान) |
| सन्देश-वाहक | माणिक चौक, झाँसी (म प्र ) |
| सस्कृति | नया टोला, पटना–४ (बिहार) |
| सचित्र आयुर्वेद | वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि पो बॉ न ६८३५, कलकत्ता–६ (पश्चिम बगाल) |
| सजनी | पो बॉ न १, प्रयाग (उ प्र ) |
| सन्मार्ग | गगा तरग, नगवा, वाराणसी (उ प्र ) |
| सप्तसिन्धु | हिन्दी विभाग, पजाब सरकार, पो पटियाला (पजाब) |
| सफल जीवन | पो बॉ न ३१९, नयी दिल्ली |
| समाज | ए–६, कनाट प्लेस, नयी दिल्ली–१ |
| समाज कल्याण | वाशग विभाग, भारत सरकार, पुराना सचिवालय, दिल्ली–६ |
| समिति-वाणी | हिन्दी साहित्य-समिति, पो भरतपुर (राजस्थान) |
| सम्पदा | रोशन आरा रोड, दिल्ली–६ |
| सरस्वती | इन्डियन प्रेस (पब्लीकेशन्स) प्रा लि प्रयाग (उ प्र) |
| सरस्वती-सवाद | मोती कटरा, आगरा (उ प्र ) |
| सरिता | दिल्ली प्रेस, पो बॉ न १७, नयी दिल्ली–१ |
| सर्वोदय | अ भा सर्व सेवा सघ, वाराणसी (उ प्र ) |
| सागर | सागर-कार्यालय २५२, के एल् कीट गज, इलाहाबाद (उ प्र ) |
| साजन | सजनी प्रेस, पो बॉ न १, प्रयाग (उ प्र ) |
| साधना | साधना प्रकाशन, पहाड गज, नयी दिल्ली–१ |
| सारिका | टाइम्स ऑफ इन्डिया प्रेस बिल्डिंग, पो बॉ न २१३, बम्बई–१ (महाराष्ट्र) |
| सार्वदेशिक | बलिदान भवन, दिल्ली–६ |
| साहित्य | सम्मेलन भवन, कदम कुआ, पटना–३ (बिहार) |

| पत्र-पत्रिका का नाम | पता |
| --- | --- |
| **त्रैमासिक** | |
| आलोचना | राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. ८, फैज बाजार दिल्ली–७ |
| कस्तुरबा दर्शन | कस्तुरबा ग्राम, इन्दौर (म. प्र.) |
| किसान | विहार कृषि परिषद, सगोल रोड, पटना (विहार), |
| जयभारती | बंगीय हिन्दी परिषद, १५ बंकीमचंद्र चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता (पश्चिम बंगाल) |
| जनसेवक | गृह विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार १४, ओडरम रोड, लखनऊ (उ. प्र.) |
| ज्योतिष-विज्ञान | १८, गोविन्द बॅनर्जी लेन, सलकिया, हावड़ा कलकत्ता, (पश्चिम बंगाल) |
| दिव्यालोक | ६२१, दारा गंज, प्रयाग (उ. प्र.) |
| दृष्टिकोण | आर. के. भट्टाचार्य रोड, पटना–१ (विहार) |
| नागरी प्रचारिणी पत्रिका | नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी (उ. प्र.) |
| प्रसारिका | भारतीय आकाशवाणी, भारत सरकार, प्रकाशन विभाग, पुराना सचिवालय, दिल्ली–६ |
| प्राणिशास्त्र | २, हुसैन गंज, लखनऊ (उ. प्र.) |
| बालमित्र | १०, कम्यूनिकेशन थिएटर बिल्डिंग, नयी दिल्ली–१ |
| विहार-शिक्षक | महेन्द्रू, पटना–६ (बिहार) |
| भाषा | भाषा निदेशालय, भारत सरकार, केन्द्रीय सचिवालय नयी दिल्ली |
| राष्ट्रसेवक | असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गौहाटी (आसाम) |
| विद्यापीठ-पत्रिका | हिन्दी विद्यापीठ पो. देवघर (बिहार) |
| विश्वभारती-पत्रिका | हिन्दी भवन, शान्ति निकेतन, पो. शान्ति निकेतन (जि. वीरभूम) (पश्चिम बंगाल) |
| शिक्षा | शिक्षा विभाग, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ (उ. प्र.) |
| सम्मेलन-पत्रिका | हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग (उ. प्र.) |
| हिन्दी अनुशीलन | भारतीय हिन्दी परिषद, हिन्दी विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग (उ. प्र.) |
| ज्ञान शिखा | लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ (उ. प्र.) |

## अन्य सामयिक

| पत्र-पत्रिका का नाम | पता |
|---|---|
| आधार | हिन्दी-भवन, ३७०, रानी मंडी, इलाहाबाद-३ (उ. प्र ) |
| उद्योग-वाणिज्य | भारती भूषण प्रेस, राजेन्द्र पथ, पटना (बिहार) |
| गंधदीप | चित्तरंजन प्रकाशन, दुर्गा निवास, पवई सरोवर रोड, बम्बई-७६ (महाराष्ट्र) |
| गोधूलि | गोधूलि मंडल, बुलानाला, वाराणसी (उ प्र.) |
| नेपाल सन्देश | पो पटना १ (बिहार) |
| पथिक | ५६, तिलक रोड, पो. देहरादून (उ. प्र ) |
| गवेषणा | केन्द्रीय हिन्दी शिक्षण मण्डल, आगरा (उ प्र ) |
| समन्वय | केन्द्रीय हिन्दी शिक्षण मण्डल, आगरा (उ प्र ) |
| सेविका (हिन्दी) | सेविका-प्रकाशन, पो. हिन्दी नगर, वर्धा. (महाराष्ट्र) |
| क ख ग, (विचारोंका त्रैमासिक) | १८४-ए, एलनगज, इलाहाबाद (उ. प्र.) |
| भारती | भारतीय विद्या-भवन, चौपाटी रोड, बम्बई–७ (महाराष्ट्र) |
| तुलसी मयूख | पो. पटना (बिहार) |
| तुलसीदल | तुलसीदल कार्यालय, पो. भोपाल (म. प्र.) |
| साहित्यालोचन | अनुसधान प्रकाशन, पो. कानपुर (उ. प्र.) |
| राजस्थान-भारती | राजस्थान शोध सस्थान, जयपुर (राजस्थान), |
| भारतीय-साहित्य | क. मा. मुन्शी हिन्दी इन्स्टीटयूट, आगरा (उ. प्र.) |
| जागृति | खादी ग्रामोद्योग कमीशन, इर्लारोड, विलेपार्ले (पश्चिम), बम्बई-५६. |
| मरुवाणी | राजस्थान भाषा-प्रचार-सभा, जयपुर (राजस्थान) |
| संत निरंकारी | सत निरकारी कॉलोनी, दिल्ली-९. |
| अमर विभूति | साधु आश्रम, पो. होशियापुर (उ. प्र ) |
| स्मृति चेतन | भागवत भजनाश्रम, पो. वृन्दावन (मथुरा उ. प्र.) |
| मराल | यूरेका पब्लिकेशन, ३७/४९, गादौलिया, वाराणसी (उ. प्र.) |
| याद-पत्रिका | ८५, सुन्दर नगर, दिल्ली–११. |
| भारत ज्योति | होशियारपुर रोड, जालधर शहर (पजाब) |
| बेकार सखा | पो शिकोहाबाद (पंजाब) |
| कला संसार | १ सागरदत्त लेन, कलकत्ता–१२. (पश्चिम बगाल) |
| मैत्री | परधाम प्रकाशन, पो. पवनार(जि वर्धा, महाराष्ट्र) |